योग दीपिका

बी. के. एस. आयंगार

ओरिएण्ट लॉन्गमैन

योगदीपिका

बी. के. एस. आयंगार

ओरिएण्ट लॉन्गमैन

योगदीपिका

योगदीपिका

बी. के. एस. आयंगार

Om P Bhatia
6/11/74.

प्रस्तावना
येहुदी मेनुहिन

अनुवाद
चंद्रशेखर शास्त्री

ओरिएण्ट लॉन्गमैन लिमिटेड

पंजीकृत कार्यालय :

३/५ आसफ अली रोड, नयी दिल्ली ११०००१

शाखाएँ :

निकल रोड, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई ४००००१
१७ चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता ७०००१३
३६ ए माउण्ट रोड, मद्रास ६००००२
बी ३/७ आसफ अली रोड, नयी दिल्ली ११०००१

मूल्य :
रुपये २५·००

प्रकाशक :
सुजित मुखर्जी
ओरिएण्ट लॉन्गमैन लिमिटेड
३/५ आसफ अली रोड
नयी दिल्ली ११०००१

मुद्रक :
सुजित पटवर्धन
संगम प्रेस लिमिटेड
१७ ब कोथरूड
पूना ४११०२९

वि न ति

" महर्षि पतंजलि –
जिन्होंने योग पर अपनी कृति द्वारा मन की शान्ति,
व्याकरण पर अपनी रचना द्वारा वाणी की शुद्धता,
तथा ओषधि पर अपने प्रयोग द्वारा शारीरिक पवित्रता लायी है "–
को मैं प्रणाम करता हूँ

" आदिदेव शिव –
जिन्होंने सर्वप्रथम हठयोगविज्ञान की शिक्षा दी,
हठयोगविज्ञान राजयोग की ऊँचाई प्राप्त करने की
इच्छा रखनेवालों के लिए एक सोपान है। "–
को म नमस्कार करता हूँ

आदरणीय गुरुवर्य

सांख्य-योग–शिखामणि; वेदान्त-केसरी; वेदान्त-वागीश;
न्यायाचार्य; मीमांसा-रत्न; मीमांसा–तीर्थ;

प्राध्यापक, श्रीमान् टी. कृष्णमाचार्य,
मैसूर,
के
करकमलों में सादर समर्पित

प्रस्तावना

प्रमा और संतुलन का सहज प्रारंभिक भान हठयोग के अभ्यास का सहज प्रतिफल है। शरीर तो हमारा आदि करण है। उसीके लास्य से अवबोध होता है निनाद और सुसंवाद का। अखंड प्रत्यह अभ्यास से हम इस काया के कण-कण की परिशुद्धि करते हैं, उन्हें जीवन-ऊर्जा प्रदान करते हैं। मानव के अन्दर कुछ ऐसी सिद्धियां हैं, जो अनजाने ही प्रसुप्त पड़ी रहती हैं, और सामान्यत: ये सुप्त सिद्धियां उचित अभ्यास के अभाव में मृत्युपर्यंत दबी पड़ी रहती हैं। पर योगाभ्यास से उनके विकास का द्वार खुल जाता है।

पेशी, कोष, ऊतक आदि का, मस्तिष्क और फेफड़े का अविकसित अंश संकल्पशक्ति और स्वत्व की कसौटी बन जाता है, वरन् वैफल्य का उद्‌गम बन जाता है। जिस किसी को भी श्री आयंगार की आत्मीयतापूर्ण दृष्टि का लाभ प्राप्त हुआ है; जिसे उनकी कला-सिद्धि की प्रासादिक, सौन्दर्यपूर्ण, अचूक प्रक्रियाओं का दर्शन हुआ है, उसे आदिमानव की निरागसपूर्णता का भान हो जाता है; उसके सृष्टि-स्वामित्व का, निष्पाप, अकृत्रिम, दैवी क्रियाशक्ति का जीवन के नन्दन वन में अस्फुट दर्शन हो जाता है। ज्ञानवृक्ष से मानव को विविध फलप्राप्ति होती रही है – मधुर, कटु, विषाक्त। जिस रीति से हम इस फल का प्रयोग करते हैं, उसीसे उसका गुण निर्धारित होता है। परन्तु जिस वृक्ष से ऐसी विविध फलप्राप्ति स्वाभाविकता से होती है, क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम उस वृक्ष का संवर्धन करें, उसके जड़मूल को संवारें ? इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मानव इस तरह के ज्ञान का सही विनियोग करता है या नहीं ? यह बड़ी भयानक बात होगी, अगर वह आत्मविकास के लिए नहीं, बल्कि दूसरों को प्रभावित करने आदि जैसे कुव्यवसाय के लिए इसका उपयोग करता है।

पन्द्रह वर्षों से भी अधिक के मेरे योगाभ्यास से मैंने महसूस किया है कि जीवन के प्रति हमारी जो मूल प्रवृत्तियां, जो दृष्टिकोण होते हैं, उनपर शरीर की अवस्थाओं का प्रभाव होता है। इसलिए यह जरूरी है कि पहले हम अपने शरीर के

दायें तथा बायें हिस्सों में एक ऐसे अंश तक संतुलन बना लें, जहां से तुलना करके फिर आगे भी आवश्यक सुधार द्वारा और भी अधिक सुन्दर संवाद बनाया जा सके। यदि ऐसा न हुआ तो इच्छाशक्ति के द्वारा हम अपनी आकृष्टि-क्षमता का ख्याल न कर मस्तकाग्र से पादांगुल्यग्र तक सारे शरीर को जबरन तानने लग जायेंगे। अवयवों के उन्मुक्त तथा अनियमित संचलन से संभाव्य मांसलता तथा गति से ही प्रेरणा तथा उच्च अभिलाषा का प्रारंभ होगा, बजाय इसके कि इस तरह की प्रेरणा तथा उच्चाकांक्षा का उगम हाथ तथा पैरों के दीर्घकालीन अभ्यास से जनित ऐसे सुनियंत्रित संतुलन से हो, जिससे अंगसौष्ठव का संवर्धन होता है। विभिन्न योगासनों का अभ्यास एक बार में कुछ मिनट तक करते रहने से शरीर में लचीलापन आता है, जबकि स्तब्धता और शान्ति के लिए आवश्यक है कि लगातार धीरे-धीरे श्वासोच्छ्वास किया जाय जिससे फुप्फुसों में विस्तार हो। तनाव के बाद विश्राम, विश्राम के बाद फिर तनाव – इस तरह का एक अनिवार्य परिवर्तन-चक्र है। इस परिवर्तन के भान के साथ-साथ मानव में सातत्य और विश्वैकात्म्य की अनुभूति का संचार होता है। तनाव और विश्राम का यह चक्र निश्चित, शाश्वत, लयबद्ध होता है। प्रत्येक श्वासोच्छ्वास से ब्रह्माण्ड के असंख्येय, अमेय कालचक्रों, तरंगों या कंपनों में से एक का निर्माण होता है।

योग का विकल्प क्या है? सारी व्यवस्था को उद्ध्वस्त करनेवाले निराश, सिर-फिरे लोगों का जमघट, सीधे-सादे लोगों की निंदा करनेवाले कुटिल लोग, न्यायाधीश की तरह केवल निर्णय सुनाकर स्वयं अकर्मण्य प्रवृत्तिवाले तानाशाह, और अपने स्वयं के असंतुलन और हीन भावना से दूसरों को नुकसान पहुंचानेवाले लोगों का मजमा!

श्री. आयंगार की योगसाधना भक्त की योगसाधना है, जिसने स्वयं एकाकी, शुद्धचित्त, शुद्धकाय, ध्यान और धारणा में निमग्न होकर वेदी पर अपने आप को समर्पित कर दिया है। उनका यह समर्पण निरागस है, बिना किसी निहित लिप्सा के है। यह कोई ज्वलंत आत्म-बलिदान नहीं है, मात्र उन्होंने अपनी अन्तःस्थित चरमावस्था को अधिगत कर लिया है।

शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता को दूर करने के लिए तथा सामान्य रूप से शरीर की रक्षा के लिए योगाभ्यास एक आदर्श प्रक्रिया है। इससे आत्मनिर्भरता और निश्चय की भावना अनिवार्य रूप से विकसित होती है। यह अत्यंत स्वाभाविक रूप से जागतिक नियमों के साथ गहन रूप से निगड़ित है; क्योंकि एक स्वस्थ, शांत श्वसन के लिए, चित्तशान्ति के लिए तथा दृढ इच्छाशक्ति के लिए जीवन के प्रति निष्ठा, सत्य और धैर्य– ये सभी अपरिहार्य तत्त्व हैं।

इसीमें योग के परंपरागत गुण अन्तर्निहित हैं। यही सब कारण है कि योगसाधना के लिए संपूर्ण एवं समग्र प्रयास की आवश्यकता है, जिसमें समस्त मानवजाति का

योगदान हो, और जो समस्त मानवजाति को समग्र एवं परिपूर्ण बनाये। न तो इसमें किसी प्रक्रिया को यंत्र की तरह दुहराना पड़ता है और न प्रार्थना आदि में किये जानेवाले जप-जाप की ही आवश्यकता है। यह तो एक ऐसी प्रक्रिया है जो स्वाभाविक रूप से नित्य-निरन्तर क्रियाशील है।

मैं आशा करता हूं, श्री आयंगार की 'योगदीपिका' से अनेक लोगों को उनका आदर्श अपने जीवन में निभाने की प्रेरणा प्राप्त होगी और उनमें से कई सफल गुरु होंगे, जिनकी मानवता को बड़ी जरूरत है। यदि यह पुस्तक इस मूलभूत कला का प्रसार करने में सहायक हुई और यदि उच्चतम स्तर पर इसका अभ्यास किया गया तो इस प्रस्तुतीकरण में सहभागी होने के लिए मैं अपने आप को कृतकृत्य समझूंगा।

लंदन १९६४ — **येहुदी मेनुहिन**

प्राक्कथन

मेरे अनन्य मित्रों के सतत प्रोत्साहन के लिए मैं उनका आभारी हूं, जिसकी वजह से यह पुस्तक पूर्ण हो सकी । यदि मुझे उनका दृढ समर्थन और आश्वासन न मिला होता तो मेरे अपर्याप्त अंग्रेजी ज्ञान से न केवल मेरे कार्य में क्षण-क्षण गतिरोध होता, प्रत्युत मेरा दिल बैठ जाता ।

योग एक अनन्त हठविज्ञान है, जिसका विकास मानव के समग्र कायिक, नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक पुनरुत्थान का कार्य हजारों वर्षों से करते-करते हुआ है ।

इस प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से सामने रखनेवाला पहला शास्त्रीय प्रबंध 'पातंजल योगसूत्र' है, जिसकी रचना ईसा से २०० वर्ष पूर्व हुई थी । यह दुर्भाग्य की बात है कि इधर योग पर प्रकाशित अधिकतर पुस्तकें विषय और अर्थ को स्पष्ट करने की दृष्टि से अप्रामाणिक हैं; क्योंकि उनमें कोई गहराई नहीं है । वह अशिष्ट हैं और कभी कभी तो गलत मार्ग पर डालनेवाली हैं । ऐसी पुस्तकों के पाठकों ने मुझसे यहां तक प्रश्न किये हैं कि क्या मैं एसिड पी सकता हूं, कांच चबा सकता हूं, आग पर चल सकता हूं, अपने को अदृश्य कर सकता हूं या इसी तरह के अन्य ऐन्द्रजालिक कार्य कर सकता हूं ? धार्मिक और दार्शनिक सूत्रग्रंथों के विद्वत्तापूर्ण एवं प्रामाणिक भाष्य अधिकतर भाषाओं में विद्यमान हैं – परंतु केवल साहित्यिक अथवा दार्शनिक विचारों का प्रकटीकरण किसी कला के प्रयोग-पक्ष के प्रकटीकरण की अपेक्षा सरल है ।

इस पुस्तक का नाम है '**योगदीपिका**' और मेरा उद्देश्य है वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुकूल विभिन्न आसनों एवं प्राणायामों तथा उनके ज्ञान और आवश्यकता का सहज सुंदर ढंग से विशदीकरण करना । इसलिए आसन एवं प्राणायाम संबंधी निर्देश अत्यन्त विस्तारपूर्वक दिये गये हैं, जो संसार के विभिन्न भागों में सत्ताईस वर्षों से भी अधिक के मेरे अनुभव के फल हैं । इस पुस्तक में ५९२ चित्रों के साथ २०० आसनों की सम्यक् रीति से विधियां दी गयी हैं–इनकी

सहायता से आसनों पर प्रभुत्व प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही साथ बंध, क्रिया तथा प्राणायाम के ५ चित्र और भी समाविष्ट हैं।

इस पुस्तक में परब्रह्म, पौराणिक कथाएं और दार्शनिक एवं नैतिक सिद्धान्तों का बार-बार संदर्भ दिया गया है। इसपर पाश्चात्य पाठक आश्चर्यचकित होगा। मगर उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राचीन काल में विद्या, कला तथा शक्ति के क्षेत्र में मनुष्य की जो महान् उपलब्धियां थीं वह धर्म का अंग थीं और उनपर, परमात्मा का तथा पृथ्वी पर उसके भक्तों का अधिकार था। निःसंदेह, पश्चिम में कॅथोलिक पोप को ही पवित्र ज्ञान एवं शक्ति का अवतार माना जाता है। परंतु इसके पूर्व, पाश्चात्य जगत में भी संगीत, चित्रकला, वास्तुविज्ञान, दर्शन और ओषधि; यहां तक कि युद्धविद्या भी सर्वदा परमात्मा के नाम पर ही चला करती थी। यह तो अभी हाल ही की बात है कि भारत में इन कलाओं और शास्त्रों पर दैव का आधिपत्य कम होता जा रहा है। पर उसके प्रति हमारी आदर-भावना यथापूर्व है ही। ईश्वरी इच्छा की जगह मनुष्य की संकल्पशक्ति का विकास हमारा उपेय है। सदुद्देश्य, नम्रतापूर्ण शिष्टाचार तथा स्वार्थहीनता का महत्त्व हम मानते हैं, जो हमारी दीर्घकालीन ईश्वरशरणता की थाती है। पाठकों को विभिन्न आसनों के मूल स्रोत की जानकारी होना मेरी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और मनोरंजक भी। इसीलिए मैंने योगी-मुनियों के माध्यम से परंपरागत रूढ पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी जहां-तहां कर दिया है।

योग पर सभी प्राचीन भाष्य इस बात पर बल देते हैं कि गुरु के मार्गदर्शन में योगाभ्यास करना आवश्यक है, और यद्यपि मेरा अनुभव इस तथ्य के औचित्य को प्रमाणित करता है, तथापि मैंने इस पुस्तक में इन आसनों एवं प्राणायामों पर प्रभुत्व प्राप्त करने की सही सही तथा सुरक्षित विधि से पाठकों – गुरु तथा शिष्य दोनों – को अवगत कराने का नम्र प्रयास किया है।

परिशिष्ट १ में मैंने आसनों को उनकी रचना-क्रम के अनुसार समूह बनाकर उत्सुक साधकों के लिए ३०० सप्ताह के अभ्यासक्रम में प्रस्तुत किया है।

परिशिष्ट २ में मैंने चिकित्सा संबंधी तथा रोगशामक महत्त्व के आसनों के समूहों को क्रमबद्ध किया है।

आसनों तथा प्राणायामों की विधियों पर प्रयत्न करने के पूर्व सूचनाओं, संकेतों तथा दक्षताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करें।

मैं अपने आदरणीय मित्र एवं शिष्य श्री येहुदी मेनुहिन के प्रति, उनकी प्रस्तावना तथा अपरिमित सहयोग के लिए हार्दिक आभारी हूं।

मैं अपने शिष्य श्री बी. आय. तारापुरवाला का, यह पुस्तक तैयार करने में उनके सहकार्य के लिए ऋणी हूं।

सर्वश्री जी. जी. वेलिंग, पूना के प्रति – जिन्होंने मेरी इच्छा के अनुसार अपने

स्टुडियो (चित्रमंदिर) का साधन दिया और अगणित चित्रों के निकालने में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी ली और उनकी देखभाल की, मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करता हूं।

मेरे तरुण मित्र श्री शंकर गोपाल नेने को मैं साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत संस्करण का संपादन सुंदर ढंग से किया है।

मैं सर्वश्री एलन एवं अनविन को संपूर्ण चित्रों से युक्त इस पुस्तक के प्रकाशन तथा विश्व की जनता के संमुख मेरे कार्य को प्रस्तुत करने में उनके प्रयत्न के लिए धन्यवाद देता हूं और एलीन पियर्सी को चित्र प्रदान करने के लिए धन्यवाद देता हूं।

-- बी. के. एस. आयंगार

अनुक्रम

भाग १

विषय-प्रवेश

योग की परिभाषा

Om P Bhatia
6-11-'74.

"योग" शब्द संस्कृत के "युज्" धातु से बना है; जिसका अर्थ है – बाँधना, युक्त करना, जोड़ना, मिलना, ध्यान को नियंत्रित तथा केन्द्रित करना, उपयोग में लाना, लगाना। "योग" का अर्थ संयोग या मिलन भी होता है। अपनी इच्छा को परमात्मा की इच्छा में विलीन करना (मिलाना) ही सच्चा योग है। महादेव देसाई ने अपनी पुस्तक "Gita according to Gandhi" की भूमिका में लिखा है कि "शरीर, मन और आत्मा की समग्र शक्तियों को परमात्मा में संयोजित करना योग है"। अर्थ यह है कि बुद्धि, मन, भावनाओं को अनुशासित करना... जिसकी पूर्वकल्पना योग करता है। इसका तात्पर्य है आत्म समभाव, जो किसी को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साम्यावस्था में प्रस्थापित करता है।

यह योगदर्शन भारतीय परम्परागत षड्दर्शनों में से एक है। पतंजलि ने अपने इस दार्शनिक सिद्धान्त को योगसूत्रों में संग्रहीत, विभाजित एवं क्रमबद्ध किया है जो १८५* संक्षिप्त सूत्रों में है। भारतीय विचारधारा के अनुसार प्रत्येक वस्तु उस विश्वात्मा (परमात्मा) से व्याप्त है, जिसका कि जीवात्मा एक अंश है। इसे योगशास्त्र इसलिए कहते हैं कि यह मार्ग जीवात्मा को परमात्मा से युक्त करना सिखाता है; या उन दोनों को समन्वित करता है, जिससे जीवात्मा को कैवल्य की प्राप्ति हो।

जो योग मार्ग का साधन करता है वह योगी या योगिन् है। भगवद्गीता के छठे अध्याय में, जो कि योगदर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण है, श्रीकृष्ण अर्जुन को योग का अर्थ वेदना और दुःख के सम्बन्ध से मुक्ति बतलाते हैं।

उन्होंने कहा है – "जब मन, बुद्धि और अहंकार वश में होते हैं और वे चंचल इच्छाओं से रहित होते हैं – जिससे वे आत्मस्थित रह सकें, तब पुरुष

* उपलब्ध पुस्तकों में १९५ योगसूत्रों का उल्लेख मिलता है।
– अनुवादक

"युक्त" होता है । जहाँ वायु नहीं बहती है; वहाँ दीपक काँपता नहीं है, वही स्थिति योगी की है; जो अपनी आत्मा में लीन होकर मन, बुद्धि और अहंकार को वश में करता है । योगाभ्यास द्वारा जब मन, बुद्धि और अहंकार की चंचलता को शांत एवं स्थिर कर दिया जाता है, तब योगी परमात्मा के अनुग्रह से अपने में पूर्ण आनन्द का अनुभव करता है । तब उसे आन्तरिक आनन्द की अनुभूति होती है जो अतीन्द्रिय है, जिसे बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती । वह इस अनुभूति में स्थित रहता है और उससे विचलित नहीं होता । उसे वह निधि प्राप्त होती है जो सर्वोपरि है । इससे और कुछ महान् नहीं है । जिसने इसे प्राप्त किया है, उसे महान् से महान् दुःख भी विचलित नहीं कर सकेगा । योग का सही अर्थ यही है... "वेदना और दुःख के संसर्ग से मुक्ति" ।[1]

जिस प्रकार अच्छी तरह तराशे गये हीरे के अनेक पैलू होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकाश के रंग फेंकते हैं; उसी प्रकार योग शब्द विभिन्न अर्थच्छटा प्रस्तुत करता है और आन्तरिक शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य के दीर्घ प्रयास के विभिन्न रूपों को प्रकट करता है ।

भगवद्गीता कर्मयोग के सिद्धान्त पर आधारित योग की एक दूसरी व्याख्या प्रतिपादित करती है । कहा है – "तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है, उसके फल पर नहीं । तेरा उद्देश्य कर्म का फल कभी न हो और न अकर्म के प्रति तेरा अनुराग हो । सब प्रकार की आसक्ति को त्यागकर परमात्मा के लिए अपना काम करता जा । सफलता और विफलता से प्रभावित न होओ । यह मन की समता (संतुलन) ही योग कहलाती है ।"[2]

योग का वर्णन कर्म के ज्ञान अथवा कार्य-व्यापार, समता और संयम से जीवन-निर्वाह के रूप में हुआ है ।

"योग उसके लिए नहीं है, जो बहुत अधिक खाता है; और न उसके लिए है जो बिलकुल नहीं खाता । यह उसके लिए नहीं है जो बहुत अधिक सोता है या जागता रहता है । आहार-विहार के संयमन, कार्य के नियमन तथा जागरण और निद्रा के नियंत्रण से योग सभी प्रकार की वेदना और दुःखों का उन्मूलन करता है ।"[3]

कठोपनिषद् में योग की परिभाषा इस प्रकार की गयी है :– "जब कि चेतना निश्चेष्ट हो जाती है, मन शान्त हो जाता है, जब कि बुद्धि अचंचल (स्थिर) हो जाती है, तब ज्ञानी उसे सर्वोच्च पद प्राप्त हुआ मानते हैं । चेतना और मन के इस दृढ निग्रह को ही योग की संज्ञा दी गयी है; जो इसे प्राप्त करता है वही

१. भगवद्गीता, अध्याय ६, श्लोक १८ से २३
२. भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक ४७, ४८
३. भगवद्गीता, अध्याय ६, श्लोक १६, १७

बन्धनमुक्त है ।"[1]

पतंजलि ने अपने योगदर्शन के प्रथम पाद के दूसरे सूत्र में योग को "चित्तवृत्ति-निरोध" कहा है ।[2] इसका भाषान्तर "मानसिक रूपान्तर का नियंत्रण" अथवा "चेतना की चंचलता का दमन" हो सकता है । चित्त शब्द का अर्थ है, मन की अपनी समग्र या सम्पूर्ण चेतना जो कि तीन श्रेणियों में है : (अ) मन, मानस अर्थात् ध्यान, स्वीकृति एवं अस्वीकृति की आन्तरिक शक्ति एवं सामर्थ्य से सम्पन्न किसी व्यक्ति का मन; मन की (आंतरिक) शक्ति का अस्थिर कम्पन । (आ) बुद्धि अर्थात् पदार्थों के भेद के निश्चय की निर्णायिका स्थिति, और (इ) अहंकार अर्थात् मैं का कर्ता; "मैं जानता हूँ" की अवस्था ।

वृत्ति शब्द व्युत्पन्न है संस्कृत के "वृत्" धातु से; जिसका अर्थ है मोडना, घुमाना, लपेटना । इस प्रकार इसका अर्थ हुआ – क्रियाविधि, व्यवहार, होने की रीति या प्रकार, स्थिति या मानसिक अवस्था । योग वह प्रक्रिया है जिससे चंचल मन शान्त होता है और शक्ति निर्माण की दिशा में नियंत्रित होती है । जिस प्रकार शक्तिशाली नदी जब बाँध और नहरों के द्वारा ठीक तरह से व्यवस्थित होती है, तब विशाल जलराशि बनाती है; जो सूखा अकाल होने से बचाती है और उद्योग के लिए विपुल शक्ति प्रदान करती है; उसी प्रकार मन जब वश में होता है तब जीवन में शान्ति प्रदान करता है और मानव की उन्नति के लिए विपुल शक्ति उत्पन्न करता है ।

मन को वश में करने की समस्या का समाधान सहज नहीं है; जैसा कि भगवद्-गीता के छठे अध्याय के नीचे लिखे संभाषण से प्रकट होता है । अर्जुन कृष्ण से पूछते हैं – "कृष्ण, आपने कहा है कि ब्रह्म (विश्वात्मा) जो सदा एक है, से तादात्म्य ही योग है । लेकिन जब मन इतना चंचल और अस्थिर है तब यह शाश्वत कैसे हो सकता है ? इसको वश में करना वायु को वश में करने की भाँति बहुत ही कठिन है ।" कृष्ण उत्तर देते हैं : "निस्संदेह, मन चंचल है और उसे वश में करना बहुत कठिन है। फिर भी उसे निरन्तर अभ्यास और वैराग्य द्वारा वश में किया जा सकता है । जिसने अपने आपको संयमित नहीं किया है उसके लिए योग को प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है; परन्तु आतमसंयमी व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है, यदि वह श्रमपूर्वक साधना करता है और अपनी शक्ति उपयुक्त साधनों से नियंत्रित करता है ।"[3]

१. कठोपनिषद्
२. "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"
३. भगवद्गीता, अध्याय ६, श्लोक ३३ से ३६

योग की अवस्थाएँ

योग-साधना का ठीक उतना ही महत्त्व है जितना किसी कार्य के अन्त या परिणाम का। पतंजलि आत्मा की खोज के लिए योग के आठ अंगों (अष्टांग) या अवस्थाओं के नाम गिनाते हैं। वे हैं—

(१) यम (व्यापक–सार्वभौम नैतिक कर्तव्य), (२) नियम (अनुशासन द्वारा चित्त का शुद्धीकरण), (३) आसन (शारीरिक संस्थिति), (४) प्राणायाम (श्वसन-क्रिया का समनियंत्रण), (५) प्रत्याहार (बाह्य वस्तु एवं ऐन्द्रिक चेतना के प्रावल्य से मन की मुक्ति और अलगाव), (६) धारणा (किसी एक विषय में चित्त की एकाग्रता), (७) ध्यान (धारणा के विषय को चेतना केन्द्र में टिकाये रखना–चिन्तन), और (८) समाधि (गहन ध्यान के द्वारा प्राप्त दिव्य चेतना की वह अवस्था जिसमें साधक अपने साध्य–परमात्मा या विश्वात्मा–के साथ एक हो जाता है)।

यम और नियम योगी के विकारों एवं भावनाओं को नियंत्रित रखते हैं तथा उसे अन्य साधकों के साथ एक स्थिति में लाते हैं। आसन शरीर को स्वस्थ और सुदृढ तथा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण रखते हैं। अन्ततः योगी अपनी शारीरिक चेतना से मुक्त हो जाता है। वह शरीर पर विजय पाता है और उसे आत्मा के योग्य साधन बनाता है। ये प्रथम तीन अवस्थाएँ वाहरी साधन–बहिरंग साधना–हैं।

आगे की दो अवस्थाएँ–प्राणायाम और प्रत्याहार–साधक को श्वासों का संचालन सिखाती हैं; जिससे मन नियंत्रित होता है। यह विषय-वासना के दासत्व से चेतना को मुक्त करने में सहायक होता है। योग की ये दोनों अवस्थाएँ अंतरंग साधना कहलाती हैं।

धारणा, ध्यान, और समाधि योगी को उसकी आत्मा के अन्तरतम के गहन स्थान में ले जाती हैं। वह परमात्मा की खोज में आकाश की ओर टकटकी नहीं लगाता। उसे बोध होता है कि "वह" उसमें ही है, जिसे अंतरात्मा के रूप में

जाना जाता है । ये अंतिम तीन अवस्थाएँ साधक और कर्ता के बीच समस्वरता लाती हैं । ये अवस्थाएँ अन्तरात्मा साधन (आत्मा की खोज) कहलाती हैं ।

परम गहन ध्यान से ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय एक हो जाते हैं । द्रष्टा, दृष्टि और दृश्य एक दूसरे से पृथक् अस्तित्व नहीं रखते । जिस प्रकार एक महान् संगीतकार अपने वाद्य और संगीत की ध्वनि की समस्वरता में एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार योगी अपने में प्रकृतिस्थ होता है और आत्मसाक्षात्कार का अनुभव करता है, जो उसके अन्दर परमात्मा का अंश है ।

अपने कर्ता की खोज में मनुष्य अनेक मार्गों से जाते हैं । क्रियाशील व्यक्ति कर्म-मार्ग से उसका दर्शन करता है; जहाँ वह अपने कर्म और कर्तव्य के द्वारा अपनी दिव्यता का अनुभव स्वयं करता है । भावनाशील व्यक्ति भक्तिमार्ग से उसे प्राप्त करता है; जहाँ उसे अपने आराध्यदेव के प्रति अनन्य प्रेम और भक्ति से अनुभूति प्राप्त होती है । बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञानमार्ग से उसका अनुसरण करता है; जहाँ ज्ञान से उसके अस्तित्व का वोध होता है । ध्यानी पुरुष परमेश्वर प्राप्ति के लिए योगमार्ग का अवलम्बन करते हैं; जहाँ मन को वश में करने से अपनी दिव्यता का अनुभव वे स्वयं करते हैं ।

वही व्यक्ति आनन्दमय है, जो अपने ज्ञान और विवेक द्वारा असत्य में सत्य, अनित्य में नित्य तथा सुन्दर में शिव का दर्शन करता है । जिसे सच्चे प्रेम की पहचान है और जो विश्व के प्राणिमात्र से प्रेम कर सकता है, उसे दुगुना आनन्द प्राप्त होता है । जो अपने आन्तरिक प्रेम से लोककल्याण के लिए निष्काम कर्म करता है, उसे तिगुने आनन्द की प्राप्ति होती है । परंतु जो व्यक्ति अपने इस नश्वर शरीर में अनन्त ज्ञान, प्रेम एवं निष्काम कर्मभाव रखता है, वह पवित्रात्मा है और वह गंगा, सरस्वती और यमुना के संगम के पुण्यतीर्थ-सा है । जो इन्हें प्राप्त करते हैं, वे शान्त और पवित्र हो जाते हैं ।

इन्द्रियों का राजा मन है । जिसने अपने मन, इन्द्रिय, वासना, विचार और बुद्धि पर विजय पा ली है, वह नरश्रेष्ठ है । वही राजयोग का अधिकारी है; क्योंकि उसे आन्तरिक ज्ञान है ।

जिसका अपने मन पर अधिकार है, वह राजयोगी है । जीवात्मा का अपने आप पर पूर्ण अधिकार ही राजयोग है । यद्यपि पतंजलि ने मन को वश में करने के उपाय बतलाये हैं और उसे, "अष्टांगयोग" कहा है, परन्तु उन्होंने कहीं पर भी अपने योग-सूत्रों में नहीं बतलाया है कि यह विज्ञान "राजयोग" है । इसे "राजयोग विज्ञान" कहा जा सकता है, क्योंकि यह व्यक्ति का स्वयं पर पूर्ण अधिकार अभिव्यक्त करता है ।

"हठयोग-प्रदीपिका" के लेखक स्वात्माराम ने इसी मार्ग को "हठयोग" कहा है, क्योंकि इसमें कठिन अनुशासन की आवश्यकता होती है ।

प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि राजयोग और हठयोग सभी प्रकार से पृथक्, भिन्न और एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। कारण, पतंजलि के योगसूत्रों में केवल मानसिक अनुशासन के विषय में कहा गया है और स्वात्माराम की "हठयोग प्रदीपिका" में केवल शुद्ध शारीरिक अनुशासन बतलाया गया है। परंतु बात ऐसी नहीं है। हठयोग और राजयोग एक दूसरे के पूरक हैं और मोक्ष (कैवल्य) की प्राप्ति के लिए ये दोनों एकांगी प्रयोग हैं। जिस प्रकार पर्वतारोही के लिए सीढ़ियों, रस्सियों और खड़ाउओं के साथ ही साथ शारीरिक सामर्थ्य और हिमालय की बर्फीली चोटियों पर चढ़ने के लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है; उसी प्रकार योगसाधक को पतंजलि के राजयोगी के राजयोग की ऊँचाई पर पहुँचने के लिए स्वात्माराम के हठयोग के ज्ञान और अनुशासन की आवश्यकता है।

योग का यह मार्ग, अन्य तीन मार्गों का स्रोत है। इससे शान्ति और स्थिरता प्राप्त होती है। और यह मन को उपाधिरहित कर आत्मसमर्पण के लिए तैयार करता है, जहाँ ये चारों मार्ग एक हो जाते हैं।

चित्तवृत्ति – (मन [चित्त] के रूपान्तरण के कारण)

पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में चित्तवृत्ति के पाँच प्रकार बतलाये हैं जो आनन्द एवं क्लेश (सुख और दुःख) के कारण हैं। ये हैं –

१. प्रमाण – (मानक या आदर्श) जिससे वस्तुओं अथवा मूल्यों का मन के द्वारा मापन होता है या जाना जाता है, जिसे मनुष्य सीधा प्रमाण मानते हैं, जैसे कि (अ) प्रत्यक्ष (चक्षुद्वारा प्राप्त ज्ञान), (आ) अनुमान (तर्क), और (इ) आगम अर्थात् प्रमाण रूप में उक्ति या आप्तपुरुष का स्वीकारयोग्य वचन जब कि वह ज्ञान का स्रोत प्रमाणित एवं विश्वसनीय पाया जाता है।

२. विपर्यय – (भ्रान्त धारणा जो कि अध्ययन के उपरान्त पायी गयी है)। दोषपूर्ण चिकित्सासंबंधी निदान भ्रान्त कल्पना पर आधारित होता है। यथा, पहले खगोलविद्या में सिद्धान्त बना रहा कि पृथ्वी के चारों ओर सूर्य प्रदक्षिणा करता है, यह विपर्यय का उदाहरण है।

३. विकल्प – (प्रामाणिक आधार के बिना केवल मौखिक प्रभाव पर आधारित रुचि या भावना।) एक भिखारी जब इस बात की कल्पना करता है कि वह लाखों रुपये खर्च कर रहा है, तो उसे आनंद (सुख) की अनुभूति हो सकती है। इसके विपरीत एक धनी कंजूस व्यक्ति इस बात के विश्वास में स्वयं भूखा रह सकता है कि वह दरिद्र है।

४. निद्रा – (नींद), जहाँ विचार और अनुभव का अभाव है। जब आदमी गहरी नींद में सोया होता है, उसे अपने नाम, परिवार या अवस्था, अपना बोध या ज्ञान, अथवा यहाँ तक कि स्वयं अपने अस्तित्व का स्मरण नहीं रहता है। जब आदमी नींद में स्वयं को भुला देता है तब वह प्रसन्न चित्त से जागता है। परन्तु जब वह नींद में होता है

उस समय यदि बाधक विचार उसके मन में चलने लगते हैं तो वह अच्छी तरह विश्रांति नहीं ले पाता है।

५. स्मृति – (स्मरण, व्यक्ति द्वारा अनुभव की हुई वस्तु की गहरी छाप बनाये रखना)। ऐसे भी आदमी हैं जो अपने भूत के अनुभव पर जीते हैं, यद्यपि वह पुनरावाहन के परे है। उनके दुःख एवं सुख की स्मृतियाँ उन्हें भूत से जुड़ाये रखती हैं और वे अपनी श्रृंखलाओं को तोड नहीं सकते।

पतंजलि ने चित्तवृत्ति को क्लेश पहुँचानेवाले (देनेवाले) पाँच कारण गिनाये हैं। ये हैं –

१. अविद्या (अज्ञान या ज्ञान का अभाव); २. अस्मिता (अपनेपन का अनुभव जो व्यक्ति को सीमित करता है और उसे समुदाय से, चाहे वह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या भावनिक हो, पृथक् रूप में अभिव्यक्त करता है); ३. राग (आसक्ति या वासना); ४. द्वेष (अतिघृणा या विराग); तथा ५. अभिनिवेश (जीवन की पिपासा या प्रेम, सांसारिक जीवन से स्वाभाविक लगाव तथा शारीरिक सुखभोग और इन सब से मृत्यु द्वारा पृथक् किये जाने का भय)। दुःख के ये कारण साधक (विद्यार्थी या शोधक) के मन में डुबकी लगाये रहते हैं। वे ध्रुव-प्रदेशीय समुद्र में केवल अपने सर दिखानेवाले हिमखण्ड की तरह हैं। जबतक वे अभ्यास द्वारा वशीभूत तथा निर्मूल नहीं किये जाते हैं तब तक शान्ति संभव नहीं है। योगी भूत को भूल जाना सीखता है और कल (भविष्य) का विचार नहीं करता है। वह नित्य वर्तमान में रहता है।

जिस प्रकार वायु झील की (पानी के) ऊपरी सतह को चंचल कर देता है और उसमें प्रतिविम्बित छबि के रूप को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार चित्त की वृत्तियाँ मन में खलल पैदा करती हैं। झील का स्थिर पानी अपने चतुर्दिक सौन्दर्य को प्रतिविम्बित करता है। जब मन स्थिर होता है तब उसमें आत्मसौन्दर्य प्रति-विम्बित दिखलायी देता है। योगी निरन्तर अध्ययन और वासनाओं से स्वयं को मुक्त कर अपने मन को स्थिर करता है। योग की आठ अवस्थाएँ उसका मार्गदर्शन करती हैं।

चित्तविक्षेप – (चित्त-विभ्रम एवं बाधाएँ)

चित्त-विभ्रम तथा बाधाएँ, जो योगसाधक के अभ्यास में रुकावट डालती हैं, ये हैं–

१. व्याधि – रोग जो शारीरिक सन्तुलन में बाधा डालता है
२. स्त्यान – शैथिल्य या कार्य के लिए मानसिक प्रवृत्ति का अभाव
३. संशय – संदेह या असामंजस्य
४. प्रमाद – उदासीनता या चैतन्यहीनता
५. आलस्य – सुस्ती, मन्दता

६. अविरति–इन्द्रिय-सुख । मन पर इंद्रियों के हावी होने से वासना का जगना
७. भ्रान्तिदर्शन – असत्य या अग्राह्य ज्ञान अथवा भ्रम
८. अलब्धभूमिकत्व – विचारधारा या एकाग्रता के प्राप्त करने में असफल, जिसके कारण यथार्थता का ज्ञान नहीं हो सकता है
९. अनवस्थितत्व – दीर्घ अभ्यास के उपरान्त प्राप्त वस्तु में एकाग्रता बनाये रखने में अस्थिरता या चचंलता

इसके अतिरिक्त और भी चार चित्तविभ्रम हैं : (१) दुःख-कष्ट या दुर्गति (अभाग्य), (२) दौर्मनस्य-निराशा, (३) अंगमेजयत्व-शारीरिक अस्थिरता, तथा (४) श्वास-प्रश्वास – अनियमित श्वासोच्छ्वास ।

सेनापति युद्ध जीतने के लिए युद्धक्षेत्र और शत्रुसैन्य का निरीक्षण (जाँच) करता है और उसके अनुसार विपरीत योजना बनाता है । इसी प्रकार योगी स्वयं को जीतने के लिये योजना बनाता है ।

व्याधि – यह देखा जाता है कि सर्वप्रथम बाधा अस्वस्थता या रोग है । योगी के लिए उसका शरीर ज्ञानप्राप्ति का मुख्य उपकरण है । यदि रथ टूट जाता है तो यात्री आगे नहीं बढ सकता है । यदि शरीर अस्वस्थता के कारण दुर्बल है तो साधक कुछ ही (नाममात्र का) प्राप्त कर सकता है । शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है, कारण साधारणतया मन नाडीमण्डल द्वारा क्रियाशील होता है । जब शरीर अस्वस्थ है या नाडीमण्डल दूषित है तो मन अस्थिर या शिथिल अथवा अक्षम होता है और एकाग्रता या ध्यान असम्भव हो जाता है ।

स्त्यान – जो व्यक्ति दुर्बलता (बुद्धि-दौर्बल्य) का शिकार होता है उसका न कोई लक्ष्य होता है, न आगे बढ़ने के लिए मार्ग और न साहस होता है । उसका मन और बुद्धि निष्क्रिय होने के कारण मन्द हो जाती है और उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। सतत प्रवाह पर्वत की निर्झरिणी को निर्मल बनाये रखता है, परन्तु गर्त (गड्ढे) का पानी स्थिर रहता है और उसमें कुछ भी विकसित नहीं हो सकता है। उदासीन मनुष्य जीवित शव के समान है क्योंकि वह किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता है।

संशय – निर्बुद्ध, अविश्वासी और शंकाकुल व्यक्ति स्वयं का नाश करते हैं । किस प्रकार वे इहलोक या परलोक का आनन्द ले सकते हैं या किसी प्रकार का सुख प्राप्त कर सकते हैं ? अन्वेषक (साधक) को स्वयं में तथा अपने गुरु पर विश्वास होना चाहिए। उसे इस बात का विश्वास होना चाहिए कि परमात्मा मेरे साथ है और बुराई मुझे छू नहीं सकती। ज्यों ही विश्वास का स्रोत हृदय में फूट पड़ता है त्यों ही यह काम, बुरे विचार, बौद्धिक आलस्य, आत्मिक गर्व एवं संदेह को मिटा देता है और इन बाधाओं से मुक्त हृदय निर्मल एवं शान्त हो जाता है ।

प्रमाद – प्रमाद से आक्रान्त व्यक्ति स्वयं के महत्त्व से पूर्ण और विनयहीन होता है और अपने आपको ही बुद्धिमान् समझता है । निस्संदेह उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान होता है परन्तु वह अच्छे की ओर से उदासीन रहता है और जिसमें उसे सुख प्राप्त होता है उसीका वह चुनाव करता है । अपनी स्वार्थपूर्ण कामनाओं और व्यक्तिगत वैभव के स्वप्नों के मनोरथ सफल होने के मार्ग में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की जबर्दस्ती और नैतिक विचार के बिना हत्या करता है । ऐसा व्यक्ति परमात्मा के वैभव (प्रकाश) के प्रति अंधा होता है और उसके वचनों के लिए बधिर ।

आलस्य – शैथिल्य की बाधा मिटाने के लिए मंद न होनेवाले निरन्तर उत्साह (वीर्य) की आवश्यकता है । साधक की स्थिति प्रेमी की तरह है जो अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता है परन्तु जो कभी निराश नहीं होता । आशा उसकी ढाल है और साहस उसकी तलवार होनी चाहिए । उसे घृणा और दुःख से परे होना चाहिए। उसे विश्वास और उत्साह से शारीरिक एवं मानसिक जडता पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

अविरति – इन्द्रिय सुख के विषयों की भयंकर इच्छा अविरति है, जब कि ज्ञान-पूर्वक उनका त्याग किया गया है जिनका दमन करना अत्यन्त कठिन है । इन्द्रिय के विषयों से लगाव हुए बिना ही योगी पूर्णतः अपने वशीभूत इन्द्रियों की सहायता से उनका आनन्द (मौज) लेना सीखता है। वह प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा अनुराग से स्वतंत्र और वासना की दासता से मुक्त हो जाता है तथा संतुष्ट एवं संतुलित होता है।

भ्रान्तिदर्शन – जो व्यक्ति झूठे ज्ञान से पीडित है वह भ्रान्ति से कष्ट पाता है और इस बात में विश्वास करता है कि एकमात्र उसने ही सत्य प्रकाश के दर्शन किये हैं। उसमें सशक्त बुद्धि होती है परन्तु नम्रता का अभाव होता है और वह ज्ञान का प्रदर्शन करता है। महान् आत्माओं की सत्संगति (सहवास) में रहने तथा उनके मार्गदर्शन से वह उचित पथ पर अपना चरणक्षेप दृढ़तापूर्वक करता है तथा अपनी कमजोरी पर विजय प्राप्त करता है।

अलब्धभूमिकत्व – जिस प्रकार पर्वतारोही सहनशक्ति (जीवट) के अभाव के कारण शिखर पर पहुँचने में असफल होता है उसी प्रकार एक व्यक्ति भी, जो ध्यान केन्द्रित करने की असमर्थता पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है, यथार्थता की खोज करने में असमर्थ है। उसने यथार्थता की झलक पायी होगी परन्तु वह उसे स्पष्टतया देख नहीं सकता है। वह उस संगीतज्ञ की तरह है जिसने स्वप्न में दिव्य संगीत का श्रवण किया है परन्तु ज़ो अपने जागृत क्षणों में उसे स्मरण करने में असमर्थ है और स्वप्न को दुहरा नहीं सकता है।

अनवस्थितत्व – अनवस्थितत्व से प्रभावित व्यक्ति कठिन श्रम से सत्यता के दृष्टिक्षेप में पहुँचा होता है । अपनी प्राप्ति के आनंद और अभिमान में वह अपनी

साधना (अभ्यास) में शिथिल हो जाता है। उसमें शुद्धता और ध्यान केन्द्रित करने की महती शक्ति होती है और वह अपने अनुसंधान के अंतिम चौराहे पर पहुँचा होता है। इस अंतिम अवस्था में भी निरन्तर प्रयत्न की आवश्यकता होती है। उसे नित्य धैर्य और संकल्पित अध्यवसाय के साथ पथ पर आगे बढ़ते रहना है और उसे शिथिलता का प्रदर्शन कदापि नहीं करना चाहिए जो परमात्मा के प्रत्यक्षीकरण के पथ की प्रगति में बाधक होती है। उसे तब तक प्रयत्नशील रहना चाहिए जबतक दिव्य ज्योति उसमें अवतरित नहीं होती है। कठोपनिषद् में कहा गया है—आत्मा का साक्षात्कार अध्ययन या शिक्षा से नहीं होता है, न बुद्धि की अति सूक्ष्मता और न अति विद्वत्ता से होता है, परन्तु परमात्मा के प्रति जिसकी तीव्र अभिलाषा होती है और जिसे वह (परमात्मा) चाहता है उसे ही आत्म-साक्षात्कार होता है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति को आत्मा अपना सत्य स्वरूप दिखाती है।

पतंजलि ने बाधाओं को जीतने तथा शुद्ध आनंद प्राप्त करने के कई उपाय बतलाये हैं। इनमें से मैत्री (मित्रता), करुणा (दया), मुदिता (अतिआनन्द), और उपेक्षा (तिरस्कार) का चतुर्विध उपाय उतम है।

मैत्री केवल मित्रभाव नहीं है अपितु आत्मीयता (मित्रता) के विषय से एकत्व का अनुभव भी है। माँ अपने पुत्रों की सफलता पर आत्मीयता—एकत्व के अनुभव के कारण गहन आनन्द का अनुभव करती है। पतंजलि मैत्री को सुख (आनन्द या गुण) के लिए योग्य बतलाते हैं। योगी मैत्री और आत्मीयता का सम्पादन भले के लिए करता है और किसी के प्रति भी द्वेष न करते हुए शत्रुओं को मित्र बना लेता है।

करुणा केवल दया या कृपा दिखाना और दुसरों के दु:खपर निराशा के आँसू बहाना नहीं है। पीडित का दु:ख दयायुक्त प्रेमपूर्ण कृति से दूर करना करुणा है। योगी दूसरों के कष्ट और वेदना को कम करने में अपने शारीरिक, आर्थिक, मानसिक अथवा नैतिक सभी साधनों का उपयोग करता है। वह दुर्बलों को अपनी शक्ति प्रदान करता है जबतक कि वे सबल नहीं हो जाते। जो भयभीत हैं उन्हें वह अपने दृष्टान्त द्वारा साहस देता है जबतक कि वे शूर नहीं हो जाते। वह योग्यतम के अतिजीवन का सिद्धान्त अस्वीकार करता है परंतु निर्बल को अतिजीवन के लिए पूर्ण सबल बनाता है। वह सभी का आश्रय बनता है।

दूसरों द्वारा (भले ही वह प्रतिस्पर्धी ही क्यों न हो) अच्छे काम (पुण्यकर्म) किये जानेपर आनन्द का अनुभव मुदिता है। योगी मुदिता द्वारा दूसरों – जो अपने अभीप्सित लक्ष्य को पहुँचें हैं परन्तु जिसे प्राप्त करने में वह स्वयं असफल रहा है – के प्रति ईर्ष्या, द्वेष या क्रोध का प्रदर्शन न करते हुए कठिन हृदयदाह से अपने को बचाता है।

उपेक्षा – दुर्गुण में फँसा हुआ या लापरवाह (उदासीन) अथवा अपने से जिसमें श्रेष्ठता है – ऐसे व्यक्ति के प्रति तिरस्कार या अवमान की भावना मात्र ही उपेक्षा

नहीं है। यह ढूँढ़ निकालना कि उन्हीं प्रलोभनों के सामने आने पर व्यक्ति ने किस प्रकार का व्यवहार किया होता – यह आत्मपरीक्षण की खोज उपेक्षा है। भाग्यहीन व्यक्ति जिस अवस्था में है उस स्थिति के लिए व्यक्ति कहाँ तक उत्तरदायी है इसका निरीक्षण तथा उसके बाद उसे उचित मार्ग पर लाने का प्रयास भी परीक्षण है

योगी दूसरों की भूलों को पहले स्वयं में देखने और अध्ययन करने से समझता है। यह निज का अध्ययन ही उसे सबके लिए दयालु होना सिखाता है।

मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के चतुर्विध उपाय का गहरा महत्त्व (अर्थ) अशान्त मन से अनुभूत नहीं किया जा सकता है। मैं अपने अनुभव से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सारे संसार के किसी भी सम्प्रदाय के सामान्य पुरुष या नारी के लिए स्थिर चित्त की प्राप्ति का मार्ग पतंजलि द्वारा बतलायी गयी योग की आठ अवस्थाओं में से आसन और प्राणायाम नामक दो अवस्थाओं पर संकल्पपूर्वक कार्य करना है।

मन और प्राण मित्रभाव (अभिन्नरूप) से सम्बन्धित हैं और एक की क्रिया या प्रतिक्रिया दूसरे को प्रभावित करती है।इसी कारण पतंजलि ने मानसिक संतुलन और आन्तरिक शान्ति की प्राप्ति के लिए प्राणायाम (लयपूर्ण नियमित श्वास-नियंत्रण) बतलाया है।

शिष्य एवं गुरु – (विद्यार्थी तथा शिक्षक)

शिवसंहिता में साधक (चेला या विद्यार्थी) चार प्रकार का बतलाया है — (१) मृदु (अल्पमति), (२) मध्यम (सामान्य), (३) अधिमात्र (उत्तम), तथा (४) अधिमात्रतम (सर्वोत्तम)। आखिर का, सर्वोत्तम ही एकमात्र व्यक्त संसार-सागर को पार करने में समर्थ है।

अल्पमति साधक वे होते हैं, जिनमें उत्साह नहीं होता, जो अपने गुरुओं की निंदा करते हैं, लोभी होते हैं, बुरे कर्म करने के लिए तत्पर रहते हैं, खूब खाते हैं, नारी के कहने में होते हैं, अस्थिर, डरपोक, बुरे (अस्वस्थ), दूसरों पर निर्भर, कर्कश बोलनेवाले, चरित्रहीन और पुरुषत्वहीन होते हैं। गुरु (शिक्षक या अध्यापक) ऐसे साधकों का मार्गदर्शन केवल मंत्रयोग के मार्ग से करता है। साधक बड़े प्रयत्न से बारह वर्षों में संस्कार (प्रबोधन) प्राप्त कर सकता है। (मंत्र–मूल शब्द 'मन्' से बना है, जिसका अर्थ है सोचना। इस प्रकार मंत्र शब्द का अर्थ है, पवित्र विचार या प्रार्थना उसके अर्थ की पूर्ण समझ के साथ दुहरायी जाय। इसके लिए बहुत समय लगता है, कदाचित् मृदु साधक के मन में मंत्र को सिद्ध करने के लिए वर्षों लगते हैं और उससे भी अधिक उसके फल की प्राप्ति में।)

मध्यम साधक साधारण बुद्धि का, कठिनाई सहने में समर्थ, कार्य पूर्ण करने का इच्छुक, मधुरभाषी, सभी अवस्थाओं में समान होता है। इन सभी गुणों को पहचान

कर गुरु उसे लय योग की शिक्षा देता है, जो उसे मुक्ति (कैवल्य) देती है। (लय का अर्थ है भक्ति, अन्तर्लय या विलयन।)

उत्तम साधक स्थिरचित्त, लययोग के लिए योग्य, पौरुषपूर्ण (सशक्त), स्वतंत्र, भद्र, दयालु, क्षमाशील, विश्वासपात्र, शूर, युवा, विनयशील, अपने गुरु का पूजक, योगाभ्यास के लिए उत्सुक होता है। वह छह वर्ष के अभ्यास के बाद प्रबोधन की प्राप्ति कर सकता है। गुरु इस प्रबल पुरुष (साधक) को हठयोग की शिक्षा देता है।

सर्वोच्च साधक अत्यन्त सामर्थ्य एवं उत्साहयुक्त, रूपवान्, साहसी, धर्मग्रंथों का विद्वान्, अध्ययनशील, स्वस्थचित्त, आनंदित, चिरयुवा, नियमित आहारी, अपने विषयों का नियंत्रक (वश में करनेवाला), निर्भय, स्वच्छ, चतुर, उदार, सभी का सहायक, स्थिरबुद्धिमान्, स्वतंत्र, क्षमाशील, चरित्रवान्, मधुरभाषी और अपने गुरु का पूजक होता है,जो सभी प्रकार के योग के लिए अनुकूल है। वह तीन वर्षों में प्रबोधन की प्राप्ति कर सकता है।

यद्यपि शिवसंहिता और हठयोग प्रदीपिका कालावधि, जिसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है, बतलाती है, परंतु पतंजलि व्यक्ति की आत्मा और दिव्य विश्वात्मा के मिलन के लिए आवश्यक समय का उल्लेख कहीं नहीं करते हैं। उनके अनुसार अभ्यास (निरन्तर और संकल्पित अभ्यास) तथा वैराग्य (वासनाओं से मुक्ति) मन को शान्त और स्थिर करते हैं। वे अभ्यास को, निर्विघ्न तथा भक्तिपूर्वक संपन्न किया गया, लम्बी अवधि का प्रयास बतलाते हैं जो पक्की नींव बनाता है।

योग का अभ्यास विश्वविद्यालय की डिग्री या डिप्लोमा के समान नहीं है कि आप निर्धारित समय में अनुकूल परिणाम की अभिलाषा करें।

गुरु की सहायता से योगमार्ग की बाधाएँ, परीक्षण एवं क्लेश बहुत हदतक दूर किये जा सकते हैं। (शब्दांश 'गु' का अर्थ है अन्धकार और 'रु' का अर्थ प्रकाश होता है। वही गुरु है जो अन्धकार हटाता है और प्रकाश [प्रबोधन] लाता है।) गुरु की भावना गम्भीर तथा प्रभावशाली है। वह सामान्य पथदर्शक नहीं है। वह आध्यात्मिक गुरु है जो जीवन-पथ बतलाता है, न कि केवल आजीविका के लिए उपार्जन करना ही सिखाता है। वह आत्मज्ञान संप्रेजित करता है और जो यह ज्ञान अवगत करता है वह शिष्य है, चेला है।

पिता (या माता) और पुत्र, पति और पत्नी या मित्र के बीच जो संबंध है उससे बढ़कर एक अत्यंत विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध गुरु और शिष्य के बीच है। गुरु अहंकार (अहंता) शून्य होता है। वह किसी प्रकार के यश या लाभ के लोभ के बिना अन्तिम लक्ष्य की ओर शिष्य का अनुरागपूर्वक नेतृत्व करता है। वह परमात्मा के मंदिर का मार्ग दिखाता है और उस पथ पर नेतृत्व करते हुए अपने शिष्य की प्रगति देखता है। वह विश्वास, भक्ति, शिष्टाचार, गंभीर अवबोधन और प्रदीप्ति स्नेहपूर्वक प्रेरित (प्रोत्साहित) करता है। शिष्य द्वारा शिक्षा आत्मसात् की जाती है। इसे जानने

के लिए गुरु अपने शिष्य में पूर्ण विश्वास के साथ कठिन परिश्रम करता है। वह शिष्य को प्रश्न पूछने के लिए तथा प्रश्न एवं विश्लेषण द्वारा सत्य जानने के लिए प्रोत्साहित करता है।

उच्च सिद्धि और विकास की आवश्यक योग्यता शिष्य में होनी चाहिए। उसमें अपने गुरु के प्रति विश्वास, भक्ति और प्रेम का होना आवश्यक है। गुरु और शिष्य के बीच के सम्बन्ध का सर्वोत्तम उदाहरण कठोपनिषद् में यम (मृत्यु का देवता) और नचिकेता तथा भगवद्गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन का है। नचिकेता और अर्जुन ने अपने एकाग्र मन, औत्सुक्य एवं प्राश्निक (प्रश्न करने की) प्रवृत्ति के कारण ज्ञान (प्रबोधन) प्राप्त किया। शिष्य में ज्ञानपिपासा होनी चाहिए और विनयभाव, उद्देश्य के प्रति अध्यवसाय तथा दृढ़ निश्चय होना चाहिए। उसे गुरु के पास केवल कुतूहलवश नहीं जाना चाहिए। उसमें श्रद्धा होनी चाहिए और यदि वह अपेक्षित समय में अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता है तो उसे हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। पिछले असंख्य अनुभवों और संस्कारों (पिछले विचारों एवं व्यापारों का एकत्रित अवशेष) से अभिभूत चंचल मन को शान्त करने के लिए अत्यन्त धैर्य की आवश्यकता है।

गुरु के वचन मात्र सुनने से शिष्य शिक्षा को आत्मसात् नहीं करता है। यह बात इंद्र और विरोचन की कथा से सिद्ध होती है। इन्द्र देवताओं का राजा और विरोचन राक्षस राजकुमार, दोनों अपने आध्यात्मिक गुरु ब्रह्मा के पास सर्वात्मा (Supreme Self) के ज्ञान की प्राप्ति के लिए एक साथ गए। दोनों वहाँ ठहरे और अपने गुरु का एक ही उपदेश दोनों ने सुना। इन्द्र को प्रबोधन (ज्ञानप्रकाश) मिला परन्तु विरोचन को नहीं। पढ़ाये गये विषय के प्रति उसकी निष्ठा (भक्ति) और अपने गुरु के प्रति प्रेम और श्रद्धा के कारण इन्द्र की स्मरणशक्ति का विकास हुआ। उसे गुरु के साथ एकात्मभाव का अनुभव हुआ। ये ही उसकी सफलता के कारण थे। विरोचन की स्मरणशक्ति का विकास केवल उसकी बुद्धि के द्वारा हुआ। उसमें न तो सिखाये हुए विषय के प्रति निष्ठा थी और न अपने गुरु के प्रति भक्ति। वह जैसा का वैसा ही बौद्धिक राक्षस ही रहा। वह संशयात्मा ही लौटा।

इन्द्र में बौद्धिक नम्रता थी जब कि विरोचन में बौद्धिक गर्व था। उसने सोचा कि ब्रह्मा के पास जाना ही एक प्रकार से मेरा विनय (नम्रभाव) था। इन्द्र की पहुँच भक्ति-पूर्ण थी परन्तु विरोचन की व्यावहारिक। विरोचन कौतूहलवश प्रवृत्त हुआ था और वह व्यावहारिक ज्ञान चाहता था। कारण, उसका विश्वास था कि वह ज्ञान बाद में शक्ति प्राप्त करने के लिए उपयोगी होगा।

शिष्य को चाहिए कि वह सब से बढ़कर प्रेम, समभाव और विनयशीलता को बहुमूल्य समझे। प्रेम से साहस का उद्भव होता है, समभाव से प्रचुरता की निर्मिति होती है और विनयशीलता शक्ति उत्पन्न करती है। बिना प्रेम का

साहस पशुतुल्य है। बिना समभाव प्रचुरता अत्यधिक लाड-प्यार और नाश की ओर प्रवृत्त करती है। विनयशीलता के बिना शक्ति घमंड और अत्याचार के लिए कारणीभूत होती है। सच्चा शिष्य अपने गुरु से ऐसी शक्ति प्राप्त करता है जो उसे कदापि नहीं छोड़ेगी; कारण, वह परमात्मा के अस्तित्व के स्रोत आद्यशक्ति की ओर उन्मुख हो जाता है।

साधना – (स्वतंत्रता की कुंजी)

योग की सभी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ साधना या अभ्यास (निरंतर अभ्यास) पर अधिक महत्त्व (बल) देते हैं। साधना योग के ग्रंथों का सैद्धान्तिक अध्ययन मात्र नहीं है। यह आध्यात्मिक प्रयास है। तेल निकालने के लिए तिल को दबाना आवश्यक है। अग्नि प्रज्वलित करने के लिए लकड़ी जलानी चाहिए और छिपी हुई अग्नि को प्रकट होने देना चाहिए। इसी भाँति, साधक को अपने अन्दर की दिव्य ज्योतिं को निरन्तर अभ्यास से प्रकाशित करना चाहिए।

युवा, वृद्ध, अत्यन्त वयोवृद्ध यहाँतक कि अस्वस्थ एवं दुर्बल योग के निरन्तर अभ्यास से योग में सफल होते हैं। सफलता उसे मिलेगी जो अभ्यास करता है, उसे नहीं जो अभ्यास नहीं करता। धार्मिक ग्रंथों के सिद्धान्त के पठनमात्र से योग में सफलता नहीं प्राप्त होती है। योगी या संन्यासी के वस्त्र परिधान करने से या इसके सम्बन्ध में बातचीत करने से सफलता प्राप्त नहीं होती है। निरन्तर अभ्यास ही एकमात्र सफलता का रहस्य है। वास्तव में इसमें किंचित् संदेह नहीं है। (हठयोग प्रदीपिका, अध्याय १– श्लोक ६४–६६)

जिस प्रकार वर्णमाला के सीखने से व्यक्ति निरन्तर अभ्यास द्वारा सभी शास्त्रों पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार प्रथम शारीरिक शिक्षण के पूर्ण अभ्यास से व्यक्ति सत्य के ज्ञान (तत्त्वज्ञान) की प्राप्ति कर सकता है, क्योंकि विश्वव्यापक परमात्मा से अभिन्न होने के कारण मानव आत्मा की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। (घेरण्ड संहिता अध्याय १, श्लोक ५)

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा आत्मा के संयुक्त एवं केंद्रित प्रयास से व्यक्ति आन्तरिक शान्ति का पुरस्कार प्राप्त करता है और अपनी आत्मा के परमात्मा से मिलन की खोज को पूर्ण करता है। मनुष्य के जीवन में महान् साहसिक कार्य उसके स्रष्टा की ओर उसकी वापसी यात्रा है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए उसे अच्छे प्रकार से विकसित तथा संयुक्त क्रियाशील शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा आत्मा की आवश्यकता है। यदि प्रयास संयुक्त नहीं है तो वह अपने साहस के कार्य में असफल होता है। कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की तीसरी वल्ली में यम (मृत्यु का देवता) ने इस योग को अन्वेषक नचिकेता से रथ में बैठे हुए व्यक्ति के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया है।

"आत्मा को रथ का स्वामी, बुद्धि को सारथी और मन को लगाम समझे। कहते हैं कि इन्द्रियाँ घोडे हैं और उनकी इच्छा के विषय चरागाह हैं। आत्मा, जब इन्द्रियों और मन से युक्त हो जाता है (मिल जाता है) तो उसे विद्वान् भोक्तृ कहते हैं। अविचारी व्यक्ति अपने मन को कभी लगाम नहीं लगा सकता है; उसकी इन्द्रियाँ सारथी (रथ) के दुष्ट घोडों के समान हैं। विचारी व्यक्ति अपने मन को सदा वश में रखता है; उसकी इन्द्रियाँ अनुशासित घोड़ों के समान होती हैं। अविचारी असावधान तथा सदा दूषित होता है; वह एक शरीर से दूसरे शरीर में भटकता रहता है परन्तु अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं करता। विचारी सावधान और सदा पवित्र होता है; वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है और पुनर्जन्म को कभी प्राप्त नहीं होता। व्यक्ति, जिसके विचारी सारथी उसके मन को लगाम लगाते हैं, अपनी यात्रा के अन्त – अविनाशी आत्मा के सर्वोच्च स्थान – को पहुँचते हैं।"

"इच्छा (वासना) के विषयों की अपेक्षा इन्द्रियाँ अधिक शक्तिशाली हैं। इन्द्रियों से वढ़कर मन है, मन से बढ़कर बुद्धि है और वह आत्मा जो सब में है, बुद्धि से कहीं वढ़कर है। आत्मा से अपने को अनुशासित करो और वासना (इच्छा) के वेश में धोखा देनेवाले कपटी शत्रुओं का नाश करो।" (भगवद्गीता, अध्याय ३, श्लोक ४२–४३)

इसकी अनुभूति के लिए केवल निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता नहीं है अपितु त्याग की भी जरूरत है। त्याग के सम्बन्ध में, प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति किसका त्याग करे? योगी संसार का त्याग नहीं करता, कारण इसका अर्थ स्रष्टा का त्याग होगा। योगी उन सभी का त्याग करता है जो उसे परमात्मा से दूर करता है। परमात्मा से सभी प्रेरणा तथा उचित कर्म प्राप्त होते हैं इसे जानते हुए – वह अपनी वासनाओं का त्याग करता है। वह उनका त्याग करता है जो परमात्मा की रचना का विरोध करते हैं, दुष्ट विचारों को फैलाते हैं और जो नैतिक मूल्य की केवल बातें करते हैं परन्तु उन्हें आचरण में नहीं लाते।

योगी कर्म का त्याग नहीं करता है। वह उन बन्धनों को काटता है जो उसे उसके कर्म और उनके फलों (कर्मफलों) को परमात्मा या मानवजाति को समर्पित करने में बाधक बनते हैं। वह विश्वास करता है कि उसे अपना कर्तव्यकर्म करने का स्वत्वाधिकार है और उसके कर्मफलों का अधिकार नहीं है।

जब कि दूसरे कर्तव्य की पुकार के समय सोते हैं और अपने अधिकार मात्र के लिए जाग उठते हैं, योगी अपने कर्तव्य के लिए पूर्णतः जाग्रत होता है परन्तु अधिकार के समय सो जाता है। इसलिए कहा गया है कि रात्रि में सारी सृष्टि निद्रा के अधीन होती है और शान्त पुरुष ज्योति जलाने के लिए जागता है।

अष्टांग योग – योग के आठ अंग हैं।

पतंजलि के योगसूत्र चार पादों में विभाजित हैं। प्रथम पाद में समाधि के विषय में कहा गया है, दूसरे पाद में योगप्राप्ति की साधना वर्णित है, तीसरे पाद में विभूति (शक्ति) का निर्देश किया गया है जिसे योगी अपने अन्वेषण (खोज) में प्राप्त करता है, और चौथे पाद में कैवल्य (परमानन्द या बन्धन-मुक्ति) के विषय में बतलाया गया है।

यम

योग के आठ अंग दूसरे पाद में वर्णित हैं। इनमें प्रथम है यम (नैतिक शिष्टाचार)। धर्म, देश, अवस्था तथा समय से बढ़कर महान् उपदेश है – अहिंसा (हिंसा न करना), सत्य (सचाई), अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (इन्द्रियदमन) तथा अपरिग्रह (लोभ न करना)। ये उपदेश समाज और व्यक्ति के लिए नैतिक नियम हैं जिनका यदि पालन नहीं किया गया तो हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और लोभ के विप्लव उपस्थित होते हैं। इन बुराइयों की जड़ लोभ, वासना और आसक्ति के विकार हैं, भले ही वे मृदु, मध्यम, या तीव्र हों। वे दुःख और अज्ञान के कारण हैं। पतंजलि ने यम के पांच सिद्धान्तों द्वारा व्यक्ति के विचार की दिशा (विचारधारा) बदल कर इन पाँचों बुराइयों के मूल पर आघात किया है।

अहिंसा – अहिंसा शब्द 'अ' – उपसर्ग जिसका अर्थ "नहीं" और 'हिंसा' – संज्ञा जिसका अर्थ हत्या या बलाचरण (उग्र व्यवहार) है – से बना है। 'हत्या न करना' इस नकारात्मक उपदेश से यह अधिक प्रभावी है, कारण, इसका अति विशद स्वीकारात्मक अर्थ 'प्रेम' है। यह प्रेम सारी सृष्टि को अंगीकृत करता है, कारण हम सभी उसी परमपिता – परमात्मा – की सन्तान हैं। योगी का विश्वास है कि किसी वस्तु या अस्तित्व की हत्या करना या नाश करना उसके निर्माता (सृष्टिकर्ता) का अपमान है। मनुष्य अपने आहार के लिए या धोखे से अपने बचाव के लिए हत्या करता है। परन्तु एक आदमी शाकाहारी है इसी कारण यह समझना आवश्यक नहीं है कि वह स्वभाव से अहिंसक है अथवा वह योगी है, यद्यपि शाकाहारी भोजन योग के अभ्यास के लिए आवश्यक है। रक्तपिपासु क्रूर शासक शाकाहारी हो सकते हैं, परन्तु उग्र व्यवहार (बलात्कार) मन की अवस्था है, न की भोजन की। यह भाव मनुष्य के मन में रहता है न कि हथियार में, जिसे वह अपने हाथ में लेता है। व्यक्ति चाकू को फल काटने या शत्रु को भोंकने के लिए उपयोग में ला सकता है। दोष हथियार में नहीं है बल्कि प्रयोक्ता (प्रयोग कर्ता) में है।

मनुष्य अपने निजी स्वार्थ – अपने स्वयं के शरीर, अपने प्रियजन, अपनी सम्पत्ति या प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए बलाचरण या हिंसा करता है। परन्तु मनुष्य स्वयं अकेले अपने या दूसरे की रक्षा के लिए इस पर निर्भर नहीं रह सकता है। उसका यह विश्वास कि वह ऐसा कर सकता है, गलत है। मनुष्य को परमात्मा

पर अवलम्बित होना चाहिए, जो कि सभी शक्तियों का स्रोत है। तब वह अनिष्ट से नहीं डरेगा।

भय, दुर्बलता, अज्ञान या उद्विग्नता से हिंसा का उगम होता है। इसे रोकने के लिए भय से मुक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। इस मुक्ति की प्राप्ति के लिए जीवन के प्रति दष्टिकोण में परिवर्तन तथा मन की पुनः पूर्वस्थिति की आवश्यकता है। जब मनुष्य अज्ञान तथा अनुमान की अपेक्षा यथार्थता एवं अनुसंधान पर अपने विश्वास को आधारित करना सीखेगा तब हिंसा का विनाश अनिवार्य है।

योगी का विश्वास है कि प्रत्येक प्राणी को जीने का उतना ही अधिकार है जितना कि उसे। वह विश्वास करता है कि दूसरों की सहायता करने के लिए ही उसका जन्म है और वह प्रेम की दृष्टि से सृष्टि को देखता है। उसकी समझ है कि उसका जीवन न सुलझाने योग्य ढंग से दूसरों से जुड़ा हुआ है और यदि वह उनके प्रसन्न होने में सहायता कर सकता है तो स्वयं उसे भी आनंद प्राप्त होता है। वह दूसरों की प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता से पहले स्थान देता है और सब के आनंद का स्रोत बन जाता है जो उससे मिलते हैं। जिस प्रकार माता-पिता बच्चों को पहले-पहले चलने में प्रोत्साहन देते हैं उसी प्रकार वह अपने से अधिक अभागों को प्रोत्साहित करता है और उन्हें जीने के योग्य बनाता है।

दूसरों से की गई गलती के लिए लोग न्याय की माँग करते हैं; परंतु जब वही गलती उनसे हुई होती है तब वे दया और क्षमा की प्रार्थना करते हैं। इसके विपरीत योगी का विश्वास यह है कि उसके द्वारा की गई गलती का तो न्याय होना चाहिए पर दूसरों को क्षमा मिलनी चाहिए। वह जीने की कला जानता है और दूसरों को सिखाता है। वह स्वयं को पूर्ण करने की कोशिश करता हुआ दूसरों को अपने प्रेम तथा दया से स्वयं उन्नति करने की कला सिखलाता है।

योगी दोषी के दोष का विरोध करता है न कि दोषी का। वह की गयी गलती के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था करता है न कि दण्ड की। दोष का विरोध और दोषी के प्रति प्रेम पास-पास रह सकते हैं। एक शराबी की पत्नी उससे प्रेम करती हुई भी उसके व्यसन का विरोध कर सकती है। प्रेम के बिना विरोध हिंसा की ओर अग्रसर होता है; दोषी के दोष का विरोध किए बिना दोषी से प्रेम करना उचित नहीं है और दुर्गति की ओर ले जाता है। योगी यह जानता है कि व्यक्ति से प्रेम करते हुए उसके दोष का विरोध करना ही उचित मार्ग का अनुसरण करना है। यह युद्ध विजित है, कारण वह उसे प्रेम के अस्त्र से लड़ता है। स्नेहमयी माता अपने बच्चे की बुरी आदत सुधारने के लिए उसे कभी कभी मारती है, उसी प्रकार अहिंसा के सच्चे पुजारी अपने विरोधी से प्रेम करते हैं।

अहिंसा के साथ साथ अभय (भय से मुक्ति) और अक्रोध (क्रोध से मुक्ति)

होता है। जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें ही अभय की प्राप्ति होती है। योगी किसी से भयभीत नहीं है और न किसीको योगी से भयभीत होना चाहिए; कारण वह आत्मचिंतन से पवित्र हो गया है। भय मनुष्य को जकड़ लेता है और उसे अशक्त निरुपयोगी बना देता है। वह अज्ञात और अदृश्य भविष्य से भयभीत है। वह भयभीत है कि कहीं वह अपने जीवन-निर्वाह के साधन, सम्पत्ति या प्रतिष्ठा खो न दे। परंतु सब से बड़ा भय मृत्यु का है। योगी जानता है कि वह उसके शरीर, जो उसकी आत्मा का अस्थायी निवास है, से भिन्न है। वह अपनी आत्मा में संपूर्ण सृष्टि को और संपूर्ण सृष्टि में अपनी आत्मा को देखता है और इसलिए वह निर्भय हो जाता है। यद्यपि शरीर रोग, वय, नाश और मृत्यु का विषय है तथापि आत्मा निर्विकार है। योगी की दृष्टि में मृत्यु मसाला है जो जीवन को स्वादिष्ट बनाता है। योगी का अपना मन, बुद्धि और सारा जीवन परमात्मा को समर्पित है। जब कि उसने अपना सर्वस्व परमात्मा से संबद्ध कर दिया है तो उसे किसका भय होगा?

क्रोध के दो प्रकार हैं। उनमें से एक मन को अधोगति की ओर ले जाता है जब कि दूसरा आत्मिक उन्नति की ओर। पहले का कारण अहं है। जब 'अहं' को चोट पहुंचती है तो व्यक्ति क्रुद्ध हो उठता है। यह मन को, वस्तु को उसके स्वरूप में देखने से रोकता है और व्यक्ति के निर्णय दोषयुक्त बनाता है। इसके विपरीत योगी स्वयं पर क्रुद्ध होता है, जब उसका मन नीचे झुक जाता है या उसका सारा अभ्यास और अनुभव उसे अज्ञान से रोकने में असमर्थ होते हैं। जब वह अपने निजी दोषों के प्रति कार्रवाई करता है तो निष्ठुर होता है परंतु दूसरों के दोषों के साथ सौम्य बन जाता है। मन की कोमलता योगी का गुण है; जिसका हृदय सब के दुःख से पिघल जाता है। उसके अंदर दूसरों के प्रति कोमलता और अपने प्रति कठोरता साथ-साथ चलती है, और उसकी उपस्थिति में सारी शत्रुता छोड़ दी जाती है।

सत्य – सत्य या सचाई आचरण अथवा नैतिकता का सर्वोच्च सिद्धान्त है। महात्मा गांधी ने कहा है, 'सत्य परमात्मा (ईश्वर) है और परमात्मा सत्य है।' जिस प्रकार अग्नि मलिनता को जलाती है और सुवर्ण को शुद्ध बना देती है, उसी प्रकार सत्य की अग्नि योगी को पवित्र बना देती है और उसके अन्दर के विकार को जला देती है।

यदि मन सत्य का विचार करता है, यदि जिह्वा सत्यवचन का ही उच्चारण करती है, और यदि सारा जीवन सत्य पर आधारित है, तब वह अनंत (परमात्मा) से एकरूप होने के योग्य हो जाता है। यथार्थता अपने सैद्धान्तिक (मौलिक) रूप में प्रेम और सत्य है तथा स्वयं को इन दो रूपों द्वारा प्रकट करती है। योगी के जीवन द्वारा यथार्थता के ये दो पहलू निश्चयपूर्वक प्रमाणित होने चाहिए। इसी

कारण अहिंसा, जो प्रधानतया प्रेम पर आधारित है, के आनंद का अनुभव किया जाता है। सत्य विचार, वाणी एवं कर्म में पूर्ण सचाई की पूर्वकल्पना करता है। असत्यता किसी भी रूप में साधक को सत्य के सैद्धान्तिक नियम के अनुरूप नहीं रखती है।

सत्य केवल वाणी तक सीमित नहीं है। वाणी के चार पाप हैं; निंदा और अश्लीलता, मिथ्या व्यवहार, मिथ्या आरोप या चुगली और अन्त में जिसे दूसरे पवित्र मानते हैं उसका उपहास करना। चुगलखोर सर्प से अधिक विषैला होता है। वाणी का नियंत्रण द्वेष को जड़-मूल से उखाड़ता है। जब मन में किसी के प्रति भी द्वेष नहीं होता, तब उसमें सब के लिए करुणा होती है, जिसने अपनी जिह्वा को नियंत्रित (वश में) करना सीखा है, उसे बहुत हद तक आत्म-नियंत्रण प्राप्त है। ऐसा व्यक्ति जब बोलता है तब उसकी बात सम्मानसहित एवं ध्यान से सुनी जाती है। उसके वचन याद रहेंगे; कारण वे अच्छे और सच्चे होंगे।

जब व्यक्ति, जिसने सत्य (सचाई) का दृढ़ व्रत लिया है, शुद्ध अंतःकरण से प्रार्थना करता है, तब उसे आवश्यक चीजें प्राप्त होती हैं; जब कि वे उसके लिए सचमुच में आवश्यक होती हैं; उसे उनके पीछे दौड़ना नहीं होता। दृढ़ सत्यव्रती मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से किसी चीज को किए बिना ही अपने कर्मों का फल प्राप्त करता है। सारे सत्य का स्रोत परमात्मा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और उसके कल्याण की देखरेख करता है।

अस्तेय – दूसरे की उपलब्धि की प्राप्ति और भोग की इच्छा व्यक्ति को बुरे कर्म की ओर प्रवृत्त करती है। इस इच्छा से चोरी करने की और छल-कपट करने की तीव्र भावना उठती है। अस्तेय (अ = नहीं, स्तेय = चोरी करना) अर्थात् चोरी न करना। दूसरे की वस्तु बिना अनुमति के लेना ही केवल चोरी करना नहीं, अपितु जिस निमित्त से किसी वस्तु की माँग की गई उससे भिन्न निमित्त के लिए उसका उपयोग करना अथवा उसके स्वामी द्वारा जितनी कालावधि के लिए वस्तु प्राप्त है उससे अधिक समय के लिए उसका उपयोग करना, चोरी करने में समाविष्ट है। इस प्रकार इसमें दुरुपयोग, विश्वासघात, अव्यवस्था तथा दुर्व्यवहार का समावेश होता है। योगी अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को इस विश्वास से न्यूनतम करता है कि यदि वह उन वस्तुओं का – जिनकी उसे आवश्यकता नहीं है, संग्रह करता है तो वह चोर है। जब कि दूसरे लोग सम्पत्ति, शक्ति, यश और सुख (आनंद) की ईहा करते हैं, योगी की एक ही इच्छा होती है और वह है परमात्मा की आराधना। ईहा से मुक्ति व्यक्ति को बड़े प्रलोभनों को टालने में समर्थ बनाती है। ईहा शांति के स्रोत को गँदला कर देती है। यह मनुष्य को अधम एवं घामड़ बना देती है और अपंग बनाती है। "तुम चोरी नहीं करोगे" इस आदेश का जो व्यक्ति पालन करता है, वह संपूर्ण निधि का विश्वस्त सुरक्षा कोष हो जाता है।

ब्रह्मचर्य – शब्दकोश के अनुसार ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है अविवाहित जीवन, धार्मिक अध्ययन और आत्मसंयमन। ऐसा विचार किया गया है कि वीर्यपतन मृत्यु की ओर और उसका स्तंभन जीवन की ओर ले जाता है। वीर्य की रक्षा के कारण योगी के शरीर से एक प्रकार की भीनी गंध आती है। जब तक इसे (वीर्य) धारण किया गया है तब तक मृत्यु का डर नहीं है। इसी कारण यह निर्देश है कि मन के एकाग्र (एककेंद्रीय) प्रयत्न से इसकी रक्षा करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य का सामान्य विचार कृत्रिम आत्मसंयम और निषेध या अस्वीकृति नहीं है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्मचारी (जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करता है) वह है जो पवित्र वैदिक विद्या के अध्ययन में लीन है, ब्रह्म में निरंतर विचरण करता है और जानता है कि सब का अस्तित्व ब्रह्म में है। दूसरे शब्दों में, जो सब में देवत्व के दर्शन करता है वह ब्रह्मचारी है। परंतु पतंजलि ने शरीर, वाणी और मन के संयम पर बल दिया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि योगदर्शन का अर्थ केवल अविवाहित जीवन है। व्यक्ति अविवाहित या विवाहित है और गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है इससे उसका संबंध बहुत कम है। व्यक्ति को प्रतिदिन के जीवन-क्रम में ब्रह्मचर्य के उच्च आदर्शों को प्रयुक्त करना है। कैवल्यप्राप्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति अविवाहित और बिना घर द्वार का रहे। इसके विपरीत सारी स्मृतियों (धर्म संहिताओं) ने विवाह का समर्थन किया है। मानवी प्रेम और सुख के अनुभव प्राप्त किए बिना दिव्य प्रेम को जान पाना संभव नहीं है। भारत में प्राचीन काल के लगभग सभी योगी एवं ऋषि मुनि विवाहित थे और अपने निजी परिवार के साथ रहते थे। उन्होंने अपने सामाजिक एवं नैतिक उत्तरदायित्व को नहीं छोड़ दिया था। विवाह और पितृत्व दिव्य-प्रेम के ज्ञान, सुख तथा परमात्मा से मिलने में बाधक नहीं है।

गृहस्थ प्रार्थी की स्थिति की चर्चा करते हुए शिवसंहिता में कहा है : उसे (गृहस्थ प्रार्थी को) मनुष्य समाज से रहित एकांत स्थान में अभ्यास करने दें। दिखावट के लिए वह समाज में रहे परन्तु उसका हृदय न रहे। उसे अपने व्यवसाय, जाति या पद का त्याग नहीं करना चाहिए, परन्तु किसी प्रकार के परिणाम का विचार किये बिना, परमात्मा के साधन (निमित्त) रूप में उनका उपयोग करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं है कि वह योग की विधि का बुद्धिमानीपूर्वक अनुसरण करने से सफलता प्राप्त करता है। जो व्यक्ति परिवार के मध्य रहते हुए, गृहस्थ के कर्तव्य को सतत करते हुए गुण एवं अवगुण से मुक्त है और जिसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है वह कैवल्य को प्राप्त होता है। गृहस्थ योग का अभ्यास करते हुए पाप या पुण्य से अछूता रहता है; यदि वह मनुष्यजाति की रक्षा के लिए किसी प्रकार का पाप करता है तो उससे वह भ्रष्ट नहीं होता (अध्याय ५, श्लोक २३४–८)।

जिस व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया है वह चेतनत्व और शक्ति का संचय, साहसी मन और प्रबल बुद्धि का विकास करता है जिससे वह किसी प्रकार के अन्याय का सामना कर सके। ब्रह्मचारी उस सबल शक्ति का उपयोग करेगा जिसे वह बुद्धिमत्तापूर्वक सम्पादित करता है; वह परमात्मा के कार्य करने के लिए शारीरिक शक्ति, संस्कृति के विकास के लिए मानसिक शक्ति और आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के लिए बौद्धिक शक्ति का उपयोग करेगा। ब्रह्मचर्य विद्युत्यंत्र (battery) है जो बुद्धि की मशाल को प्रदीप्त करता है।

अपरिग्रह – परिग्रह का अर्थ संग्रह या संचय है। संचय का न करना (संचय-मुक्त होना) अपरिग्रह है। इस प्रकार यह अस्तेय (चोरी न करना) का दूसरा पहलू है। जैसे व्यक्ति को जिस वस्तु की वास्तव में आवश्यकता नहीं है उसे वह वस्तु नहीं लेनी चाहिए, इसी प्रकार व्यक्ति को जिस वस्तु की तत्काल आवश्यकता नहीं है उसका संचय या संग्रह नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को परिश्रम किये बिना या दूसरे के अनुग्रह के रूप में वस्तु को नहीं लेना चाहिए। कारण, यह आत्मा की दरिद्रता का द्योतक है। योगी का अनुभव है कि वस्तुओं का संग्रह या संचय करना परमात्मा में विश्वास के अभाव को प्रकट करना है जब कि अपने भविष्य के लिए सामग्री इकट्ठा करना स्वयं में अविश्वास। वह अपने सामने चन्द्रमा की कल्पना रखकर विश्वास करता है। कृष्णपक्ष में चन्द्रमा विलम्ब से उगता है जब कि अधिकांश लोग नींद में होते हैं और इसलिए उसके सौंदर्य की प्रशंसा नहीं करते। उसका वैभव घटता है परन्तु वह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता है और न मनुष्य की प्रशंसा के अभाव के लिए उदासीन है। उसे विश्वास है कि जब वह सूर्याभिमुख होगा, पुनः पूर्ण होगा और तब मनुष्य उसके वैभवपूर्ण उदय की प्रतीक्षा उत्सुकता से करेंगे। योगी अपरिग्रह के आचरण से अपना जीवन यथासंभव सादा बनाता है और अपने मन को किसी वस्तु का अभाव या हानि का अनुभव न करना सिखलाता है। तब प्रत्येक वस्तु जिसकी उसे सचमुच में आवश्यकता है उचित समय पर अपने आप उसके पास चली आएगी। सर्वसाधारण मनुष्य का जीवन विघ्नबाधाओं और नैराश्य की अनन्त मालाओं से तथा उनके प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं से पूर्ण है। इस प्रकार मन को संतुलित अवस्था में रखने की कोई संभावना कठिन है। साधक जो कुछ भी होता है उसमें संतुष्ट रहने की क्षमता के विकास को प्राप्त करता है। इस प्रकार वह शान्ति प्राप्त करता है जो मायाप्रदेश और कृपणता–जिससे हमारा संसार परिपूर्ण है–के पार उसे ले जाती है। वह भगवद्गीता के नौवें अध्याय में अर्जुन से कहे गये श्रीकृष्ण के वचन का स्मरण करता है; "जो एकाग्रमन से एकमात्र मेरी भक्ति करते हैं और प्रत्येक क्षण अनन्य भाव से मुझमें स्थित हैं, मैं उनके योगक्षेम की व्यवस्था कर देता हूँ। मैं उनकी सारी

आवश्यकताओं की पूर्ति करता हूँ और सर्वदा के लिए उनकी रक्षा करता हूँ।"[1]

नियम

चरित्रसंबंधी विधान को नियम कहते हैं जो व्यक्तिगत अनुशासन के लिए लागू होता है, जब कि यम विश्व के (जागतिक) अनुशासन से संबद्ध है। पतंजलि ने पाँच नियम बतलाये हैं––

शौच (शुद्धता), संतोष (समाधान), तप (व्यग्रता या दृढ़ता), स्वाध्याय (आत्मचिंतन), और ईश्वरप्रणिधान (परमेश्वरार्पण)।

शौच – शुद्ध व स्वच्छ रहने के लिए शारीरिक पवित्रता आवश्यक है। अच्छी आदतें जैसे स्नान शरीर को बाहर से शुद्ध कर देता है, आसन और प्राणायाम अन्दर से स्वच्छ-शुद्ध कर देते हैं। आसनों का अभ्यास सारे शरीर को ठीक कर देता है और अति सुखभोग (मजा) के कारण उत्पन्न मल (विष) और अपवित्रता को दूर करता है। प्राणायाम फुप्फुसों को स्वच्छ करता है और वायु (आलातीय गैस) से भरता है, रक्त को प्राणवायु से पूरित करता है तथा नाडी-मंडल को पवित्र करता है। परन्तु शरीर की शारीरिक (पार्थिव) स्वच्छता की अपेक्षा मन की बाधक भावनाओं, जैसे द्वेष, वासना, क्रोध, काम, लोभ, मोह और गर्व की स्वच्छता महत्त्वपूर्ण है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है बुद्धि के अपवित्र विचारों की स्वच्छता। मन की अपवित्रताएँ भक्ति की वारिधारा से धुल जाएँगी। बुद्धि की अपवित्रताएँ स्वाध्याय (आत्मचिंतन) की अग्नि में जल जाएँगी। यह आन्तरिक स्वच्छता प्रकाश–कांति और आनन्द प्रदान करती है। इससे सौमनस्य की प्राप्ति होती है तथा यह मानसिक कष्ट, खिन्नता, दु:ख और निराशा को दूर करती है। जब व्यक्ति में सौमनस्य होता है तब वह दूसरों के गुण देखता है, न कि उनके दोषमात्र को। जो दूसरों के गुणों के प्रति सम्मान प्रकट करता है वही सम्मान उसके लिए भी आत्मसम्मान का कारण बनता है तथा उसे कष्ट और कठिनाइयों का सामना करने में सहायता करता है। जब मन स्वच्छ होता है तब उसे एकाग्र करने में आसानी होती है। व्यक्ति एकाग्रता से इन्द्रियों को जीत लेता है। तब व्यक्ति स्वयं अपने शरीर के मंदिर में प्रवेश पाने के योग्य होता है और अपने चित्त के दर्पण में अपना यथार्थ रूप देखता है।

शरीर, विचार और वचन की शुद्धता के अलावा शुद्ध आहार (अन्न) की भी आवश्यकता है। आहार (अन्न-भोजन) बनाने की पवित्रता के अतिरिक्त व्यक्ति

१. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

योगक्षेम –
भगवद् के स्वरूप की
प्राप्ति (अप्राप्त की प्राप्ति) का नाम योग है और
उस प्राप्ति की रक्षा क्षेम है।

द्वारा अन्न प्राप्त किये जानेवाले साधनों की पवित्रता पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

अन्न सभी के जीवन का आधार, परन्तु नाश होनेवाला पदार्थ होने पर भी, ब्रह्म के रूप में माना गया है। इसे इस भावना से ग्रहण करना चाहिए कि व्यक्ति प्रत्येक ग्रास से परमात्मा की सेवा के लिए शक्ति प्राप्त कर सकता है। तब अन्न पवित्र होता है। शाकाहारी होना या न होना यह पूर्णतः व्यक्तिगत बात है। कारण, प्रत्येक व्यक्ति अपने देश की परम्परा-प्रणाली तथा अभ्यास से प्रभावित होता है, जहाँ वह पैदा हुआ और पालपोस कर बड़ा हुआ है। परन्तु योग के साधक को कुछ समय की अवधि में शाकाहारी भोजन अपनाना होगा; जिससे वह एकाग्र ध्यान तथा आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करे।

स्वास्थ्य, बल, तेज तथा जीवन की वृद्धि के लिए अन्न ग्रहण करना चाहिए। यह सादा, बलवर्धक, रसदार और शान्तिदायक होना चाहिए। खट्टा, कड़वा, खारा (नमकीन), तीखा, उत्तेजक, बासी, स्वादहीन, गरिष्ठ और अशुद्ध भोजन ग्रहण न करें।

हम किस प्रकार अन्न ग्रहण करते हैं और हम कैसे खाते हैं इन दो बातों से चरित्र बनता है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है कि बिना भूख के खाता है और साधारणतया खाने के लिए जीता है न कि जीने के लिए खाता है। यदि हम जिह्वा के स्वाद के लिए खाते हैं तो हम अधिक खा लेते हैं और पचनक्रिया की अव्यवस्था से कष्ट पाते हैं; जो हमारी प्रणालियों के नित्यक्रम को बिगाड़ देता है। योगी समस्वरता (जीवन के माधुर्य) में विश्वास करता है इसलिए वह जीवन-निर्वाह मात्र के लिए खाता है। वह न अधिक खाता है और न कम। वह अपने शरीर को अपनी आत्मा के विश्रामस्थल के रूप में मानता है और स्वयं को अधिक खाने-पीने से बचाता है।

आध्यात्मिक अभ्यास के लिए अन्न (आहार) के अतिरिक्त स्थान का भी महत्त्व है। दूर देश में (घर से दूर), जंगल में, भीडभाड़वाले शहर में अथवा कोलाहल के स्थान में योगाभ्यास करना कठिन है। व्यक्ति को ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहाँ आहार आसानी से प्राप्य हो, कीड़े-मकोड़े न हों, प्रकृति के प्रकोप से सुरक्षित हो और जहाँ का वातावरण (बाहर का स्थान) आनन्ददायक हो। तालाब या नदी का तट या समुद्र का किनारा उत्तम (आदर्श) है। इस प्रकार का शान्त आदर्श (उत्तम) स्थान आज के युग में मिलना कठिन है। परन्तु व्यक्ति अभ्यास के लिए अपने कमरे का एक कोना प्राप्त कर सकता है और उसे स्वच्छ हवादार, सूखा और हानिकारक वस्तुओं से मुक्त रख सकता है।

संतोष – सन्तोष या समाधान द्वारा अभ्यास प्राप्त करना होगा। जो चित्त सन्तुष्ट (प्रसन्न) नहीं है, एकाग्र नहीं हो सकता। योगी किसी वस्तु का अभाव

अनुभव नहीं करता और इसी कारण वह स्वभावतः सन्तुष्ट है। सन्तोष योगी को अद्वितीय परमसुख देता है। सन्तुष्ट व्यक्ति पूर्ण है; कारण वह परमात्मा के प्रेम को जान गया है और उसने अपने कर्तव्य को पूर्ण किया है। वह सुखी है क्योंकि उसने सत्य और आनन्द को जाना है।

सन्तोष और शान्ति मन की अवस्थाएँ हैं। जाति, धर्म (मत), सम्पत्ति और शिक्षा के कारण मनुष्यों में भेद उत्पन्न होते हैं। भेद विरोध को जन्म देते हैं और तब चेतन या अचेतन का कलह होने लगता है जो व्यक्ति को व्याकुल एवं विचलित कर देता है। ऐसी स्थिति में मन एकाग्र नहीं हो सकता है और उसकी शान्ति अपहृत (नष्ट) हो जाती है। जब वासना रूपी वायु से आत्मदीप की लौ काँपती नहीं है तब सन्तोष और शान्ति होती है। साधक मृतक की शून्य शक्ति की खोज नहीं करता है, बल्कि उसकी शान्ति की खोज करता है जिसकी बुद्धि परमात्मा में दृढतापूर्वक स्थित है।

तपस् – मूल शब्द 'तप' है जिससे 'तपस्' बना है। इसका अर्थ है – प्रज्वलित करना, जलाना, चमकाना, कष्ट सहना अथवा उष्णता से जलना। इसलिए इसका अर्थ है, जीवन में एक निश्चित ध्येय की प्राप्ति के लिए किन्हीं भी स्थितियों में सतत अथक प्रयत्न। इसमें पवित्रता, आत्मसंयम और कठिन तपस्या समाविष्ट है। सम्पूर्ण चरित्र निर्माण का विज्ञान तपस् (तपश्चर्या) के अभ्यास के रूप में माना जा सकता है।

तप दिव्यात्मा से अंतिम मिलन की प्राप्ति का और इस उद्देश्य के मार्ग में बाधक बननेवाली सभी कामनाओं को जलाने का जागृत प्रयत्न है। उचित उद्देश्य जीवन को प्रकाशमान, पवित्र तथा दिव्य बनाता है। इस प्रकार के उद्देश्य के बिना कर्म और प्रार्थना का कोई मूल्य नहीं है। तप के बिना जीवन प्रेमहीन हृदय के समान है। तप के बिना चित्त परमात्मा तक पहुँच नहीं सकता है।

तप तीन प्रकार का है – कायिक, वाचिक तथा मानसिक। ब्रह्मचर्य और अहिंसा कायिक तप है। ऐसे वचन का प्रयोग करना जो कष्ट न दे, परमात्मा का गुणगान करना, अपने (स्वयं के) लिए परिणाम का विचार किये बिना सत्य कथन करना और दूसरों की निन्दा न करना वाचिक तप है। मानसिक स्थिति का विकास करना, जिससे व्यक्ति सुख और दुःख में शान्त और सन्तुलित रहता है और आत्म-संयम करता है, मानसिक तप है।

जब व्यक्ति स्वार्थपूर्ण उद्देश्य अथवा पुरस्कार की आशा के बिना और परमात्मा की इच्छा के बिना तृण का एक पत्ता भी हिल नहीं सकता है इस प्रकार पूर्ण विश्वास के साथ कार्य करता है तो यह तप है।

योगी तप से शरीर, मन, और चरित्र की शक्ति का विकास करता है। वह साहस, ज्ञान, स्थिरता, खरापन और सादगी प्राप्त करता है।

स्वाध्याय – स्व का अर्थ है स्वयं और अध्याय का अर्थ अध्ययन या शिक्षण है। व्यक्ति के अन्दर जो उत्तम है उसे प्रकट करना शिक्षण है। इसलिए स्वाध्याय आत्म-अध्ययन है।

स्वाध्याय व्याख्यान जैसे एकमात्र उपदेश सुनने से भिन्न है–जहाँ व्याख्याता अपने श्रोताओं के अज्ञान पर अपनी विद्वत्ता का बाह्य प्रदर्शन करता है। जब लोग स्वाध्याय के लिए एकत्रित होते हैं तब वक्ता और श्रोता एक विचार के होते हैं और उनमें परस्पर प्रेम और आदर की भावना होती है। धर्मोपदेश नहीं किया जाता परन्तु अन्तःकरण एक दूसरे से कहते-सुनते हैं। उन्नत विचार जो स्वाध्याय से निकलते हैं वे व्यक्ति की रक्तवाहिनी में पहुँचते हैं जिससे वे व्यक्ति के जीवन और अस्तित्व के अंग हो सकें।

व्यक्ति स्वाध्याय का अभ्यास करते हुए अपने स्वयं की जीवन-पुस्तक पढ़ता है, उसी समय वह उसे लिखता है और उसकी आवृत्ति करता है। जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है। वह अनुभव करने लगता है कि सारी सृष्टि भोग के लिए नहीं, अपितु भक्ति के लिए है, सारी सृष्टि दिव्य है, दिव्यता स्वयं उसमें भी है और जो शक्ति उसमें है वही शक्ति सम्पूर्ण विश्व को चलायमान करती है।

श्री विनोबा भावे के अनुसार स्वाध्याय एक विषय का अध्ययन है जो आधार अथवा अन्य सभी विषयों या क्रियाओं का मूल है, जिस पर दूसरे अवलंबित हैं, परन्तु जो स्वयं किसी (वस्तु) पर आधारित नहीं होता।

स्वस्थ, प्रसन्न एवं शान्त जीवन बनाने के लिए पवित्र स्थान में दिव्य (धार्मिक) ग्रंथों का नियमित अध्ययन आवश्यक है। संसार के धार्मिक ग्रंथों का यह अध्ययन साधक को ध्यान केन्द्रित करने में और जीवन की कठिन समस्याओं, जब वे उपस्थित होंगी, के सुलझाने में समर्थ बनाएगा। यह अज्ञान को मिटाकर ज्ञान को सुलभ कराएगा। अज्ञान का प्रारंभ नहीं है परन्तु उसका अन्त है। ज्ञान का प्रारंभ है परन्तु उसका अन्त नहीं है। साधक अपनी आत्मा के स्वभाव को स्वाध्याय से जान लेता है और दिव्य से सम्पर्क साधता है। संसार की धार्मिक पुस्तकें सभी के पढ़ने के लिए हैं। उनका उद्देश्य केवल एक विषेश विश्वास के माननेवाले सदस्यों के लिए नहीं है। जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अनेक फूलों से मधु संचय करती हैं, उसी प्रकार साधक दूसरे के विश्वास की बातों को आत्मसात् करता है जो उसे अपने विश्वास का अधिक अच्छी तरह मूल्यांकन करने के लिये योग्य बनाते हैं।

जिस तरह भाषाशास्त्र स्वयं कोई भाषा नहीं, अपितु भाषाओं का विज्ञान है, जिसका अध्ययन विद्यार्थी को उसकी अपनी भाषा भलीभाँति समझने के योग्य बनाता है, इसी प्रकार योग स्वयं में कोई धर्म नहीं है। यह अनेक धर्मों का शास्त्र

है जिसका अध्ययन साधक को अपने स्वयं के विश्वास का अधिक अच्छी तरह मूल्यांकन करने के योग्य बनाता है ।

ईश्वरप्रणिधान – व्यक्ति द्वारा अपने कर्म और इच्छा का ईश्वर को समर्पण ईश्वरप्रणिधान है । जिसे ईश्वर पर विश्वास है वह निराश नहीं होता । उसमें तेज होता है । जो यह जानता है कि सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वरीय है वह अहंकार से कभी न फूलेगा और न शक्ति सामर्थ्य का मतवाला होगा । वह स्वार्थपूर्ण प्रयोजनों (उद्देश्यों) के लिए नहीं झुकेगा, उसका मस्तक एकमात्र पूजा में ही नत होगा । जब मन की पवनचक्की द्वारा भक्तिजल प्रवाहित होता है तब उसका परिणाम मानसिक शक्ति और आध्यात्मिक तेज होता है । जहाँ बिना भक्ति के केवल शारीरिक शक्ति प्राणघातक है वहीं बिना चारित्रिक बल के निरी भक्ति अफीम मिली हुई ओषधि के समान है । विषयसुख की बुरी आदत से शक्ति और गौरव (दिव्यता) का विनाश होता है । इन्द्रियों की तृप्ति से मोह और लोभ उत्पन्न होते हैं, कारण इन्द्रियाँ पुनःपुनः तृप्ति की प्राप्ति के लिए सुख के पीछे दौड़ती हैं । यदि विषयों की तृप्ति नहीं होती है तो शोक होता है । उन्हें ज्ञान और सहनशीलता (क्षमा) से सही मार्ग की ओर मोड़ना चाहिए । मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है । जब व्यक्ति अपने सभी उपायों से थक जाता है और फिर भी जब उसे सफलता नहीं मिलती है तब वह परमात्मा की ओर सहायता के लिए उन्मुख होता है; कारण वह सभी शक्तियों का स्रोत है । यह वह अवस्था है जब भक्ति का उद्भव होता है । भक्ति में मन, बुद्धि और इच्छा परमात्मा के शरण होती हैं और साधक प्रार्थना करता है–– "मैं नहीं जानता कि मेरे लिए क्या अच्छा (उचित) है । तू जो करेगा वही होगा ।" दूसरे अपनी इच्छाओं के तृप्त होने या पूर्ण होने के लिए प्रार्थना करते हैं । भक्ति अथवा पूर्ण प्रेम में "मैं" और "मेरा" का कोई स्थान नहीं है । जब "मैं" और "मेरा" की भावना लुप्त हो जाती है तब व्यक्ति की आत्मा पूर्ण विकास को प्राप्त होती है ।

जब मन व्यक्तिगत तृप्ति की इच्छाओं से रिक्त कर दिया गया है तब उसे परमात्मा के ध्यान से पूर्ण करना चाहिए । व्यक्तिगत तृप्ति के विचारों से पूर्ण मन में विषयवासना के पीछे मन को खींचनेवाली इन्द्रियों का धोका है । इच्छाओं से रिक्त किये बिना मन का भक्ति के अभ्यास का प्रयास गीले ईन्धन से अग्नि निर्माण करने के समान है । यह धुआँ ही धुआँ करता है और इस प्रकार अग्नि प्रज्वलित करनेवाले व्यक्ति और उसके इर्दगिर्द के लोगों की आँखों में पानी (अश्रु) लाता है । वासना (इच्छा) से पूर्ण मन को जब ज्ञान-अग्नि से छते हैं तब न तो अग्नि सुलगती है, न प्रज्वलित होती है, न प्रकाश उत्पन्न होता है, न उष्णता प्राप्त होती है । परमात्मा का नाम सारे अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के समान है । जब

चंद्रमा सूर्य के सम्मुख होता है तब पूर्ण होता है। व्यक्ति की आत्मा पूर्णता का अनुभव तब करती है जब वह परमात्माभिमुख होती है। जब पूर्ण चन्द्र और सूर्य के बीच पृथ्वी की छाया होती है तब चन्द्रग्रहण होता है। यदि "मैं" और "मेरा" की भावना अपनी छाया पूर्णत्व की अनुभूति पर डालती है तो साधक के शान्ति प्राप्ति के सभी प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं।

मनुष्य का व्यक्तित्व उसके वचनों की अपेक्षा उसके कार्यों में प्रतिबिम्बित होता है। योगी ने परमात्मा को सारे कर्मों को समर्पित करने की कला सीखी है और इस कारण वे कर्म उसके अन्दर दिव्यता प्रतिबिम्बित (प्रकट) करते हैं।

आसन

योग का तीसरा अंग "आसन" या "शारीरिक स्थिति" है। आसन से स्थिरता, स्वास्थ्य तथा अंग में हलकापन आता है। स्थिर और सुखकर शारीरिक स्थिति मानसिक संतुलन लाती है और मन की चंचलता को रोकती है। आसन शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं हैं; वे शारीरिक स्थितियाँ हैं। उन्हें करने के लिए स्वच्छ हवादार जगह, एक कंबल और निश्चय (संकल्प) की आवश्यकता है जब कि शारीरिक शिक्षण की अन्य प्रणालियों के लिए विशाल मैदान और कीमती उपकरणों की आवश्यकता होती है। आसन अकेले में किये जा सकते हैं; चूंकि शरीर के अंग आवश्यक भार और प्रतिभार देते हैं, व्यक्ति आसनों के अभ्यास से चपलता, संतुलन, धैर्य और महान् चेतनत्व की वृद्धि करता है। शताब्दियों पूर्व शरीर की प्रत्येक मांसपेशी, नाड़ी और ग्रन्थि को प्रयोग में लाने के लिए आसनों क. विकास हुआ है। वे सुन्दर शरीर की बनावट को सुरक्षित रखते हैं जो पुष्ट और मांसपेशियों के गठित हुए बिना भी लचीला होता है। वे शरीर को सभी प्रकार की बीमारियों से मुक्त रखते हैं। वे थकान मिटाते हैं और नाड़ियों की पीड़ा कम करते हैं। परन्तु उनका वास्तविक महत्त्व इसमें है कि वे मन को साधते हैं और अधीन करते हैं।

अनेक अभिनेता, नट, पहलवान, नर्तक, संगीतकार और खिलाड़ी भी शरीर की बनावट (डील डौल) उत्तम रखते हैं और शरीर पर उनका काफी नियंत्रण रहता है, फिर भी वे मन, बुद्धि और स्वयंपर नियंत्रण रखने में असमर्थ होते हैं। इस-लिए वे स्वयं में बेसुरापन (अव्यवस्थितता) लिये होते हैं और उनमें से बिरला ही कोई संतुलित व्यक्तित्व रखता है। अन्य सभी बातों से वे शरीर को अधिक महत्त्व देते हैं। यद्यपि योगी शरीर को कम नहीं मानता, पर केवल उसके कार्य व्यापार का ही विचार नहीं करता अपितु वह अपनी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा के बारे में भी विचार करता है। योगी आसनों के अभ्यास से शरीर पर विजय प्राप्त करता है और उसे आत्मा के योग्य साधन बनाता है। वह जानता है कि आत्मा के लिए

यह आवश्यक साधन है। आत्मा शरीर के बिना उस पक्षी के समान है जो उड़ने की शक्ति से वंचित (किया गया) है।

योगी मृत्यु से भयभीत नहीं होता। कारण, काल तो सारे मांस में से अपना कर अवश्य लेगा। वह जानता है कि शरीर निरंतर परिवर्तन को प्राप्त होता है और बचपन, जवानी और बुढ़ापे से प्रभावित होता है। जन्म और मृत्यु स्वाभाविक घटना है, परन्तु आत्मा जन्म और मृत्यु का विषय नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार शरीर का निवासी (आत्मा) पुराने शरीरों को छोडकर दूसरे नये शरीरों में प्रवेश करता है।

योगी का विश्वास है कि उसका अपना शरीर परमात्मा द्वारा उसे केवल सुख-भोग के लिए ही नहीं दिया गया है, अपितु जीवन के प्रत्येक जागृत क्षणों में अपने साथियों की सेवा के लिए भी प्रदत्त है। वह उसे अपनी सम्पत्ति नहीं मानता। वह जानता है कि परमात्मा, जिसने उसे शरीर दिया है, एक दिन उसे वापस ले लेगा।

आसनों के करने से योगी सर्वप्रथम स्वास्थ्य लाभ करता है। स्वास्थ्य कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे पैसे से खरीदा जा सके। यह एक पूंजी है जो कठिन श्रम से ही प्राप्त की जाती है। यह शरीर, मन और आत्मा के पूर्ण संतुलन की अवस्था है। शारीरिक विस्मृति और मानसिक चेतना ही स्वास्थ्य है। योगी आसनों के अभ्यास से शारीरिक असमर्थता और मानसिक बाधाओं से स्वयं को मुक्त कर लेता है। वह संसार की सेवा में परमात्मा को अपने कर्म और फलों को समर्पित करता है।

योगी अनुभव करता है कि उसका जीवन और उसके सारे कार्य-कलाप मनुष्य के रूप में क्रियान्वित करना और प्रकट करना स्वभावत: दिव्य कर्म का एक अंश है। अपनी नाड़ी की धड़कन में और श्वासोच्छ्वास की लय में वह कालगति (ऋतु) की धारा और विश्वजीवन के स्पन्दन का अनुभव करता है। उसका शरीर दिव्य ज्योति (स्फुल्लिग) का मंदिर है। वह समझता है कि शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा करना या उन्हें अस्वीकार करना और शरीर को कुछ ऐसा समझना कि वह दिव्य नहीं है, विश्वजीवन की उपेक्षा कर के उसे अस्वीकार करना है जिसका कि शरीर एक अंग है। शरीर की आवश्यकताएँ दिव्यात्मा की आवश्यकताएँ हैं, जिसका शरीर में निवास है। योगी परमात्मा की प्राप्ति (खोज) के लिए आकाश की ओर नहीं ताकता; कारण अन्तरात्मा के रूप में जाना गया वह उसके अन्दर है। वह परमात्मा का साम्राज्य अपने अन्दर और बाहर अनुभव करता है और उस आकाश को वह अपने अन्दर ही पाता है। शरीर कहाँ समाप्त होता है और मन कहाँ प्रारंभ होता है ? मन की समाप्ति कहाँ है और आत्मा का प्रारंभ कहाँ है ?

इस प्रकार इनका विभाजन नहीं किया जा सकता, कारण ये एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और फिर भी ये उसी विभु दिव्य चैतन्य के ही विभिन्न पहलू हैं।

योगी शरीर या मन की उपेक्षा कभी नहीं करता और न कभी उनका दमन ही करता है बल्कि वह उन दोनों को प्रोत्साहित करता है। शरीर उसके लिए न तो उसकी आत्ममुक्ति में बंधन है और न उसके पतन का कारण; बल्कि वह ज्ञानप्राप्ति का उपकरण है। वह ऐसा शरीर चाहता है जो वज्र की तरह कठिन हो, स्वस्थ हो, दुःख-रहित हो, जिससे परमात्मा की सेवा के लिए प्राप्त उस शरीर को वह उसे समर्पित कर सके। जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में बतलाया गया है, व्यक्ति बिना शक्ति और बिना उद्देश्य के अनायास पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हो सकता है। जिस प्रकार मिट्टी का कच्चा घड़ा पानी में गल जाता है, उसी प्रकार शरीर शीघ्र ही क्षीण हो जाता है। इसलिए शरीर को शक्तिसंपन्न बनाने और उसे पवित्र करने के लिए योगानुशासन की अग्नि में तपायें। आसनों के नाम अर्थपूर्ण हैं और विकास के तत्त्व को स्पष्ट करते हैं। कुछ आसनों के नाम वृक्ष (पेड) और पद्म (कमल) जैसे वनस्पति संबंधी हैं; कुछ के नाम शलभ (टिड्डी) और वृश्चिक (बिच्छू) जैसे कीडों पर हैं; कुछ के नाम मत्स्य (मछली), कूर्म (कछुआ), भेंक (मेढ़क) अथवा नक्र (मगर) जैसे जलचर और उभयचर (स्थल एवं जल दोनों में रहनेवाले) प्राणियों के नाम पर हैं। कुछ आसनों के नाम कुक्कुट (मुर्गा), बक (बगुला), मयूर (मोर) और हंस जैसे पक्षियों के नाम पर आधारित हैं। कुछ के नाम श्वान (कुत्ता), वातायन (घोड़ा), उष्ट्र (ऊंट) और सिंह जैसे चौपायों पर भी हैं। न तो भुजंग (सर्प) जैसे रेंगनेवाले प्राणी भुलाये गये हैं और न मानव के गर्भपिंड जैसी स्थिति छूटी (विस्मृत) है। वीरभद्र और पवनसुत हनुमान जैसे पौराणिक महापुरुषों के नाम पर आसन संबोधित हैं। भारद्वाज, कपिल, वसिष्ठ और विश्वामित्र के नाम पर आधारित होने के कारण आसनों के नाम से इनका स्मरण कर लिया जाता है। कुछ आसनों के नाम हिन्दू मन्दिरों के देवताओं के नाम पर हैं और कुछ अवतार या दिव्य शक्ति के शरीर धारण के नाम पर आधारित हैं। आसन करते समय योगी का शरीर भिन्न-भिन्न प्राणियों के समान अनेक आकृति ग्रहण करता है। उसका मन किसी प्राणी से घृणा न करने में प्रशिक्षित है; कारण, वह जानता है कि सृष्टि के सम्पूर्ण विस्तार में, छोटे से छोटे कृमि से लेकर बड़े से बड़े अत्यन्त पूर्ण साधु (महर्षि) तक, वही विश्वात्मा, जो असंख्य रूपों को ग्रहण करता है, श्वास लेता है। वह जानता है कि निराकार रूप ही उसका सबसे महान् रूप है। वह विश्वव्यापकता में एकता पाता है। सच्चा आसन वह है जिसमें साधक के मन में ब्रह्म का विचार सहज एवं निरन्तर प्रवाहित होता रहता है।

आसनों पर अधिकार प्राप्त करने पर लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश,

शरीर-मन, मन-आत्मा इस प्रकार की द्वैध अवस्था नष्ट हो जाती है और तब साधक योगमार्ग की चौथी स्थिति प्राणायाम को पहुँचता है। प्राणायाम के अभ्यास में नासिकाएँ, नासिका के मार्ग, झिल्लियाँ, वायुप्रणाली, फुप्फुस और उर:प्राचीर ये शरीर के अवयव ही सक्रियता से समाविष्ट किये जाते हैं। ये अकेले में जीवनश्वास प्राण के प्रभाव के पूर्ण समघात (टक्कर) का अनुभव करते हैं। इसलिए जल्दबाजी में प्राणायाम का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना (अधिकार प्राप्त करना) न सोचें। कारण, आप इस प्रकार जीवन से ही खेल रहे हैं। इसके अनुचित अभ्यास से श्वास संबंधी रोग होंगे और नाडीमंडल अव्यवस्थित हो जाएगा। इसके समुचित अभ्यास से व्यक्ति अनेक रोगों से मुक्त किया जा सकता है। आप अकेले में स्वयं प्राणायाम का अभ्यास करने का प्रयास कदापि न करें। कारण, गुरु का व्यक्तिगत निरीक्षण अत्यन्त आवश्यक है, जो अपने शिष्य की शारीरिक शक्ति को जानता है।

प्राणायाम

जिस प्रकार 'योग' शब्द का व्यापक अर्थ है उसी प्रकार 'प्राण' का भी। 'प्राण' का अर्थ श्वास, श्वासोच्छ्वास, जीवन, चैतन्य, वायु, ऊर्जा या शक्ति है। 'शरीर' के विपरीत 'आत्मा' अर्थ भी यह सूचित करता है। साधारणत: जीव सम्बन्धी अति आवश्यक प्राणवायु के लिए इस शब्द का बहुवचनात्मक प्रयोग होता है। 'आयाम' का अर्थ लम्बाई, विस्तार, कसाव या प्रतिरोध है। इस प्रकार प्राणायाम शब्द का अर्थ श्वासों की व्याप्ति-विस्तार एवं नियंत्रण है। श्वासों के सभी प्रकार के कार्य-सम्पादन पर यह नियंत्रण होता है; जैसे (१) श्वसन, जिसे 'पूरक' (वायु से भरना) कहते हैं, (२) उच्छ्वसन, जिसे 'रेचक' (फुप्फुस को वायु से रिक्त करना) कहते हैं, और (३) श्सासों की रोक-थाम का कारण, जिसे 'कुम्भक' कहते हैं। यह वह स्थिति है जिसमें श्वास लेने और श्वास निकालने की दोनों ही स्थितियाँ नहीं होतीं। हठयोग सिद्धान्त में 'कुम्भक' एक स्वतंत्र व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमें श्वास संबंधी तीनों विधियों (प्रक्रियाओं) – श्वसन, उच्छ्वसन एवं धारण (पूरक, रेचक तथा कुंभक) का समावेश है।

कुंभ का अर्थ है घड़ा, गागर, सुराही। घड़ा पूर्णतया वायु से रिक्त किया जा सकता है और पूरी तौर से पानी से भरा जा सकता है अथवा सारा पानी निकाला जा सकता है और पूर्णतया वायु से भरा जा सकता है। उसी प्रकार कुंभक की दो स्थितियाँ हैं। वे हैं – (१) पूर्ण श्वास लेने के बाद जब श्वसन क्रिया कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है (प्राणवायु से फुफ्फुस पूर्णत: भर दिए जाते हैं), और (२) पूर्ण उच्छ्वसन के उपरान्त जब श्वसन क्रिया कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है (अपायकारक वायु से फुप्फुस पूर्णत: रिक्त कर दिया जाता है)। इन अवस्थाओं में से प्रथम

अवस्था, जब कि पूर्ण श्वास लेने के बाद श्वसन क्रिया कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है परंतु उच्छ्वसन क्रिया प्रारंभ नहीं होती है उसे अंतर कुंभक कहते हैं। दूसरी अवस्था है–पूर्ण रूप से श्वास निकालने के बाद जब उच्छ्वसन क्रिया कुछ क्षणों के लिए रुक जाती है परंतु श्वसन क्रिया प्रारंभ नहीं होती है, उसे बाह्य कुंभक कहते हैं। अन्तर का अर्थ है अन्दर और बाह्य का अर्थ है बाहर। इस प्रकार कुंभक पूर्ण श्वसन और उच्छ्वसन के मध्य की कालावधि (अंतर – कुंभक) अथवा पूर्ण उच्छ्वसन और श्वसन के मध्य की कालावधि (बाह्य – कुंभक) है। इन दोनों ही प्रकारों में श्वास कुछ क्षणों के लिए रोका जाता है और नियंत्रित किया जाता है।

इस प्रकार प्राणायाम श्वासविज्ञान है। यह धुरी है जिसके चारों ओर जीवन-चक्र घूमता है। हठयोग प्रदीपिका (अध्याय २ श्लोक १६) सचेत करती है कि "जिस प्रकार सिंह, हाथी और बाघ को धीरे-धीरे और सतर्कता से साधा जाता है उसी प्रकार प्राण को भी किसी की शारीरिक शक्ति और क्षमता के अनुसार श्रेणियों में मापन कर शनैः शनैः नियंत्रण में लाना चाहिए। अन्यथा यह साधक का प्राण ले लेता है।

योगी का आयुमान दिनों की गणना से नहीं परंतु उसके श्वासों की गणना से होता है। इसलिए वह धीमे, गहरे श्वास लेने का उचित सुरबद्ध, लयबद्ध ढंग अपनाता है। ये सुरबद्ध ढंग ही श्वास प्रणाली को सशक्त करते हैं, नाडीमंडल को शांत करते हैं और लालसा को कम करते हैं। ज्यों ज्यों इच्छाएँ और लालसाएँ मिटती जाती हैं, मन मुक्त होने लगता है और एकाग्रता के लिए उपयुक्त साधन बन जाता है। प्राणायाम के गलत अभ्यास से, साधक अपने अंदर अनेक रोगों–जैसे हिचकी, वातरोग, दमा, खाँसी, जुकाम; सर, आँखों और कानों में दर्द तथा नाडीमंडल का चिड़चिड़ापन – को पैदा कर लेता है। धीरे, गहरे, स्थिर और उचित श्वास लेने और श्वास निकालने की क्रिया सीखने के लिए अधिक समय लगता है। कुंभक करने के पूर्व इसपर पूर्ण अधिकार प्राप्त करें। जिस प्रकार वायुद्वारा राख के आवरण हटाए जाने पर अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से वासनाओं के मिट जाने पर शरीर के अन्दर की दिव्य ज्योति अपनी पूर्ण महिमा के साथ प्रकाशमान हो उठती है। "मन को उसके समस्त भ्रम से रिक्त करना ही वास्तव में शुद्ध 'रेचक' है। "मैं आत्मा हूँ" की अनुभूति ही सही 'पूरक' है और इस दृढ़ विश्वास पर मन का स्थिरीकरण सही अर्थों में 'कुंभक' है। यही शुद्ध प्राणायाम है" – ऐसा शंकराचार्य ने कहा है।

प्रत्येक जीवंत प्राणी प्रत्येक श्वास के साथ अनजाने ही 'सोहम्' (सः = वह; अहम् = मैं – वह अविनाशी पुरुष मैं हूँ) जप का श्वास लेता है। उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी प्रत्येक उच्छ्वास से 'हं सः' (मैं वह हूँ) का जप करता है। यह अजप-

मंत्र प्रत्येक जीवंत प्राणी के जीवनकाल में सतत चलता रहता है । योगी इस अजप-मंत्र की महत्ता का भलीभाँति अनुभव करता है और इसलिए आत्मा को बाँध देनेवाले सारे बन्धनों से वह मुक्त हो जाता है । वह अपने उसी श्वास को त्याग के रूप में परमात्मा को समर्पित कर देता है और परमात्मा से आशीर्वाद रूप में जीवन का श्वास ग्रहण करता है ।

जीवात्मा के शरीर में प्राण परमात्मा के जागतिक श्वास का अंश है । प्राणायाम के अभ्यास द्वारा व्यक्ति के श्वास (पिण्ड प्राण) को जागतिक श्वास (ब्रह्मांड प्राण) से समस्वरता में लाने का प्रयास किया जाता है ।

सत्रहवीं शताब्दी के रहस्यवादी करीब एक्केन ने कहा है– "यदि तुम अपनी शांत प्रकृति (आत्मा) को प्रबुद्ध या प्रोत्साहित करना चाहते हो तो पहले अपनी श्वासक्रिया को व्यवस्थित करो । कारण, जब वह नियंत्रण (वश) में होगी तभी हृदय को शांति प्राप्त होगी । परंतु जब श्वास क्रिया अव्यवस्थित है तो उससे हानि पहुँचेगी । इसलिए किसी प्रकार का कार्य करने के पूर्व पहले श्वास को नियंत्रित करो, जिससे तुम्हारे स्वभाव में कोमलता आयेगी और प्रकृति शांत होगी ।"

चित्त (मन, बुद्धि एवं अहंकार) शक्तिशाली अश्वों द्वारा खींचे जानेवाले रथ के समान है । इन अश्वों में एक है प्राण (श्वास) और दूसरी वासना है । इन दोनों में जो अधिक शक्तिशाली है, उस दिशा में ही रथ (मनोरथ) चलता है । यदि श्वास प्रबल रहा तो इच्छाएँ वशीभूत होती हैं, इन्द्रियों पर नियंत्रण रहता है और चित्त स्थिर रहता है । यदि वासना अधिक प्रबल होती है तो श्वास अव्यवस्थित होता है, चित्त (मन) अस्थिर एवं दुखी हो जाता है । इसलिए योगी श्वास विज्ञान (प्राणायाम) पर अधिकार प्राप्त करते हैं और श्वासों के नियंत्रण तथा व्यवस्था से वे चित्त को वश में करते हैं और उसकी निरंतर हलचल को स्थिर कर देते हैं । प्राणायाम करते समय मन को इधर–उधर भटकने से रोकने के लिए आँखें बन्द की जाती हैं । जब प्राण और मन का संयोग हो जाता है तब अनिर्वचनीय आनंद की प्राप्ति होती है (हठयोग प्रदीपिका, अध्याय ४, श्लोक ३०) ।

भावनामय उत्तेजन श्वास की गति को प्रभावित करता है; उसी प्रकार संयमित श्वास प्रणाली भावनापूर्ण उत्तेजन को नियंत्रित करती है । चूँकि योग का एकमात्र उद्देश्य चित्त (मन) को वशीभूत एवं स्थिर करना है, योगी श्वास पर अधिकार प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम प्राणायाम सीखता है । यह उसे इन्द्रियों को वश में करने के योग्य बनाता है, जिससे वह प्रत्याहार की अवस्था में पहुँचे । तभी मन ध्यान के लिए तैयार होगा ।

मन की दो अवस्थाएँ बतलायी गयी हैं– शुद्ध तथा अशुद्ध । जब मन वासनाओं से पूर्णतः मुक्त होता है तब शुद्ध और जब वासनायुक्त होता है तब अशुद्ध होता है । मन को निश्चल (स्थिर) करने तथा आलस्य और विघ्नों (व्याकुलताओं)

से मुक्त करने से व्यक्ति अमनस्क की अवस्था को प्राप्त होता है, जो समाधि की सर्वोत्तम अवस्था है । अमनस्क की अवस्था उन्माद या अज्ञान नहीं है अपितु मन की चेतनावस्था है जब कि वह सभी प्रकार के विचारों और वासनाओं से मुक्त रहता है । एक ओर निर्बुद्ध या उन्मत्त व्यक्ति और दूसरी ओर अमनस्क की अवस्था की प्राप्ति करनेवाले योगी, इन दोनों में बहुत बड़ा अंतर है। पहला असावधान है, दूसरा चिंतामुक्त होने के लिए प्रयत्न करता है । यह श्वास और चित्त (मन) की एकता है और इसी प्रकार इंद्रियों के अस्तित्व एवं विचार की सभी अवस्थाओं का आत्मसमर्पण है जिसे योग की संज्ञा दी गयी है ।

प्राणवायु – शक्ति के अत्यन्त सूक्ष्म रूपों में से वायु एक है । यह व्यापक शक्ति जो मानव शरीर में भी व्याप्त है, शक्ति द्वारा सम्पादित किये जाने वाले विविध कार्यों के अनुसार हठयोग सिद्धान्त में पाँच मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत है । इन्हें 'वायु' कहते हैं और उनके **पाँच** मुख्य भेद हैं–**प्राण** (लाक्षणिक नाम का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया गया है) जो हृदय-प्रदेश में चलता है और श्वासोच्छ्वास को नियंत्रित करता है; **अपान** जो जठर के निचले अंतराल में चलता है और मूत्र निकालने की क्रिया को नियंत्रित करता है । **समान** जो पचनक्रिया की सहायता के लिए पाचक-अग्नि को ईंधन देता है । **उदान** जो वक्षःस्थल के छिद्रों में संचरित होता है और वायु और अन्न की नलिका के प्रवेश-मार्ग को नियंत्रित करता है, और **व्यान** जो सारे शरीर को व्याप्त करता है और अन्न और श्वास से उद्‌भूत शक्ति का विभाजन करता है । इसके अतिरिक्त और भी पांच सहायक वायु हैं। ये हैं–नाग जो जठर के दवाव को डकार द्वारा दूर करता है; कूर्म जो बाहरी वस्तुओं तथा तेज प्रकाश के आँखों में प्रवेश को रोकने के हेतु पलकों की हलचल नियंत्रित करता है । कृकर जो छींक या खाँसी के होने से किसी वस्तु को नासिका से ऊपर या गले से नीचे जाने से रोकता है; देवदत्त जो थके शरीर में जँभाई के होने से अतिरिक्त प्राणवायु की पूर्ति करता है, और धनंजय जो मृत्यु के अनंतर भी शरीर में रहता है और कभी-कभी मृतक शरीर (शव) को फुला देता है ।

प्रत्याहार – यदि मनुष्य की बुद्धि इन्द्रियों के वश में होती है तो वह अपना आपा खो बैठता है । इसके विपरीत यदि श्वास का सुसंगत नियंत्रण हो, तो इन्द्रियाँ वासना के बाह्य विषयों के पीछे भागने के वजाय अन्तर्मुखी हो जाती हैं और मनुष्य उनके क्रूर शासन से मुक्त हो जाता है। प्रत्याहार नाम की यह पाँचवीं योगावस्था है जहाँ इन्द्रियाँ वश में की जाती हैं ।

जब यह अवस्था प्राप्त होती है तब साधक आत्मपरीक्षण की खोज के मार्ग से जाता है । इन्द्रिय-विषयों के तीव्र परन्तु आकर्षक इन्द्रजाल पर विजय प्राप्त करने के लिए उसे अपनी इच्छा के विषयों के स्रष्टा का अपने मन में स्मरण करते हुए भक्ति के पृथक्करण की आवश्यकता होती है । उसे अपने पवित्र (दिव्य) पैतृक ज्ञानदीप की

आवश्यकता होती है । वास्तव में मनुष्य जाति (मनुष्यमात्र) के लिए दासता एवं मुक्ति का कारण मन है । जब यह वासना के विषयों के बन्धन में होता है तब दासता और जब यह विषयों से निर्लिप्त होता है तब मुक्ति का कारण बनता है । जब मन किसी वस्तु की कामना करता है, उसके लिए शोक करता है या दुःखी होता है तो दासता होती है । जब सभी इच्छाएँ और भय निर्मूल हो जाते हैं तब मन पवित्र हो जाता है । अच्छा (उचित एवं आवश्यक) तथा प्रीतिकर दोनों मनुष्य के सामने स्वयं उपस्थित होते हैं और उसे कर्म के लिए प्रोत्साहित करते हैं । योगी मौज की अपेक्षा अच्छे को चाहता है । अपनी इच्छाओं के वशीभूत अन्य लोग अच्छे की अपेक्षा मौज को चाहते हैं और जीवन के सही उद्देश्य (लक्ष्य) को भूल जाते हैं । योगी जैसा (जिस स्थिति में) है उसी में आनन्द का अनुभव करता है । किस प्रकार (कैसे) रहना यह उसे मालूम है इसलिए वह शान्तिपूर्वक रहता है । अच्छी तरह जानते हुए कि जो विष के समान कटु है, परन्तु जिसका परिणाम अमृत के समान मधुर होगा, सर्वप्रथम वह उसे पसन्द करता है और उसके लिए अपने अभ्यास में निरन्तर प्रयास करता है । दूसरे अपनी वासनाओं के विषयों से अपने इन्द्रियों के मिलन (तृप्ति) के लिए उत्कंठित होकर उसे पसन्द करते हैं जो पहले तो अमृत के समान मधुर लगता है परन्तु वह नहीं जानता कि अन्त में वह इतना कटु होगा जितना कि विष !

योगी जानता है कि विषय–वासनाओं द्वारा इन्द्रिय की संतुष्टि का मार्ग विस्तृत है, परन्तु वह नाश की ओर ले जाता है और अनेकों उस पथ का अनुसरण करते ह । योग का पथ छुरे की तेज धार की तरह संकीर्ण और चलने में कठिन है और कुछ ही उसे अपनाते हैं । योगी जानता है कि विनाश और मुक्ति (कैवल्य) का मार्ग उसके अन्दर ही है ।

हिन्दु दर्शन के अनुसार चैतन्य तीन भिन्न गुणों में प्रगट होता है । मनुष्य के लिए सम्पूर्ण जगत् के साथ उसका जीवन और उसकी चेतना एक की उत्पत्ति है और वही प्रकृति (जागतिक वस्तु या पदार्थ)-उत्पत्ति गुणों में से किसी एक गुण की विशेषता से पृथक् रूप से अभिहित है । गुण ये हैं–

१. सत्त्व (प्रकाशमान, पवित्र अथवा अच्छा गुण) जो शुद्धता और मानसिक शान्ति की ओर ले जाता है ।

२. रज (अस्थिरता या क्रियाशीलता का गुण) जो व्यक्ति को क्रियाशील तथा स्फूर्तियुक्त, दृढ़ तथा संकल्पवान् बनाता है, और

३. तम (अन्धकार तथा अवरोध का गुण) जो रज की प्रवृत्ति को कार्य करने और सत्त्व को प्रकट होनें में विघ्न डालता है और विरोध करता है ।

तम के गुण मोह, अंधकार, जडता और अज्ञान हैं । जिस व्यक्ति में तम की प्रबलता होती है वह व्यक्ति निश्चेष्ट और जड हो जाता है । सत्त्वगुण दैवी प्रवृत्ति को जगाता है, तथा तमोगुण आसुरी प्रवृत्ति को, और इन दोनों के मध्य रजोगुण स्थित है ।

अपनाया हुआ विश्वास, पचा हुआ अन्न, किये गये यज्ञ, की गयी तपस्याएँ और किया हुआ दान गुणों के प्राबल्य के अनुसार बदलता है।

जिसकी प्रवृत्ति जन्मत: दिव्य की ओर है वह निर्भय और पवित्र है। वह उदार एवं आत्मसंयमी है। वह आत्मचिंतन का अनुसरण करता है। वह अहिंसक, सच्चा तथा क्रोधरहित होता है। केवल कार्य के लिए कार्य करता हुआ वह अपने श्रम के फल का त्याग करता है। वह स्थिरचित्त (संतुलित मन) का होता है और उसमें किसी के प्रति द्वेष नहीं अपितु सभी के प्रति उदारता होती है, कारण वह लालसाहीन होता है। वह नम्र, सौम्य और स्थिर होता है। कपट और गर्व से परे होने के कारण वह प्रकाशमान, नम्र तथा दृढ़ होता है।

जिस मनुष्य में रजोगुण प्रबल होता है उसमें आंतरिक पिपासा होती है और वह प्रेमी होता है। वह कामी और लोभी होता है, इस कारण दूसरों को हानि पहुँचाता है। काम तथा द्वेष, ईर्ष्या एवं कपट पूर्ण होने से उसकी वासनाएँ अतिलोलुप होती हैं। वह अस्थिर, चंचल और सहज विचलित होता है, साथ ही साथ महत्त्वाकांक्षी तथा अति उत्कंठावाला होता है। वह मित्रों की सहायता की खोज करता है और उसे अपने कुल का गर्व होता है। वह दु:खदायक वस्तुओं से दूर रहता है और सुखदायक वस्तुओं से चिपक जाता है। उसकी वाणी कर्कश और उसका उदर लोभी होता है।

जिसने राक्षसी प्रवृत्ति के साथ जन्म लिया है वह कपटी, हठी और घमंडी होता है। वह क्रोध, निर्भयता और अज्ञान से भरा होता है। ऐसे आदमी में न तो पवित्रता होती है, न अच्छा चरित्र और न सचाई ही होती है। ऐसे मनुष्य अपनी काम-वासना तृप्त करते हैं। अनेक वासनाओं से व्याकुल, मोहजाल में फँसे हुए उन्हें इन्द्रिय सुख के ये व्यसन नरक में ले जाते हैं।

विभिन्न गुणों की प्रधानतावाले व्यक्ति के मन की क्रिया का वर्णन "तुम लोभ न करो" जैसे जागतिक उपदेश के प्रति उनकी पहुँच के अलग-अलग ढंग से किया जा सकता है। जिस व्यक्ति में तमोगुण की प्रधानता होती है वह इसका अर्थ इस प्रकार लगा सकता है: "दूसरे इस बात का लोभ न करें कि मेरा क्या है और मैंने उसे किस प्रकार प्राप्त किया है। यदि वे ऐसा करेंगे तो मैं उन्हें मिटा दूंगा।" (दूसरे मेरी वस्तु के प्रति आकर्षित होकर ईर्ष्या न करें तथा उसकी प्राप्ति की विधि के बारे में विचार न करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो मैं उनका नाश कर दूंगा।) निजी स्वार्थ का विचार करनेवाला व्यक्ति रजोगुण का नमूना है जो इस सीख का इस प्रकार अर्थ करेगा– "मैं दूसरे की वस्तु का लोभ नहीं करूँगा, ऐसा न हो कि वे मेरी वस्तु का लोभ करें"। वह नीति के रूप में नियम के अक्षर का अनुसरण करेगा, परंतु सिद्धान्त के रूप में नियम के सच्चे भाव का अनुसरण नहीं करेगा। सात्त्विक प्रकृति का व्यक्ति नीति के रूप में नहीं वरन् सिद्धान्त के रूप में शाश्वत मूल्यांकन

करते हुए शिक्षा के अक्षर तथा सच्चे अर्थ का अनुसरण करेगा । वह एकमात्र सचाई (न्यायपरायणता) के लिए सच्चा (न्यायपरायण) होगा, और इसलिए नहीं कि मानवीय नियम उसे सच्चे बने रहने के लिए दण्ड का विधान करते हैं ।

योगी जो मनुष्य ही है इन तीनों गुणों से प्रभावित है । वह स्वयं के तथा उसके इन्द्रियों कों अनुसरण करने के लिए प्रवृत्त करने वाले विषयों के निरन्तर एवं नियमित अभ्यास से सीखता है कि कौनसे विचार, वचन तथा कर्म तमोगुण से उत्तेजित किये जाते हैं और कौनसे रजोगुण से । वह अप्रतिहत प्रयास से तमोगुण से उत्तेजित किये गये विचारों के कूड़ा-करकट को निकाल बाहर करता है और उन्हें निर्मूल कर देता है; तथा मन के सात्त्विक चौखटे (फ्रेम) को प्राप्त करने की कोशिश करता है । जब एकमात्र सत्त्वगुण शेष रह जाता है तब मनुष्य की आत्मा अंतिम लक्ष्य की ओर बहुत दूर तक आगे बढ़ी होती है ।

गुणों का आकर्षण गुरुत्वाकर्षण के समान है । जिस प्रकार अन्तरिक्ष में भारहीनता (अवकाश) की विचित्रता के अनुभव की प्राप्ति के लिए गहन अनुसंधान और कठिन अनुशासन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार साधक द्वारा (जो गुणों के आकर्षण से मुक्त है) अंतरिक्ष के खष्टा के साथ मिलन की अनुभूति की प्राप्ति के लिए आत्म-परीक्षण की खोज तथा योग द्वारा बतलाये गये अनुशासन की आवश्यकता होती है ।

एक बार जब साधक को स्रष्टा की या सृष्टि की पूर्णता की अनुभूति होती है तब उसके इन्द्रिय–विषयों की तृष्णा मिट जाती है और वह उन्हें वैराग्य की दृष्टि से सदा देखता है । वह ऊष्मा या शीत में, दु:ख या सुख में, मान या अपमान में और पुण्य या पाप में अशान्ति (मानसिक अस्वस्थता) का अनुभव नहीं करता है । वह दो विरोधी भावनाओं (imposters) – विजय एवं पराजय के साथ स्थिर-चित्त से व्यवहार करता है । वह स्वयं इन (विरोधी) द्वंद्व भावनाओं (pair of opposites) से मुक्त है । वह गुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण) के आकर्षण के पर जा चुका है और गुणातीत (व्यक्ति, जो गुणों का अतिक्रमण कर चुका है) हो गया है । तब वह जन्म और मरण से, वेदना और दु:ख से मुक्त है और अमर हो जाता है । उसका अपना व्यक्तित्व नहीं होता है; कारण, वह विश्वात्मा की पूर्णता का अनुभव करता हुआ जीता है । ऐसा व्यक्ति, किसी का तिरस्कार न करते हुए, पूर्णत्व के पथ पर सभी चीजों को आगे ले जाता है ।

धारणा– जब शरीर आसनों द्वारा साधा गया है, जब मन प्राणायाम की अग्नि से सुसंस्कृत और पवित्र किया गया है और जब इन्द्रियाँ प्रत्याहार द्वारा वश में की गयी हैं, तब साधक धारणा नामक छठी अवस्था को प्राप्त करता है । यहाँ वह एक केन्द्र बिंदु या कार्य पर पूर्ण रूप से ध्यानस्थ होता है जिसमें वह पूर्णतया तल्लीन होता

है। चित्त (मन) की पूर्ण लवलीनता की इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए मन को स्थिर करना आवश्यक है।

मन एक ऐसा साधन है जो बाह्य जगत् से होनेवाले एवं स्वयं में (व्यक्ति के अन्दर) उठनेवाले प्रभावों का वर्गीकरण करता है, निर्णय करता है एवं समपदीकरण (भागों को उचित सम्बन्ध में लाने की प्रक्रिया) करता है।

मन विचारों की निर्मिति है जिसे अधीन करना (वश में लाना) कठिन है, कारण वह विलक्षण एवं चंचल होता है। वशीकृत मन द्वारा रक्षित सुन्दर विचार सुख प्रदान करता है। किसी साधन (उपकरण) से अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए व्यक्ति को साधन के उपयोग की पूरी जानकारी होनी चाहिए। मन विचार करने का साधन है और इसलिए यह जानना आवश्यक है कि वह किस प्रकार कार्य करता है। मन की अवस्थाओं का वर्गीकरण पाँच वर्गों में किया गया है। इनमें पहली क्षिप्त अवस्था है जहाँ मानसिक शक्तियाँ अव्यवस्थित एवं उपेक्षित अवस्था में होने के कारण बिखरी होती हैं। इस अवस्था में रजोगुण प्रवल होने के कारण तन विषयासक्त होता है। दूसरी विक्षिप्तावस्था है जहाँ मन उत्तेजित होता है एवं व्यग्र रहता है। यह वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति को अपने प्रयत्नों के फल के उपभोग करने की क्षमता है, परन्तु वासनाएँ व्यवस्थित (क्रम में) तथा नियंत्रित नहीं होती हैं। बाद की मूढ अवस्था में मन निर्बुद्ध, मन्द तथा मूर्ख होता है। इस अवस्था में तमोगुण प्रवल होने के कारण मन व्याकुल होता है और वह क्या चाहता है, उसके लिए हानिकारक क्या है, यह जानने में वह व्यग्र हो जाता है। मन की चौथी अवस्था एकाग्रावस्था है जहाँ सत्त्वगुण प्रबल होने से मन गुप्त रूप से सचेत रहता है और जहाँ मानसिक शक्तियाँ एकमात्र एक विषय (वस्तु) पर अथवा एक केन्द्र बिन्दु पर केन्द्रित होती हैं। एकाग्र व्यक्ति की बौद्धिक शक्ति उत्तम होती है और वह अच्छी तरह जानता है कि उसे किस चीज की आवश्यकता है, इस कारण वह अपनी सारी शक्तियाँ उद्देश्य सफल करने के लिए और लक्ष्य प्राप्ति के लिए उपयोग में लाता है। कभी-कभी दूसरों के हितों की परवाह न कर इच्छित लक्ष्य–प्राप्ति का निर्दय प्रयत्न अत्यंत दु:ख का कारण हो सकता है और प्राय: यह होता है कि यदि अभिलषित वस्तु की प्राप्ति हो भी गयी तो वह अपने पीछे एक कटु अनुभव छोड जाती है।

महाभारत महाकाव्य के शक्तिशाली धनुर्धर अर्जुन एक उदाहरण द्वारा धारणा का तात्पर्य स्पष्ट करते हैं। एक समय राजकुमारों के गुरु द्रोण ने राजकुमारों की प्रवीणता की परीक्षा लेने के लिए धनुर्विद्या – प्रतियोगिता का आयोजन किया। वे लक्ष्य के वर्णन के लिए, जिसका उन्हें संकेत दिया गया था, एक के बाद एक बुलाये गये। यह घोसले का पक्षी था। कुछ राजकुमारों ने वृक्षों के कुंज का वर्णन किया, दूसरों ने उस विशेष वृक्ष या उसकी शाखा का, जिस पर घोसला था, वर्णन किया।

जब अर्जुन की बारी आयी तो उसने पहले पक्षी का वर्णन किया। बाद में उसने उसके एकमात्र सर को देखा और अन्त में वह उस पक्षी की चमकती आँख के सिवा और कुछ नहीं देख सका, जो द्रोण से बतलाया गया लक्ष्य का केन्द्र-बिन्दु था।

तथापि एकाग्र व्यक्ति का अत्यधिक अहंकारी होना धोखा है। जब इंद्रियाँ बिना रोक-टोक के इधर-उधर भटकना आरंभ कर देती हैं, मन भी उनका अनुकरण करता है। वे मनुष्य के निर्णय को ढँक देती हैं और तूफान में उत्ताल तरंगें लेते हुए समुद्र के शीर्ण जलयान की तरह उसे डाँवाडोल (अस्थिर चित्त) कर देती हैं। जहाज की नीचे की बड़ी शहतीर को समान बनाये रखने के लिए जहाज की पेंदी में भार की आवश्यकता होती है और उसे एक दिशा में चलाने के लिए कर्णधार को नक्षत्र की आवश्यकता होती है। अपना मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए एकाग्र व्यक्ति को भक्ति की तथा परमात्मा में ध्यान की आवश्यकता होती है। जिससे वह उचित दिशा में सर्वदा जाए। वह तब तक आनंद का अनुभव नहीं कर पायेगा जबतक अहम् और मम की भावना लुप्त नहीं हो जाती।

अंतिम मानसिक अवस्था निरुद्धावस्था है जहाँ मन, बुद्धि तथा अहंकार ये सभी अधीन (नियंत्रित) किये जाते हैं और ये सारी आन्तरिक शक्तियाँ परमात्मा को उसके उपयोग तथा उसकी सेवा में समर्पित की जाती हैं। यहाँ 'मैं तथा मेरा' का बोध नहीं रह जाता है। जिस प्रकार 'शीशे' पर प्रकाश डालने से वह अधिक प्रकाशमान हो जाता है और उससे सर्वत्र न बुझनेवाला प्रकाश दिखाई देता है; उसी प्रकार साधक जिसने अपने मन, बुद्धि एवं अहंकार को परमात्मा के लिए छोड़ दिया है, परमात्मा से एकरूप हो जाता है। कारण साधक एकमात्र उसके–जो विचारों का निर्माता (स्रष्टा) है, विषय में सोचता है और किसी अन्य के बारे में नहीं।

व्यक्ति एकाग्रता या ध्यान के बिना किसी वस्तु पर प्रभुत्व प्राप्त नहीं कर सकता है। विश्व को रूप देने वाले और उसे नियंत्रित करने वाले परमात्मा का ध्यान किये बिना व्यक्ति अपने अंतर के दिव्य (आत्मा) को प्रकाशित नहीं कर सकता है अथवा विश्वमानुष नहीं बन सकता है। इस ध्यान की प्राप्ति के लिए एकतत्त्वाभ्यास बताया गया है – वह एक तत्त्व जो सभी में व्याप्त है, प्राणिमात्र का अंतरतम आत्मा है, जो अपने एक रूप को अनेक रूपों में परिवर्तित करता है। इसलिए साधक एकाग्रता की प्राप्ति के लिए "ॐ(ओ३म्)" पर ध्यान केन्द्रित करता है जो परमात्मा का प्रतीक है।

ॐ (ओ३म्) – श्री विनोबा भावे के अनुसार लैटिन शब्द 'ऑम' (Omne) तथा संस्कृत शब्द ॐ('ओ३म्') दोनों 'सर्व' अर्थ वाले एक ही धातु से बने हैं और दोनों शब्द सर्वज्ञान (अनन्तज्ञान), सर्वव्यापकता (विश्वव्यापकता) एवं सर्वशक्ति

(अनन्तशक्ति) के विचार का प्रतिपादन करते हैं। ॐ(ओ३म्) के लिए दूसरा शब्द प्रणव है जो प्रार्थना (प्रशंसा-स्तुति) करना – इस अर्थ के 'णु' धातु से बना है, जिसे श्रेष्ठता का अर्थ प्रतिपादन करनेवाला 'प्र' उपसर्ग लगा है। इसलिए इस शब्द का अर्थ है उत्तम प्रशंसा (स्तुति) या प्रार्थना (उपासना)।

प्रतीकात्मक ॐ(ओ३म्) शब्द तीन अक्षरों, जिन्हें अ, उ, म् कहते हैं, से बना है और जब लिखा जाता है तब इसके ऊपर अर्धचंद्र और उसके ऊपर एक बिंदु (अनुस्वार) होता है। इसके भिन्न-भिन्न अर्थ को प्रतिपादित करने के लिए दिये हुए कुछ उदाहरण यहाँ बतलाना उचित होगा।

अ उ, म् ये अक्षर मन और आत्मा की क्रमशः जागृतावस्था (चेतन या उत्थित अवस्था,), स्वप्नावस्था (स्वप्न–मनतरंग की अवस्था) तथा सुषुप्तावस्था (स्वप्न-रहित निद्रा की अवस्था) का अर्थ संकेतित करते हैं। अर्धचंद्र तथा बिंदु (अनुस्वार) के साथ संपूर्ण प्रतीक (संकेत) चौथी अवस्था – तुरीयावस्था का द्योतक है, जो इन सभी अवस्थाओं को एकत्रित (संयुक्त) करता है और उनमें अवतरित होता है। यही समाधि की अवस्था है।

अ, उ तथा म् ये अक्षर क्रमशः वाणी, मन एवं प्राण (जीवन-श्वास) के प्रतीक हैं जब कि संपूर्ण प्रतीक जीवात्मा को अभिव्यक्त करता है जो एकमात्र दिव्यात्मा का अंश है।

ये तीन अक्षर लंबाई, चौडाई तथा गहराई के आयाम का प्रतिनिधित्व करते हैं जब कि संपूर्ण प्रतीक दिव्यता का प्रतिनिधित्व करता है जो आकार एवं रूप की सीमा के परे है।

अ, उ तथा म् ये तीन अक्षर क्रमशः वासना, भय एवं क्रोध के अभाव के प्रतीक हैं, जब कि संपूर्ण प्रतीक पूर्ण मानव (स्थितप्रज्ञ) का सूचक है, जिसका ज्ञान उस दिव्य से नितांत परिपूर्ण है।

ये अक्षर अलग-अलग पुँल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग – इन तीन लिंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब कि संपूर्ण प्रतीक स्रष्टा सहित संपूर्ण सृष्टि का सूचक है।

ये अक्षर तीन गुणों अर्थात् सत्त्व, रज तथा तम के प्रतिमान हैं जब कि संपूर्ण प्रतीक गुणातीत का प्रतिमान है जो सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त है और गुणों के आकर्षण से सर्वथा परे है।

ये अक्षर तीन कालों---भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् से संबद्ध होते हैं, जब कि संपूर्ण प्रतीक स्रष्टा---कालातीत की अभिव्यक्ति है जो काल की सीमा का अतिक्रमण करता है।

ये अक्षर क्रमशः माता, पिता तथा गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा की अभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण प्रतीक ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान है, वह शिक्षा जो अविनाशी–अनश्वर है।

अ, उ तथा म् ये अक्षर योग-नियम की आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार नामक

तीन अवस्थाओं को चित्रित करते हैं। संपूर्ण प्रतीक समाधि का सूचक है। समाधि वह लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के मार्ग में ये तीन अवस्थाएँ तीन चरण हैं।

ये तीन अक्षर विश्व के कर्ता, धर्ता एवं हर्ता क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, त्रिमूर्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहा जाता है कि संपूर्ण प्रतीक ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है, जिससे यह विश्व निर्मित है, जिससे इसका विकास होता है और अन्त में जिसमें यह विश्व लय को प्राप्त होता है। यह वृद्धि या परिवर्तन को प्राप्त नहीं होता। सब परिवर्तित होते और चले (नष्ट हो) जाते हैं, परंतु ब्रह्म ही एक ऐसा है जो सर्वदा अपरिवर्तित रहता है।

अ, उ तथा म् ये अक्षर 'तत् त्वम् असि' (मनुष्य के अन्दर उसकी अन्तरात्मा की अनुभूति) – मंत्र के प्रतीक हैं। सम्पूर्ण प्रतीक उस अनुभूति के लिए है जो मानव की आत्मा को उसके शरीर, मन, बुद्धि तथा अहंकार के बन्धन से मुक्त करती है।

ॐ (ओ३म्) के महत्त्व की अनुभूति के बाद, योगी परमात्मा के नाम के साथ ॐ (ओ३म्) को युक्त कर अपने प्रिय देवता पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। ॐ (ओ३म्) शब्द अत्यन्त व्यापक तथा अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण, योगी परमात्मा के नाम पर ध्यान केन्द्रित कर तथा एकाग्र भक्ति से ॐ (ओ३म्) शब्द को युक्त कर अपनी इन्द्रियाँ, इच्छाशक्ति, बुद्धि, मन एवं विवेक को एकरूप कर देता है और इस प्रकार वह मंत्र के अर्थ एवं भाव की अनुभूति प्राप्त करता है।

योगी मुण्डकोपनिषद् के वाक्यों का ध्यान करता है : हे प्रिय मित्र ! धनुष की तरह उपनिषद् रूपी महान् शस्त्र को लेकर ध्यान से तेज किये हुए बाण को उस पर रखे। वर्णित परमात्मभाव के विचार से उसे तान कर और लक्ष्य रूप उस अविनाशी में प्रवेश करे, मेरे सखा ! रहस्यपूर्ण अक्षर ॐ (ओ३म्) धनुष है। आत्मा बाण है। ब्रह्म लक्ष्य है। अविचलित (स्थितप्रज्ञ) मनुष्य से यह ब्रह्म भेदित है। ब्रह्म में स्थित होने के लिए लक्ष्य में व्यक्ति को प्रवेश करना चाहिए।

ध्यान – जिस प्रकार जल अपने पात्र (आधार) की आकृति को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मन, जब किसी विषय का चिन्तन करता है तब उस विषय के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मन जिसे सर्वव्यापक देवता मानता है, जिसे वह पूजता है, अन्त में दीर्घ निरंतर ध्यान से उस ब्रह्म के साथ सायुज्य प्राप्त करता है।

जब तेल एक पात्र से दूसरे पात्र में उँडेला जाता है तब उसकी अविचलित निरन्तर धार दिख पड़ती है। जब एकाग्रता की धारा निर्विघ्न होती है तब जो अवस्था प्राप्त होती है वह ध्यान है। जब सतत अप्रतिहत विद्युत् प्रवाह होता है तब जैसे विद्युद्दीप में तार प्रज्वलित होता है और प्रकाश देता है, उसी प्रकार योगी का मन ध्यान से प्रकाशमान होगा। उसके शरीर, श्वास, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा अहंकार ये सभी उसके ध्यान के विषय परमात्मा में पूरक बनते हैं। वह उस चेतनावस्था

में रहता है जो गुण वैशिष्टचरहित होता है। इसमें केवल परम आनन्द की अवस्था के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की अनुभूति नहीं होती है। योगी विद्युत् की रेखा के समान पृथ्वी और आकाश के पार चमकता हुआ प्रकाश देखता है। वह उस प्रकाश को देखता है जो उसके अन्तर में ही प्रकाशमान है। वह स्वयं एवं दूसरे के लिए प्रकाश बन जाता है।

योग-पथ पर प्रगति के चिन्ह हैं– स्वास्थ्य, शारीरिक हलकेपन का ज्ञान, स्थिरता, वदन की निर्मलता और सुन्दर स्वर, शरीर की गन्ध की मधुरता, और लालच से मुक्ति। योगी का मन संतुलित, स्थिर एवं शांत होता है। वह विनयशीलता का सत्य प्रतीक होता है। परमात्मा में शरण लेते हुए वह अपने सारे कर्म परमात्मा को अर्पित कर देता है। स्वयं को कर्म-बन्धन से मुक्त करता है और जीवन्मुक्त हो जाता है।

"जो व्यक्ति अत्यन्त प्रयत्न करता है परन्तु योग की सिद्धि प्राप्त करने में असफल होता है, जो श्रद्धावान् है परन्तु जिसका मन योग से विचलित है ऐसे व्यक्ति की गति कैसी होती है?" अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने यों दिया है –

"सदाचारी व्यक्ति अधोगति (दुर्गति) को प्राप्त नहीं होता। वह योगभ्रष्ट व्यक्ति पुण्यवानों को प्राप्त होनेवाले स्वर्ग में दीर्घ काल तक रहने के बाद सुशील वैभव-सम्पन्न कुल में जन्म लेता है। अथवा वह ज्ञानवान् योगियों के कुल में जन्म को प्राप्त होता है, परन्तु ऐसे कुल में जन्म की प्राप्ति इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। वहाँ वह अपने पूर्वजन्म में अर्जित ज्ञान की पुनःप्राप्ति करता है और पूर्णत्व (योग-सिद्धि) के लिए पुनः प्रयत्न करता है। अपने पूर्वजन्म के अध्ययन, अभ्यास एवं प्रयास के कारण, जो कि उसे योगाभ्यास की ओर उत्तरोत्तर आगे प्रवृत्त करते हैं, योगी निष्पाप अन्तःकरण के साथ सतत प्रयत्न करता है और अनेक जन्मों के बाद उसे पूर्णत्व की प्राप्ति होती है और वह परम गति मोक्ष को प्राप्त होता है। योगी उन सबसे श्रेष्ठ है, जो केवल तप, ज्ञान अथवा कर्म के पथ का अनुसरण करते हैं। इसलिए अर्जुन, तू योगी बन! योगी, जो श्रद्धापूर्वक मेरी भक्ति करता है और जिसके अंतःकरण में मैं ही एक हूँ अर्थात् जो मद्रूप है वह योगियों में सर्वश्रेष्ठ है" (भगवद्-गीता, अध्याय ६, श्लोक ३८ से ४७)।

समाधि – समाधि साधक की खोज का अन्त है। योगी अपने ध्यान के अत्युच्च शिखर पर पहुँचता है और समाधि की अवस्था में प्रवेश करता है, जहाँ उसका शरीर और इन्द्रियाँ स्थिर होती हैं, मानो वह सो रहा हो और उसके मन एवं विवेक बुद्धि की क्रियाएँ सचेत एवं जागृत होती हैं, मानो वह जाग रहा हो, फिर भी वह चेतना के परे होता है। समाधि की अवस्था में व्यक्ति पूर्णतया सचेत एवं सक्रिय होता है।

सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म-निर्मित है। साधक शान्त और स्थिर होकर उसकी पूजा करता है।

जिससे वह उत्पन्न या स्वयंप्राप्त हुआ है, (जैसे कि वह) उसमें साँस लेता है, (जैसा कि वह) और जिसमें वह विसर्जित होनेवाला है। हृदय के अन्दर आत्मा लघुतम बीज की अपेक्षा लघुतर है। फिर भी सभी कार्य-व्यापारों, सभी वासनाओं से पूर्ण होने पर आकाश से भी विशाल है। इसमें साधक प्रवेश करता है। तब "अहम् "और" मम" का अभाव होने के कारण शरीर, मन तथा बुद्धि की क्रिया निश्चेष्ट होती है, मानो कोई गहरी निद्रा में है। साधक सच्चे योग को पहुँचा होता है; इस स्थिति में चेतना, सत्य तथा अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति मात्र होती है। वहाँ शान्ति की अनुभूति होती है जो मेधा से परे होती है। मन उस अवस्था के वर्णन करने के लिए शब्दों को ढूंढ़ने में समर्थ नहीं होता है, और जिह्वा उन्हें उच्चारित करने में असमर्थ होती है। अन्य अनुभवों से समाधि के अनुभव की तुलना करते हुए सन्त कहते हैं– "नेति! नेति!" "यह नहीं है ! यह नहीं है!" यह अवस्था एकमात्र गहन शान्ति द्वारा प्रकट की जा सकती है।योगी पार्थिव जगत् से चला जाता है और नित्य में विलीन हो जाता है। तब ज्ञाता और ज्ञात में द्वैतभाव नहीं रहता है, कारण वे कर्पूर ज्योति के समान परस्पर में विलीन हो जाते हैं।

योगी के हृदय में से आत्मसंगीत प्रवाहित होता है जिसे शंकराचार्य ने 'आत्म-षट्कम्' में प्रकट किया है।

आत्मा का गीत

मनोबुद्धयहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥१॥

मैं न अहंकार हूँ, न बुद्धि हूँ, मैं न मन हूँ, न विचार हूँ, मुझे न श्रवण किया जा सकता है, न मैं वाणी द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता हूँ, मुझे न गन्ध और दृष्टि से ग्रहण किया जा सकता है : मुझे न प्रकाश में, न पवन में, न पृथ्वी और न आकाश में पाया जाता है। शुद्ध चैतन्य तथा आनन्द यही मेरा रूप है। मैं मंगलमय शिवस्वरूप हूँ, परिपूर्ण परब्रह्म हूँ।

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायुर्
न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोषः।
न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥२॥

मैं संज्ञाहीन एवं प्राणहीन हूँ । मैं पञ्चवायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान) नहीं हूँ । मैं सप्त धातुओं – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र जिन्हें शरीर धारण करता है – द्वारा निर्मित नहीं हूँ । और मैं पञ्चकोष – अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय, जो आत्मस्वरूप की प्रचीति होने नहीं देते हैं–नहीं हूँ, और न ही मुझे मुख, कर, चरण, गुदा तथा उपस्थ (पंचकर्मेन्द्रिय) हैं । मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ । शिवस्वरूप हूँ ।

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।३।।

मैं द्वेष तथा राग से परे हूँ । मैंने मोह एवं लोभ पर विजय प्राप्त की है । मुझे न कसी वस्तु का गर्व है, और न किसी का मत्सर है । मुझे अब न धर्म, न अर्थ, न काम और न मोक्ष की आकांक्षा है । मैं चिदानन्द रूप शिवस्वरूप हूँ । मैं शिव अर्थात् पर-ब्रह्मस्वरूप हूँ ।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदाः न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।४।।

मेरा न पुण्य है, न पाप है, न सुख है और न दुःख ही है। मुझे अब न मंत्र, न तीर्थ, न वेद और न यज्ञ की आवश्यकता है। मैं न भोजन हूँ, न भोज्य हूँ और न भोक्ता ही हूँ । मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ । मैं मंगलमय शिवस्वरूप हूँ ।

न मे मृत्युशङ्का न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य–
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।५।।

मुझे मृत्यु से भय नहीं है । मुझे में जातिभेद – ब्राह्मण, शूद्र, अथवा चाण्डाल इस प्रकार का जातिभेद –शेष नहीं है । मेरा कोई पिता नहीं है, और न कोई माता है । अतः मैं अजन्मा हूँ, मैं सर्वदा जन्म-बन्धन से मुक्त हूँ (तो मृत्यु का प्रश्न कैसा ?) ।

मैं न गुरु हूँ और न शिष्य हूँ । मेरा कोई न बन्धु है, न मित्र है । मैं चिदानन्दरूप सत् चित् आनन्दघन परिपूर्ण परब्रह्म हूँ । मैं शिवस्वरूप हूँ ।

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर्व्याप्ति-सर्वत्र-सर्वेन्द्रियाणि ।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।६।।

मैं न ज्ञेय हू, न ज्ञान हूँ और न ज्ञाता हूँ । मैं निराकार सर्व विश्व को व्याप्त कर रहनेवाला हूँ, मैं सर्वव्यापी हूँ, सर्वस्वरूप हूँ । सारी इन्द्रियों को भी व्याप्त किये हुए हूँ, परन्तु वे मेरा निवासस्थान नहीं हैं । मैं सर्वदा सर्वकाल समस्वरूप अर्थात् एकरूप हू । मुझे मुक्ति नहीं है और न मुझे संसार के आवागमन का बन्धन ही है । मैं चिदानन्द-रूप परब्रह्म हूँ । शिवस्वरूप हूँ ।

भाग २

योगासन, बन्ध तथा क्रिया

संकेत, सावधानी, विधि और परिणाम

(प्रत्येक आसन के नाम के बाद ताराचिह्न के साथ संख्या अक्षरों में दी गयी है। ताराचिह्न के पूर्व की संख्याएँ आसन की तीव्रता – अर्थात् छोटी संख्या आसन की सहजता तो बड़ी संख्या आसन की कठिनता – प्रकट करती है। सहजतम आसन पर संख्या "एक *" है तो कठिनतम आसन पर संख्या "साठ *" है।)

योगासन

आसन के अभ्यास के संबंध में सावधानी और संकेत

आवश्यकताएँ

१. सुदृढ नींव के बिना इमारत खड़ी नहीं रह सकती । यम और नियम के तत्त्वों, जो कि चरित्र निर्माण में मजबूत बुनियाद बतलायी गयी हैं, के अभ्यास के बिना पूर्ण व्यक्तित्व नहीं हो सकता । यम और नियमों के आधार के बिना आसनों का अभ्यास नटों का खेल मात्र है ।

२. साधक से अनुशासन, विश्वास, जीवट और निरंतर नियमित रूप से अभ्यास के लिए लगाव आदि गुण अपेक्षित हैं ।

स्वच्छता और भोजन

३. आसनों के अभ्यास प्रारंभ करने के पूर्व मूत्राशय रिक्त होना चाहिए और आँत खाली होनी चाहिए । शरीर को उलट-पुलट (Topsy-turvy) करनेवाले आसनों की स्थितियाँ आँत की हलचल में सहायक होती हैं । यदि साधक को कोष्ठ-बद्धता की शिकायत हो अथवा आसनों के अभ्यास के पहले पेट रिक्त करना संभव न हो, तो शीर्षासन एवं सर्वांगासन तथा उनके विविध प्रकारों के अभ्यास से प्रारंभ करे । रिक्त होने पर ही अन्य आसनों का अभ्यास करे ।

पहले आँत को रिक्त किये बिना कठिन आसनों का अभ्यास न करे ।

स्नान

४. स्नान के उपरांत आसन करना आसान होता है । आसन करने के बाद स्वेद के कारण शरीर चिपचिपा लगता है और पन्द्रह मिनटों के बाद स्नान करने की इच्छा होती है । आसन करने के पूर्व और बाद में स्नान शरीर तथा चित्त को प्रफुल्लित करता है ।

अन्न

५. खाली पेट से ही आसन किय जाने चाहिए । यदि इसम कठिनाई हो तो आसन करने के पूर्व एक प्याली चाय, कॉफी, कोको अथवा दूध लिया जा सकता है । अत्यन्त स्वल्प भोजन किया हो तो एक घंटे के बाद सुविधा से आसनों का अभ्यास किया जा सकता है । अभ्यास करने के पूर्व भरपेट (भारी) भोजन के बाद कम-से-कम चार घंटे बीत जाने दें । आसन करने के आधे घंटे बाद भोजन किया जा सकता है ।

समय

६. आसनों के अभ्यास के लिए प्रातः सूर्योदय के पूर्व अथवा सायं सूर्यास्त के बाद का समय उचित होता है । सबेरे शरीर जकड़ा हुआ होने से आसनों का अभ्यास आसानी से नहीं हो पाता है । यद्यपि सबेरे मन प्रफुल्लित रहता है पर ज्यों ज्यों समय गुजरता है उल्लास और निश्चय शिथिल होता जाता है । शरीर की ऐंठन आसनों के नियमित अभ्यास से शिथिल हो जाती है और व्यक्ति आसन करने में समर्थ होता है । प्रातः-काल की अपेक्षा सायंकाल में शरीर सरलता से गतिशील होता है और आसन बड़ी सरलता से और अच्छी तरह होते हैं । प्रातःकाल में अभ्यास व्यक्ति को अपने व्यवसाय के लिए अधिक तत्पर बनाता है । सायंकाल में अभ्यास शरीर की दिनभर की थकान दूर करता है और व्यक्ति को प्रफुल्लित एवं शांत बनाता है । इसलिए जब किसी व्यक्ति का पूर्ण निश्चय ही हो तो कठिन आसन प्रातःकाल में करने चाहिए और उत्तेजक आसनों (जैसे शीर्षासन, सर्वांगासन और उनके विविध प्रकार तथा पश्चिमोत्तानासन) का अभ्यास सायंकाल में करना चाहिए ।

धूप

७. कई घंटे बाहर धूप में रहने के बाद आसनों का अभ्यास न करें ।

स्नान

८. आसन स्वच्छ, हवादार जगह में, जहाँ कीड़े,मकोड़े और शोरगुल न हो, किये जाने चाहिए ।

९. नंगे फर्श या ऊबड़-खाबड़ जगह पर आसन न करें, परन्तु समतल जमीन पर तहियाये हुए कम्बल पर करें ।

सावधानी

१०. अभ्यास के समय श्वासोच्छ्वास में अथवा मुख की मांसपेशियों, कानों और आँखों में अनुचित श्रम का (ऐंठना, मरोड़ना, तानना, कसकर फैलाना, इ.) अनु-भव नहीं करना चाहिए ।

आँखों का बन्द करना

११. प्रारंभ में आँखें खुली रखें। तब आप जानेंगे कि आप क्या कर रहे हैं और कहाँ गलती कर रहे हैं। यदि आप आँखें बन्द करेंगे तो आप शरीर की आवश्यक क्रियाओं अथवा उसकी दिशा का जिसमें आप आसन कर रहे हैं, निरीक्षण करने की स्थिति में नहीं होंगे। जब आप किसी विशिष्ट आसन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते हैं तभी आँखें बन्द कर सकते हैं, कारण उस समय ही आप शारीरिक क्रियाओं में सुधार तथा सही फैलाव या तनाव का अनुभव करने में समर्थ होंगे।

दर्पण

१२. यदि आप दर्पण के सामने आसन कर रहे हैं तो उसे जमीन के समानान्तर रखें तथा जमीन की सतह पर आने दें, अन्यथा दर्पण के कोण के कारण स्थितियां (आसन की) झुकती हुई दिखाई देंगी। दर्पण के जमीन की सतह पर न होने पर आप क्रियाओं तथा सिर और कन्धों की उलट–पुलट अवस्थाओं का निरीक्षण नहीं कर सकेंगे।

मस्तिष्क

१३. आसनों का अभ्यास करते समय केवल शरीर को सक्रिय रहना चाहिए जबकि मस्तिष्क को निष्क्रिय, मगर सतर्क, सावज्ञान और सजग रहना चाहिए। यदि उन्हें मस्तिष्क पर तनाव दे कर किया गया तो आप अपनी गलतियों को बुद्धिपूर्वक देखने में और सुधारने में असमर्थ होंगे।

श्वासक्रिया

१४. सभी आसनों में श्वासक्रिया केवल नासिका से होनी चाहिए न कि मुँह से।

१५. आसन की प्रक्रिया में अथवा उसकी स्थिति में होने पर श्वास न रोकें। आगे के विविध आसनों की विधियों के विभाग में बतलायी गयी श्वास संबंधी सूचनाओं का अनुसरण करें।

शवासन

१६. आसनों के अभ्यास को पूर्ण करने के बाद हमेशा कम-से-कम १० से १५ मिनट तक शवासन में लेट जाएँ, कारण यह थकान मिटा देगा।

आसन तथा प्राणायाम

१७. प्राणायाम का प्रयास करने के पूर्व उसके अभ्यास के बारे में सूचनाओं तथा संकेतों को ध्यानपूर्वक पढ़ें (देखें विभाग ३)। प्राणायाम को प्रातःकाल में आसनों के पहले अथवा शाम को उन्हें (आसनों को) पूरा करने के बाद किया जा सकता है।

यदि प्रातःकाल में पहले १५ से ३० मिनट तक प्राणायाम करते हैं तो बाद में कुछ मिनट तक शवासन करें, उसके बाद कुछ समय बीतने पर-जिस समय आप दिनक्रम के अनुसार कोई भी काम कर सकते हैं – कठिन आसनों का अभ्यास करें। परंतु यदि इन्हें शाम के समय किया जाता है तो आसनों के अभ्यास के बाद कम से कम आधा घंटा बीत जाने दें। फिर प्राणायाम करने के लिए बैठें।

रक्तचाप अथवा चक्कर से पीड़ित व्यक्तियों के लिए विशेष संकेत

१८. यदि आप चक्कर अथवा उच्च रक्तचाप से पीड़ित हैं तो शीर्षासन तथा सर्वांगासन से प्रारंभ न करें। शीर्षासन तथा सर्वांगासन की उलट-पुलट स्थिति का प्रयास करने के पहले पश्चिमोत्तानासन, उत्तानासन और अधोमुख श्वानासन का अभ्यास करें, और उसे करने के बाद फिर उसी क्रम में इन्हें दुहराएँ।

१९. आगे झुकने की क्रिया जिनमें हो, ऐसे सभी आसन उच्च या मंद रक्त-चाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिए लाभकारी हैं।

कानों में मवाद अथवा स्थलांतरित चक्षुपटल से पीड़ित व्यक्तियों के लिए विशेष सूचनाएँ

२०. जो व्यक्ति कानों में मवाद अथवा स्थलांतरित चक्षुपटल से पीड़ित हैं, उन्हें उलट-पुलट स्थितियों के आसनों का प्रयास नहीं करना चाहिए।

महिलाओं के लिए विशेष संकेत

२१. मासिक ऋतुस्राव—मासिक ऋतुस्राव के समय आसन न करें। परंतु यदि स्वाभाविक स्राव से अधिक स्राव है, तो लाभप्रद परिणामवाले उपविष्ट कोणासन, बद्धकोणासन, वीरासन, जानुशीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन तथा उत्तानासन जैसे आसन किए जा सकते हैं। मासिक ऋतुस्राव के समय किसी भी हालत में शीर्षासन जैसे (सिर पर खड़े होने के) आसन न करें।

गर्भावस्था

२२. गर्भावस्था के पहले तीन महीनों में सभी आसनों का अभ्यास किया जा सकता है। खड़े रहने तथा आगे झुकने की स्थिति के सभी आसन हलकी क्रियाओं के साथ किए जा सकते हैं, कारण इस समय मेरुदण्ड सशक्त और लचीला किया जाना चाहिए तथा उदर पर किसी प्रकार का दवाव नहीं पड़ना चाहिए। गर्भावस्था के पूरे काल में दिन के किसी भी समय में (भोजन के बाद भी, परंतु भोजन के बाद शीघ्र ही आगे झुकनेवाले आसन न करें) बद्धकोणासन और उपविष्ट कोणा-सन का अभ्यास किया जा सकता है, कारण ये दोनों आसन बस्तिप्रदेश के स्नायु और पीठ की दुर्बलता को बल देंगे और परिणामस्वरूप प्रसववेदना भी कम कर देंगे। गर्भावस्था के पूरे काल में बिना कुम्भक (श्वास का रोकना) के प्राणायाम

का अभ्यास किया जा सकता है, कारण नियमित गहरी श्वासक्रिया परिणाम स्वरूप प्रसूति के समय सहायक होगी ।

प्रसूति के बाद

२३. प्रसूति के बाद पहले महीने में आसन नहीं करने चाहिए । उसके बाद में हलके-हलके उसका अभ्यास किया जा सकता है । धीरे-धीरे परिशिष्ट १ में बतलाय अनुसार क्रम बढ़ा दें । प्रसूति के तीन महीनों के बाद सभी आसन सुविधा से किये जा सकते हैं ।

आसनों के परिणाम

२४. गलत रीति से अभ्यास करने से कुछ ही दिनों में असुविधा तथा अस्वस्थता उत्पन्न होगी जो आसन की गलत विधि को दिखाने के लिए काफी है । यदि आप स्वयं गलती समझ नहीं पाते हैं तो यह अच्छा होगा कि आप उस व्यक्ति के पास जाएँ, जिसने ठीक तरह से अभ्यास किया है, और उससे मार्गदर्शन प्राप्त करें ।

२५. आसन करने की सही रीति से शरीर और मन में हलकापन तथा प्रफुल्लता का अनुभव होता है और शरीर, मन तथा आत्मा की एकरूपता का अनुभव होता है ।

२६. निरंतर अभ्यास से साधक के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा । वह अपने को आहार, कामवासना, स्वच्छता और शील के संबंध में अनुशासित करेगा और एक नया रूप धारण करेगा ।

२७. एक बार आसनों का अभ्यास हो जाने पर आसन करने में आयास की आवश्यकता नहीं होती, वह सहज ही बन पड़ता है । शरीर की क्रियाएँ सुन्दर ढंग से होती हैं । आसनों को करते समय साधक का शरीर जीव सृष्टि के प्राथमिक अवस्था के अगणित रूपों, निम्नस्तर के कीट–पतंगों से पहुँचे हुए ऋषि–मुनियों तक, को धारण करता है और वह जानने लगता है कि इन सब में विश्वात्मा का ही श्वास चल रहा है जो परमात्मा है । अभ्यास के समय वह अपने अंदर देखता है और विविध आसनों में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव करता है, जिन्हें वह परमेश्वर के चरणों में समर्पण की भावना से करता है ।

आसन

१. ताडासन (यह समस्थिति भी कहलाता है) एक* (चित्र १)

ताड का अर्थ है पहाड । सम का अर्थ सरल, सीधा, स्थिर होता है । निश्चल खड़े रहना, स्थिरता ही स्थिति है । इसलिए ताडासन ऐसी स्थिति का संकेत करता

है जहाँ व्यक्ति पहाड़ की तरह स्थिर और सीधा खड़ा रहता है। खड़े होने की यह मौलिक स्थिति है।

विधि

१. पैरों को एकसाथ मिलाकर, एड़ियों और अंगूठों को परस्पर मिलायें और सीधे खड़े हों। तलवों के अग्रभाग को जमीन पर टिकाकर सारी अँगुलियों को जमीन पर तान दें।

२. घुटनों को तानें और घुटनों की चक्कियों को ऊपर की ओर खींचें, नितम्ब को सिकोड़ें और जाँघ के पीछे की मांसपेशियों को ऊपर तानें।

३. पेट को अंदर कर, सीने को आगे करें, रीढ़ को ऊपर की ओर तानें और गर्दन सीधी रखें।

४. शरीर का भार केवल एड़ियों या पैर की अंगुलियों पर ही न डालें बल्कि दोनों पर समान रूप से डालें।

५. सिद्धांततः ताडासन की अवस्था में बाँह सर के ऊपर फैलाये रखते हैं; परंतु सुविधा के लिए व्यक्ति जाँघों के बगल में उन्हें रख सकता है। हथेलियों को जाँघों की ओर किये ताडासन में खड़े होकर प्रारंभ करनेवाला साधक नीचे वर्णित प्रत्येक खड़े होने के आसन आसानी से कर सकता है।

परिणाम

लोग खड़े होने की उचित पद्धति की ओर ध्यान नहीं देते। कोई शरीर का भार डालकर एक पैर पर खड़ा होता है, या एक पैर पूरी तरह बगल में घुमाकर खड़ा होता है तो दूसरे लोग शरीर का भार एड़ियों पर डालते हैं या पैर के अंदर या बाहर के किनारों पर लेते हैं। जूतों के घिसे हुए तलवों और एड़ियों को देखकर यह बात ध्यान में आ सकती है। हमारे गलत ढंग से खड़े होने के और शरीर के भार को दोनों पैरों पर बराबर न देने के कारण हम विशिष्ट प्रकार के भद्देपन को प्राप्त करते हैं, जो रीढ़ के लचीलेपन में बाधक होता है। यद्यपि पैर अलग रखे जाते हैं फिर भी यह अधिक अच्छा होगा यदि एड़ियों और अंगूठों को माध्यमिक समक्षेत्र के समानांतर रखा जाय, न कि तिरछे। इस पद्धति से नितम्ब संकुचित किये जाते हैं, पेट अंदर खींचा जाता है और सीना आगे लाया जाता है। व्यक्ति शरीर में हलकेपन का अनुभव करता है और मन स्फूर्ति प्राप्त करता है। यदि हम शरीर का भार एड़ियों पर डालकर खड़े हों तो संतुलन बदलता सा हम अनुभव करते हैं; नितम्ब शिथिल हो जाते हैं; पेट बढ़ जाता (आगे फूलता) है, शरीर पीछे की ओर झुक जाता है और रीढ़ में तनाव मालूम होता है। नतीजा यह होता है कि हम थकान जल्द महसूस करते हैं और मन सुस्त हो जाता है। इसलिए उचित विधि से खड़े होने की कला पर प्रभुत्व प्राप्त करना आवश्यक है।

२. वृक्षासन एक * (चित्र २)

वृक्ष का अर्थ है पेड़।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)।

२. दाहिनी टाँग को घुटने पर मोड़ें और दाहिनी एड़ी को बायीं जाँघ के मूल में रखें। अंगुलियों को नीचे की ओर किये पैर (दाहिना) बायीं जाँघ पर स्थिर करें।

३. बायें पैर पर भार संभालें, दोनों हथेलियों को मिलायें और बाहों को सर पर सीधे उठायें (चित्र २)।

४. गहरी साँस लेते हुए कुछ क्षण इसी स्थिति में खड़े रहें। तब बाहों को नीचे लायें और हथेलियों को अलग करें, दाहिना पैर सीधा करें और पुनः ताडासन की अवस्था में आ जाएँ।

५. दाहिनी टाँग पर खड़े होकर, दाहिनी जाँघ के मूल में बायीं एड़ी को रखकर स्थिति को दुहरायें। उतने ही समय के लिए दोनों ओर खड़े हों, ताडासन में वापस आयें (चित्र १) और विश्राम लें।

परिणाम

यह स्थिति टाँग की मांसपेशियों को ठीक करती है और व्यक्ति को संतुलन और समभार का ज्ञान देती है।

३. उत्थित त्रिकोणासन तीन * (चित्र ४ तथा ५)

उत्थित का अर्थ है फैला हुआ, बढ़ा हुआ। त्रिकोण (त्रि=तीन; कोण=कोना) का अर्थ तिकोना है। खड़ी स्थिति का यह आसन तीन कोने में फैली हुई स्थिति में है।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)।

२. गहरी साँस लें और कूदते हुए टाँगें ३ से ३½ फीट बगल में दूर फैलायें। हथेलियों को नीचे की ओर किये हुए कंधे की सीध में बाहों को उठायें। बाहों को भूमि के समानान्तर रखें (चित्र ३)।

३. दाहिने पैर को दाहिनी ओर ९० अंश पर बगल में घुमायें। बायीं टाँग को फैलाये हुए और घुटने को कसे हुए बायें पैर को दाहिनी ओर थोड़ासा घुमायें।

४. श्वास छोड़ें, दाहिनी हथेली को दाहिने टखने के पास लाकर, धड़ को दाहिनी बगल की ओर से झुकायें। यदि संभव हो, तो दाहिनी हथेली को भूमिपर पूरी तौर से टेक दें (चित्र ४ तथा ५)।

५. दाहिने कंधे की सीध में लाकर बायीं बाँह को ऊपर तानें (जैसा कि चित्र में है) और धड़ को फैलायें। टाँगों के पृष्ठभाग, सीने का पृष्ठभाग और नितम्ब एक सीध में रहने चाहिए। बाहर फैलाये हुए बायें हाथ के अंगूठे को एकटक देखें। चक्की को ऊपर खींचकर दाहिने घुटने को कसकर ताने रहें और उसे पैरों की अंगुलियों के सामने रखें।

६. समान रूप से गहरी साँस लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक इस स्थिति में ठहरें। बाद में दाहिनी हथेली जमीन पर से उठायें। श्वास लें और ऊपर की २ की स्थिति में आ जायें।

७. अब, बायें पैर को बायीं ओर ९० अंश पर घुमायें, दाहिने पैर को बायी ओर थोड़ासा घुमायें, दोनों घुटनों को कसकर रखें और सारी क्रियाओं को उलटे क्रम से २ से ६ तक की स्थितियों में चालू रखें। श्वास लें और २ की स्थिति में आ जायें। बायीं ओर भी उतने समय के लिए ही (शारीरिक) स्थिति बनाये रखें।

८. श्वास छोड़ें। कूदकर ताडासन की स्थिति (चित्र १) में आ जाएँ।

परिणाम

यह आसन टाँगों की मांसपेशियों को ठीक करता है, टाँगों और नितम्बों की कठिनता को दूर करता है, टाँगों के छोटे-मोटे भद्देपन को ठीक करता है और उन्हें समान रूप से विकसित होने देता है। यह पीठ का दर्द और गर्दन की मोच दूर करता है, टखनों को पुष्ट करता है और सीने का विकास करता है।

४. परिवृत्त त्रिकोणासन पाँच * (चित्र ६ तथा ७)

परिवृत्त का अर्थ है घूमा हुआ, गोल या पीछे घूमा हुआ। त्रिकोण का अर्थ तिकोना है। यह घूमी हुई तिकोनी स्थिति है। यह उत्थित त्रिकोणासन की विपरीत अवस्था है (चित्र ४)।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)। गहरी साँस लें और कूदते हुए पैरों को ३ से ३½ फीट बगल में दूर फैलायें। हथेलियों को नीचे किये हुए कंधे की सीध में बाहों को फैलायें (चित्र ३)।

२. दाहिने पैर को दाहिनी ओर ९० अंश पर बगल में घुमायें। फैलायी हुई बायीं टाँग और तना हुआ घुटना रखते हुए बायें पैर को दाहिनी ओर ६० अंश पर मोड़ें।

३. श्वास छोड़ें, धड़ को बायें पैर के साथ उलटी दिशा में (दायीं ओर) घुमायें, जिससे दायें पैर के बाहरी भाग के पास भूमि पर बायीं हथेली लायी जा सके।

४. बायीं बाँह की सीध में दाहिनी बाँह लाकर ऊपर की ओर फैलायें। दाहिने अंगूठे को एकटक देखें (चित्र ६ तथा ७)।

५. घुटनों को तना रखें। दाहिने पैर की अंगुलियों को जमीन पर से उठने न दें। ध्यान रखें कि बायें पैर का बाहरी भाग जमीन पर ठीक तौर से स्थिर रहे।

६. दोनों कंधों और पंखों (स्कंधास्थि=कंधे पर की चिपटी तिकोनी हड्डियाँ) को तानें।

७. स्वाभाविक साँस लेते हुए इस स्थिति में आधा मिनट ठहरें।

८. श्वास लें, जमीन से बायाँ हाथ उठायें, धड़ को उसकी मूल स्थिति में पीछे की ओर घुमायें और १ की स्थिति में वापस आयें।

९. श्वास छोड़ें, इसी प्रकार बायीं ओर स्थिति को दुहरायें। बायें पैर को बायीं ओर ९० अंश बगल में और दाहिना पैर बायीं ओर ६० अंश घुमायें और दाहिनी हथेली बायें पैर के बाहरी भाग के पास जमीन पर रखें।

१०. इस स्थिति में दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें, जितने समय में दोनों ओर ३ से ४ बार गहरे श्वासोच्छ्वास की क्रिया व्यवस्थित रूप से की जा सके।

११. समय पूर्ण करने के बाद श्वास लें, धड़ को उसकी मूल स्थिति में पीछे उठायें, पैरों की अंगुलियों को सामने लायें और बाँह को स्थिति १ में लायें।

१२. श्वास छोड़ें और कूदकर ताडासन में वापस आयें (चित्र १)। इस प्रकार आसन पूर्ण होता है।

परिणाम

यह आसन जाँघ, पिण्डली और मंदिरशिरा (Hamstring) की मांसपेशियों को ठीक करता है। रीढ़ और पीठ की मांसपेशियों को भी उचित रीति से कार्य करने के योग्य बनाता है; कारण यह आसन रीढ़ प्रदेश के निचले भाग के चारों ओर रक्त की पूर्ति को बढ़ाता है, सीने को पूर्ण रूप से फैलाता है। यह आसन पीठ की वेदना को दूर करता है, पेट की इन्द्रियों को बलशाली बनाता है और नितम्ब की मांसपेशियों को पुष्ट करता है।

५. उत्थित पार्श्वकोणासन चार * (चित्र ८ तथा ९)

पार्श्व का अर्थ है बगल या काँख। कोण का अर्थ कोना है। यह फैले हुए बगल के कोने (पार्श्व भाग के कोण) की स्थिति है।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)। गहरी साँस लें और पैरों को ४ से ४½ फीट बगल में कूदते हुए फैलायें। बाँहों को कंधे की सीध में, हथेलियों को नीचे किये हुए फलायें (चित्र ३)।

२. धीरे-धीरे साँस छोड़ते हुए दाहिने पैर को दाहिनी ओर ९० अंश घुमायें और घुटने को तानकर फैलाये हुए बायें पैर को दाहिनी ओर थोड़ा-सा घुमायें।

जाँघ और दाहिनी पिंडली समकोण बनने तक दाहिनी टाँग घुटने से मोड़ें और उसे भूमि के समानान्तर रखें ।

३. दाहिनी काँख दाहिने घुटने के बाहरी भाग को ढँकते और छूते हुए दाहिने पैर की बगल में दाहिनी हथेली को जमीन पर रखें । वायीं बाँह को बायें कान के ऊपर फैलायें । सर ऊपर करें (चित्र ८ तथा ९) ।

४. नितम्ब के स्नायु जकड़ें, तानें और मंदिरशिरायें (घुटने के भीतर की नसें) तानें । सीना, नितम्ब और टाँगें एक सीध में रहनी चाहिए । इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए सीने को ऊपर उठायें, पीछे की ओर करें, शरीर के प्रत्येक अंग को तानें, शरीर का पिछला भाग और रीढ़ ढीली न पड़ने पाये, और एक सीध में हो । कसेरुकाओं और पसलियों को गति मिलने के लिए रीढ़ को इतना तानें कि ऐसा अनुभव हो कि चमड़ी तानी और खींची जा रही हो ।

५. समान रूप से (बराबर) गहरी साँस लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक इस स्थिति में रहें । श्वास लें और दाहिनी हथेली को भूमि पर से उठायें ।

६. श्वास लें, दाहिनी टाँग को सीधा करें और बाहों को स्थिति १ के समान उठायें ।

७. श्वास छोड़ते हुए बायीं ओर २ से ५ की स्थितियों में सारी क्रियाओं को उलटे क्रम से चालू करें ।

८. श्वास छोड़ें और कूदकर ताडासन में वापस आयें (चित्र १) ।

परिणाम

यह आसन टखनों, घुटनों और जाँघों को ठीक करता है । पिंडलियों और जाँघों की त्रुटयाँ सुधारता है, सीना विकसित करता है, कमर और नितम्ब के चारों ओर की मोटाई कम करता है और कूल्हे पर की गठिया (Sciatic pain) और संधिवात के दर्द को दूर करता है । यह शरीर के पुट्ठों में लहरदार स्वतंत्र गति को बढ़ाता है और नसों और नाड़ियों की वेदना को कम करता है । यह अँतड़ियों के क्रमिक वृत्तों में सिकुड़ने की क्रिया द्वारा मलविसर्जन में सहायता पहुँचाता है ।

६. परिवृत्त पार्श्वकोणासन आठ * (चित्र १२ तथा ११)

परिवृत्त का अर्थ है घुमा हुआ, गोल या पीछे घुमा हुआ । पार्श्व का अर्थ बगल या काँख है । कोण का अर्थ कोना है । यह घूमे हुए बगल के कोने की स्थिति है ।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १) ।

२. गहरी साँस लें और कूदते हुए टाँगों को ४ से ४½ फीट बगल में फैलायें । हथेलियों को नीचे किये हुए बाहों को बगल में कंधे की सीध में फैलायें (चित्र ३) ।

३. दाहिने पैर को दाहिनी ओर ९० अंश घुमायें और घुटने को कसकर टाँग को फैलाते हुए बायाँ पैर दाहिनी ओर ६० अंश पर घुमायें। दाहिने पैर का घुटना इतना झुकायें कि जाँघ और दाहिनी पिंडली समकोण बनायें और दाहिनी जाँघ भूमि के समानान्तर रहे।

४. श्वास छोड़ें, धड़ और बायीं टाँग को इस तरह घुमायें कि दाहिने घुटने पर बायीं बाँह आ जाय। दायें घुटने के बाहरी भाग पर बायीं काँख स्थिर करें और दाहिने पैर के बाहरी भाग के पास भूमि पर बायीं हथेली रखें (चित्र १० तथा ११)।

५. रीढ़ को (दाहिनी ओर) अच्छी तरह मोड़ दें, धड़ को घुमायें, और दाहिने कान के ऊपर दाहिनी बाँह लायें (जैसा कि चित्र में है) और बाहर फैलायी हुई दाहिनी बाँह की ओर टकटकी लगायें। बायें घुटने को निरन्तर कसकर रखें।

६. समान रूप से गहरी साँस लेते हुए इस स्थिति को आधे मिनट से एक मिनट तक बनाये रखें। श्वास लें और बायीं हथेली जमीन से उठा लें। धड़ को उठायें और दाहिनी टाँग को सीधा करते हुए और बाहों को उठाते हुए स्थिति २ में वापस आयें।

७. श्वास छोडते हुए बायीं ओर ३ से ५ की स्थितियों में सारी क्रियाएँ उलटे क्रम से करें।

८. सभी स्थितियों में, जहाँ पहले एक तरफ गतिविधि पूर्ण की गयी है तब दूसरी तरफ की क्रिया के लिए हर हालत में उतना ही समय होना चाहिए। यह साधारण नियम यहाँ लागू है।

परिणाम

यह स्थिति परिवृत्त त्रिकोणासन (चित्र ६) से अधिक प्रबल होने के कारण अधिक परिणामकारक है, यद्यपि मंदिरशिराएँ परिवृत्त त्रिकोणासन में जितनी तनती हैं उतनी इस स्थिति में किसी प्रकार भी नहीं तनतीं। उदर के अवयव अधिक संकुचित होते हैं और पचनक्रिया में सहायता करते हैं। उदर के अवयवों और रीढ़ के स्तंभ में सर्वत्र अच्छी तरह रक्त प्रवाहित होता है और इस प्रकार उन्हें पुनर्यौवन की प्राप्ति होती है। यह आसन मलाशय से बिना तनाव के मलविसर्जन में सहायता करता है।

७. वीरभद्रासन एक तीन * (चित्र १४)

एक बार दक्ष ने महायज्ञ सम्पन्न किया किन्तु उन्होंने न तो अपनी बेटी सती और न उसके पति महादेव शिव को आमंत्रित किया। किसी प्रकार सती यज्ञ में चली गयी, किन्तु अत्यधिक नीचा दिखाये जाने और अपमानित होने के कारण वह यज्ञ की अग्नि में कूद गयी और मृत्यु को प्राप्त हो गयी। जब शिव ने यह समाचार सुना तो अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होंने अपनी जटा से एक बाल तोड़कर पृथ्वी

पर फेंक दिया, उससे वीरभद्र नामक एक शक्तिशाली पराक्रमी पुरुष का आविर्भाव हुआ और वह शिव की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा । उससे दक्ष के विरुद्ध शिव-सेना के नेतृत्व करने और उसके यज्ञ को नष्ट करने के लिए कहा गया । वीरभद्र और उसकी सेना दक्ष के सभामंडप में प्रचंड आँधी की तरह उपस्थित हुई और उसके यज्ञ को नष्ट कर दिया । उसने अन्य देवताओं और पुरोहितों में भगदड़ मचा दी और दक्ष का सिर उतार लिया । सती के शोक में शिव कैलाश चले गये और तपस्या में लीन हो गये । हिमालय के घर में उमा के रूप में सती फिर से पैदा हुई । फिर एकबार उसने शिव के प्रेम के लिए कोशिश की और अन्त में उनके हृदय को जीत लिया । यह कथा महाकवि कालिदास द्वारा उनके महाकाव्य 'कुमारसंभव' में कही गयी है ।

यह आसन शिव के जटा-केश से उत्पन्न शक्तिशाली पराक्रमी पुरुष को अर्पित है ।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १) ।

२. दोनों बाँहों को सिर के ऊपर उठायें, ऊपर की ओर खींचें और दोनों हथेलियों को मिलायें (चित्र १२) ।

३. गहरी साँस लें और कूदते हुए टाँगों को ४ से ४½ फीट बगल में फैलायें ।

४. श्वास छोड़ें, दाहिनी ओर घूमें । दाहिने पैर को दाहिनी ओर ९० अंश और बायें पैर को दाहिनी ओर किंचित् एक साथ मोड़ें (चित्र १३) । दाहिनी जाँघ और दाहिनी पिंडली के बीच समकोण बनाते हुए, दाहिनी जाँघ जमीन के समानान्तर और दाहिनी अग्रजंघा जमीन के लम्बरूप में होने तक दाहिने घुटने को झुकायें । मुड़े हुए घुटने को टखने से आगे बढ़ना नहीं चाहिए बल्कि एड़ी की सीध में होना चाहिए ।

५. बायीं टाँग फैलायें और घुटने को कसें ।

६. जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है, दाहिने पैर की तरह ही मुँह, सीना और दाहिना घुटना उन्मुख होना चाहिए । सिर ऊपर करें, मेरुदंड को सबसे नीचे की तिकोनी हड्डी (Coccyx) से ऊपर तानें और जुटी हुई हथेलियों पर दृष्टि डालें (चित्र १४) ।

७. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए २० सेकंड से आधे मिनट तक इस स्थिति में रहें ।

८. बायीं तरफ भी, जैसा कि ४ से ६ की स्थितियाँ हैं, सभी प्रक्रियाओं को उलटे क्रम से करें ।

९. श्वास छोड़ें और कूदकर ताडासन की स्थिति में वापस आयें ।

खड़े होने की सारी स्थितियों में यह स्थिति अधिक क्रियाशील है । यह आसन

कमजोर दिलवाले व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए । यहाँतक कि जो अच्छे हृष्ट-पुष्ट हैं उन्हें भी इस आसन की स्थिति में अधिक समय नहीं रहना चाहिए ।

परिणाम

इस आसन में सीना पूरी तौर से फैलता है और यह गहरी साँस लेने में मदद करता है । यह कंधों और पीठ की अकड़ को दूर करता है और टखनों और घुटनों को ठीक करता है और गर्दन की अकड़ को अच्छा करता है । यह नितम्बों के चारों ओर की मोटाई को कम करता है ।

८. वीरभद्रासन दो एक* **(चित्र १५)**

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १) ।

२. गहरी साँस लें, और कूदते हुए टाँगें ४ से ४½ फीट वगल में फैलायें । हथेलियों को नीचे करते हुए कंधों की सीध में बाहों को बगल में उठाय (चित्र ३) ।

३. दाहिने पैर को दाहिनी ओर ९० अंश और घुटने पर कसी हुई और तानी हुई वायीं टाँग को बनाये रखकर बायें पैर को किंचित् दाहिनी ओर घुमायें । बायीं टाँग की मंदिरशिरा की मांसपेशियों को तानें ।

४. श्वास छोड़ें, और दाहिनी जाँघ और दाहिनी पिंडली को समकोण बनाते हुए दाहिनी जाँघ जमीन के समानान्तर और दाहिनी अग्रजंघा जमीन के लम्बरूप में होने तक दाहिने घुटने को झुकायें । मुड़े हुए घुटने को टखने के आगे नहीं बढ़ाना चाहिए, बल्कि यह एड़ी की सीध में होना चाहिए (चित्र १५) ।

५. दोनों बाँह बगल में इस प्रकार तानें जैसे दो व्यक्ति विपरीत दिशाओं में आपको खींच रहे हों ।

६. मुँह को दाहिनी ओर घुमायें और दाहिनी हथेली पर टकटकी लगायें । बायीं टाँग के पीछे के स्नायुओं को पूरी तौर से खींचें । टाँग के पिछले हिस्से, पृष्ठप्रदेश और नितम्ब एक सीध में होने चाहिए ।

७. गहरी साँस के साथ इस स्थिति में २० सेकंड से आधा मिनट तक रहें । श्वास लें और २ की स्थिति में वापस आयें ।

८. बायें पैर को बायीं ओर ९० अंश और दाहिने पैर को किंचित् बायीं ओर घुमायें, घुटने को झुकायें और बायीं ओर स्थिति ३ से ६, सभी प्रक्रियाओं को उलटे क्रम से करें ।

९. श्वास लें, पुनः २ की स्थिति में वापस आयें । श्वास छोड़ें और कूदकर ताडासन की स्थिति में वापस आयें (चित्र १) ।

परिणाम

इस आसन द्वारा टाँगों की मांसपेशियाँ उचित आकार की और पुष्ट बनती हैं। यह पिण्डली और जाँघों की ऐंठन को दूर करता है, टाँग और पीठ के स्नायुओं में लचीलापन लाता है और उदर के अवयव को स्वस्थ करता है।

खड़े होने के आसनों (स्थितियों) का पूर्ण अभ्यास (प्रभुत्व) साधक को उच्च स्थितियों के लिए आगे मुड़ने में सहायता करता है जो उस समय आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

९. वीरभद्रासन तीन पाँच * (चित्र १७)

यह शारीरिक स्थिति (आसन) वीरभद्रासन १ का प्रगत रूप है (चित्र १४)।

विधि

१. ताडासन में खड़ें हों (चित्र १)।

२. गहरी साँस लें और कूदते हुए टाँगों को ४ से ४½ फीट बगल में फैलायें (चित्र ३)।

३. दाहिनी ओर वीरभद्रासन १ की पूर्ण स्थिति में आयें (चित्र १४)।

४. श्वास छोड़ें, धड़ को आगे की ओर झुकायें और सीने को दाहिनी जाँघ पर स्थिर करें। भुजाओं को सीधे और हथेलियों को मिला हुआ रखें (चित्र १६)। दो श्वास लेकर इस स्थिति में रहें।

५. अब श्वास छोड़ें और उसी समय शरीर को किंचित् आगे की ओर झुलाते हुए बायीं टाँग को जमीन पर से उठा लें और दाहिनी टाँग को भी सीकचे की तरह सख्त बनाते हुए सीधा करें। बायीं टाँग अन्दर की ओर से ऐसे घुमायें कि अग्र टाँग जमीन के समानान्तर रहे (चित्र १७)।

६. गहरी और समान रूप से साँस लेते हुए २० से ३० सेकंड इस स्थिति में रहें।

७. संतुलन करते हुए, सारा शरीर (दाहिनी टाँग को छोड़कर) जमीन के समानान्तर रखें। दाहिनी टाँग, जिसे पूर्ण रूप से सीधा और सख्त होना चाहिए, जमीन की सीध में रखनी चाहिए। दाहिनी जाँघ के पिछले हिस्से को खींचें और भुजाओं और बायीं टाँग को फैलायें मानो दो व्यक्ति आपको दोनों ओर खींच रहे हों।

८. श्वास छोड़ें और वीरभद्रासन एक (चित्र १४) में वापस आयें।

९. इस आसन को बायीं ओर दुहरायें।

परिणाम

चित्र १७ प्रतिपादित करता है कि इस आसन के अभ्यास से सुसंगति, संतुलन,

तुल्यता और शक्ति प्राप्त होती है। यह आसन उदर के अवयवों को संकुचित और ठीक करने में सहायता करता है और टाँगों की मांसपेशियों को अधिक सुडौल और पुष्ट बनाता है। धावकों के लिए इसकी सिफारिश की गयी है, क्योंकि यह शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है।

इस आसन की सारी गतिविधियाँ व्यक्ति के आचरण और चाल को सुधारती हैं। जब हम एड़ियों पर भार देकर गलत ढंग से खड़े होते हैं तब हम यथाप्रमाण (सुडौल) वृद्धि में विलम्ब करते हैं और रीढ़ (मेरुदंड) के लचीलेपन में विघ्न डालते हैं। एड़ियों पर भार देकर खड़े रहने के कारण पेट बढ़ जाता है और शारीरिक एवं मानसिक स्फूर्ति कम होती है। यह आसन व्यक्ति को पैर के तलवे पर स्थिर खड़े रहने में सहायता पहुँचाता है। उदर के स्नायुओं को अन्दर ले जाता है और शारीरिक एवं मानसिक स्फूर्ति प्रदान करता है।

१०. अर्धचन्द्रासन पाँच* (**चित्र १९**)

अर्ध का अर्थ है आधा। चन्द्र चन्द्रमा को कहते हैं। यह स्थिति अर्ध चन्द्र के सदृश होती है, इसलिए यह नाम है।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)। बाद में पीछे बतलायी हुई विधि से उत्थित त्रिकोणासन करें।

२. दाहिनी ओर त्रिकोणासन में स्थित होने पर श्वास छोड़ें और दाहिने घुटने को झुकाकर दाहिनी हथेली को दाहिने पैर से करीब एक फूट की दूरी पर जमीन पर रखें और उसी समय बायें पैर को दायें पैर के पास लायें (चित्र १८)।

३. इस स्थिति में ठहरें और दो श्वास लें। बाद में श्वास छोड़ें और पैर की अंगुलियों को ऊपर करते हुए बायीं टाँग को जमीन पर से उठायें। दाहिना हाथ और दाहिनी टाँग सीधी करें।

४. बायें नितम्ब पर बायीं हथेली को रखें और कंधों को ठीक तरह से ऊपर करते हुए फैलायें। सीने को बायीं ओर घुमायें और संतुलन करें (चित्र १९)।

५. शरीर का भार दाहिने पैर और नितम्ब पर पड़ता है। दाहिना हाथ संतुलन का नियंत्रण करने के लिए आधार मात्र है।

६. स्वाभाविक रूप से गहरी साँस लेते हुए २० से ३० सेकंड तक इस स्थिति को बनाये रखें। अनन्तर बायीं टाँग को भूमि की ओर ले जायें और त्रिकोणासन में लौट आयें (चित्र ४)।

७. इस स्थिति को बायीं ओर दुहरायें।

परिणाम

यह आसन उनके लिए लाभजनक है जिनकी टाँगें पीड़ित एवं दूषित हैं। यह मेरुदंड के निचले प्रदेश और टाँगों के स्नायुओं से सम्बन्धित नाड़ियों को ठीक करता है और यह घुटनों को मजबूत बनाता है। अन्य खड़े होने के आसनों के साथ यह आसन वायुविकार दूर करता है।

टिप्पणी

जिन्हें खड़े होने के आसनों से कमजोरी और थकावट महसूस होती है उन्हें उत्थित त्रिकोणासन (चित्र ४) और उत्थित पार्श्वकोणासन (चित्र ८) का अभ्यास करना चाहिए। कारण ये दोनों आसन शरीर को पुष्ट बनाते हैं। जिन्होंने शक्ति प्राप्त कर ली है और शरीर को लचीला बना लिया है केवल उन्हें हीं अन्य खड़े होने के आसन करने चाहिये।

११. उत्थितहस्तपादांगुष्ठासन सोलह* (चित्र २३)

उत्थित का अर्थ है उठा हुआ। हस्त का अर्थ हाथ है। पादांगुष्ठ पैर के अंगूठे को कहते हैं। यह आसन एक टाँग पर खड़े होकर दूसरी टाँग को सामने फैलाकर फैली हुई टाँग के अंगूठे को पकड़कर और सर को टाँग पर स्थिर करते हुए किया जाता है।

विधि

१. ताडासन में खड़े रहें (चित्र १)।

२. श्वास छोड़ें, घुटना मोड़ते हुए दाहिनी टाँग उठायें और दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी (दूसरी अंगुलि) तथा मध्यमांगुलियों के बीच दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ें।

३. बायें नितम्ब पर बायाँ हाथ रखें और संतुलित हों (चित्र २०), दो श्वास लें।

४. श्वास छोड़ें, दाहिनी टाँग को आगे की ओर सीधा करें और खींचें (चित्र २१)। दो श्वास लें।

५. जब आप इस स्थिति में स्थिर हो जायें, दाहिने पैर को दोनों हाथों से पकड़ें तथा उसे और ऊपर उठायें (चित्र २२)। दो श्वास लें।

६. अब श्वास छोड़ते हुए, दाहिने घुटने के बाहर पहले सिर, बाद में नाक और अंत में चिबुक स्थिर करें (चित्र २३)। इस स्थिति में रहें और कुछ गहरी साँसें लें।

७. श्वास छोड़ें, हाथों को ढीला छोड़ दें और ताडासन की वापसी के लिए दाहिनी टाँग को भूमि पर लायें (चित्र १)।

८. दाहिनी टाँग को जमीन पर रखकर और बायीं टाँग उठाकर इस स्थिति को दूसरी ओर दुहरायें ।

९. स्थिति ५ और ६ में संतुलन करना कठिन है और ऐसा स्थिति ४ पर प्रभुत्व प्राप्त किए बिना नहीं किया जा सकता है ।

परिणाम

यह आसन टाँगों की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है और व्यक्ति को स्थिरता तथा अंगसौष्ठव प्रदान करता है ।

१२. पार्श्वोत्तानासन छह * **(चित्र २६)**

पार्श्व का अर्थ है बगल या काँख । उत्तान (उत्=तीव्र, और तान=फैलाना, सीधा करना, लम्बा करना) का अर्थ है अत्यधिक फैलाव । यह नाम उस स्थिति को चरितार्थ करता है जहाँ सीने की बगल (पार्श्व) प्रबलता से फैलायी जाती है ।

विधि

१. ताडासन में खड़े रहें (चित्र १) । गहरी साँस लें और शरीर को किंचित् आगे की ओर झुकायें ।

२. पीठ के पीछे हथेलियों को मिलायें और कंधों और कुहनियों को पीछे खींचें ।

३. श्वास छोड़ें, कलाइयों को घुमायें और सीने के पृष्ठभाग (पीठ) के मध्य दोनों हथेलियों को लायें, अंगुलियों को स्कन्धास्थि की सीध में रखें । आप अपनी पीठ के पीछे दोनों हाथों से "नमस्ते" कर रहे हैं (चित्र २४) ।

४. श्वास लें और टाँगों को बगल में ३ से ३½ फीठ कूदते हुए फैलायें । इस स्थति में रहें और श्वास न छोड़ें ।

५. श्वास लें और धड़ को दाहिनी ओर मोड़ें । धड़ की सीध में पैर की अंगुलियों और एड़ी को रखते हुए दाहिने पैर के दाहिनी ओर ९० अंश बगल में घुमायें; बायें पैर को ७५ से ८० अंश दाहिनी पैर के दाहिनी ओर घुमायें और घुटने पर टाँग को तानते हुए बायें पैर को फैलाया हुआ रखें । सिर को पीछे की ओर झुकायें (चित्र २५) ।

६. श्वास छोड़ें, धड़ को आगे की ओर झुकायें और सिर को दाहिने घुटने पर स्थिर करें । पीठ को तानें और धीरे-धीरे गर्दन को बढ़ायें जबतक कि नाक, बाद में होंठ और अंत में ठुड्डी (चिबुक) छू नहीं जाती और तब दाहिने घुटने के आगे रुकें (चित्र २६) । घुटने की चक्कियों को खींचते हुए दोनों टाँगों को तानें ।

७. स्वाभाविक गति से साँस लेते हुए इस स्थिति में २० सेकंड से आधे मिनट तक ठहरें। बाद में धीरे-धीरे सिर तथा धड़ को नितम्बों की गोलाई में झुलाते हुए बायें घुटने की ओर धड़ को मोड़ें। उसी समय बायाँ पैर बायीं ओर ९० अंश और दाहिना पैर बायीं ओर ७५ से ८० अंश घुमायें। अब दाहिनी टाँग बिना झुकाये धड़ और सिर जितना पीछे हो सके उतना उठायें। यह क्रिया एक श्वास में करनी चाहिए।

८. शास छोड़ें, धड़ को आगे झुकायें, बायें घुटने पर सिर रखें और गर्दन को स्थिति ६ के समान तानते हुए ठुड्डी को बायें घुटने के बाहर धीरे-धीरे बढ़ायें।

९. स्वाभाविक गति से साँस लेते हुए इस स्थिति में २० सेकंड से आधे मिनट तक बने रहने के बाद श्वास लें, सिर को बीच में और पैरों को उनकी मूल स्थिति में लायें जिससे पैर की अंगुलियाँ सीध में हो जाएँ। इसके बाद धड़ को ऊपर उठायें।

१०. श्वास छोड़ें और पीछे से हाथों को मुक्त करते हुए ताडासन (चित्र १) में वापस कूद जाएँ।

११. यदि आप हाथों को पीठ के पीछे तहिया नहीं सकते हैं तो कलाई को ही पकड़ लें और ऊपर की विधि का अनुसरण करें (चित्र २७ तथा २८)।

परिणाम

यह आसन टाँगों और नितम्बों की मांसपेशियों की अकड़ को दूर करता है और नितम्ब के जोड़ तथा रीढ़ को लचीला बनाता है। जब सिर घुटनों पर स्थिर होता है तब ऊपर के अवयव संकुचित और ठीक होते हैं। कलाई आसानी से घूमती है और सभी प्रकार की कठिनता दूर होती है। यह गोल और अशक्त कंधों को भी ठीक करता है। सही स्थिति में कंधे पीछे की ओर अच्छी तरह खींचे जाते हैं और इससे गहरी साँस लेने में आसानी होती है।

१३. प्रसारित पादोत्तानासन एक चार * (चित्र ३३ तथा ३४)

प्रसारित का अर्थ हैं विस्तृत, फैला हुआ, बढ़ा हुआ। पाद का अर्थ पैर है। यह स्थिति ऐसी है जिसमें फैली हुई टाँगें अत्यधिक सीधी होती हैं।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)।

२. श्वास लें, कमर पर दोनों हाथों को रखें और टाँगों को ४½ से ५ फीट दूर फैलायें (चित्र २९)।

३. घुटनों की चक्कियों को ऊपर खींचते हुए टाँगों को तानें, श्वास छोड़ें, पैरों के बीच कंधों की सीध में हथेलियों को जमीन पर रखें (सामने का दृश्य, चित्र ३०)।

४. श्वास लें और पीठ को अंतर्गोलाकार बनाते हुए सिर को ऊपर उठायें (बगल के दृश्य, चित्र ३१ तथा ३२) ।

५. श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ें और शरीर के भार को टाँगों पर डालते हुए अग्रशिर को जमीन पर स्थिर करें (चित्र ३३ तथा ३४) । शरीर के भार को सिर पर न डालें । दोनों हाथ, दोनों हथेलियाँ और सिर एक सीध में होने चाहिए ।

६. समान रूप से और गहरी साँस लेते हुए इस स्थिति में आधे मिनट के लिए ठहरें ।

७. श्वास लें, जमीन पर से सिर उठायें और कुहनियों पर बांहों को सीधा करें । स्थिति ४ की तरह पीठ को अंतर्गोलाकार बनाते हुए सिर को खूब ऊपर उठायें (चित्र ३०) ।

८. श्वास छोड़ें और स्थिति २ में खड़े रहें (चित्र २९) ।

९. कूदकर ताडासन में वापस आयें (चित्र १) ।

१४. प्रसारित पादोत्तानासन दो चार * (चित्र ३५ तथा ३६)

यह पूर्व स्थिति की प्रगत क्रिया है । यहाँ हाथ जमीन के बदले कमर पर रखे जाते हैं (चित्र ३५) अथवा पीठ के पीछे जोड़े जाते हैं, मानो कोई पीठ के पीछे 'नमस्ते' कर रहा है (चित्र ३६), जैसा कि पार्श्वोत्तानासन (चित्र २६) में वर्णित है । इस क्रिया में टाँगों का फैलाव अत्यधिक किया जाता है ।

परिणाम

इस आसन में मंदिरशिरा और अपवर्तिनी मांसपेशियाँ पूरी तरह विकसित होती हैं, और रक्त धड़ और सिर में प्रवाहित किया जाता है । जो लोग शीर्षासन (चित्र १८४) नहीं कर सकते हैं वे इस आसन से लाभान्वित हो सकते हैं, जो पाचनशक्ति बढ़ाता है ।

उपर्युक्त खड़े होकर किये जानेवाले सभी आसन नवछात्रों के लिए अत्यावश्यक हैं । ज्यों-ज्यों साधक प्रगति करता है त्यों-त्यों वह अधिक लचीलापन प्राप्त करता है और तब खड़े होने के आसन छोड़े जा सकते हैं । फिर भी सप्ताह में एक बार उनका किया जाना उपयुक्त है । ये सभी खड़े होने के आसन शरीरभार को कम करने में सहायता करते हैं ।

१५. परिघासन चार * (चित्र ३९)

परिघ का अर्थ धरन या फाटक बंद करने के लिये उपयोग में लाया जानेवाला छड़ है । इस आसन (स्थिति) में शरीर फाटक को बंद करने के लिये उपयोग में लाये गये छड़ के समान होता है, इसलिए आसन का यह नाम है ।

विधि

१. एक साथ टखनों समेत जमीन पर घुटने टेक दें।

२. दाहिनी टाँग दाहिनी ओर बगल में फैलायें और धड़ और बायें घुटने की सीध में उसे रखें। दाहिनी टाँग का घुटना तानते हुए दाहिना पैर दाहिनी ओर बगल में घुमायें।

३. श्वास लेते हुए बाहों को बगल में फैलायें (चित्र ३७)। दो श्वास लें।

४. श्वास छोड़ें, धड़ और दाहिनी बाँह को फैलायी हुई दाहिनी टाँग की ओर नीचे ले जाएँ (चित्र ३८)। दाहिनी हथेली को ऊपर करते हुए दाहिना हाथ और कलाई दाहिनी पिंडली और टखने पर क्रमशः स्थिर करें। तब दाहिने कान को दाहिनी बाँह के ऊपरी भाग पर रखें। बायीं बाँह को सिर पर से घुमायें और बायीं हथेली से दाहिनी हथेली को छूएँ। तब बायाँ कान दायीं बाँह के ऊपरी भाग का स्पर्श करेगा (चित्र ३९)।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में ३० से ६० सेकंड रहें।

६. श्वास लें, धड़ और बाहों को फिर से ३ की स्थिति में लायें। पुनः नलियों को एक साथ (एकत्र) करते हुए दाहिनी टाँग और घुटने को जमीन पर झुकायें।

७. दूसरी ओर इस स्थिति को बायें के लिए दायाँ बदलते हुए और क्रम उलटते हुए दुहरायें। दोनों ओर इस स्थिति में उतने ही समय के लिए ठहरें।

परिणाम

इस आसन में वस्तिप्रदेश तना हुआ होता है, उदर एक बाजू से तना हुआ होता है जब कि दूसरा भाग पार्श्व में लचीला होता है। यह उदर की मांसपेशियों और अवयवों को व्यवस्थित करता है और इससे उदर (के चारों ओर) की चमड़ी सिकुड़कर लटकेगी नहीं, बल्कि स्वस्थ रहेगी। रीढ़ की बगल की क्रिया पीठ के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों को आराम देने में मदत करती है।

१६. **उष्ट्रासन** तीन * (**चित्र ४१**)

उष्ट्र का अर्थ ऊँट है।

विधि

१. जाँघ और पैरों को एकसाथ कर, पैर की अंगुलियों को पीछे की ओर जमीन पर रखते हुए, जमीन पर घुटने टेक दें।

२. हथेलियों को नितम्बों पर रखें। जाँघ सीधी करें, रीढ़ को पीछे की ओर झुकायें और पसलियों को तानें (चित्र ४०)।

३. श्वास छोड़ें, दाहिनी हथेली दाहिनी एड़ी पर और बायीं हथेली बायीं एड़ी पर रखें। यदि संभव हो, हथेलियों को पैरों के तलवों पर रखें।

४. हथेलियों से पैरों को दबायें, पीठ के पीछे सिर ले जाएँ, जाँघों की ओर रीढ़ को दबायें, जिससे जमीन की सीध में रहे।

५. नितम्ब संकुचित करें और गर्दन पीछे ताने हुए, पीठ की तथा रीढ़ की सबसे नीचे की तिकोनी हड्डी (Coccyx) और भी आगे दबायें (चित्र ४१)।

६. स्वाभाविक साँस के साथ इस स्थिति में लगभग आधे मिनट से एक मिनट तक रहें।

७. हाथों को एक-एक कर हटायें और उन्हें नितम्बों पर रखें (चित्र ४०)। बाद में जमीन पर बैठें और विश्राम करें।

परिणाम

यह आसन अशक्त कंधों और कुबडे व्यक्तियों के लिए लाभकारी है।

पूरी रीढ़ पीछे की ओर खींची जाती है और ठीक होती है। बूढे और यहाँतक कि जिन व्यक्तियों की रीढ़ को मार लगी है वे यह आसन करने की कोशिश आसानी से कर सकते हैं।

१७. उत्कटासन दो * (चित्र ४२)

उत्कट का अर्थ है शक्तिशाली, भयंकर, विषम। यह आसन किसी काल्पनिक कुर्सी पर बैठने के समान है।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)। बाहों को सिर के ऊपर सीधा करें और हथेलियों को मिला लें (चित्र १२)।

२. श्वास छोड़ें, घुटनों को मोड़ें और जाँघ जमीन की सीध में होने तक धड़ को नीचा करें (चित्र ४२)।

३. आगे की ओर न झुकें, बल्कि जहाँतक हो सके, सीने को पीछे ले जाएँ और स्वाभाविक रूप से साँस लें।

४. इस स्थिति में कुछ सेकंड रहें, ३० सेकंड काफी हैं। इस आसन में संतुलन करना कठिन है।

५. श्वास लें, टाँगों को सीधा करें (चित्र १२), बाहों को नीचे करें, ताडासन में वापस आयें (चित्र १) और विश्राम करें।

परिणाम

यह आसन कंधों की कठिनता दूर करता है और टाँगों के छोटे-मोटे दोष ठीक करता है। टखने मजबूत होते हैं और टाँगों की मांसपेशियाँ सुडौल बनती हैं। उरःप्राचीर उठाया जाता है और इससे हृदय का सौम्य मर्दन होता है। उदर के अवयव

तथा पीठ ठीक की जाती है और पूरे फैलाव के कारण सीना विकसित हो जाता है। घुड़सवारों के लिए यह आसन लाभदायक है।

१८. पादांगुष्ठासन तीन* **(चित्र ४४)**

पाद का अर्थ है पैर। अंगुष्ठ का अर्थ अंगूठा (पैर का) है। यह आसन खड़े होकर पैर के अंगूठों को पकड़कर किया जाता है।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १)। टाँगें एक फूट के अन्तर पर फैलायें।

२. श्वास छोडें, आगे की ओर झुकें, अंगूठों तथा प्रथम दोनों अंगुलियों के मध्य में (पैर के) अंगूठों को ऐसा पकड़ें कि हथेलियाँ एक दूसरे के सम्मुख हों। कसकर पकड़े रहें (चित्र ४३)।

३. सिर ऊँचा रखें, उरःप्राचीर (diaphragm) को सीने की ओर फैलाएँ और पीठ को यथासंभव अन्तर्गोलाकार बनायें। कंधे को नीचे की ओर तानने की अपेक्षा गुदास्थि से अन्तर्गोलाकार बनाने के लिए नितम्बीय भाग को आगे की ओर झुकायें।

४. टाँगों को कड़ा रखें और पैर की अंगुलियों और घुटनों की पकड़ को ढीला न होने दें। स्कन्धास्थि को खींचें। इस स्थिति में दो या तीन श्वास लें।

५. अब श्वास छोड़ें, जमीन पर से बिना उठाये पैर की अंगुलियों को खींचते हुए और घुटनों को कसते हुए उनके बीच सिर ले आयें (चित्र ४४)। सामान्य श्वासोच्छ्-वास क्रिया को जारी रखते हुए करीब २० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें।

६. श्वास छोड़ें और २ की स्थिति में आयें (चित्र ४३)। पैर की अंगुलियाँ छोड़ दें और सीधे खड़े हो जाएँ। पुनः ताडासन की स्थिति में आयें (चित्र १)।

१९. पादहस्तासन छह* **(चित्र ४६)**

पाद का अर्थ है पैर। हस्त का अर्थ हाथ। आगे की ओर झुककर तथा अपने ही हाथ पर खड़े होकर यह आसन किया जाता है।

विधि

१. ताडासन में खड़े रहें (चित्र १)। एक फूट की दूरीपर टाँगें फैलायें।

२. श्वास छोड़ें, आगे की ओर झुकें और टाँगों को घुटनों पर बिना मोड़े पैरों के नीचे हाथ डालें ताकि हथेलियाँ तलवों को छू सकें (चित्र ४५)।

३. सिर ऊपर रखें और पीठ को यथासंभव अन्तर्गोलाकार बनायें। घुटनों की पकड़ ढीली न होने दें। इस स्थिति में कुछ श्वास लें।

४. अब श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़कर तथा हथेलियों से पैरों को ऊपर की

ओर खींचकर घुटनों के बीच सिर ले जायें (चित्र ४६)। स्वाभाविक रूप से श्वासोच्छ्-वास करते हुए करीब २० सेकंड तक इस आसन में रहें।

५. श्वास लें, सिर उठायें और सिर को अच्छी तरह ऊपर उठाते हुए स्थिति २ में वापस आ जाएँ (चित्र ४५)। सिर ऊँचा करें और दो श्वास लें।

६. श्वास लेकर खड़े हो जाएँ और ताडासन में वापस आएँ (चित्र १)।

परिणाम

पादांगुष्ठासन और पादहस्तासन के परिणाम—प्रथम की अपेक्षा दूसरा आसन जरा कठिन है पर दोनों का परिणाम एक ही है। जब यकृत और प्लीहा कार्यरत होते हैं तब उदर के अवयव बलवान होते हैं तथा पाचक रसों की वृद्धि होती है। इन दो आसनों के अभ्यास से पेट फूलने की शिकायत करनेवाले अथवा वायु विकार से पीड़ित व्यक्तियों को लाभ पहुँचता है।

चित्र ४३ और ४५ के समान पीछे की अन्तर्गोलाकार स्थिति में ही रीढ़ की स्थलांतरित चक्की व्यवस्थित की जा सकती है। यदि चक्की स्थलांतरित है तो आप घुटनों के बीच सिर न लायें। स्थलांतरित चक्की से पीड़ित व्यक्तियों पर मैंने प्रयोग किये हैं और पीछे की अन्तर्गोलाकार स्थिति उनके लिए वरदान सिद्ध हुई है। इस आसन के अभ्यास करने के पूर्व गुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करना आवश्यक है। कारण, तत्काल पीछे की अन्तर्गोलाकार स्थिति को प्राप्त करना संभव नहीं है। इस आसन के लिए प्रयास करने के पूर्व अन्य सहज आसनों पर प्रभुत्व पाना आवश्यक है।

२०. उत्तानासन आठ* **(चित्र ४८)**

उत् तीव्रता और गम्भीरता का बोध करनेवाला उपसर्ग है। क्रिया तान का अर्थ है–तानना, बढ़ाना, फैलाना। इस आसन में मेरुदण्ड को बलपूर्वक ताना जाता है।

विधि

१. घुटनों को कड़ा रखते हुए ताडासन में खडे हों (चित्र १)।

२. श्वास छोड़ें, आगे की ओर झुकें और अंगुलियाँ जमीन पर रखें। पैरों की बगल में ठीक एड़ियों के पीछे जमीन पर हथेलियाँ रखें। टाँगें घुटनों पर न मोड़ें (चित्र ४७)।

३. सीर सीधा रखें और मेरुदण्ड को तानें। नितम्बों को सिर की ओर थोड़ा आगे ले जायें जिससे टाँगें जमीन पर लम्बरूप हों।

४. इसी स्थिति में रहें और दो गहरी साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, धड़ टाँगों के निकट ले जायें और सिर घुटनों पर स्थिर करें (चित्र ४८) ।

६. घुटनों की पकड़ ढीली न होने दें, बल्कि घुटनों की चक्कियाँ ऊपर खींचें। गहरी और समान रूप से श्वास लेते हुए एक मिनट इसी स्थिति में रहें।

७. श्वास लें और हथेलियों को जमीन पर से उठाये विना ही घुटनों पर से सिर उठायें (चित्र ४७) ।

८. दो श्वास लेने के बाद एक गहरी साँस लें, जमीन पर से हाथ उठा लें और ताडासन में वापस आयें ।

परिणाम

यह आसन पेट के दर्द को दूर करता है और यकृत, प्लीहा तथा गुर्दा को ठीक करता है। उनको स्वस्थ रखता है । मासिक ऋतुस्रावकालीन पेट की पीड़ा से भी मुक्त करता है । हृदय की धड़कन मंद करता है और मेरुदण्ड की शिराओं को नवचेतना देता है । यदि व्यक्ति दो मिनट या उससे भी अधिक समय के लिये यह आसन करता है तो सभी प्रकार की मानसिक उदासीनता नष्ट होती है । जो व्यक्ति शीघ्र ही उत्तेजित हो जाते हैं उनके लिए यह आसन वरदान है; कारण यह मस्तिष्क की कोशिकाओं (मज्जातंतुओं) को शांत करता है। आसन करने के बाद व्यक्ति शान्ति का अनुभव करता है । आँखें ज्योतिर्मयी होती हैं और मन को शांति मिलती है ।

शीर्षासन के लिए प्रयास करते समय जो व्यक्ति सिर में भारीपन, भावनावेग या अन्य विकार का अनुभव करते हैं उन्हें चाहिए कि वे पहले उत्तानासन करें; तब वे आसानी से सहज ही शीर्षासन करने में समर्थ हो सकते हैं ।

२१. ऊर्ध्व प्रसारित एकपादासन छह* (चित्र ४९)

ऊर्ध्व का अर्थ है–सीधा खड़ा, ऊपर, ऊँचा। प्रसारित का अर्थ है–फैलाया हुआ, विस्तृत । एक का अर्थ एक और पाद का अर्थ पैर है । यह आसन एक टाँग पर दूसरी टाँग ऊपर उठाकर धड़ को आगे झुकाते हुए तथा आगे झुकते समय दूसरी टाँग ऊपर उठाकर किया जाता है ।

विधि

१. ताडासन में खडे रहें (चित्र १) ।

२. श्वास छोड़ें और धड़ को आगे की ओर झुकायें। दाहिने गुल्म (टखना) के पिछले भाग को बायें हाथ से पकड़ें । दाहिने पैर के पास दाहिने हाथ को भूमि पर तथा सिर या चिबुक को दायें घुटने पर स्थिर करें ।

३. बायीं टाँग ऊपर आकाश में जितनी उठायी जा सके उठायें, दोनों घुटने तानें। उठायी हुई टाँग की अंगुलियों को ऊपर की ओर करें। दोनों टाँगें सीधी होनी चाहिए जिससे अंगुलियाँ सीधी ऊपर की ओर रहें, बगल में न मुड़ें (चित्र ४६) ।

४. समान रूप से श्वास लेते हुए करीब २० सेकंड तक इस आसन में रहें। श्वास लें, बायीं टाँग भूमि पर रखें और ताडासन में वापस आ जायें (चित्र १) ।

५. बायीं टाँग को भूमि पर रखें और दाहिनी टाँग को ऊपर आकाश में उठाते हुए इस आसन को दूसरी ओर दुहरायें। इस आसन में दोनों ओर उतने ही समय के लिए रहें ।

परिणाम

यह आसन टाँगों की मांसपेशियों को ठीक करता है और नितम्ब की स्थलता कम करता है ।

२२. अर्धबद्ध पद्मोत्तानासन नौ* (चित्र ५२)

अर्ध का अर्थ है आधा। बद्ध का अर्थ है बँधा हुआ, नियंत्रित, पकड़ा हुआ, रोका हुआ । पद्म कमल है। उत्तान का अर्थ है तीव्र तनाव।

विधि

१. ताडासन में खड़े रहें (चित्र १) ।

२. श्वास लें, दाहिनी टाँग भूमि पर से ऊपर उठायें, दाहिना घुटना मोड़ें, दाहिने पैर के तलवे को बायीं जाँघ पर रखें ।

३. बायें हाथ से दाहिना पैर पकड़ें, दाहिनी बाँह पीठ पर लायें, दाहिने पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी व मध्यमा के बीच पकड़ें (चित्र ५०) ।

४. बायें हाथ को मुक्त करें, श्वास छोड़ें, धड़ आगे की ओर झुकायें, बायें हाथ को भमि पर बायें पैर की बगल में रखें (चित्र ५१) और सिर ऊपर उठायें । पीठ को यथासंभव अन्तर्गोलाकार बनायें। कुछ साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, सिर अथवा चिबुक बायें घुटने पर टिकायें (चित्र ५२) ।

६. यदि पूरी बायीं हथेली भूमि पर रखना संभव न हो सके तो पहले अंगुलियों के अग्रभाग से प्रारंभ कर धीरे-धीरे अंगुलियाँ और अंत में पूरी हथेली भूमि पर रखें। इसी प्रकार सिर की स्थिति में भी, बायें घुटने पर पहले ललाट रखकर, नाक के अग्रभाग को रखने के लिए गर्दन बढायें, बाद में होठों तथा अंत में चिबुक को बायें घुटने पर रखें। सिर से चिबुक तक की प्रगति से यह स्पष्ट होता है कि शरीर अधिकाधिक लचीला होता रहता है ।

७. इसी स्थिति में कुछ गहरे श्वासोच्छ्वास के बाद साँस लें और धड़ को ४ की

स्थिति में ऊपर उठायें (चित्र ५१) । दो श्वास लें ।

८. श्वास लें, बायीं हथेली को भूमि पर से ऊपर उठायें और स्थिति ३ में वापस आयें (चित्र ५०) ।

९. दाहिने हाथ की पकड़ से बायें पैर को मुक्त करें और ताड़ासन में वापस आयें (चित्र १) ।

१०. दाहिनी टाँग भूमि पर रखें, बायीं टाँग मोड़कर बायाँ पैर दाहिनी जाँघ पर रखें । पीछे से बायें हाथ से बायीं अंगुलियों को पकड़कर और आगे की ओर झुक-कर दाहिनी हथेली को भूमि पर रखते हुए इस स्थिति को दूसरी ओर दुहरायें (चित्र ५३) ।

११. यदि हाथ पीछे कर पैर की अंगुलियाँ नहीं पकड़ सकते हों तो दोनों हथेलियों को भूमि पर रखें और ऊपर की विधि का अनुसरण करें (चित्र ५४ तथा ५५) ।

परिणाम

इस आसन से घुटनों की कठिनता दूर होती है । उदर के अवयव संकुचित होने के कारण पाचनशक्ति बढ़ती है और अँतड़ी के स्नायुओं को क्रमिक वृत्तों में सिकोड़नेवाली क्रिया मलोत्पादक विष को पृथक् करने में मदद करती है । यह आसन कंधों को पीछे की ओर ले जाने में सहायता करता है । यह सीने को फैलाता है और मुक्त तथा गहरी साँस लेने में मदद करता है ।

२३. गरुडासन एक* (चित्र ५६)

गरुड का अर्थ है पक्षिराज । श्वेत मुख, टेढ़ी-नुकीली चोंच, लाल पंख तथा सुनहले शरीरवाला गरुड विष्णु का वाहन माना जाता है ।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १) । दाहिना घुटना मोड़ें ।

२. दाहिने घुटने के ऊपर, दाहिनी जाँघ पर बायीं टाँग रखें और दाहिनी जाँघ के सामने के भाग पर बायीं जाँघ का पिछला भाग स्थिर करें ।

३. बाद में दाहिनी पिंडली के पीछे बायें पैर को ले जायें जिससे बायीं नली दाहिनी पिंडली का स्पर्श करें और बायें पैर का अंगूठा दाहिने टखने के अन्तर्भाग के कुछ ऊपर रहे । इस प्रकार दाहिनी टाँग के चारों ओर बायीं टाँग लपेटी जाती है ।

४. आप केवल दायीं टाँग पर ही संतुलन बना रहे हैं । इसे सीखने में कुछ समय लगेगा ।

५. कुहनी मोड़ें और बाँहों को सीने के बराबर ऊपर उठायें । बायीं बाँह की कुहनी के जोड़ के निकट और सामने के हिस्से पर दायीं कुहनी रखें । बाद में दाहिने हाथ को पीछे से दायीं तरफ और बायें हाथ को पीछे से बायीं ओर ले जायें तथा हथेलियों

को मिला दें । अब बायीं बाँह दाहिनी बाँह को चारों ओर से लपेट लेगी (चित्र ५६) ।

६. कुछ सेकंड तक यानी करीब २० सेकंड तक गहरी साँस लेते हुए इस स्थिति में रहें । तब बाँहों और टाँगों को ढीला करें और ताडासन में वापस आ जायें (चित्र १)।

७. बायीं टाँग पर खड़े होकर और दाहिनी टाँग से बायीं टाँग तथा दाहिनी बाँह से बायीं बाँह को लपेट कर इस आसन को दुहरायें। दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें ।

परिणाम

यह आसन टखनों को विकसित करता है और कन्धों की कठोरता दूर करता है । पिंडलियों की मांसपेशियों की ऐंठन को रोकने के लिए इसकी सिफारिश की जाती है। टाँगों की ऐंठन दूर करने के लिए और दर्द से मुक्ति पाने के लिए, गरुडासन, वीरासन (चित्र ८९) और भेकासन जिसे मंडूकासन (चित्र १००) भी कहा जाता है और जिसका वर्णन आगे किया गया है, की सिफारिश की गयी है ।

२४. वातायनासन ग्यारह* (**चित्र ५८**)

वातायन का अर्थ है घोड़ा । अश्व की मुखाकृति के समान होने से इसका यह नाम है ।

विधि

१. जमीन पर बैठें, बायें पैर को दाहिनी जाँघ के मूल पर रखें जैसे अर्ध पद्मासन में किया जाता है।

२. नितम्बों की बगल में जमीन पर हाथ रखें । श्वास छोड़ें, जमीन पर से धड़ उठायें और बायें घुटने की चक्की जमीन पर रखें। मुड़े हुए बायें घुटने के पास दायाँ पैर रखें और दाहिनी जाँघ जमीन के समानान्तर रखें (चित्र ५७) ।

३. बस्तिप्रदेश को आगे की ओर तानें, बायीं जाँघ जमीन के लम्बरूप में रखें, हाथ उठायें, पीठ सीधी करें और शरीर का सन्तुलन बनायें । सन्तुलन बनाते समय आगे की ओर कदापि न झुकें, बल्कि पीठ सीधी रखें ।

४. कुहनियों को मोड़ें, और भुजाओं को सीने के बराबर उठायें । बायीं बाँह की कुहनी के जोड़ के ऊपर, कुहनी के पास सामने के भाग पर दाहिनी बाँह का ऊपर का पिछला भाग रखें । दोनों हाथों को एक दूसरे से लपेटते हुए हथेलियाँ मिलायें। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में करीब ३० सेकंड तक रहें (सामने की छवि–चित्र ५८ : पार्श्व की छवि– चित्र ५९) ।

५. भुजाओं को ढीला करें, जमीन पर बैठें और टाँगें सीधी करें ।

६. दूसरी ओर इस स्थिति को दुहरायें । दाहिना पैर बायीं जाँघ के मूल पर रखें।

मुड़े हुए दाहिने घुटने के पास भूमि पर बायाँ पैर रखें और सीने के आगे दोनों बाहुओं को एक दूसरे से लपेटें, जिससे बायीं बाँह दाहिनी बाँह की कुहनी के जोड़ के ऊपर रख कर और बायीं जाँघ जमीन के समानान्तर रखकर संतुलन किया जाए। इस स्थिति को दोनों ओर उतने ही समय के लिए बनाये रखें। बाद में आसन मुक्त होकर जमीन पर विश्राम लें।

७. प्रारंभ में संतुलन बनाये रखना कठिन होगा तथा घुटनों में दर्द होगा। अभ्यास से दर्द दूर हो जाता है और संतुलन होने लगता है।

परिणाम

इस आसन से नितम्बों के जोड़ में पूरी तरह रक्त प्रवाहित होता है और नितम्ब तथा जाँघों की छोटी-छोटी विकृतियाँ दूर होती हैं। त्रिकास्थि के ऊपर के प्रदेश की कठोरता के लिए लाभदायक है।

२५. शलभासन एक* (चित्र ६०)

शलभ का अर्थ है टिड्डी। जमीन पर स्थित टिड्डी जैसी आकृति के होने से आसन का यह नाम है।

विधि

१. पेट के बल भूमि पर पूरी तरह लम्बे लेट जायें, मुख नीचे की ओर करें। भुजाओं को पीछे की ओर तानें।

२. श्वास छोड़ें। सिर, सीना और टाँगें एक ही समय यथासंभव जमीन से ऊपर उठायें। जमीन पर हाथ न रखें और न पसलियों को ही टिकायें। शरीर का केवल उदरीय अग्रभाग जमीन पर टिकता है (चित्र ६०)।

३. कूल्हों को संकुचित करें और जाँघ की मांसपेशियाँ तानें। जाँघ, घुटनों और टखनों को जुटाते हुए दोनों टाँगों को पूरी तरह फैलायें और सीधा रखें।

४. हाथों पर शरीर का भार न लें बल्कि पृष्ठ की मांसपेशियों के ऊपर के भाग की कसरत के लिए उन्हें पीछे की ओर तानें।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए जितना संभव हो उतने समय तक इस आसन में रहें।

आरंभ में सीना तथा टाँगों को जमीन से ऊपर उठाना कठिन होता है परंतु जैसे-जैसे उदरीय मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं वैसे-वैसे यह आसान हो जाता है।

परिणाम

यह आसन पाचनक्रिया को बढ़ाता है और वायुविकार तथा उदर-स्फीति से छुटकारा दिलाता है। मेरुदण्ड पीछे की ओर खींचे जाने के कारण लचीला बनता है और

आसन से त्रिकास्थि और कटिसंबंधी दर्द दूर होते हैं । मेरा अनुभव है कि वे व्यक्ति जो स्थलांतरित चक्की से पीड़ित हैं, बिना विश्राम कराये तथा शल्य-चिकित्सा के बिना, इस आसन के नियमित अभ्यास से लाभान्वित होते हैं । अभ्यास से मूत्राशय तथा शिश्न की ग्रंथियाँ लाभान्वित होती हैं और स्वस्थ रहती हैं ।

इस आसन की एक अन्य विधा से पीठ के निम्न भाग को दर्द से छुटकारा देने की कोशिश की जा सकती है । टाँगें घुटनों के पास मुड़ी होती हैं और दोनों जाँघें अलग अलग रखी जाती हैं जब कि नलियाँ जमीन के समानान्तर होती हैं । बाद में उच्छ्वसन सहित जाँघें जमीन से ऊपर की ओर उठायी जाती हैं और घुटने छूने तक एक-दूसरे के निकट ली जाती हैं । फिर भी नलियाँ लम्बरूप में रखी जाती हैं (चित्र ६१) ।

२६. मकरासन (चित्र ६२)

घेरण्डसंहिता के द्वितीय अध्याय के ४०वें श्लोक में इसका वर्णन इस प्रकार है ।

मुख नीचे किये, सीना जमीन को छूते हुए और दोनों टाँगें फैलाये जमीन पर पड़े हुए बाँह से सिर पकड़े । यह मकर आसन है जो शरीर की उष्णता को बढ़ाता है । यह शलभासन का एक प्रकार है ।

२७. धनुरासन चार* (चित्र ६३)

धनु का अर्थ है धनुष । इसमें हाथों का उपयोग सिर, धड़ और टाँगों को ऊपर खींचने के लिए प्रत्यंचा की तरह होता है और यह स्थिति झुके हुए धनुष के समान होती है ।

विधि

१. नीचे मुँह किये, पेट के बल जमीन पर पूरी तरह लंबे लेट जायें ।

२. साँस छोड़ें और घुटनें मोड़ें । बाँहों को पीछे की ओर तानें; बायें हाथ से बायें टखने को और दायें हाथ से दायें टखने को पकड़ें । दो साँस लें ।

३. अब पूरी तरह साँस निकाल दें और जमीन पर से घुटनों को उठाते हुए टाँगें ऊपर की ओर खींचें और उसी समय जमीन पर से सीना उठायें । बाँह और हाथ झुके हुए धनुष के समान शरीर को तानने में प्रत्यंचा के समान कार्य करते हैं ।

४. सिर ऊपर उठायें और यथासम्भव पीछे की ओर ले जायें । जमीन पर न तो बस्तिप्रदेश की हड्डियों को और न पसलियों को टिकने दें । जमीन पर उदर ही सारे शरीर का भार वहन करेगा ।

५. टाँगें ऊपर उठाते समय घुटनों के पास उन्हें सरकने न दें अन्यथा काफी ऊंचाई तक टाँगें उठायी नहीं जा सकेंगी । पूरी तरह ऊपर उठाये जाने के बाद जाँघों, घुटनों

और टखनों को सटा दें ।

६. उदर फैलाये जाने के कारण साँस तेज चलेगी, लेकिन उसकी चिन्ता न करें। इस स्थिति में अपनी शक्ति के अनुसार करीब २० सेकंड से १ मिनट तक रहें।

७. बाद में उच्छ्‌वसन के साथ टखनों को छोड़ दें, टाँगें सीधी तानें, सिर और टाँग जमीन पर ले आयें और विश्राम करें ।

परिणाम

इस आसन में मेरुदण्ड पीछे की ओर तना होता है । प्रायः वयस्क लोग मेरुदण्ड को पीछे की ओर तान नहीं पाते इसलिए उनके मेरुदण्ड अत्यंत कठोर हो जाते हैं । इस आसन से मेरुदण्ड लचीला बनता है और उदर के अवयव ठीक किये जाते हैं । मेरे अनुभव में, जो व्यक्ति स्थलांतरित चक्की से पीड़ित होते हैं, वे विश्राम किये बिना या शल्यचिकित्सा के बिना, धनुरासन और शलभासन के (चित्र ६०) नियमित अभ्यास से स्वस्थ हो सकते हैं ।

२८. पार्श्व धनुरासन चार* (चित्र ६४ और ६५)

पार्श्व का अर्थ है बगल । धनुरासन के इस प्रकार में व्यक्ति अपनी एक ओर बगल में लेटकर यह आसन करता है ।

विधि

१. धनुरासन करें (चित्र ६३) ।

२. श्वास छोड़ें, दाहिनी ओर मुड़ें और टाँगें और सीना तानें (चित्र ६४) ।

३. श्वास लें और स्थिति १ में आयें; श्वास छोड़ें और बायीं ओर लुढ़क जायें (चित्र ६५) ।

४. स्वाभाविक रूप से साँस लेते हुए यथाशक्ति उतने ही समय के लिए प्रत्येक ओर करें । श्वास लें, धनुरासन में वापस आयें, टाँगें ढीली करें और सुस्तायें ।

५. पहले की अपेक्षा अधिक थकानेवाले आसन के इस प्रकार में टखने हाथ की पकड़ से फिसल जाया करते हैं, इसलिए टखनों को मजबूती से पकड़ें ।

परिणाम

इस आसन में बगल में मुड़ने की क्रिया उदर के अवयवों के जमीन पर फैलाये जाने के कारण उन्हें रगड़ देती है ।

२९. चतुरंग दण्डासन एक* (चित्र ६७)

चतुर् का अर्थ है चार । अंग का अर्थ अवयव या उसका एक भाग है । दंड का अर्थ है डंडा । अच्छी तरह जमीन पर लेट जायें, नीचे की ओर मुख करें और शरीर का

भार हथेलियों तथा पैर की अंगुलियों पर डालें, श्वास छोड़ें, और शरीर को जमीन के समानान्तर रखें, और दण्ड के समान कड़ा रखें । शरीर का भार वहन करनेवाले चार अवयव--दो हाथ और दो पैर हैं । पाश्चात्य कसरत जोर (dips) के समान यह आसन है ।

विधि

१. अच्छी तरह जमीन पर लेट जायें, नीचे की ओर मुख करें ।

२. कुहनियों को मोड़ें, और हथेलियों को सीने की बगल में रखें । दोनों पैरों को एक फुट के अंतर पर रखें ।

३. हाथों तथा पैर की अंगुलियों पर संतुलन बनाते हुए उच्छ्वसन के साथ जमीन के कुछ इंच ऊपर पूरे शरीर को उठायें । सिर से एड़ी तक जमीन के समानान्तर डंडे के समान शरीर को कड़ा और घुटनों को कसा रखें । कुछ समय तक स्वाभाविक रूप से साँस लेते रहें ।

४. बाद में धीरे-धीरे पूरे शरीर को आगे फैलायें, जिससे जमीन पर पैर की अँगु-लियों के ऊपर के भाग पर पैर टिके (चित्र ६७) ।

५. स्वाभाविक रूप से तथा गहरी साँस लेते हुए इस आसन में करीब ३० सेकंड तक रहें । यह क्रिया कई बार की जा सकती है । बाद में जमीन पर सुस्तायें ।

परिणाम

यह आसन बाहों तथा कलाइयों को मजबूत करता है तथा गति और शक्ति बढ़ाता है । उदर के अवयवों को संकुचित और ठीक करता है ।

३०. नक्रासन छह* (चित्र ६८ से ७१)

नक्र का अर्थ है घड़ियाल, मगर । मगर के अपने शिकार का पीछा करने के समान इस आसन में अनेक शक्तियुक्त गतियाँ हैं, इस कारण इसका यह नाम है ।

विधि

१. मुख नीचे किये हुए जमीन पर लेट जायें ।

२. कुहनियों को मोड़ें और हथेलियों को कमर की बगल में रखें ।

३. पैरों को करीब एक फुट की दूरी पर अलग रखें । साँस छोड़ें, हथेलियों और पैर की अंगुलियों पर संतुलन बनाते हुए जमीन से कुछ इंच ऊपर सारे शरीर को उठायें । सींकचे के समान शरीर को कड़ा और घुटनों को कसा हुआ रखें । शरीर जमीन के समानान्तर होना चाहिए (चित्र ६८) ।

४. कुछ साँस लें और उच्छ्वसन के साथ हाथों और पैरों को भूमि पर से एक ही समय उठाते हुए सारे शरीर को एक फुट आगे झोंक दें (चित्र ६९, ७० तथा ७१) ।

एक फुट आगे जाने के बाद कुछ साँस लें, बाद में साँस छोड़ें, और पुनः आगे झपटें ।

५. चार या पाँच बार आगे झपटने की क्रिया करें । प्रत्येक बार इस क्रिया के अंत में ऊपर वर्णित स्थिति ३ की जैसी शरीर की स्थिति होनी चाहिए । शिकार करते समय मगर जिस तरह झपटता है, ठीक उसी का अनुकरण इस क्रिया में होता है । हर झोंक के बाद कुछ सेकंड के लिए गहरी साँस लेकर सुस्तायें ।

६. अब सारी क्रियाएँ उलटे क्रम से करें और मूल स्थिति–जहाँसे आपने प्रारंभ किया है–को पहुँचने तक, उच्छ्वसन के साथ एक ही समय १ फुट पीछे जायें ।

७. धड़ को जमीन पर टिकायें और आसन करें ।

परिणाम

यह आसन कलाइयों को सशक्त बनाता है, शरीर के आलस्य तथा मानसिक थकावट को दूर करता है । पूरे शरीर को नयी चेतना देता है और व्यक्ति को उत्साही और पुष्ट बनाता है । इन क्रियाओं से कलाइयों पर अत्यधिक दबाव पड़ने के कारण धीरे-धीरे इसका प्रयास करने की सलाह दी गयी है, अन्यथा व्यक्ति की कलाइयाँ मरोड़ जाने की संभावना है ।

३१. **भुजंगासन एक** एक* (**चित्र** ७३)

भुजंग का अर्थ है साँप । इस आसन में अच्छी तरह भूमि पर लेट जाएँ, नीचे की ओर मुख करें, धड़ से शरीर को ऊपर उठायें और आक्रमण करनेवाले साँप की तरह सिर पीछे ले जायें ।

विधि

१. जमीन पर अधोमुख लेट जायें, पैरों को एक साथ रखते हुए टाँग खींचें और सीधी रखें । घुटनों को कसा रखें और पैर की अंगुलियाँ सीधी रखें ।

२. बस्तिप्रदेश की बगल में हथेलियाँ रखें ।

३. साँस लें, जमीन पर हथेलियाँ दृढता से दबाएँ और धड़ को ऊपर खींचें (चित्र ७२) । दो साँस लें ।

४. साँस लें, भगास्थि के जमीन को छूनेतक धड़ से शरीर को ऊपर उठायें । इस स्थिति में टाँगों और हथेलियों पर भार देते हुए ठहरें (चित्र ७३) ।

५. गुदा को कूल्हे के स्नायु के साथ सिकोड़ें और जाँघों को कसें ।

६. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए करीब २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

७. श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ें और जमीन पर धड़ को रखें । दो या तीन बार इस आसन को दुहरायें और आराम करें ।

परिणाम

यह आसन पीड़ित मेरुदण्ड के लिए रामबाण ओषधि है और यदि मेरुदण्ड की चक्कियाँ किंचित् स्थलांतरित हों तो इस आसन के अभ्यास से वे मूल स्थिति में बिठायी जाती हैं। मेरुदण्ड प्रदेश ठीक किया जाता है और सीना चौड़ा होता है।

३२. ऊर्ध्वमुख श्वानासन एक* (चित्र ७४)

ऊर्ध्वमुख का अर्थ है मुख को ऊपर उठाना। श्वान का अर्थ है कुत्ता। आकाश में सिर उठाये और शरीर को लंबा ताने हुए कुत्ते के समान आकृति के होने से इस आसन का यह नाम है।

विधि

१. पेट के बल अधोमुख जमीन पर लेटें।

२. पैरों को एक फुट के अंतर पर रखें। पैर की अंगुलियाँ पीछे की ओर सीधी होनी चाहिए। अंगुलियों को आगे किये हुए कटि की बगल में भूमि पर हथेलियाँ रखें।

३. श्वास लें, धड़ और सिर ऊपर उठायें, पूरी तरह बाहों को तानें और घुटनों से जमीन का स्पर्श किये बिना सिर और धड़ को यथासंभव पीछे की ओर ले जायें।

४. घुटने कस कर टाँगें सीधी रखें, लेकिन घुटनों को जमीन पर न रखें। शरीर का भार केवल हथेलियों और पैर की अंगुलियों पर ही रहता है (चित्र ७४)।

५. मेरुदण्ड, जाँघ और पिंडली पूर्ण रूप में तने हुए और नितम्ब कसकर सिकुड़े हुए होने चाहिए। सीना आगे करें, गर्दन को अच्छी तरह तानें और यथासम्भव सिर को पीछे करें। बाहों के पीछे के भाग को भी ताने रहें।

६. गहरी साँस लेते हुए एकाध मिनट इस स्थिति में रहें।

७. कुहनियों को मोड़ें, तनाव को कम करें और जमीन पर आराम करें।

परिणाम

यह आसन मेरुदण्ड को नयी चेतना देता है। कड़ी पीठ से पीड़ितों के लिए विशेष रूप से इसका विधान है। घुटने की गठिया और कमर दर्द तथा मेरुदंड की स्थलांतरित या बढ़ी हुई चक्कियों से पीड़ित लोगों के लिए यह आसन लाभदायक है। यह आसन मेरुदण्ड को पुष्ट करता है और पीठ के दर्द को दूर करता है। सीने के फैलाव के कारण, फेफड़े (फुप्फुस) लचीले होते हैं। वस्तिप्रदेश में अच्छी तरह रक्त संचालित होता है और उसे स्वस्थ रखता है।

३३. अधोमुख श्वानासन पाँच* (चित्र ३५)

अधोमुख का अर्थ है मुख नीचे की ओर होना । श्वान का अर्थ है कुत्ता । सिर के साथ शरीर को ताने हुए तथा सामने की टाँगें नीचे और पीछे की टाँगें ऊपर उठाये हुए कुत्ते के समान होने से इस आसन का यह नाम है ।

विधि

१. मुख नीचे किये पेट के बल जमीन पर अच्छी तरह लेट जायें । पैरों को एक फुट की दूरी पर रखें ।

२. अंगुलियाँ सीधी और सिर की ओर संकेत करती हुई हथेलियों को सीने की बगल में रखें ।

३. श्वास छोड़ें और जमीन पर से धड़ उठायें, बाहों को सीधा तानें और सिर को पैरों की तरफ पीछे की ओर अंदर ले जायें और कुहनियों को सीधा रखते हुए तथा शरीर के पिछले भाग को (कमर, पीठ इ.) तानते हुए जमीन पर सिर का मध्यभाग (ब्रह्मरंध्र) रखें (पार्श्वदृश्य– चित्र ७५, पीछे का दृश्य– चित्र ७६) ।

४. टाँगें कड़ी रखें और घुटनों को मुड़ने न दें । और एड़ियों को नीचे जमीन की ओर खींचें । पैरों को एक दूसरे के समानान्तर और पैर की उंगलियों को सीधे तानते हुए एड़ियाँ और तलवे पूरी तरह जमीन पर टिके रहने चाहिए ।

५. गहरी साँस के साथ इस स्थिति में करीब एक मिनट तक रहें । बाद में उच्छ्वसन के साथ जमीन पर से सिर उठायें, धड़ को आगे करें और जमीन पर धीरे-धीरे शरीर लायें और सुस्तायें ।

परिणाम

जब कोई थक जाता है तब इस स्थिति में देर तक ठहरने से उसकी थकावट दूर होती है और खोयी हुई शक्ति प्राप्त हो जाती है । जो कठिन दौड़ के बाद थक जाते हैं उन धावकों के लिए यह आसन विशेष रूप में लाभप्रद है । थोडी दूर दौड़नेवालों की गति और पैरों में फुर्ती बढ़ेगी । यह आसन एड़ी के दर्द और अकड़ाहट को दूर करता है । टखनों को पुष्ट करता है और टाँगों को सुडौल बनाता है । इस आसन का अभ्यास स्कंधास्थि के भाग की कठोरता को दूर करने में मदद करता है, और कंधों के जोड़ की सूजन दूर होती है । उदर की मांसपेशियाँ मेरुदण्ड की ओर खिचती हैं और मजबूत होती हैं । उरःप्राचीर सीने के रिक्त प्रदेश की ओर उठाये जाने से हृदय की धड़कन की गति कम हो जाती है । यह आसन चित्त प्रफुल्लित करनेवाला है ।

जो शीर्षासन (चित्र १८४) करने से डरते हैं, इस आसन का अभ्यास आसानी से कर सकते हैं । इस आसन में धड़ नीचे किया जाता है, इस कारण वह पूरी तरह

फैलता है और हृदय पर किसी तरह के तनाव के बिना इस भाग में शुद्ध रक्त संचार किया जाता है । यह मस्तिष्क की कोशिकाओं को नयी चेतना देता है और थकावट दूर कर मस्तिष्क को सशक्त करता है ।

उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति भी यह आसन कर सकते हैं ।

३४. परिपूर्ण नावासन दो* (चित्र ७८)

परिपूर्ण का अर्थ है समस्त अथवा पूरा । डंडा युक्त नौका के समान आकृति होने से इसका यह नाम है ।

विधि

१. टाँगें सामने सीधी फैलाकर जमीन पर बैठें । अंगुलियाँ पैरों की ओर संकेत करती हुई हथेलियों को नितम्ब के पास जमीन पर रखें । हाथों को सीधा तानें और पीठ को सीधा रखें ।

३५. दण्डासन दो* **(चित्र ७७)** इस आसन को कहते हैं (दण्ड = छड़ी, डंडा) ।

२. साँस छोड़ें; धड़ को पीछे की ओर झुकायें और उसी समय टाँगें जमीन पर से उठायें और घुटने कसें तथा पैर की अंगुलियाँ आगे की ओर संकेत करती हुई, उन्हें सींकचे (poker) की तरह कड़ा रखें । केवल नितम्बों पर संतुलन रखा जाता है और मेरुदण्ड के किसी भी भाग को जमीन का स्पर्श नहीं करना चाहिए, जिससे टाँगें ६० से ६५ अंशतक कोण में रखी जा सकें। पैर सिर से ऊपर रहते हैं न कि अर्ध-नावासन की तरह समान स्तर पर होते हैं (चित्र ७९) ।

३. जमीन पर से हाथ उठायें और बाहों को जमीन के समानान्तर जाँघों के पास रखते हुए आगे तानें। कन्धों तथा हथेलियों को एक सतह पर होना चाहिए और हथेलियाँ एक दूसरे के सामने होनी चाहिए (चित्र ७८) ।

४. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए आधे मिनट तक इस आसन में रहें । धीरे धीरे करीब एक मिनट तक समय बढ़ा दें । २० सेकंड के अभ्यास के बाद व्यक्ति उसके परिणाम का अनुभव करता है ।

५. बाद में श्वास छोड़ें, हाथ नीचे ले आयें, पैर जमीन पर रखें और पीठ के बल लेटकर सुस्तायें ।

परिणाम

जो लोग वायु के कारण पेट का फूलना महसूस करते हैं और जिन्हें वायुविकार की शिकायत है उन्हें इससे आराम मिलता है । यह आसन कटि प्रदेश की स्थूलता न्यून करता है तथा गुर्दे को ठीक करता है ।

३७. अर्धनावासन दो* (चित्र ७९)

अर्ध का अर्थ है आधा। नाव का अर्थ नौका, जहाज और तरी है। नौका के आकार से मिलता-जुलता होने के कारण इसका यह नाम है।

विधि

१. जमीन पर बैठें। टाँगें आगे की ओर तानें और उन्हें सीधा रखें (चित्र ७७)।

२. दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फँसायें और सिर के पीछे गर्दन के कुछ ऊपर उन्हें रखें।

३. श्वास छोड़ें, धड़ को पीछे झुकायें और उसी समय घुटनों को कसें और पैर की अंगुलियों को सामने करते हुए जमीन पर से टाँगें उठायें। नितम्बों पर शरीर संतुलन का भार होता है और मेरुदण्ड के किसी भी भाग को जमीन का स्पर्श नहीं होने देना चाहिए (चित्र ७९)। व्यक्ति उदर की मांसपेशियों पर और पीठ के निम्न भाग में जकड़ का अनुभव करता है।

४. टाँगें जमीन से करीब ३० से ३५ अंशतक के कोण पर और सिर का कपाल पैरों की अंगुलियों की सीध में रखें।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए २० से ३० सेकंड तक इस आसन में रहें। इस स्थिति में एक मिनट तक रहना उदर की पुष्ट मांसपेशियों का निदर्शक है।

६. यद्यपि पूरक के बाद श्वास रोकने की प्रवृत्ति हमेशा होती है तथापि इस आसन के समय श्वास को न रोकें। यदि श्वास रोका जाता है तो उसका प्रभाव पेट की मांस-पेशियों पर मालूम पडता है, न कि उदर के अवयवों पर। इस आसन में गहरी साँस लेने से उदर की मांसपेशियों पर की पकड़ शिथिल हो जाएगी। इस पकड़ को बनाए रखने के लिए श्वास लें, श्वास छोड़ें और श्वास रोकें और बिना गहरी साँस लिए इस प्रक्रिया को दुहराते जाएँ। यह आसन न केवल उदर की मांसपेशियों को बल्कि उदर के अवयवों को व्यायाम देगा।

७. अर्ध नावासन और परिपूर्ण नावासन के अंतर को ध्यान में रखना चाहिए। दूसरे आसन (परिपूर्ण नावासन) में टाँगें अधिक ऊपर ले जायी जाती हैं और टाँगों तथा उदर के बीच का अंतर पहले आसन (अर्ध नावासन) की अपेक्षा कम होता है।

परिणाम

टाँगों की स्थितियों के कारण अर्ध नावासन और परिपूर्ण नावासन (चित्र ७८) के परिणामों में अन्तर होता है। परिपूर्ण नावासन का व्यायाम अँतड़ियों पर प्रभाव-कारी होता है जबकि अर्ध नावासन यकृत, पित्ताशय और प्लीहा को ठीक करता है।

आरम्भ में इस आसन के भार के सहने में पीठ अत्यंत असमर्थ होती है। जब इस

आसन में रहने की शक्ति प्राप्त होती है तो इससे सूचित होता है कि पीठ शक्ति प्राप्त कर रही है। कई दृष्टियों से कमजोर पीठ बाधक है। विशेष रूप से स्त्रियों के लिए; क्योंकि उन्हें शिशुधारण करने के लिए सबल पीठ की आवश्यकता होती है। मेरुदण्ड के किंचित् मुड़ाव के साथ इन दोनों आसनों का संयोग पीठ को बल प्राप्त कराने में सहायक होता है। यदि हम वृद्ध लोगों के बैठने, उठने और चलने के समय, जाने या अनजाने अपनी पीठ को अपने हाथों का सहारा देते हुए ध्यान से देखेंगे तो पीठ के निचले भाग के सबल होने के महत्त्व को हम समझ सकेंगें। इससे यह स्पष्ट है कि पीठ दुर्बल है और तनाव को सह नहीं सकती है। जबतक यह सशक्त है और आधार की आवश्यकता नहीं होती है तबतक व्यक्ति वयोवृद्ध होनेपर भी तारुण्य का अनुभव करता है। ये दो आसन पीठ में जीवन और स्फूर्ति लाते हैं और हमें वैभव पूर्ण तथा सुखपूर्ण बुढ़ापे की ओर जाने में समर्थ करते हैं।

३७. गोमुखासन दो* (चित्र ८०)

गो का अर्थ है गाय। मुख का अर्थ है मुँह। गाय के मुख के समान होने से गोमुख कहलाता है। इसका और एक अर्थ एक प्रकार का वाद्ययंत्र भी है जो गोमुख के समान एक सिरे पर पतला और दूसरे सिरे पर चौड़ा होता है।

विधि

१. टाँगें सामने सीधी तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. हथेलियों को जमीन पर रखें और बैठक को उठायें।

३. बायाँ घुटना पीछे मोड़ें और बायें पैर पर बैठें। जमीन पर से हाथ उठायें, दाहिनी टाँग उठायें और दाहिनी जाँघ बायीं पर रखें। नितम्ब उठायें और हाथों की मदद से टखने और एड़ियों के पीछे परस्पर स्पर्श करने तक निकट लायें।

४. पैर की अंगुलियाँ पीछे की ओर किये टखने स्थिर करें।

५. बायीं बाँह सिर के ऊपर उठायें, बायीं कुहनी मोड़ें और बायीं हथेली दोनों कंधों के बीच, गर्दन के पिछले भाग के नीचे रखें। दायीं बाँह नीचे करें, दायीं कुहनी मोड़ें, और दायाँ हाथ स्कन्धास्थियों के बीच उनके बराबर होने तक ऊपर उठायें। पीठ के पीछे कंधों के बीच हाथों को मिलायें (सामने का दृश्य : चित्र ८०, पीछे का दृश्य : चित्र ८१)।

६. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए ३० से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें। गर्दन और सिर सीधे रखें तथा बिलकुल सीध में देखें।

७. हाथों को छोड़ दें, टाँगें सीधी करें और उतने ही समय के लिए दायाँ और दायें की जगह बायाँ लाते हुए दूसरी ओर आसन को दुहराएँ। फिर पीठ के पीछे हाथों को छोड़ दें, टाँगें सीधी करें और सुस्तायें।

परिणाम

यह आसन टाँगों की ऐंठन को दूर करता है और उनकी मांसपेशियों को लचीला बनाता है। सीना चौड़ा होता है और पीठ सीधी होती है। स्कन्ध-जोड़ सहजता से घूमते हैं और कटिविस्तीर्ण प्रदेश (Latissimus dorsi) पूर्ण रूप से फैलता है।

३८. लोलासन छह* (चित्र ८३)

लोल का अर्थ है चंचल, इधर उधर घूमना, लोलक की तरह हिलना। इस आसन में टाँगों और पैरों को गोमुखासन की भाँति रखा जाता है (चित्र ८०)। नितम्बों की बगल में हाथों को जमीन पर रखा जाता है और केवल हाथों और कलाइयों के आधार पर शरीर को ऊपर उठाया जाता है। व्यक्ति अपना संतुलन आगे-पीछे होकर बनाये रखता है। इस हलचल में हिलता हुआ लोलक प्रतिविम्बित होता है।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. नितम्बों की बगल में हथेलियाँ रखें।

३. आसन को उठायें, दाहिने घुटने को पीछे की ओर मोड़ें, तलवे को बायें नितम्ब के नीचे रखें, और उस पर बैठ जायें।

४. बायें घुटने को पीछे करें और पुनः आसन उठाकर, दाहिने नितम्ब के नीचे बायें तलवे को रखें और उसपर बैठ जायें।

५. पैर एक दूसरे पर चढ़े होंगे जिससे दाहिनी नली बायीं पिण्डली के ऊपर हो। पैर की अंगुलियों को पीछे की ओर किये रखें (चित्र ८२)।

६. कुछ साँस लें। साँस छोड़ें, धड़ तथा टाँगों को जमीन से ऊपर उठायें। बाहों को फैलाये हुए, हाथों पर संतुलन बनाये रखें (चित्र ८३)। धीरे-धीरे धड़ तथा टाँगों को आगे-पीछे हिलायें। स्वाभाविक रूप से श्वास लें।

७. जमीन पर विश्राम करें और टाँगों को खोल दें।

८. दूसरी ओर (उलटे क्रम में) टाँगों को परस्पर गुथाएँ और हाथों पर संतुलन बनाये रखें।

९. जबतक संभव हो, संतुलन बनाये रखें।

परिणाम

यह आसन कलाइयों, हाथों, पीठ की मांसपेशियों तथा उदर के अवयवों को पुष्ट करता है। इस आसन से टाँगों की मांसपेशियाँ लचीली होती हैं और बाहों की छोटी मांसपेशियाँ विकसित तथा ठीक होती हैं।

३९. सिद्धासन एक* (चित्र ८४)

"सिद्ध का अर्थ दिव्यांश पुरुष जो अत्यंत शुद्ध, पवित्र होता है और सिद्धि याने अलौकिक दैवी शक्ति । सिद्ध पुरुष इस दैवी सामर्थ्य का अधिकारी होता है । सिद्ध का अर्थ दिव्य ज्ञानयुक्त ऋषि, ज्ञानी या देवदूत भी है।

"सिद्ध कहा करते हैं कि जिस प्रकार नियमों में अहिंसा और यमों में परिमित आहार अत्यंत महत्त्वपूर्ण है उसी प्रकार आसनों में सिद्धासन है।

"व्यक्ति को ८४ लाख आसनों में से सिद्धासन का सदा अभ्यास करना चाहिए। यह ७२,००० नाड़ियों को शुद्ध करता है । (नाड़ी मनुष्य के शरीर में मार्ग है जिससे ओजस्विनी ऊर्जा प्रवाहित होती है ।)

"योगी आत्मा पर ध्यान और परिमित आहार करते हुए यदि १२ वर्ष सिद्धासन का अभ्यास करता है तो योगसिद्धि को प्राप्त होता है। (आत्मा का अर्थ जीवात्मा और परमात्मा है । सिद्धि अलौकिक शक्ति है ।)

"जब सिद्धासन पर प्रभुत्व प्राप्त किया गया है तो उन्मनी अवस्था– जो प्रकाश देती है – का बिना प्रयास के एवं स्वाभाविकतया अनुसरण किया जाता है ।"

आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं जो चौथी अवस्था में समाविष्ट हैं । वे हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया । "पहली अवस्था जागृति की है जहाँ आत्मा को स्थूल दृष्टिगोचर पदार्थमय सामान्य जगत् का बोध होता है । यह स्थूल पदार्थ का उपभोग करता है । यहाँ शरीर के परावलंबित्व की प्रधानता है । दूसरी अवस्था स्वप्न की है, जहाँ आत्मा अपनी जाग्रत अवस्था के भौतिक जगत् से अपने लिए एक नये प्रकार के विश्व का निर्माण कर अतिसूक्ष्म का आनंद लेती है । कहते हैं कि आत्मा शरीर के बंधनों से मुक्त होकर स्वच्छन्दता से विचरण करती है । तीसरी अवस्था गहरी नींद (निद्रा) की है, जहाँ हमें न स्वप्न है, न इच्छाएँ । इसे सुषुप्ति कहते हैं । कहा जाता है कि इस अवस्था में आत्मा थोड़े समय के लिए ब्रह्म से एकरूप हो जाती है और परम सुख का आनंद प्राप्त करती है । हम गहरी नींद में सभी प्रकार की इच्छाओं से ऊपर उठे होते हैं और आत्मक्लेश (दु:ख) से मुक्त होते हैं । यद्यपि आत्मा के लिए मांस का बंधन डाला गया है तथापि वह मूलरूप में दिव्य है । कहा जाता है कि नींद में आत्मा शरीर के बंधनों (कड़ी) से मुक्त हो जाती है और अपनी स्वाभाविक अवस्था को पुन: प्राप्त करती है । परन्तु इस (अर्थात् चिर नि:स्वप्न निद्रा) को मात्र अचेतनता ही भ्रम से समझ लिया जाये – इसकी भी संभावना है ... स्वप्नरहित निद्रा यह उच्चतम अवस्था नहीं है, प्रत्युत एक दूसरी ही, आत्मा की चौथी अवस्था शुद्ध अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी चेतना की (चैतन्य की) है । जहाँ आन्तरिक या बाह्य विषयों का ज्ञान नहीं होता वही उच्चतम अवस्था है । आत्मा गहरी निद्रा में ब्रह्म से पूर्ण मिलकर एकात्मभाव के परिवर्तनपूर्ण जीवन

से अत्यन्त दूरस्थ प्रदेश में निवास करती है । तुरीयावस्था गहरी निद्रा की स्थिति में विशिष्ट नकारात्मक पहलुओं का विधेयात्मक स्वरूप सामने लाती है ।" श्री. राधाकृष्णन् ने "उपनिषद्-दर्शन" (Philosophy of the Upanishads) में कहा है । यह चौथी अवस्था माण्डुक्य उपनिषद् में अधोलिखित रूप में वर्णित है : "विद्वान् कहते हैं कि यह चौथी अवस्था न तो आत्मचेतना संबंधी अनुभव है, और न बाह्य पदार्थ विषयक अनुभव है । और न इन दोनों के मध्य के अनुभव की अवस्था है और न यह चैतन्य या न अचैतन्य की अभावात्मक अवस्था ही है । यह न तो इन्द्रियों का ज्ञान है और न संबंधी ज्ञान है, यहाँतक कि यह अनुमान या तर्क-सिद्ध ज्ञान भी नहीं है । चौथी अवस्था इन्द्रियातीत, ज्ञानातीत एवं सभी प्रकार से वर्णनातीत है । यह शुद्ध अर्थदीप अद्वैत चैतन्य का अनुभव है जहाँ बाह्य जगत् और उसके अनेकत्व (बाहुल्य) संबंधी ज्ञान एवं सजगता का उन्मूलन किया गया है । यह सर्वोत्तम है । एकमेव अद्वितीय है । यही आत्मा है । इसे स्वयं (अकेले) जानो ।"

"राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोमनी, अमरत्व, ध्यान, शून्याशून्य (रिक्त तथा अरिक्त भी), परमपद (सर्वोच्च अवस्था), अमनस्क जीवन्मुक्ति (मानसिक व्यापार का अस्थिर दशा में होना), अद्वैत (द्वैत का अभाव), निरालम्ब (आधाररहित), निरंजन (शुद्ध), जीवन्मुक्ति (मुक्तावस्था), सहजावस्था (स्वाभाविक स्थिति) तथा तुरीया (शब्दार्थ रूप में चौथी अवस्था) ये सभी एक ही स्थिति के अभिधान हैं । जिस प्रकार पानी में फेंका गया नमक का एक टुकड़ा पानी में मिल जाता है और उससे एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार मन और आत्मा के मध्य जो मिलन है उसे समाधि कहते हैं । जहाँ प्राण और मन तद्रूप हो जाते हैं तब लय (एकरूपता) के उदय की इस स्थिति को समाधि कहते हैं ।" — हठयोग प्रदीपिका, अध्याय ४ — श्लोक ३ से ६ ।

सिद्ध के समान आसन नहीं है, केवल के समान कुम्भक नहीं है, खेचरी के समान मुद्रा नहीं है और नाद के समान लय (मन की लयता) नहीं है ।

(खेचरी मुद्रा का शाब्दिक अर्थ है अन्तरिक्ष के मध्य विचरण करना ।) घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय के २५ से २८ श्लोकों में यह इस प्रकार वर्णित है : "जिह्वा के नीचे का स्नायु काटें और जिह्वा को निरन्तर घुमायें : ताजे मक्खन से उसे रगड़ें और लोहे के उपकरण से बाहर की ओर (उसे लम्बा करने के लिए) खींचें । इस प्रकार सतत अभ्यास करने से जिह्वा लम्बी हो जाती है और जब यह दोनों भौंहों के बीच के स्थान पर पहुँचती है, तब खेचरी को सिद्ध किया जाता है । बाद में (जिह्वा के लम्बे होने पर) उसे ऊपर पीछे की ओर घुमाने का अभ्यास करें जिससे जिह्वा तालू को छुए, उतनी लम्बाई तक कि मुँह में खुले नाक के छेदोंतक पहुँचे । उन छिद्रों को जिह्वा से बन्द करें (इस प्रकार श्वसन को रोककर), भौंहों के मध्य

भागपर टकटकी लगाएँ। इसे खेचरी कहते हैं। इस अभ्यास से न मूर्च्छा, न भूख, न प्यास, न सुस्ती आती है। न रोग होता है न नाश, और न मृत्यु आती है। शरीर दिव्य (पवित्र) हो जाता है।"

(नाद आन्तरिक गुप्त ध्वनि है। चौथे अध्याय के श्लोक ७९ से १०१ तक विविध उपमाओं के साथ अधिक विशद रूप से इसका वर्णन है। मन के सन्मार्ग से विचलन पर नियंत्रण– इस प्रकार योग की परिभाषा की गयी है। मन को वश में करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम किसी वस्तु पर ध्यान युक्त (केन्द्रित) किया जाए, बाद में उस वस्तु पर से ध्यान धीरे-धीरे हटाया जाता है और व्यक्ति के अपने स्वयं में देखने के लिए लगाया जाता है। यही है जहाँ गुप्त (अप्रत्यक्ष) अन्तर्नाद पर योगी को ध्यान केन्द्रित करने के लिए कहा गया है। 'मन सर्प के समान है, नाद सुनने पर अपनी सारी अस्थिरता भुलाकर वह अन्यत्र कहीं नहीं भागता।' धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों नाद लुप्त होता जाता है, ज्यों-त्यों मन भी उसके साथ गुप्त हो जाता है। "लकड़ी में लगी हुई अग्नि उसके साथ ही बुझ जाती है (पूरी तरह जल जाने के बाद); और इसी प्रकार मन भी नाद के साथ रममाण होता हुआ उसीके साथ गुप्त हो जाता है।")

विधि

१. सामने टाँगों को सीधे फैलाये हुए जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायीं टाँग को घुटने से मोड़ें। बायें पैर को हाथों से पकड़ें, मूलाधार के पास एड़ी रखें और बायें पैर के तलवे को दाहिनी जाँघ के सामने ठहरायें।

३. अब दाहिनी टाँग को घुटने से मोड़ें और दाहिनी एड़ी को जघनास्थि (Pubic bone) के सामने रखकर दाहिने पैर को बायीं नली पर रखें।

४. दाहिने पैर के तलवे को बायीं टाँग की पिण्डली और जाँघ के बीच रखें।

५. एड़ियों पर शरीर को स्थिर न करें।

६. बाहों को सामने फैलायें और घुटनों पर हाथों के पृष्ठभाग स्थिर करें जिससे हथेलियाँ ऊपर की ओर खुलें। अंगूठों और तर्जनियों को मिलायें तथा दूसरी अंगुलियों को फैलायें (चित्र ८४)।

७. इस स्थिति में पीठ, गर्दन और सिर को सीधा रखते हुए तथा अन्तर्नयन दृष्टि किये हुए – मानो नाक के अग्रभाग पर दृष्टि लगायी है, जितनी देर रह सकें, रहें।

८. पैरों को खोल दें और थोड़े समय के लिए शिथिल होने दें। बाद में दाहिनी रएड़ी को पहले मूलाधार के पास और बायें पैर को ऊपर बतलायी गयी विधि के अनुसा दाहिनी नली पर रखकर उतने ही समय के लिए इस स्थिति को दुहरायें।

परिणाम

यह आसन पुरोनितम्बीय प्रदेश को स्वस्थ रखता है। आरामदेह आसनों में पद्-मासन की तरह यह आसन अत्यंत आरामदेह आसन है। बैठने की स्थिति में शरीर होने से विश्रांति रहती है, जब कि टाँगों की विपरीत (उलट-पलट) स्थिति और सीधी पीठ मन को सचेत एवं चुस्त रखती है। प्राणायाम के अभ्यास तथा ध्यान के लिए भी इस आसन को योग्य बतलाया गया है।

केवल शारीरिक दृष्टिकोण से भी, यह आसन घुटनों और नलियों की सख्ती को ठीक करने के लिए अच्छा है। इस आसन से कटिप्रदेश तथा उदर में रक्त प्रवाहित होता है और यह आसन मेरुदण्ड के निचले प्रदेश तथा उदर के अवयवों को ठीक करता है।

४०. वीरासन एक* **(चित्र ८९)**

वीर का अर्थ पराक्रमी पुरुष, योद्धा, वीर है। यह बैठने का आसन घुटनों को एक-साथ रख, पैरों को फैलाकर और उन्हें नितम्बों की बगल में स्थिर करते हुए किया जाता है।

यह आसन ध्यान तथा प्राणायाम के लिए अच्छा है।

विधि

१. जमीन पर घुटने टेकें। घुटनों को एकसाथ रखें और पैरों को लगभग १८ इंच फैलायें।

२. नितम्बों को जमीन पर स्थिर करें परंतु शरीर को पैरों पर स्थिर न करें। पैरों को जाँघों की बगल में, प्रत्येक पिण्डली का अंदर का भाग अपनी सम्बन्धित जाँघ के बाहर के भाग को छूता हुआ रखें। पैरों की अंगुलियों को पीछे की ओर किये और जमीन को छूते हुए रखें। हथेलियों को ऊपर कर और अंगूठों तथा तर्जनियों के अग्रभाग को मिलाकर कलाइयों को घुटनों पर रखें। दूसरी अंगुलियों को फैलाये रखें। पीठ को सीधा तानें (पीछे का दृश्य : चित्र ८८, सामने का दृश्य : चित्र ८९)।

३. गहरी साँस लेते हुए इस स्थिति में जितना समय रह सकें रहें।

४. बाद में कुछ समय के लिए हथेलियों को घुटनों पर स्थिर करें (पार्श्व दृश्य : चित्र ९०)।

५. अब अंगुलियों को आपस में गुँथाएँ और हथेलियों को ऊपर किये बाहों को सिर के ऊपर सीधे तानें (चित्र ९१)।

६. गहरी साँस लेते हुए कुछ मिनट इस स्थिति में रहें।

७. श्वास छोड़ें, अंगुलियों के गुँथन को शिथिल करें, हथेलियों को तलवों पर रखें, आगे झुकें और चिबुक को घुटनों पर स्थिर करें (चित्र ९२)।

८. स्वाभाविक रूप से साँस लेते हुए कुछ मिनट इस स्थिति में रहें ।

९. श्वास छोड़ें, धड़ को ऊपर उठायें, पैरों को आगे लायें और शिथिल होने दें (सुस्तायें) ।

१०. यदि आप ऊपर बतलायी गयी विधि से आसन करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, तो पैरों को एक दूसरे पर रखकर और नितम्बों को उन पर स्थिर कर आसन करने की कोशिश करें (चित्र ८५) । धीरे-धीरे पैर की अंगुलियों को आगे की ओर पृथक् करें, पैरों को पृथक् करें (चित्र ८६ तथा ८७) और उन्हें जाँघों के बाहर स्थिर करने के लिए लाएँ । तब थोड़े समय में नितम्ब जमीन पर ठीक तरह से स्थिर होंगे और शरीर पैरों पर स्थिर नहीं होगा ।

परिणाम

यह आसन घुटनों में आमवात की पीड़ा और 'गाउट' को दूर करता है और यह चपटे पैर के लिए भी अच्छा है । नलियों और पैरों के तानने के कारण उचित मेहराब बनायी जाए – इसके लिए लम्बी अवधि लगती है और कई महीने इस आसन का अभ्यास प्रतिदिन कुछ मिनट करना आवश्यक है । जिनकी एड़ियों में दर्द है या जो पार्ष्णिका कंट की वृद्धि से पीड़ित हैं, उन्हें वेदना से मुक्ति मिलेगी और कंट धीरे-धीरे लुप्त हो जायेगा ।

यह आसन भोजन के बाद तत्काल भी किया जा सकता है और यह पेट के भारीपन को दूर करेगा ।

४१. सुप्त वीरासन दो* **(चित्र ९९)**

सुप्त का अर्थ लेटना है । व्यक्ति इस आसन में जमीन का आश्रय लेता है और सिर के पीछे बाँहों को तानता (फैलाता) है ।

विधि

१. वीरासन में बैठें (चित्र ८९) ।

२. श्वास छोड़ें, धड़ का पृष्ठभाग झुकायें और कुहनियों को एक-एक कर जमीन का सहारा लेने दें (चित्र ९३) ।

३. एक के बाद एक बाँहों को फैलाकर कुहनियों का भार दूर करें ।

४. सर्वप्रथम जमीन पर सिर के मुकुट को स्थिर करें (चित्र ९४) । धीरे-धीरे सिर के पृष्ठभाग को और बाद में पीठ को जमीन के सहारे ले जायें (चित्र ९५) । बाँहों को सिर के ऊपर लें और उन्हें सीधे फैलायें (चित्र ९६) । गहरी साँस लेते हुए इस स्थिति में जितनी देर रह सकें रहें । बाद में बाँहों को धड़ की बगल में ले जाएँ, कुहनियों को जमीन पर दबायें और श्वास छोड़ते हुए पुनः बैठ जाएँ ।

५. हाथों को सिर के ऊपर फैलाया जा सकता है या जाँघों की बगल में रखा जा

सकता है । जब वे सिर के ऊपर फैले हुए होते हैं तब स्कंधास्थि को जमीन पर से न उठायें ।

६. नौसिखुए घुटनों को पृथक् रख सकते हैं ।

परिणाम

यह आसन उदर के अवयव तथा बस्तिप्रदेश को तानता है । जिनकी टाँगों में दर्द है वे इस स्थिति में १० से १५ मिनट रहने पर वेदना मुक्त होंगे । यह आसन पहलवानों के लिए और जिन्हें घंटों चलना या खड़े रहना पड़ता है उनके लिए उपयोगी बतलाया गया है । इसे भोजन के बाद किया जा सकता है और यदि रात्रि में सोने के पहले किया गया तो दूसरे दिन सुबह टाँगें विश्रान्ति का अनुभव करेंगी, टाँगों को आराम मालूम होगा । मेरे अनेकों शिष्यों ने जो राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी (National Defence Academy) के छात्र रहे, लम्बे मार्ग-संचलनों (Route Marches) के बाद सर्वांगासन १ (चित्र २२३) के साथ इस आसन को कर बहुत आराम प्राप्त किया ।

४२. पर्यंकासन दो* (चित्र ९७)

पर्यंक का अर्थ बिस्तर, कोच या सोफा है । यह आसन सुप्त वीरासन (चित्र ९६) का अगला क्रम है । इसमें शरीर कोच के सदृश होता है इसलिए इसे ऐसा कहा गया है ।

विधि

१. वीरासन में बैठें (चित्र ८९) ।

२. श्वास छोड़ें और पीठ की तरफ झुकें (चित्र ९३) । केवल सिर के मुकुट को जमीन पर स्थित कर पीठ की मेहराब ऊपर बनाते हुए गर्दन और छाती को उठायें (चित्र ९४) । धड़ का कोई हिस्सा जमीन पर नहीं होना चाहिए ।

३. कुहनी पर बाँहों को मोड़ें । दाहिने हाथ से कुहनी के पास बायीं बाँह के ऊपरी भाग को और बायें हाथ से कुहनी के पास दाहिनी बाँह के ऊपरी भाग को पकड़ें। सिर के पीछे जमीन पर तहियायी हुई बाँहों को स्थिर करें (चित्र ९७) ।

४. समान रूप से साँस लेते हुई इस स्थिति में एक मिनट ठहरें ।

५. श्वास लें, जमीन पर धड़ और गर्दन को टिकाएँ, हाथों को छोड़ दें और वीरासन में बैठें (चित्र ८९) ।

६. बाद में टाँगों को एक-एक कर सीधा करें, पीठ के बल लेट जाएँ और विश्रांति लें ।

परिणाम

मत्स्यासन (चित्र ११३) और पर्यंकासन के समान पृष्ठीय प्रदेश पूर्णतया विस्तृत किया जाता है जिससे फुप्फुस अच्छी तरह फैल जाते हैं । गर्दन के स्नायु तन जाते हैं और गलग्रंथि तथा परावटुग्रंथि उत्तेजित हो जाती है, जिससे वे ठीक तरह काम करें । जो मत्स्यासन करने में असमर्थ हैं वे इस आसन से वही लाभ उठा सकते हैं ।

वीरासन (चित्र ८९) तथा सुप्त वीरासन (चित्र ९६) किसी भी समय, यहाँ-तक कि भोजन के बाद तत्काल किये जा सकते हैं, परंतु पर्यङ्कासन भोजन के उपरान्त तत्काल नहीं किया जा सकता है ।

४३. भेकासन (मंडूकासन भी कहते हैं) चार* (चित्र १००)

भेक का अर्थ मेंढक है । इस आसन की क्रिया मेंढक के समान होती है इसलिए यह नाम है ।

विधि

१. पेट के बल जमीन पर नीचे मुँह किये पूरे लम्बे पड़ जाएँ । बाँहों को पीछे फैला दें ।

२. श्वास छोड़ें, घुटनों को मोड़ें और एड़ियों को नितम्बों की ओर लायें । दाहिने हाथ से दाहिने पैर का तलवा और बायें हाथ से बायें पैर का तलवा पकड़ें (चित्र ९८) । दो श्वास लें । श्वास छोड़ें, जमीन से सिर और धड़ उठाएँ और ऊपर देखें ।

३. अब हाथों को घुमाएँ जिससे हथेलियाँ पैर के ऊपरी हिस्से को छुएँ और पैर के अंगूठे तथा अंगुलियाँ सिर की ओर लक्ष्य करें (चित्र ९९) । हाथों को और नीचे ले जाएँ और पैर की अंगुलियों तथा एड़ियों को जमीन के और अधिक समीप लायें । बाँहों को कलाइयों से कुहनियों तक लम्बरूप में रखें (चित्र १००) । जब घुटने और टखने लचकीले हो जाएँगे तब एड़ियों को जमीन पर सटाया जा सकता है ।

४. इस स्थिति में १५ से ३० सेकंड रहें, परंतु श्वास न रोकें । श्वास छोड़ें, पैरों से हथेलियों को हटा लें, टाँगों को तानें और विश्रांति लें ।

परिणाम

इस व्यायाम से उदर के अवयवों को लाभ पहुँचता है । कारण, वे जमीन पर दबाये जाते हैं । घुटने मजबूत होते हैं और यह आसन गठिया (गाउट) के कारण होनेवाले घुटनों के जोड़ के दर्द को दूर करता है । घुटनों के जोड़ की किसी प्रकार

की आंतरिक अव्यवस्था को भी यह आसन अच्छा करता है। पैरों पर हाथों का दबाव अच्छी-सी मेहराब बनाता है और चौड़े पैर को ठीक करता है। यह मोच खायी नलियों को अच्छा करता है और उन्हें मजबूत बनाता है। यह आसन एड़ियों के दर्द को भी दूर करता है। इस आसन के नियमित अभ्यास से एड़ियाँ मुलायम होती हैं। जो व्यक्ति एड़ियों में पार्ष्णिका कंटक रोग से पीडित हैं वे इससे और उसी प्रकार वीरासन (चित्र ८९) से लाभ उठा सकते हैं।

४४. बद्ध कोणासन तीन* (चित्र १०२)

बद्ध का अर्थ पकड़ा गया, बँधा हुआ है। कोण का अर्थ कोना है। इस आसन में, जमीन पर बैठें, एड़ियों को मूलाधार के पास लाएँ, पैरों को पकड़ें और जबतक दोनों ओर घुटने जमीन को छूने न लगें तबतक जाँघों को फैलाएँ। इसी तरह मोची बैठा करते हैं।

विधि

१. सामने सीधे टाँगों को फैलाकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटनों को मोड़ें और पैरों को धड़ के समीप लाएँ।

३. पैरों के तलवे और एड़ियों को एकसाथ लाएँ और अंगुलियों के पास पैरों को पकड़कर एड़ियों को मूलाधार के पास लाएँ। दोनों पैरों के बाहर के भाग जमीन पर स्थिर होने और एड़ियों के पिछले हिस्से मूलाधार को छूने चाहिए।

४. जाँघों को फैलाएँ और जबतक घुटने जमीन को छूने न लगें तबतक उन्हें नीचे करें।

५. हाथ की अंगुलियों को परस्पर गुथाएँ, पैरों को मजबूती से पकड़ें, रीढ़ को सीधा तानें और आगे, सीधे या नाक के अग्रभाग को एकटक देखें (चित्र १०१)। इस स्थिति में जितनी देर हो सके, रहें।

६. कुहनियों को जाँघों पर रखें और उन्हें नीचे दबाएँ। श्वास छोड़ें, आगे झुकें, जमीन पर पहले सिर, बाद में नाक और अंत में चिबुक को स्थिर करें (चित्र १०२)। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक इस आसन में रहें।

७. श्वास लें, जमीन पर से धड़ उठाएँ और ५ की स्थिति में वापस आ जाएँ (चित्र १०१)।

८. तब पैरों को मुक्त कर दें, टाँगों को सीधा कर लें और सुस्ताएँ।

परिणाम

मूत्र रोग से पीड़ितों के लिए विशेष रूप में इस आसन की सिफारिश की गयी है। यह आसन बस्तिप्रदेश, उदर और पीठ में भरपूर रक्त की पूर्ति करता है और

उन्हें प्रोत्साहित करता है । यह गुर्दा, शिश्न की ग्रंथियाँ तथा मूत्राशय को स्वस्थ रखता है । यह बात अच्छी तरह जानी गयी है कि मोचियों में मूत्र प्रदेशीय रोग बिरले ही पाये गये हैं । इसका कारण यह है कि वे दिन भर इसी आसन में बैठा करते हैं ।

यह कूल्हे की पीड़ा और हार्निया को रोकता है । यदि नियमित रूप से इसका अभ्यास किया गया तो यह अण्डकोष की वेदना और भारीपन को हटाता है ।

यह आसन स्त्रियों के लिए वरदान है । सर्वांगासन १ (चित्र २२३) तथा उसकी माला (चित्र २३५ से २७१) सहित यह आसन मासिक ऋतुस्राव की अनियमितता को रोकता है और व्यवस्थित रूप से कार्य करने में अंडाशय की सहायता करता है । यह देखा गया है कि गर्भवती स्त्रियाँ जो इस आसन में प्रतिदिन कुछ मिनट बैठा करती हैं, उन्हें प्रसूति के समय अत्यल्प वेदना होती है और वे शिराओं के सूजन से मुक्त हो जाती हैं । (डॉ. ग्रॅण्टली डिक रीड ने अपनी पुस्तक 'चाइल्डबर्थ विदाउट फिअर' में गर्भवती महिलाओं के लिये इस आसन की सिफारिश की है ।)

प्राणायाम का अभ्यास और ध्यान के लिए पद्मासन (चित्र १०४) तथा वीरासन (चित्र ८९) सहित इस आसन को उपयुक्त बतलाया गया है । जब इस आसन में ध्यान के लिए बैठते हैं तब हथेलियाँ सीने के सामने तहियायी हुई (चित्र १०३) होनी चाहिए परंतु पीठ को सीधा किये इस आसन को करने के लिए अभ्यास की जरूरत है । यह आसन भोजन के बाद भी निर्भयतापूर्वक किया जा सकता है, जबतक जमीनपर सिर न टिके ।

४५. पद्मासन चार* (चित्र १०४)

पद्म का अर्थ कमल है । यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी आसनों में से कमल के समान शारीरिक स्थिति का एक आसन है । यह आसन ध्यान के लिए है और प्रायः बुद्ध का चित्र इसी में बनाया गया है ।

'हठयोग प्रदीपिका' के प्रथम अध्याय का ४८ वाँ श्लोक इस आसन का तथा इस आसन में बैठकर श्वासनियंत्रण के अभ्यास का वर्णन इस प्रकार करता है : "पद्मासन में बैठकर हथेलियों को एक दूसरे पर रखकर सीने पर चिबुक को मजबूती से स्थिर करें और ब्रह्म का चिंतन करते हुए गुदा को बारबार सिकोड़ें और अपान को ऊपर उठाएँ; इसी प्रकार गले का संकुचन करते हुए प्राण को नीचे दबाएँ । इससे कुंडलिनी (जो इस प्रक्रिया से जाग उठती है) के द्वारा असामान्य ज्ञान प्राप्त होता है ।"

कुंडलिनी शरीर में दिव्य लौकिक ऊर्जा है । यह रीढ़ स्तंभ के आधार पर अत्यंत छोटे शरीर-केन्द्र में कुंडली मारकर सोये हुए सर्प का एक प्रतीक है ।

इस गुप्त ऊर्जा को जगाना आवश्यक है और उसे सुषुम्ना नाडी-जिस मार्ग से ओजस्वी ऊर्जा जाती है – तथा षट्चक्र – जो शरीर-यंत्र के संतुलन चक्र होते हैं और शरीर के सूक्ष्म केन्द्र होते हैं – के द्वारा मेरुदण्ड से मस्तिष्क तक ले जाना चाहिए । आर्थर एवॉलन, सर ज़ॉन वुडरफ (Arthur Avalon, Sir John Woodroffe) की सर्पशक्ति (The Serpent Power) नामक पुस्तक में कुंडलिनी जागृत करने के संबंध में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है ।

यह आधारभूत शारीरिक आसनों में से एक है और शीर्षासन तथा सर्वांगासन के प्रकारों में प्राय: प्रयुक्त होता है ।

विधि

१. टाँगें सीधी किये जमीन पर बैठें (चित्र ७७) ।

२. घुटने के पास दाहिनी टाँग मोड़ें, हाथों से दाहिना पैर पकड़ें और इसे बायीं जाँघ के मूल में रखें जिससे दाहिनी एड़ी नाभि के समीप हो ।

३. अब बायीं टाँग मोड़ें और हाथों से बायाँ पैर पकड़कर दाहिनी जाँघ के मूल में रखें, जिससे बायीं एड़ी नाभि के पास हो । पैरों की एड़ियाँ ऊपर की ओर मुड़ी होनी चाहिए । यह पद्मासन की मूल स्थिति है (चित्र १०४) ।

४. जो लोग जमीन पर बैठा नहीं करते, उनके घुटने बिरले ही लचीले होते हैं। प्रारंभ में वे घुटनों के पास अत्यंत कष्ट देनेवाली वेदना का अनुभव करेंगे। कठिन एवं सतत प्रयास से वेदना धीरे-धीरे जाती रहेगी और तब वे इस आसन में काफी देर तक आसानी से रह सकेंगे ।

५. मूल से गर्दन तक रीढ़ सीधी रहनी चाहिए । बाहें फैली होनी चाहिए और दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर और बायाँ हाथ बायें घुटने पर रखा हुआ होना चाहिए । तर्जनियाँ और अंगूठे मुड़े हों और एक दूसरे को छूते हों। जहाँ दोनों पैर एक दूसरे पर होते हैं वहाँ बीच में हथेली पर हथेली रखें, यह हाथों के रखने का दूसरा प्रकार है (चित्र १०५)।

६. दायीं जाँघ पर बायाँ पैर और बायीं जाँघ पर दाहिना पैर रखकर टाँगों की स्थिति को बदलें । यह टाँगों को समान रूप से विकसित करेगा ।

परिणाम

घुटनों का दर्द दूर होने के बाद, आरामदेह आसनों में से एक पद्मासन है । शरीर बठने के आसन में होने से बिना झुके हुए आराम की स्थिति में होता है । टाँगों के परस्पर एक दूसरे के ऊपर होने की स्थिति और सीधी पीठ मन को सचेत और सतर्क रखती है । इसीलिए प्राणायाम (श्वासनियंत्रण) के अभ्यास के लिए सिफा-रिश किये गये आसनों में से यह एक है ।

केवल शारीरिक दृष्टिकोण से भी यह आसन घुटनों और नालियों की कठोरता दूर करने के लिए उपयुक्त है। चूंकि रक्त को कटिप्रदेश और उदर में संचरित किया जाता है, रीढ़ और उदर के अवयव ठीक होते हैं।

४६. षण्मुखी मुद्रा चार* **(चित्र १०६)**

षट् का अर्थ छह और मुख का अर्थ मुँह है। छह मुखवाले युद्ध के देवता का नाम षण्मुख है, इन्हें कार्तिकेय भी कहते हैं। मुद्रा का अर्थ मोहर या बंद करना है।

इस आसन को पराङमुखी (अन्तर्मुखी) मुद्रा, शांभवी मुद्रा (कार्तिकेय के पिता, शिव का नाम शंभु है) भी कहते हैं। शिव के संतान शांभव हैं इस कारण इसे योनि मुद्रा भी कहते हैं। योनि का अर्थ गर्भस्थान, स्रोत है। इसे मुद्रा इसलिए भी कहते हैं कि साधक अपने अंतर में अपने अस्तित्व के उसी स्रोत को ढूँढ़ने के लिए देखता है।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)। रीढ़ सीधी और सिर के समान स्तर पर रखें।

२. हाथों को चेहेरे के सामने उठाएँ। कुहनियों को कंधों के समान स्तर तक उठाएँ, अंगूठों को कानों के छेद में (कर्णकुहरों में) रखें जिससे बाहर की आवाज कानों में न आए। यदि अंगूठों से कर्णपुटों में पीड़ा होती है तो कान की लरों (बाहरी कान के द्वार पर की छोटी ऊँचाई) को कर्णपुटों में ले जाएँ और उन्हें अंगूठों से दबाएँ।

३. पलक बंद करें, परंतु आँखें ऊपर घुमाएँ। तर्जनियों और मध्यमाओं (अंगुलियों) को बंद पलकों पर रखें जिससे अँगुली की केवल पहली दो पोरें पूरी आँख की पुतली पर रहें। परंतु कनीनिका से आँखों की पुतली को दबाएँ। पलकों को मध्यमा से नीचे खींचें। पलकों के ऊपरी भाग को तर्जनियों से ऊपर की ओर भौंहों के नीचे ढकेलें। दोनों कोनों पर आँखों को धीरे से दबाएँ।

४. कानों और आँखों पर समान दबाव बनाये रखना चाहिए।

५. अनामिका के अग्रभाग से दोनों नासापुटों को समान रूप से दबाएँ। इस प्रकार नाक के छिद्र धीमे, गहरे, निश्चित, लयपूर्ण और सूक्ष्म श्वास के लिए छोटे हो जाएँगे।

६. कनिष्ठिकाओं को ऊपर के होंठ पर रखें, जहाँ वे श्वास की लयपूर्ण गति को नियंत्रित कर सकती हैं।

७. इस आसन में दृष्टि को अन्दर स्थिर करके आप जितनी देर रह सकें, रहें (चित्र १०६)।

परिणाम

इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं और लयपूर्ण श्वास मन के इधर-उधर भटकने को

शांत करता है । इससे आन्तरिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है और व्यक्ति अपने स्वयं के अन्दर के दिव्य नाद (अनहद नाद) को सुनता है "यहाँ देखो । अन्दर देखो । बाहर नहीं, कारण सम्पूर्ण शान्ति का स्रोत तुम्हारे अन्दर ही है । " इस प्रकार यह आसन साधक को योग की पाँचवी अवस्था, प्रत्याहार के योग्य बनाता है, जहाँ वह इन्द्रियों की दासता से मुक्त होने और उन्हें विषयों के पीछे दौड़ने से रोकने का प्रयत्न स्वयं करता है ।

४७. पर्वतासन चार* **(चित्र १०७)**

पर्वत का अर्थ पहाड़ है । पद्मासन के इस प्रकार में अंगुलियाँ परस्पर गुँथाये हुए बाँहें सिर के ऊपर फैलायी जाती हैं ।

विधि

१. पद्मासन में वैठें (चित्र १०४)।

२. अँगुलियों को परस्पर गुँथाएँ और हाथों को लम्बरूप में सिर के ऊपर फैलाएँ । सीने की हड्डी पर चिबुक को टिकाए सिर को सामने झुकाये रखें ।

३. बाहों को लॅटीसीमस डॉर्सी से याने पीछे की पसलियों से और स्कंधास्थि से ऊपर फैलाएँ । हथेलियाँ उपर की ओर खुली होनी चाहिए (चित्र १०७)।

४. गहरे और समान श्वास से इस आसन में एक या दो मिनट के लिए रहें । टाँगों की परस्पर स्थिति (Crossing) और अंगुलियों के गुंफन को बदलें और पीठ सीधी किये आसन को दुहराएँ ।

परिणाम

यह आसन सन्धिवात की वेदनाएँ और कंधों की जकड़ दूर करता है । यह सीने को विकसित होने और मुक्त गति में सहायता पहुँचाता है । उदर के अवयव अन्दर की ओर खींचे जाते हैं और सीना अच्छी तरह फैलता है ।

४८. तुलासन चार* **(चित्र १०८)**

तुला का अर्थ तराजू के दो पलड़े हैं । यह आसन तराजू के एक पलड़े के समान होता है, इसलिए यह नाम है ।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)।

२. नितम्बों की बगल में जमीन पर हथेलियों को स्थिर करें । श्वास छोड़ें, धड़ को उठाएँ और बाहों को बाहर फैलाएँ, एकमात्र हाथों पर वजन संभालें (चित्र १०८)।

३. जमीन का आश्रय लें, टाँगों को खोल दें और उनकी स्थिति बदलकर फिर से गुँथाएँ और पुनः हाथों पर तोल सँभालें ।

४. जितनी देर तक संतुलन कर सकें, करें ।

परिणाम

यह आसन कलाइयों, हाथों और उदर की दीवारों को पुष्ट करता है ।

४६. सिंहासन एक * (चित्र १०६)

सिंह का अर्थ केसरी (शेर) है । यह आसन विष्णु के अवतार नरसिंह (नर=मनुष्य, सिंह=केसरी) के नामपर समर्पित है । ऐसा कहा जाता है कि दानवराज हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था कि वह देवता, मनुष्य या पशु के द्वारा न तो दिन में मारा जाए न रात में, न घर में न घर के बाहर न पृथ्वी पर न पानी पर । तब दानवराज देवताओं और मनुष्यों को, विष्णु के अत्यंत भक्त अपने धार्मिक पुत्र प्रह्लाद सहित सभी को कष्ट देने लगा। प्रह्लाद अनेक प्रकार की क्रूरताओं से और अग्नि-जल द्वारा निर्दोष सिद्ध करने की कठिन परीक्षाओं से डराया गया, परंतु विष्णु की कृपा से वह सुरक्षित रहा, और अधिक विश्वास एवं पौरुष के साथ भगवान् विष्णु की विश्वव्यापकता, अनन्तज्ञान एवं अनन्तशक्ति का उपदेश देने लगा । हिरण्यकशिपु ने क्रोधोद्दीपन के आवेश में अपने पुत्र से पूछा–"यदि विष्णु सर्वव्यापी है तो वह अपने राजप्रासाद के कक्ष के खंभे में उसे क्यों नहीं देख पाता है ?" दानवराज ने अपने पुत्र को उसके विश्वास की मूर्खता पर विश्वास दिलाने लिए खंभे को तिरस्कारपूर्वक लात मारी । जब प्रह्लाद ने अपनी रक्षा के लिए विष्णु को पुकारा तब भगवान् खंभे से भयानक रूप में ऊपर का आधा भाग सिंह और नीचे का आधा भाग मनुष्य के रूप में प्रकट हुए । यह संध्या का समय था जब न तो दिन था न रात । भगवान् ने हिरण्यकशिपु को हवा में उठाया, स्वयं देहली पर बैठे दानवराज को अपनी जाँघ पर रखा और उसके टुकडे-टुकडे कर दिये । भारतीय मूर्तिकला में नरसिंह अवतार प्रायः चित्रित (खुदे हुए) हैं और इस प्रकार का शक्तिरूप चित्र एल्लोरा की गुफाओं में देखा जा सकता है ।

इस आसन के दो प्रकार हैं । नीचे दी हुई विधि में वर्णित पहला प्रकार है, जब कि दूसरा प्रकार जिसे करना कठिन है परंतु जिसके बड़े लाभदायक परिणाम हैं, बाद के सिंहासन दो (चित्र ११०) में वर्णित है ।

विधि

१. सामने टाँगों को सीधे फैलाएँ, जमीन पर बैठें (चित्र ७७) ।

२. आसन उठाएँ, दाहिने घुटने को मोड़ें और दाहिने पैर को बायें नितम्ब के

नीचे रखें। बायीं नली दायीं नली के नीचे रखनी चाहिए।

३. पैर की अंगुलियों को पीछे की ओर किए एड़ियों पर बैठें।

४. शरीरभार जाँघों और घुटनों पर लाएँ।

५. धड़ को आगे तानें और पीठ सीधी रखें।

६. दाहिनी हथेली दाहिने घुटने पर और बायीं हथेली बायें घुटने पर रखें। बाँहों को सीधा तानें और उन्हें कठिन तनाव में रखें। अंगुलियों को फैलाएँ और उन्हें घुटनों पर दबाएँ।

७. जबड़ों को चौड़ा खोलें और जीभ को जितना अधिक हो सके उतना अधिक चिबुक की ओर तानें (चित्र १०९)।

८. भौंहों के मध्य या नाक की नोक पर एकटक देखें। इस स्थिति में मुँह से श्वास लेते हुए ३० सेकंड रहें।

९. जीभ को मुँह में खींच लें, हाथ घुटनों से हटाएँ और टाँग सीधी करें। बाद में पहले बायें पैर को दाहिने नितम्ब के नीचे और दाहिने पैर को बायें नितम्ब के नीचे रखकर आसन को दुहराएँ।

१०. दोनों ओर बराबर समय में रहें।

परिणाम

यह आसन दुर्गन्धयुक्त श्वास दूर करता है और जीभ को स्वच्छ करता है। सतत अभ्यास के बाद वाणी स्पष्ट हो जाती है, इसलिए यह आसन स्खलित स्वर में बोलनेवालों के लिए उपयोगी बताया गया है। व्यक्ति को तीन बन्धों (भाग III देखें) पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए इस आसन से सहायता प्राप्त होती है।

५०. सिंहासन दो छह* (चित्र ११०)

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)।

२. बाँहों को सामने फैलाएँ और अंगुलियों को आगे की ओर किये, हथेलियों को जमीन पर रखें।

३. घुटनों पर खड़े हों और तब बस्तिप्रदेश को जमीन की ओर ढकेलें।

४. बाँहों को पूरी तरह फैलाये हुए नितम्बों को संकुचित करते हुए पीठ तानें। शरीर का भार केवल हथेलियों और घुटनों पर ही रहता है। मुँह खोलें और जितना अधिक हो सके उतना अधिक जीभ को चिबुक की ओर तानें (सामने की छबि ११०) पार्श्व छबि १११)।

५. भौंहों के मध्य या नाक की नोक पर एकटक देखें और इस स्थिति में लगभग ३० सेकंड रहें। मुँह से श्वास लें।

६. पद्मासन (चित्र १०४) में बैठें और हाथ जमीन पर से उठा लें। टाँगों की स्थिति परिवर्तित कर लें, पुनः पद्मासन करें और आसन को उतने ही समय के लिए दुहराएँ।

परिणाम

यह आसन यकृत को व्यायाम देता है और पित्तस्राव को नियंत्रित करता है। दुर्गंध-युक्त श्वास दूर करता है, जीभ अधिक साफ होती है और शब्द अधिक स्पष्टतया उच्चारित होते हैं। इसलिए स्खलित स्वर में बोलने (हकलाने) वालों के लिए इस आसन की सिफारिश की गई है।

यह आसन गुदास्थि की वेदना दूर करता है और जब वह स्थानान्तरित हो जाती है तब उसे स्वस्थान में बिठाने में सहायता पहुँचाता है।

५१. मत्स्यासन पाँच* (चित्र ११३)

मत्स्य का अर्थ मछली है। विश्व एवं सभी पदार्थ के कारण एवं विधाता विष्णु के मत्स्यावतार को यह आसन समर्पित है। ऐसा वर्णन है कि एक समय सम्पूर्ण पृथ्वी पापमय हो गयी थी और जागतिक जलप्रलय से डूबने ही वाली थी। उस समय विष्णु ने (मत्स्यावतार) मत्स्य का रूप धारण किया और सृष्टि के प्रथम पुरुष मनु को भयानक विपत्ति से सचेत किया। मत्स्य ने नौका–जिस में मनु, उसके परिवार तथा सात महान् ऋषि बैठे थे – को अपने सिर के सींग से फँसाकर उठा लिया। इसने वेदों को भी जल-प्रलय से बचा लिया।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)।

२. टाँगों को जमीन पर फैलाएँ, पीठ के बल पड़ जाएँ।

३. श्वास छोड़ें, गर्दन और सीने को ऊपर उठाते हुए पीठ का अर्ध-मंडल (मेह-राब) बनाएँ। गर्दन को पीछे लें और मस्तक (मुकुट) को जमीन पर रखें। एक दूसरे पर डाले हुए पैरों को (पद्मासन में स्थित हुए) हाथों से पकड़ कर सिर को और भी पीछे खींचें और पीठ के मंडल को बढाएँ (चित्र ११२)।

४. अब हाथों को टाँगों से अलग कर लें, बाँहों को मोड़ें, हाथों से कुहनियों को पकड़ें और सिर के पीछे जमीन पर हाथों (कुहनी से आगे के भागों) को स्थिर करें (चित्र ११३)।

५. इस स्थिति में गहरी साँस लेते हुए ३० से ६० सेकंड रहें।

६. सिर का पिछला भाग नीचे जमीन पर रखें और पीठ के बल जमीन पर लेटें, श्वास लें, पद्मासन में आएँ, टाँगों को खोल दें और सुस्ताएँ।

७. अब पैरों को उलट कर पलथी मारें और उतने ही समय के लिए आसन को दुहराएँ।

८. यदि ३ और ४ की स्थितियाँ प्राप्त करने में कठिनाई है, तो सिर के ऊपर बाँहों को सीधे फैलाए पीठ के बल जमीन पर पड़े रहें (चित्र ११४)।

परिणाम

इस आसन में पृष्ठ प्रदेश पूरी तरह ताना जाता है और सीना अच्छी तरह फैलता है। श्वासोच्छ्वास पर्याप्त होता है। गर्दन के तनने के कारण गलग्रंथियाँ इस आसन से लाभान्वित होती हैं। वस्तिप्रदेश की सन्धियाँ लचकीली होती हैं। यह आसन दाह-युक्त और स्रावयुक्त अर्श (बवासीर) अच्छा करता है।

५२. कुक्कुटासन छह* (चित्र ११५)

कुक्कुट का अर्थ मुर्गा है, यह आसन मुर्गे जैसा है।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)।

२. जाँघ और पिण्डली के बीच घुटने के पास की जगह में हाथों को घुसाएँ। अंगुलियों से प्रारंभ करें और धीरे धीरे कुहनियों तक हाथों को नीचे की ओर घुसाएँ।

३. श्वास छोड़ें, जमीन पर से शरीर उठाएँ और अंगूठों को साथ रखे हथेलियों पर संतुलन करें। साधारण साँस लेते हुए जितनी देर हो सके संतुलन बनाये रखें (चित्र ११५)।

४. जमीन पर स्थिर हों, हाथों को निकाल लें, टाँगों की स्थिति को बदल कर आसन को दुहराएँ।

परिणाम

यह आसन कलाई और उदर की दीवारों को मजबूत बनाता है।

५३. गर्भपिण्डासन सात* (चित्र ११६)

गर्भपिण्ड का अर्थ गर्भस्थान का भ्रूण है। पद्मासन के इस प्रकार में हाथों और बाँहों को पिण्डलियों और जाँघों के बीच की जगह कुहनियों के मुड़ने तक घुसाएँ। तब बाँहें मोड़ी जाती हैं और हाथ कानों के पास लाये जाते हैं। तब इस आसन का आकार गर्भस्थित मानव योनि के भ्रूण (शिशु) के समान होता है। अन्तर इतना

ही होता है कि भ्रूण का सिर नीचे और टाँगें ऊपर होती हैं न कि पद्मासन की तरह तहियायी हुई। आसन के नाम से इस बात का संकेत मिलता है कि प्राचीन ऋषि-मुनि माता के गर्भ में भ्रूण की विकास-वृद्धि के विषय में जानते थे यद्यपि उनके पास आयुर्वेद (शल्यचिकित्सा) के उपकरण सीमित थे।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)।

२. पिण्डलियों और जाँघों के बीच की जगह प्रत्येक हाथ को अपनी ओर घुसाएँ।

३. बाँहों को आगे की ओर ढकेलें जिससे कुहनियाँ आसानी से मुड़ सकें।

४. तब एक उच्छ्वसन के बाद जमीन पर से जाँघों को उठाएँ, गुदास्थि पर शरीर का संतुलन रखें और कानों को अंगुलियों से पकड़ें (चित्र ११६)।

५. साधारण साँस लेते हुए १५ से ३० सेकंड इस आसन में रहें। टाँगों को नीचे ले आएँ, टाँगों के बीच से बाँहों को एक-एक कर हटा लें, टाँगों को सीधा करें और विश्रांति लें।

६. टाँगों की स्थिति बदलें और आसन दुहराएँ।

परिणाम

इस आसन में उदर के अंग पूरी तरह संकुचित होते हैं और इन अंगों के मध्य अच्छी तरह रक्त प्रवाहित किया जाता है। यह आसन उन्हें सुगठित रखता है।

५४. गोरक्षासन दस* (चित्र ११७)

गोरक्ष का अर्थ चरवाहा है। यह संतुलन का एक कठिन आसन है और यदि कोई कुछ सेकंड के लिए ही क्यों न हो संतुलन कर लेता है तो वह उत्साहित होता है।

विधि

१. पद्मासन (चित्र १०४) करें, बाँहों को आगे की ओर फैलाएँ। और उन्हें जमीन पर रखें।

२. हाथों का आसरा लें और नितम्ब जमीन पर से उठाएँ।

३. धड़ को सीधा तानें और जमीन पर घुटनों के ऊपरी हिस्से के सहारे खड़े हों।

४. जाँघों को तानें और हाथों को जमीन पर से एक-एक कर उठाते हुए धीरे-धीरे संतुलन करें।

५. जब संतुलन सध जाए, हाथों को सीने के सामने मोड़ लें और जितने समय

तक हो सके आप इस स्थिति को बनाये रखें (चित्र ११७) ।

६. जमीन पर हाथों को रखें, बैठें, और टाँगों को ढीला छोड़ दें ।

७. टाँगों की स्थिति को बदलें और उतने ही समय के लिए आसन दुहराएँ ।

परिणाम

पद्मासन से होनेवाले लाभ के अतिरिक्त व्यक्ति संतुलन का बोध प्राप्त करता है । इस आसन के अभ्यास से गुदास्थि में लचीलापन आता है ।

५५. बद्ध पद्मासन छह* (चित्र ११८)

बद्ध का अर्थ पकड़ा हुआ, बँधा हुआ, रोका हुआ होता है । इस आसन में दोनों हाथ पीछे पीठ की ओर लिए हुए, एक के ऊपर दूसरे रखे हुए होते हैं और पैर के अंगूठे पीछे से पकड़े हुए होते हैं । शरीर आगे एक दूसरी पर डाली हुई टाँगों से और पीछे एक दूसरे के विपरीत हाथों से बँधा हुआ होता है—इसी कारण आसन का यह नाम है ।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४) ।

२. श्वास छोड़ें, कंधे से बायीं बाँह को पीठ की तरफ घुमाएँ और हाथ को दाहिने नितम्ब के पास लाएँ । बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें, इस स्थिति में रहें और श्वास लें ।

३. इसी प्रकार, एक उच्छ्वसन लेकर कंधे से दायें बाँह को पीठ की तरफ घुमाएँ, हाथ को बायें नितम्ब के पास लाएँ और दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ें (सामने की छवि ११८, पार्श्वछवि ११९) ।

४. यदि पैर के अंगूठों के पकड़ने में कठिनाई होती है तो कंधों को पीठ की ओर तानें, जिससे स्कन्धास्थियाँ एक-दूसरे के समीप लायी जाएँ । उच्छ्वसन के साथ पीठ की ओर बाँहों के घुमाने के थोड़े अभ्यास से व्यक्ति पैर के अंगूठों को पकड़ सकेगा ।

५. यदि पहले बायीं जाँघ पर दाहिना पैर हो और दाहिनी जाँघ पर बायाँ पैर हो, तब पहले बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें और बाद में दायें पैर के अंगूठे को । यदि इसके विपरीत पहले दाहिनी जाँघ पर बायाँ पैर हो और बायीं जाँघ पर दायाँ पैर हो तब पहले दायें पैर के अंगूठे को पकड़ें और बाद में बायें पैर के अंगूठे को । जो पैर ऊपर हो उसका अंगूठा पहले पकड़ें ।

६. जितना हो सके सिर को पीछे ले जाएँ और कुछ गहरी साँसें लें ।

७. गहरी साँस लें, और तब एक उच्छ्वसन के साथ नितम्ब से लेकर धड़ को आगे झुकाएँ और हाथों की पकड़ से पैर के अंगूठों को छोड़े बिना जमीन पर सिर स्थिर करें ।

बद्ध पद्मासन (चित्र ११८) में सिर के आगे झुकने और उसके जमीन छूने के कारण इसे---

५६. योगमुद्रासन छह* **(चित्र १२०)**

कहते हैं। यह आसन कुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

८. उच्छ्वसन के साथ सिर को दायें और बायें घुटने की ओर बारी-बारी से ले जाएँ (चित्र १२१ और १२२)।

परिणाम

पीठ के पीछे हाथों के एक-दूसरे के विपरीत होने से सीना फैलता है और कंधों के फैलाव की गति में वृद्धि होती है। योगमुद्रासन आँत के स्नायु में क्रमिक वृत्तों में सिकुड़ने वाली प्रवृत्ति को बढ़ाता है और अन्नमल (किट्ट) को बृहद् अंत्र में एकत्रित करके नीचे ढकेलता है (चित्र १२०)। क्रमिक वृत्तों में सिकुड़नेवाली प्रवृत्ति को बढ़ाता है और बृहद् अंत्र (बड़ी आँत) में एकत्रित निरर्थक वस्तुओं को नीचे ढकेलता है और इसी कारण कोष्ठबद्धता दूर करता है और पाचनशक्ति बढाता है।

५७. सुप्त वज्रासन बारह* **(चित्र १२४)**

सुप्त का अर्थ लेटा हुआ है। देवताओं के राजा इन्द्र के अस्त्र का नाम वज्र है। यह आसन कठिन है और इसके लिए बहुत अभ्यास की आवश्यकता है।

विधि

१. पद्मासन में बैठें (चित्र १०४)। फिर बद्ध पद्मासन करें (चित्र ११८)।

२. श्वास छोड़ें, घुटनों और जाँघों को जमीन से उठा लें और पीठ को जमीन पर स्थिर करें (चित्र १२३)। दो श्वास लें।

३. भूमि पर सिर का कपाल स्थिर करने के लिए गर्दन को पीछे की ओर तानें और सीने व धड़ का मंडल (मेहराब) बनाएँ।

४. पैर के अंगूठे की पकड़ को छोड़े बिना ही श्वास छोड़ें और भूमि पर वापस घुटनों और जाँघों को नीचे लाएँ (चित्र १२४)। फिर सिर का कपाल, कुहनियाँ और पीछे परस्पर गूँथी हुई बाँहें, पीठ और नितम्ब, शरीर के ये भाग ही भूमि को छू रहे होंगे।

५. कुछ सेकंड के लिए इस स्थिति में ठहरें। श्वास छोड़ें, पैर के अंगूठे की पकड को छोड़ें, पीठ की ओर परस्पर गूँथे हुए हाथों को खोल दें और पुनः पद्मासन (चित्र १०४) में बैठें। बाद में टाँगें सीधी करें और विश्रांति लें।

६. टाँगों की स्थिति का परिवर्तन करें और आसन दुहराएँ ।

परिणाम

इस आसन में पृष्ठ प्रदेश पूरी तरह फैलाया जाता है और इससे सीना अच्छी तरह फैलता है । गर्दन के तानने के कारण इस व्यायाम (आसन) से गलग्रन्थियों को लाभ होता है । वस्तिप्रदेश की सन्धियाँ लचकीली होती हैं । एकबार इस आसन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया गया तो मत्स्यासन (चित्र ११३) बच्चों के खेल-सा प्रतीत होता है ।

५८. महा मुद्रासन पाँच* (चित्र १२५)

महा का अर्थ बड़ा या श्रेष्ठ है । मुद्रा का अर्थ लगाना, बन्द करना या सील करना है । बैठने की इस शारीरिक स्थिति में धड़ के ऊपर और नीचे के छिद्र मजबूती से सील किये होते हैं ।

विधि

१. भूमि पर सामने टाँगें सीधी फैलाये हुए बैठें (चित्र ७७) ।

२. बायें घुटने को मोड़ें, और बायीं जाँघ के बाहरी भाग और बायीं पिण्डली को भूमि पर रखते हुए उसे बायीं ओर घुमाएँ ।

३. बायीं एड़ी को बायें पैर, जाँघ और पिण्डली के बाहरी भाग के सामने मूलाधार के पास रखें । बायें पैर का अंगूठा दाहिनी जाँघ के हिस्से को छूना चाहिए । फैलायी हुई दाहिनी टाँग और मोड़ी हुई बायीं टाँग के बीच का कोण ९० अंश का समकोण होना चाहिए ।

४. दाहिने पैर की ओर सामने बाँहों को फैलाएँ और पैर के अंगूठे को हाथ के अंगूठों और तर्जनियों से पकड़ें ।

५. सीने की हड्डी के ठीक ऊपर हँसुलियों के मध्य के गड्ढे में चिबुक स्थिर होने तक सिर धड़ की ओर झुकाएँ ।

६. रीढ़ को पूरी तरह तना हुआ रखें और दाहिनी टाँग को दाहिनी ओर तिरछा होने न दें ।

७. पूरी तरह साँस लें । गुदा से उरःप्राचीर तक सारे उदर को कसें । उदर को रीढ़ की ओर पीछे और उरःप्राचीर को ऊपर की ओर खींचें ।

८. उदर सम्बन्धी तनाव को शिथिल करें, श्वास छोड़ें, पुनः श्वास लें और उदर की पकड़ बनाये हुए श्वास को रोके रहें । ऊपर बतलायी गयी विधि में १ से ३ मिनट तक ठहरें (चित्र १२५) ।

९. उदर सम्बन्धी तनाव शिथिल करें, श्वास छोड़ें, सिर उठाएँ, हाथों को मुक्त करें और मुड़ी हुई टाँग सीधी करें ।

१०. बायीं टाँग सीधी और दाहिनी टाँग को मोड़कर उतने ही समय के लिए दूसरी ओर की स्थिति में आसन को दुहराएँ ।

परिणाम

यह आसन उदर के अवयवों, गुर्दा और गुर्दे की ग्रंथियों को ठीक करता है । गर्भाशय के स्थानभ्रष्ट होने से पीड़ित स्त्रियाँ आराम पाती हैं; कारण यह आसन गर्भाशय को उसके मूलस्थान में खींचकर लाता है । इस आसन में अधिक समय स्थित होने पर प्लीहा रोग तथा शिश्नग्रंथियों की वृद्धि से पीड़ित पुरुष लाभान्वित होते हैं । यह अजीर्ण को दूर करता है ।

'यह महामुद्रा मृत्यु तथा अनेक रोगों को नष्ट करता है ।' 'ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे मनुष्य खा नहीं सकता अथवा जो उसे छोड़ देनी पड़े (यदि उसने उसका अभ्यास किया है) ।' 'सभी स्वादहीन भोजन और यहाँ तक कि महान् विष भी पचा लिया जा सकता है ।' 'जो व्यक्ति महामुद्रा का अभ्यास करता है, उसे कोष्ठबद्धता, कुष्ठरोग, अर्श, प्लीहा, अजीर्ण और अन्य लम्बी अवधि के रोग नहीं होते ।' (हठयोग प्रदीपिका, अध्याय ३, श्लोक १४, १६ और १७) ।

५६. जानु शीर्षासन पाँच* (चित्र १२७)

जानु का अर्थ घुटना है । शीर्ष का अर्थ सिर है । इस आसन में भूमि पर एक टाँग सीधी तानकर और घुटने से मुड़ी हुई दूसरी टाँग से बैठें । फिर दोनों हाथों से तने हुए पैर को पकड़ें और उसके घुटने पर सिर रखें ।

विधि

१. भूमि पर टाँगों को सीधा फैलाकर बैठें (चित्र ७७) ।

२. बायें घुटने को मोड़ें और बायीं जाँघ के बाहरी भाग और बायीं पिण्डली को भूमि पर रखते हुए, उसे बायीं ओर घुमाएँ ।

३. बायीं एड़ी को बायीं जाँघ के अन्दर के भाग के सामने मूलाधार के पास रखें । बायें पैर का अंगूठा दायीं जाँघ के अंदर के भाग को छूना चाहिए । दोनों टाँगों के बीच का कोण अधिक कोण (समकोण से अधिक) होना चाहिए । फैलायी हुई दाहिनी टाँग से समकोण बनाते हुए बायीं जाँघ की सीध में बायें घुटने को न रखें । बायें घुटने को यथासंभव पीछे ढकेलने की कोशिश करें, जिससे शरीर को मोड़ी हुई टाँग से दूर तक फैलाया जा सके ।

४. दाहिने पैर की ओर बाँहों को आगे फैलाएँ और उसे हाथों से पकड़ें । पहले दाहिने पैर का अँगूठा पकड़ें, बाद में धीरे-धीरे तलवे को पकड़ें, उसके बाद एड़ी और अन्त में फैलाये हुए पैर के बाहर बाँहों को फैलाएँ और एक हाथ की कलाई दूसरे हाथ से पकड़ें (चित्र १२६) ।

५. घुटना कसे हुए दाहिनी टाँग को निरंतर पसारे हुए रख । और देखें कि दाहिने घुटने का पृष्ठभाग भूमि पर है या नहीं ।

६. श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ते हुए और फैलाते हुए धड़ को आगे की ओर झुकाएँ और पहले मस्तक, फिर नाक, उसके बाद ओठों और अन्त में चिबुक को दाहिने घुटने के परे स्थिर करें (चित्र १२७) । फिर दाहिने घुटने के किसी भी ओर स्थिर करें (चित्र १२८ और १२९) । प्रारंभ में दाहिना पैर दाहिनी ओर झुकेगा । टाँग को झुकने न दें ।

७. पीठ को पूरी तरह तानें, धड़ को आगे खींचें और दाहिनी जाँघ के सामने सीने को रखें ।

८. इस स्थिति में गहरी साँस लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक ठहरें । व्यक्ति प्रत्येक उच्छ्वसन के बाद श्वास रोककर इस आसन को कर सकता है ।

९. श्वास लें, सिर और धड़ उठाएँ, बाहों को सीधा करें और रीढ़ को तानते हुए तथा मंडलाकार बनाने का प्रयास करते हुए कुछ सेकंड ऊपर एकटक देखें (चित्र १२६) ।

१०. दाहिने पैर के हाथ की पकड़ छोड़ दें, बायीं टाँग सीधी करें और वापस स्थिति १ में आ जाएँ ।

११. बायीं टाँग को बाहर फैलाये रखकर और दाहिनी टाँग को घुटने से मोड़ते हुए आसन को दुहराएँ । दोनों ओर उतने ही समय के लिए आसन में ठहरें ।

परिणाम

यह आसन यकृत और प्लीहा ठीक रखता है और इसी कारण पचनक्रिया में सहायता करता है । यह गुर्दे को भी ठीक करता है और उसे क्रियाशील बनाता है; जिसके परिणाम को व्यक्ति उपर्युक्त विधि से आसन करते हुए अनुभव कर सकता है ।

शिश्नग्रंथियों की वृद्धि से पीड़ित व्यक्तियों को इस आसन में अधिक समय तक ठहरने से लाभ होता है । उन्हें चाहिए कि वे सर्वांगासन (चित्र २२३) के साथ इस आसन का अभ्यास करें ।

पुराने मंदज्वर से पीड़ित व्यक्तियों के लिए इसे लाभप्रद बतलाया गया है ।

६०. परिवृत्त जानु शीर्षासन नौ* (चित्र १३२)

परिवृत्त का अर्थ गोलाकार घुमाया हुआ है । जानु का अर्थ घुटना और शीर्ष का अर्थ सिर है । जानु शीर्षासन के इस प्रकार में भूमि पर एक टाँग फैलायी जाती है दूसरी टाँग घुटने से मोड़ी जाती है । धड़ गोलाकर ऐंठा या घुमाया जाता है, फैलाये हुए पैर को दोनों हाथों से पकड़ा जाता है और रीढ़ को पीछे से मोड़कर, फैलायी हुई टाँग के घुटने पर सिर का पिछला भाग रखा जाता है ।

विधि

१. भूमि पर टाँगों को सामने सीधे फैलाकर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायें घुटने को मोड़ें और बायीं जाँघ का बहिर्भाग तथा बायीं पिण्डली का बहिर्भाग जमीन पर रखते हुए उसे (बायें घुटने को) बायीं ओर ले जाएँ।

३. बायीं एड़ी को बायीं जाँघ के अन्तर्भाग के सामने मूलाधार के पास रखें। बायें पैर के अँगूठे से दायीं जाँघ के अन्तर्भाग का स्पर्श होना चाहिए। दोनों टाँगों के बीच का कोण अधिक कोण (समकोण से अधिक) होना चाहिए। बायें घुटने को यथासंभव पीछे तानें।

४. धड़ को बायीं ओर मोड़ें।

५. फैलायी हुई दाहिनी टाँग की ओर दाहिनी बाँह को फैलाएँ। दाहिना हाथ और कलाई घुमाएँ जिससे दाहिना अँगूठा भूमि को और दाहिनी कनिष्ठिका ऊपर को लक्ष्य करें। तब दाहिने पैर के अन्तर्भाग को पकड़ें (चित्र १३०)।

६. धड़ को पीछे ले जायें, कलाई को ऊपर करते हुए बायीं बाँह को सिर के ऊपर फैलायें, और बायें हाथ से फैलाये हुए दाहिने पैर के बहिर्भाग को पकड़ें। यहाँ भी बायाँ अंगूठा भूमि को और बायीं कनिष्ठिका ऊपर को लक्ष्य करती है (चित्र १३१)।

७. कुहनियों को मोड़ें और फैलाएँ। श्वास छोड़ें, धड़ को ऊपर घुमाएँ, बाँहों के बीच में सिर ले जाएँ, और दाहिने घुटने पर सिर का पिछला भाग स्थिर करें। दाहिने कंधे के पृष्ठभाग से (पिछले पीठ के भाग से) दाहिने घुटने की संधि के अन्दर की ओर को छूने की कोशिश करें, जिससे दाहिनी ओर की पसलियों का पिछला भाग दाहिने घुटने पर स्थिर हो सके। मुड़े हुए बायें घुटने को और भी आगे फैलायें और बायीं ओर की पसलियाँ तानें (चित्र १३२)।

८. लगभग २० सेकंड के लिए स्थिति को बनाये रखें। उदर के संकुचन के कारण श्वासक्रिया हलकी और तेज होगी।

९. श्वास लें, हाथ छोड़ दें, धड़ को पीछे अपने स्थान पर जाने दें, जिससे आप फैलायी हुई दाहिनी टाँग के सामने हों, सिर उठाएँ और १ की स्थिति में आने के लिए बायीं टाँग सीधी करें।

१०. दूसरी ओर आसन को दुहरायें। यहाँ दाहिना घुटना मोड़ें, और बायीं टाँग सीधी रखें। मुड़े हुए दाहिने घुटने के सामने होने तक आप धड़ को दाहिनी ओर घुमाएँ और बायें पैर की ओर बायीं बाँह को फैलाएँ। बाद में बायाँ हाथ और बायीं कलाई को घुमाएँ, जिससे बायाँ अंगूठा भूमि को लक्ष्य करे। बायें पैर का अन्तर्भाग बायें हाथ से पकड़ें, दाहिनी बाँह सिर पर लाएँ और एड़ी के पास बायें पैर का बहिर्भाग पकड़ें। तब बायें घुटने पर सिर के पृष्ठभाग को स्थिर करें और बायें कंधे

के पृष्ठभाग से बायें घुटने के अन्तर्भाग (अन्दर की बाज़ू) को छूने की कोशिश करें, जिससे बायें घुटने पर बायीं ओर की पसलियों का पृष्ठभाग स्थिर हो सके और पसलियों का दाहिना भाग तानें। उतने ही समय के लिए इस ओर ठहरें।

परिणाम

जानु शीर्षासन (चित्र १२७) की टिप्पणी में वर्णित परिणामों के अतिरिक्त, यह आसन रीढ़ में रक्तप्रवाह को उत्तेजित करता है और पीठ के दर्द को दूर करता है। जानु शीर्षासन में उदर के अवयव संकुचित होते हैं, इसमें वे दोनों ओर फैलाये जाते हैं। अत्यंत उत्तेजित करनेवाला यह आसन है।

६१. अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन आठ* (चित्र १३५)

अर्ध का अर्थ आधा, बद्ध का अर्थ पकड़ा हुआ, बंधा हुआ और पद्म का अर्थ कमल है। पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) वह आसन है जिसमें सारे शरीर का पृष्ठभाग तीव्रता से तना होता है।

विधि

१. टाँगों को सामने सीधे फैलाये भूमि पर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायीं टाँग को घुटने पर मोड़ें और दाहिनी जाँघ पर बायें पैर को रखें। बायीं एड़ी से नाभि को दबायें और पैर की अंगुलियाँ फैली हुई और सीधी होनी चाहिए। यह हुई अर्ध पद्मासन की स्थिति।

३. बायीं बाँह को पीठ के पीछे से घुमा कर लाएँ और एक उच्छ्वसन के साथ बायें पैर का अंगूठा पकड़ें। यदि अंगूठा आसानी से पकड़ा नहीं जाता है तो बायें कंधे को पीछे की ओर झुकाएँ।

४. बायें पैर के अंगूठे को पकड़ने के बाद मुड़े हुए बायें घुटने को फैली हुई दाहिनी टाँग के और समीप लाएँ। दाहिनी बाँह को सामने फैलाएँ और दायें पैर के तलवे को दायें हाथ की हथेली का स्पर्श कराते हुए पकड़ें (चित्र १३३ और १३४)।

५. श्वास लें, पीठ तानें और बायें पैर के अंगूठे की पकड़ को छोड़े बिना कुछ सेकण्ड के लिए एकटक ऊपर देखें।

६. श्वास छोड़ें, दाहिनी कुहनी को बाहर की ओर मोड़ते हुए धड़ को आगे लाएँ। दाहिने घुटने पर पहले मस्तक (भाल), बाद में नाक, उसके बाद ओंठ और अन्त में चिबुक स्थिर करें (चित्र १३५)।

७. प्रारंभिक अवस्था में फैली हुई टाँग का घुटना भूमि से उठाया हुआ होगा। जाँघ की मांसपेशियों को कसें और फैली हुई दाहिनी टाँग का सारा पिछला भाग भूमि पर स्थिर करें।

८. समान रूप से साँस लेते हुए इस स्थिति में ३० से ६० सेकंड ठहरें ।

९. श्वास लें, सिर और धड़ उठायें, हाथ छोड़ें, बायीं टाँग सीधी करें और १ की स्थिति में आ जाएँ ।

१०. भूमि पर बायीं टाँग बाहर फैलाये हुए, दाहिना घुटना मोड़े हुए और बायीं जाँघ पर दाहिना पैर रखे हुए, दूसरी ओर आसन दुहराएँ । दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें ।

११. यदि आप पीछे की ओर से हाथ से पैर का अंगूठा पकड़ नहीं सकते हैं तो दोनों हाथों से फैलायी हुई टाँग पकडें और उपर्युक्त विधि का अनुसरण करें (चित्र १३६ और १३७)।

परिणाम

अर्ध पद्मासन की स्थिति में होने के कारण, पूर्ण पद्मासन की स्थिति को क्रियान्वित करने के लिए घुटने पर्याप्त लचकीले होते हैं । फैली हुई टाँग के घुटने पर चिबुक रखने से मुड़ा हुआ घुटना फैली हुई टाँग के समीप लाया जाता है । यह आसन नाभि और उदर के अवयवों को अच्छा तनाव देता है । नाभि और बाह्य जननेंद्रियों (शिश्न और भग) के चारों ओर रक्त प्रवाहित होता है । नाभि को नाडीमण्डल का केंद्र माना जाता है, और वहाँ मनुष्य के नाडीमंडल में परिशोधक संतुलन चक्रों में से एक स्वाधिष्ठान-चक्र स्थित है । यह चक्र अधोजठरीय स्नायुजाल से संवद्ध होता है । यह आसन गोल और शिथिल कंधेवाले व्यक्तियों के लिए उपयोगी बतलाया गया है ।

६२. त्र्यंग मुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन पाँच* (चित्र १३९)

त्र्यंग का अर्थ तीन अवयव या अंग होता है । इस आसन में तीन अंग –पैर, घुटने और नितम्ब हैं । मुखैकपाद (तीन शब्दों का मेल, मुख=मुँह, एक=एक और पाद = टाँग या पैर) से तात्पर्य है मुख का एक पैर के साथ स्पर्श होना । पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) में सारे शरीर का पृष्ठभाग जोरों से तना होता है ।

विधि

१. भूमि पर सामने टाँगें सीधी फैलाये बैठें (चित्र ७७) ।

२. घुटने पर दाहिनी टाँग मोड़ें और दाहिना पैर पीछे की ओर ले जाएँ । दाहिना पैर दाहिने नितम्ब के जोड़ के पास रखें, पैर की अंगुलियों को पीछे की ओर संकेत करती हुई रखें और उन्हें भूमि पर स्थिर करें । दाहिनी पिण्डली का अन्तर्भाग दाहिनी जाँघ के बाहरी भाग का स्पर्श करेगा ।

३. मुड़े हुए घुटने पर शरीर का भार डालते हुए इस स्थिति में संतुलन करें।

प्रारंभ में शरीर बाहर फैलायी हुई टाँग की ओर झुकेगा, और फैली हुई टाँग का पैर भी बाहर की ओर झुकेगा। पैर और अंगुलियों को फैलायें और आगे की ओर निकाले हुए इस आसन में संतुलन करना सीखें।

४. अब तलवे के किनारों को दोनों हथेलियों से पकड़ कर बायाँ पैर रखें। यदि हो सके तो आप धड़ को आगे की ओर ले जाएँ और फैले हुए बायें पैर के चारों ओर कलाइयों को गुँथाएँ (चित्र १३८)। दो गहरी साँस लें। इस प्रकार कलाइयों को गुँथाने में व्यक्ति को प्राय: कई महीने लगते हैं, इसलिए कुछ प्रयास के बाद निराश न हों।

५. घुटने मिलाएँ, श्वास छोड़ें और आगे झुकें। बायें घुटने पर पहले ललाट (भाल), फिर नाक, उसके बाद होंठ और अन्त में चिबुक स्थिर करें (चित्र १३९)। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए कुहनियाँ फैलाएँ और एक उच्छ्वसन के साथ धड़ आगे की ओर ले जाएँ।

६. भूमि पर बायीं कुहनी स्थिर न करें। प्रारंभ में व्यक्ति संतुलन खो देता है और फैलायी हुई टाँग की ओर लुढ़क जाता है। इसलिए मुड़ी टाँग के पार्श्व की ओर धड़ थोड़ा झुका होना चाहिए और शरीर का भार मुड़े हुए घुटने पर लिया जाना चाहिए।

७. समान रूप से श्वास लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक इस स्थिति में ठहरें।

८. श्वास लें, सिर और धड़ ऊपर उठाएँ, हाथ छोड़ दें, दाहिनी टाँग सीधी करें और १ की स्थिति में आएँ।

९. दाहिनी टाँग भूमि पर फैलाएँ, बायाँ घुटना मोड़ कर और बायां पैर बायें नितम्ब के जोड़ के पास रखकर, दूसरी ओर आसन दुहराएँ। दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें।

परिणाम

जो व्यक्ति टेढ़ी कमर या कूबड़ (dropped arches) और चपटे पैर से पीड़ित हैं उनके लिए इस आसन की सिफारिश की गयी है। यह नली और घुटने की मोच ठीक करता है और टाँग की हर प्रकार की सूजन कम करता है।

जानु शीर्षासन (चित्र १२७) तथा अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (चित्र १३५) के साथ यह आसन उदर के अवयवों को ठीक करता है और उन्हें मंदता (आलस्य) से दूर रखता है। हम बड़े संतोष और सामाजिक शिष्टाचार से अपने उदर के अवयवों की शिकायत करते हैं। उदर के अवयव अधिकांश रोगों के कारण हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने दृढ़तापूर्वक कहा था कि दीर्घायु, सुख और मन की शान्ति के लिए उनका स्वास्थ्य सुन्दर होना आवश्यक है। आगे झुकानेवाले ये आसन उदर

के अवयवों को स्वस्थ एवं सक्रिय रखते हैं। ये स्नायुओं (मांसपेशियों) को साँचे में ढालने के अतिरिक्त इन्द्रियों पर भी कार्य करते हैं।

६३. क्रौंचासन दस* (चित्र १४१ तथा १४२)

क्रौंच का अर्थ सारस है। यह एक पर्वत का भी नाम है, कहा जाता है कि यह हिमालय का पोता है और युद्ध के देवता कार्तिकेय और विष्ण के छठे अवतार परशुराम द्वारा भेदित (खंडित) है। बैठने की इस स्थिति में एक टाँग घुटने पर पीछे की ओर मुड़ती है और पैर नितम्ब के जोड़ के पास सामने रखा जाता है, जब कि दूसरी टाँग लम्बरूप में उठायी जाती है और उसका पैर हाथों से पकड़ा होता है, लंबरूप में उठी टाँग के घुटने पर चिबुक टिकाया जाता है। उठायी हुई टाँग सारस की तनी हुई गर्दन और सिर तथा चट्टान की खड़ी दीवार के समान होती है। इस कारण आसन का यह नाम है।

विधि

१. सामने सीधी टाँगें फैलाये भमि पर बैठें (चित्र ७७)।

२. दाहिनी टाँग घुटने पर मोड़ें, और दायें पैर को पीछे ले जाएँ। दायां पैर नितम्ब की संधि के पास रखें, पैर की अंगुलियों को पीछे की ओर संकेत करती हुई रखें और उन सभी को भमि पर स्थिर करें। दाहिनी पिण्डली का अन्तर्भाग दाहिनी जाँघ के बहिर्भाग का स्पर्श करेगा। घुटनों को एकत्र मिलाएँ।

३. श्वास छोड़ें, बायां घुटना मोड़ें, दोनों हाथों से बायां पैर पकड़ें, और बायीं टाँग लम्बरूप में ऊपर उठाएँ (चित्र १४०)।

४. बायीं टाँग पूरी तरह तानें और पीठ सीधी करें। इस स्थिति में कुछ श्वास लेने के बाद, श्वास छोड़ें, सिर और धड़ को आगे ले जाएँ और उसी समय बायीं टाँग और समीप लाने की कोशिश करें और बायीं टाँग के घुटने पर चिबुक रखें (चित्र १४१ तथा १४२)।

५. गहरी साँस के साथ २० से ३० सेकंड तक इस स्थिति में ठहरें। उठी हुई टाँग के घुटने को चिबुक-स्पर्श करते समय भूमि पर से मुड़ी टाँग उठने न दें।

६. श्वास लें, सिर और धड़ पीछे ले जाएँ (चित्र १४०)। बायीं टाँग नीची करें, हाथ छोड़ दें, दाहिनी टाँग आगे की ओर सीधी लाएँ और १ की स्थिति में लौटें।

७. बायें घुटने को मोड़ कर, और बायें नितम्ब के पास बायां पैर रख, और दाहिनी टाँग ऊपर उठाते हुए दूसरी ओर आसन को दुहराएँ। इस ओर भी उतने ही समय के लिए ठहरें।

परिणाम

त्र्यंग मुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (चित्र १३९) के क्रम के रूप में यह आसन

किया जा सकता है । पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) से यह आसन करना कठिन है और इस कारण इसके परिणाम भी अधिक हैं । यह टाँगों को पूरा फैलाव (विस्तार) देता है और टाँगों की मांसपेशियों को व्यायाम देता है । उदर के अवयव भी पुनः यौवन को प्राप्त होते हैं ।

६४. मरीच्यासन एक पाँच* (चित्र १४४)

यह आसन सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ऋषि को समर्पित है । मरीचि ऋषि सूर्यदेव के दादा थे ।

विधि

१. सामने सीधी टाँगें फैलाये भूमि पर बैठें (चित्र ७७) ।

२. बायां घुटना मोड़ें और भूमि पर बायें पैर के तलवे और एड़ी को चपटा रखें । बायीं टाँग की अग्रजंघा भूमि की सीध में होनी चाहिए और पिंडली जाँघ को छूनी चाहिए । बायीं एड़ी मूलाधार के पास रखें । बायें पैर का अन्तर्भाग फैलाये हुए दाहिनी जाँघ के अन्तर्भाग को छूना चाहिए ।

३. लम्बरूप बायीं अग्रजंघा को बायीं काँख छूने तक कंधे को आगे की ओर फैलाएँ । बायीं अग्रजंघा और जंघा के चारों ओर बायीं बाँह घुमाएँ, बायीं कुहनी मोड़ें, और बायीं बाँह कमर की सतह तक पीठ के पीछे ले जाएँ । बाद में दाहिना हाथ पीठ के पीछे ले जाएँ और दायें हाथ से बायें हाथ की कलाई पकड़ें या बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ें । यदि यह संभव न हो तो हथेलियाँ या अंगुलियाँ पकड़ें (चित्र १४३) ।

४. फैलाई हुई दाहिनी टाँग सीधी रखेते हुए रीढ़ को बायीं ओर घुमाएँ । फैलाये हुए दाहिने पैर के अंगूठे की ओर एकटक देखते हुए इस स्थिति में रहें और कुछ गहरी साँस लें ।

५. श्वास छोड़ें और आगे झुकें । दाहिने घुटने पर पहले भाल, बाद में नाक, उसके बाद ओठ और अन्त में चिबुक को स्थिर करें (चित्र १४४) । इस स्थिति में होने पर दोनों कंधों को भूमि के समानान्तर रखें और सामान्य रूप से साँस लें । इस आसन में लगभग ३० सेकंड रहें और इस बात का ध्यान रखें कि फैली हुई पूरी टाँग का पिछला भाग निरन्तर भूमि से सटा है ।

६. श्वास लें, दाहिने घुटने पर से सिर उठाएँ (चित्र १४३), हाथ छोड़ दें, बायीं टाँग सीधी करें और १ की स्थिति में आएँ ।

७. दूसरी ओर उतने समय के लिए आसन दुहराएँ ।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से अंगुलियों को शक्ति प्राप्त होती है । इसके पूर्व के आसनों

में, जैसे जानु शीर्षासन (चित्र १२७), अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (चित्र १३५) और त्र्यंग मुखैक पादपश्चिमोत्तानासन (चित्र १३९) में हाथों से टाँग पकड़ने के कारण उदर के अवयव संकुचित किये जाते हैं। इस आसन में हाथ टाँग को नहीं पकड़ते। आगे झुकने और फैली हुई टाँग के घुटने पर चिबुक स्थिर करने से उदर के अवयवों को प्रयत्नपूर्वक संकुचित होना पड़ता है। यह उदर के अवयवों के चारों ओर अधिक रक्त संचार करता है और उन्हें स्वस्थ रखता है। प्रारंभ में पीठ के पीछे दोनों हाथ पकड़ने के बाद आगे झुकना अत्यंत कठिन होता है, परंतु यह अभ्यास से होता है। इस आसन में रीढ़ (मेरुदण्ड) के पृष्ठ प्रदेश को भी व्यायाम प्राप्त होता है।

टिप्पणी : जानु शीर्षासन, अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन, त्र्यंग मुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन और मरीच्यासन एक–ये चार आसन शुद्ध पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६१) के लिए प्रारंभिक आसन हैं। अनेक प्रयत्न के बाद भी पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) में पैरों पर अच्छी पकड़ पाना अनेकों के लिए कठिन है। ये चार आसन व्यक्ति की पीठ और टाँगों में काफी लचकीलापन लाते हैं, जिससे व्यक्ति आगे बतलाये गये शुद्ध पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६१) तक धीरे-धीरे पहुँचता है। एक बार यह आसन आसानी से किया जाता है तब इन चार आसनों का अभ्यास प्रतिदिन करने के बदले सप्ताह में एक बार या दो बार किया जा सकता है।

६५. मरीच्यासन दो छह* (चित्र १४६ तथा १४७)

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाये भूमि पर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटने पर बायीं टाँग मोड़ें और दाहिनी जाँघ के मूल पर बायाँ पैर रखें। बायीं एड़ी से नाभि को दबाना चाहिए और पैरों की अंगुलियाँ खुली और फैली होनी चाहिए। अब बायीं टाँग अर्ध पद्मासन में है।

३. घुटने पर दाहिनी टाँग मोड़ें। दाहिने पैर का तलवा और एड़ी भूमि पर चपटी रखें। दाहिनी टाँग की अग्रजंघा लम्बरूप में रखें जिससे दाहिनी जाँघ और दाहिनी नली एक-दूसरे को स्पर्श करें और दाहिनी एड़ी मूलाधार को स्पर्श करे।

४. आगे की ओर थोड़ा झुकें, दाहिनी काँख के लम्बरूप दाहिनी अग्रजंघा से स्पर्श करने तक दाहिना कंधा आगे की ओर फैलाएँ। एक उच्छ्वसन के साथ दाहिनी अग्रजंघा और जंघा के चारों ओर दाहिनी बाँह घुमाएँ, दाहिनी कुहनी मोड़ें और दाहिना हाथ कमर के बराबर में ठीक पीछे घुमाएँ। तब बायाँ हाथ पीठ के पीछे ले जाएँ और कमर पर बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई को पकड़ लें (चित्र १४५)।

५. रीढ़ को सीधा तानें, और गहरी साँस लेते हुए कुछ सेकंड के लिए इस स्थिति में रहें।

६. श्वास छोड़ें, धड़ और सिर आगे ले जाएँ और मुड़े हुए बायें घुटने पर सिर रखें। तब गर्दन बढ़ायें और बायें घुटने पर चिबुक को स्थिर करें (चित्र १४६ और १४७)। ऊपर उठते समय श्वास लें और झुकते समय श्वास छोड़ें। इस क्रिया को तीन या चार बार दुहराएँ।

७. श्वास लें, सिर और धड़ ऊपर उठाएँ, हाथ छोड़ दें, टाँगें सीधी कर लें, और तब दूसरी ओर उतने ही समय के लिए आसन दुहराएँ।

परिणाम

यह आसन मरीच्यासन एक (चित्र १४४) का तीव्रतर रूप है, अतः इसके परिणाम बड़े हैं। नाभिस्थ एड़ी का उदर पर अधिक दबाव पड़ता है, जिससे उदर के अवयव अधिक ठीक होते हैं और पुष्ट होते हैं तथा पाचनशक्ति की वृद्धि होती है।

६६. उपविष्ट कोणासन नौ * **(चित्र १५१)**

उपविष्ट का अर्थ 'बैठा हुआ' है। कोण का अर्थ कोना है।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाये भूमि पर बैठें (चित्र ७७)।

२. टाँगें एक-एक कर बगल की ओर ले जाएँ और उनके बीच के अंतर का विस्तार जितना कर सकें, करें। टाँगें निरन्तर फैली हुई रहने दें और इस बात को देखें कि टाँगों का सारा पिछला हिस्सा भूमि पर स्थिर रहता है।

३. पैरों के अंगूठे सम्बन्धित अंगूठे, तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों के मध्य पकड़ें।

४. रीढ़ सीधी रखें और पसलियाँ फैलायें। उरःप्राचीर ऊपर खींचें और गहरी साँस के साथ कुछ सेकण्ड के लिए इस स्थिति में रहें (चित्र १४८)।

५. श्वास छोड़ें, आगे झुकें और भूमि पर सिर टिकाएँ (चित्र १४९)। फिर गर्दन तानें और भूमि पर चिबुक स्थिर करें (चित्र १५०)।

६. बाद में हाथों से पैरों को पकड़ें और भूमि पर सीना स्थिर करने (टिकाने) की कोशिश करें (चित्र १५१)। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में ३० से ६० सेकंड रहें।

७. श्वास लें, धड़ भूमि से ऊपर उठाएँ (चित्र १४८) और पैरों की पकड़ ढीली करें, दोनों पैरों को पास-पास लायें और सुस्तायें।

८. दोनों हाथों से बायाँ पैर पकड़ें, श्वास छोड़ें और बायें घुटने पर चिबुक टिकाएँ (चित्र १५२)। श्वास लें और सिर तथा धड़ उठाएँ। अब दाहिना पैर पकड़ें और एक उच्छ्वसन के साथ दाहिने घुटने पर चिबुक स्थिर करें। श्वास लें, सिर और धड़ उठाएँ, हाथ छोड़ें, दोनों पैर एकत्र लाएँ और विश्राम लें।

परिणाम

यह आसन मंदिरशिराओं को तानता है और बस्तिप्रदेश में ठीक तरह रक्त संचारित करने में सहायता करता है और उसे स्वस्थ रखता है । हर्निया की वृद्धि रोकता है, हर्निया संबंधी छोटे-मोटे दोषों को दूर करता है । और कूल्हे की वेदना को दूर करता है । यह आसन मासिक ऋतुस्राव को नियमित तथा नियंत्रित करता है और इसके साथ ही गर्भाशय को शक्ति प्रदान करता है, इस कारण यह आसन स्त्रियों के लिए वरदान है ।

६७. पश्चिमोत्तानासन छह * **(चित्र १६१)**

(**उग्रासन** या **ब्रह्मचर्यासन** भी कहलाता है)

पश्चिम का शाब्दिक अर्थ पश्चिम दिशा है । इससे तात्पर्य है सारे शरीर का पिछला हिस्सा -- सिर से एड़ियों तक का आगे का या पूर्वीय हिस्सा -- चेहरे से पैर की अंगुलियों तक – शरीर का अग्रभाग है । सिर की खोपड़ी ऊपर की या उत्तरीय आकृति है जब कि पैर की एड़ियाँ और तलवे शरीर की निचली या दक्षिणीय आकृति बनाते हैं । इस आसन में सारे शरीर का पिछला हिस्सा जोर से ताना जाता है, इसलिए यह नाम है ।

उग्र का अर्थ घोर, शक्तिशाली और तेजस्वी है । ब्रह्मचर्य का अर्थ धार्मिक अध्ययन, आत्मनियंत्रण और कुँवारापन है ।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलायें, भूमि पर बैठें । नितम्बों के पास हथेलियाँ भूमि पर रखें । गहरी साँस लें (चित्र ७७) ।

२. श्वास छोड़ें, हाथ फैलायें और पैर की अंगुलियाँ पकड़ें । दाहिने पैर का अँगूठा, दाहिने (हाथ के) अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों के बीच और इसी प्रकार बायें पैर का अंगूठा, बायें (हाथ के) अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों के बीच पकड़ें (चित्र १५३) ।

३. रीढ़ तानें और पीठ का अंतर्वक्र बनाने की कोशिश करें । प्रारंभ में पीठ पर कूबड़ होगा । यह रीढ़ को कंधे के भाग से ही तानने के कारण है । पीठ के बस्तिप्रदेश के मूल से ही ठीक तरह से मोड़ने का और बाँहों को कंधों से ही तानने का अभ्यास करें । तब कूबड़ दिखायी नहीं देगा और पीठ चित्र १५३ के समान चिपटी होगी । कुछ गहरी साँसें लें ।

४. अब श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ें और फैलाएँ, और उनका उत्तोलनदंड (ढेकली) की तरह उपयोग करते हुए धड़ को आगे खींचें और मस्तक घुटनों से छुआएँ (चित्र १५४) । धीरे-धीरे भूमि पर कुहनियों को टिकाएँ, गर्दन और धड़ तानें, नाक

से घुटने छुएँ और बाद में होठों से छुएँ (चित्र १५५)।

५. जब यह क्रिया आसान हो जाती है तब आगे तलवों के पकड़ने का प्रयास करें और घुटनों पर चिबुक टिकाएँ (चित्र १५६)।

६. जब यह क्रिया भी सहज हो जाती है, तब अंगुलियों को परस्पर गूँथते हुए हाथ पकड़ें और घुटने के पार अग्रजंघा पर चिबुक स्थिर करें (चित्र १५७)।

७. जब स्थिति ६ सरल हो जाती है, तब फैलाये हुए पैरों के पार बायें हाथ से दाहिनी हथेली या दाहिने हाथ से बायीं हथेली पकड़ें और पीठ अंतर्गोल (नतोदर) रखें (चित्र १५८)। कुछ गहरी साँसें लें।

८. श्वास छोड़ें और घुटनों के परे अग्रजंघा पर चिबुक स्थिर करें (चित्र १५६)।

९. यदि स्थिति ८ भी आसान हो जाती है, तब बायें हाथ से दाहिनी कलाई या दाहिने हाथ से बायीं कलाई पकड़ें और घुटनों के परे अग्रजंघा पर चिबुक स्थिर करें (चित्र १६०)।

१०. ध्यान रखें कि घुटनों के जोर पर टाँगों के पृष्ठभाग भूमि पर स्थिरता पूर्वक टिकें। प्रारंभिक अवस्था में घुटने भूमि पर से ऊपर उठेंगे। जाँघों के पृष्ठभाग की मांसपेशियों को तानें और धड़ को आगे लाएँ। तब घुटनों के पृष्ठभाग भूमि पर स्थिर होंगे।

११. कोशिश करें और ऊपर की जिस किसी स्थिति को आप प्राप्त कर सकते हैं उसी में आप १ से ६ मिनट तक, समान रूप से श्वास लेते हुए स्थिर रहें।

१२. अभ्यस्त साधक हाथों को सीधा तान सकते हैं, हथेलियों को भूमि पर स्थिर कर सकते हैं, फैलाये हुए पैर के परे अँगूठों को मिला सकते हैं और घुटनों के परे अग्रजंघा पर चिबुक टिका सकते हैं (चित्र १६१)। एक या दो मिनट समान रूप से श्वास लेते हुए ठहरें।

१३. श्वास लें, घुटनों पर से सिर उठाएँ और विश्राम करें।

१४. शुद्ध पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६२) में व्यक्ति पीठ पर किसी प्रकार के भार का अनुभव नहीं करता।

परिणाम

यह आसन उदर के अवयवों को स्वस्थ रखता है और उनमें मन्दता या सुस्ती आयी हो तो उससे उन्हें मुक्त रखता है। यह गुर्दे को भी ठीक करता है, पूरी रीढ़ को पुन-र्जीवन देता है और पाचन-शक्ति को बढ़ाता है।

जानवरों की रीढ़ें क्षितिज के समानान्तर होती हैं और उनका हृदय रीढ़ के नीचे होता है। यह उन्हें स्वस्थ रखता है और उन्हें अत्यधिक सहनशक्ति प्रदान करता है। मनुष्यों में रीढ़ लम्बरूप है और हृदय रीढ़ से नीचे नहीं है, इससे वे थकान के प्रभाव का अनुभव शीघ्र करते हैं और हृदयरोगों के शिकार होते हैं। पश्चिमोत्तानासन में

रीढ़ सीधी और क्षितिज के समानान्तर रखी जाती है और हृदय रीढ़ से नीचे के स्तर पर होता है । इस आसन में अधिक समय ठहरने से हृदय, रीढ़ के स्तंभ और उदर के अवयवों को मालिश मिलती है जिससे वे स्फूर्ति का अनुभव करते हैं और मन स्थिर किया जाता है । बस्तिप्रदेश को अतिरिक्त तनाव देने के कारण, वहाँ प्राणवायु-पूरित रक्त लाया जाता है और जनन-ग्रन्थियाँ रक्त से आवश्यक आहार ग्रहण करती हैं । यह प्राण (जीवन) शक्ति की वृद्धि करता है, और नपुंसकता ठीक करने में सहायता पहुँचाता है और विषयवासना के नियंत्रण का मार्गदर्शन करता है । इस कारण यह आसन ब्रह्मचर्यासन कहलाता है । ब्रह्मचर्य का अर्थ अविवाहित जीवन या कुँवारापन है और ब्रह्मचारी वह है जिसने विषयवासना का नियंत्रण किया है ।

६८. परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन नौ * (चित्र १६५)

परिवृत्त का अर्थ गोल घुमाया हुआ, या घुमा हुआ है । पश्चिम का शाब्दिक अर्थ पश्चिम दिशा है और यह सारे शरीर के सिर से एड़ियों तक के पिछले भाग की ओर संकेत करता है । उत्तान का अर्थ तीव्र तनाव है । पश्चिमोत्तानासन के इस प्रकार में धड़ एक तरफ घुमाया जाता है ।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाए भूमि पर बैठें । घुटने कसे हुए रखें तथा टाँगें इस तरह रखें जिससे दोनों पैरों के घुटने, टखने, एड़ियाँ और अँगूठे आपस में मिल जायँ (चित्र ७७) ।

२. श्वास छोड़ें, बायें पैर की ओर दायीं बाँह फैलाएँ । दाहिना हाथ और दाहिनी कलाई घुमाएँ, जिससे दाहिना अँगूठा भूमि की ओर और दाहिनी कनिष्ठिका ऊपर की ओर लक्ष्य करें । फिर दाहिने हाथ से बायें पैर का बाहरी भाग पकड़ें । श्वास लें ।

३. अब श्वास छोड़ें, बायीं बाँह बायीं कलाई को ऊपर किये, दाहिने हाथ के ऊपर फैलाएँ । बायाँ हाथ और बायीं कलाई घुमायें जिससे बायाँ अँगूठा भूमि की और और बायीं कनिष्ठिका ऊपर की ओर हो । दाहिने पैर का बाहरी भाग पकड़ें (चित्र १६३) और श्वास लें ।

४. श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ते और फैलाते हुए धड़ लगभग ९० अंश बायीं ओर घुमाएँ (चित्र १६४) । श्वास लें । पुन: श्वास छोड़ें, बाँहों के बीच सिर घुमाएँ और ऊपर देखें । दाहिनी बाँह का ऊपरी पिछला भाग काँख के पास, बायें घुटने के परे स्थिर होगा । दाहिनी ओर की पसलियों को बायीं जाँघ पर स्थिर करने की कोशिश करें (सामने की छबि चित्र १६५, पिछले की छबि चित्र १६६) । धड़ के पार्श्वभाग

के मुड़ने के कारण श्वसनक्रिया तेज होगी। लगभग २० सेकण्ड के लिए इस स्थिति में रहें।

५. श्वास लें, हाथ छोड़ दें और धड़ को पीछे की ओर अपनी मूल स्थिति में जाने दें (चित्र १६३)।

६. अब धड़ को दाहिनी ओर घुमाएँ और उतने ही समय के लिए 'दाहिने' के बदले 'बायें' शब्द का प्रयोग कर ऊपर बतलायी विधि का अनुसरण करते हुए, आसन दुहराएँ।

परिणाम

यह अनुप्राणित करने वाला आसन उदर के अवयवों को ठीक करता है और उन्हें मंदता से दूर रखता है। यह गुर्दे को भी ठीक करता है और पूरी रीढ़ को पुनर्यौवन देता है, जिससे पाचन-शक्ति बढ़ जाती है। पार्श्व का घुमाव रीढ़ में रक्तसंचार को उत्तेजित करता है और पीठ का दर्द दूर करता है। वस्तिप्रदेश के तनाव के कारण वहाँ प्राणवायु पूरित रक्त अधिक मात्रा में लाया जाता है और जननग्रन्थियाँ रक्त से आवश्यक आहार ग्रहण करती हैं। यह प्राणशक्ति की वृद्धि करता है, नपुंसकता दूर करने में सहायता करता है और लैंगिक तृष्णा नियंत्रित करता है।

७०. ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन एक दस * **(चित्र १६८)**

जब ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) और मुख (वदन, मुँह) एकत्र प्रयुक्त होते हैं तब उसका अर्थ 'मुँह ऊपर की ओर किये' होता है। पश्चिमोत्तानासन पीछे का तीव्र तनाव है।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाकर भूमि पर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटने झुकाएँ और नितम्बों के पास पैर लाएँ।

३. हाथों से पैर की अंगुलियाँ पकड़ें, श्वास छोड़ें और हवा में टाँगें फैलाएँ, घुटने पर उन्हें सीधा करें, घुटनों की चक्कियों को जाँघों की ओर खींचें और रीढ़ को यथाशक्ति अंतर्गोलाकार (concave) रखते हुए नितम्बों पर संतुलन करें। यह शारीरिक स्थिति–

६९. उभय पादांगुष्ठासन तीन * **(चित्र १६७)**

कहलाती है। (उभय = दोनों, पादांगुष्ठ = पैर का अंगूठा)

प्रारंभ में व्यक्ति भूमि पर पीछे की ओर लुढ़क जाता है। केवल नितम्बों पर संतुलित होने के लिए कुछ समय तथा अभ्यास आवश्यक है। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में ३० से ६० सेकंड रहें।

४. संतुलन प्राप्त करने के बाद अंगुलियों को छोड़ दें और एड़ियों को पकड़ें।

५. जब यह स्थिति सहज हो जाती है, तब फैलाये हुए पैर के पीछे अंगुलियों को परस्पर गुथाएँ और संतुलन करें। फिर टाँगों की स्थिति में परिवर्तन किये बिना उनके पास धड़ और सिर लाएँ, गर्दन ऊपर उठाएँ और एक उच्छ्वसन के साथ घुटनों पर मस्तक स्थिर करें (चित्र १६८)। अब पूरे फैलाव में टाँगें और रीढ़ भी ऊपर तानें। स्वाभाविक श्वास के साथ लगभग ३० सेकण्ड के लिए इस स्थिति में रहें।

६. श्वास लें, हाथ छोड़ें, टाँगें मोड़ें और उन्हें भूमि पर टिकाएँ, और विश्राम लें।

७१. ऊर्ध्व मुख पश्चिमोत्तानासन दो दस * (चित्र १७०)

विधि

१. भूमि या दरी पर समतल लेटें और सिर के ऊपर सीधे हाथ ले जाएँ (चित्र २७६)।

२. टाँगें सीधी फैलाएँ, घुटने कसें, और कुछ गहरी साँस लें।

३. श्वास छोड़ें और टाँगों को एकसाथ धीरे से उठाएँ और सिर के ऊपर ले जाएँ।

४. अंगुलियों को परस्पर गुँथाएँ, तलवे को मिलाएँ और घुटनों को कसकर टाँगें सीधी ऊपर ले जाएँ। पूरी पीठ भूमि पर स्थिर करें (चित्र १६९)। तीन गहरी साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, कुहनियों को फैलाते हुए सिर के परे भूमि की ओर टाँगें नीचे लाएँ। कोशिश करके बस्तिप्रदेश को यथासम्भव भूमि के समीप रखें। टाँगें निरन्तर घुटनों पर कसी हुई रखें। घुटनों पर चिबुक स्थिर करें (चित्र १७०)।

६. समान रूप से श्वास लेते हुए ३० से ६० सेकंड इस स्थिति में रहें।

७. श्वास छोड़ें, और टाँगों को मूल स्थिति में लाएँ (चित्र १६९)।

८. श्वास लें, हाथों को ढीला छोड़ें, टाँगें सीधी भूमि पर फैलाएँ (चित्र २७६) और विश्राम लें।

परिणाम

यह आसन संतुलन तथा समभार करने में सहायता करता है। पूरी तरह तानी (फैलायी) हुई टाँगें जाँघों और पिंडलियों को उचित आकार देती हैं। पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) से जो लाभ हैं, वे इससे हैं और इसके अतिरिक्त यह आसन हर्निया नहीं होने देता है और पीठ का सख्त दर्द दूर करता है।

७२. पूर्वोत्तानासन एक * (चित्र १७१)

पूर्व का शाब्दिक अर्थ पूर्व दिशा है। इसका अर्थ मस्तक से पैर की अंगुलियों तक

सारे शरीर का अलग भाग है। उत्तान का अर्थ तीव्र तनाव (फैलाव) है। इस शारीरिक स्थिति में, शरीर का सारा अगला भाग जोर से ताना जाता है।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाकर भूमि पर बैठें। पैरों की दिशा में अंगुलियाँ किए हथेलियाँ नितम्बों के पास भूमि पर रखें (चित्र ७७)।

२. घुटने मोड़ें और तलवों तथा एड़ियों को भूमि पर रखें।

३. शरीर का भार हाथों और पैरों पर लें, श्वास छोड़ें और भूमि पर से शरीर उठाएँ। बाँहें और टाँगें सीधी करें और घुटने और कुहनियों को कसकर रखें (चित्र १७१)।

४. बाँहें कलाई से कंधों तक भूमि के लम्बरूप में होंगी। धड़ कंधे से वस्तिप्रदेश तक भूमि के समानान्तर रहेगा।

५. गर्दन तानें और जितना पीछे हो सके उतना सिर पीछे ले जाएँ।

६. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए एक मिनट के लिए इस स्थिति में रहें।

७. श्वास छोड़ें, कुहनियों और घुटनों को मोड़ें, भूमि पर स्थिर करने के लिए शरीर नीचे लाएँ और विश्राम करें।

परिणाम

यह आसन कलाइयों और टखनों को पुष्ट करता है, कंधों के जोड़ की गति बढ़ाता है और सीने को पूरी तरह विकसित करता है। थकाने और आगे झुकानेवाले दूसरे आसनों के करने के कारण होनेवाली थकान दूर करता है।

७३. आकर्ण धनुरासन ग्यारह * (चित्र १७३ तथा १७५)

कर्ण का अर्थ कान है। उपसर्ग आ सामीप्य, की ओर का भाव प्रकट करता है। धनु का अर्थ धनुष है। इस स्थिति में एड़ी कान को छूनेतक बायां पैर ऊपर खींचा जाता है जैसे धनुषधारी प्रत्यंचा खींचता है, जब कि दूसरा हाथ भूमि पर सीधी पड़ी टाँग के दाहिने पैर का अँगूठा पकड़ता है। दूसरी क्रिया में अधिकांशतः लम्बरूप होनेतक उठायी हुई टाँग ऊपर को सीधी की जाती है, ताने हुए धनुष की तरह पैर का अँगूठा हाथ से निरन्तर पकड़ा हुआ रहता है।

यह आसन नीचे दी हुई दो गतिविधियों (क्रियाओं) में है।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी फैलाकर भूमि पर बैठें (चित्र ७७)।

२. दाहिने पैर का अँगूठा दाहिने अँगूठे (हाथ का), तर्जनी और कनिष्ठिका के मध्य पकड़ें। इसी प्रकार बायें पैर का अँगूठा पकड़ें (चित्र १५३)।

३. श्वास छोड़ें, बायीं कुहनी मोड़ें, और घुटना मोडते हुए बायाँ पैर ऊपर उठाएँ (चित्र १७२)। एक श्वास लें। श्वास छोड़ें और एड़ी बायें कान के समीप होनेतक बायाँ पैर ऊपर खींचें। उसी समय कंधे से बायीं बाँह पीछे ले जाएँ (चित्र १७३)। दाहिने पैर का अँगूठा छूटने न पाये। दाहिनी टाँग निरन्तर तनी हुई रखें और इस बात का ध्यान रखें कि टाँग का सारा पिछला हिस्सा भूमि पर टिके। फैलायी हुई दाहिनी टाँग घुटने पर नहीं मुड़नी चाहिए।

४. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए १५ से २० सेकण्ड इस स्थिति में रहें। यह पहली क्रिया है।

५. अब श्वास छोड़ें और बायीं टाँग लम्बरूप में ऊपर तानें (चित्र १७४)। श्वास लें, श्वास छोड़ें, बायाँ कान छूने तक टाँग और पीछे खींचें (चित्र १७५)। दोनों पैरों की अँगुलियों और पूरी तरह फैली हुई दोनों टाँगों की पकड़ को बनाये रखें। उन्हें घुटने पर मुड़ने न दें। इस दूसरी क्रिया में संतुलन करने की क्रिया सीखने के लिए कुछ समय लगता है। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए १० से १५ सेकंड इस स्थिति में रहें।

६. श्वास छोड़ें, घुटने पर बायीं टाँग मोड़ें और ऊपर की स्थिति ३ की तरह बायीं एड़ी बायें कान के पास लाएँ (चित्र १७३)। फिर बायीं टाँग भूमि की ओर नीचे करें और दोनों टाँगें भूमि पर फैलाकर रखें (चित्र १५३)।

७. दाहिना पैर दाहिने कान की ओर खींचकर और उसे दाहिने कान के पास लम्ब-रूप में ऊपर उठाकर भूमि पर बायीं टाँग फैलाये रखकर दाहिनी ओर आसन दुहराएँ। पैरों की अंगुलियों पर हाथ की पकड़ न छोड़ें। दोनों ओर समान समय के लिए यह स्थिति बनायें। फिर हाथ छोड़ दें और विश्राम करें।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से टाँगों की मांसपेशियाँ लचीली होती हैं। उदर की मांस-पेशियाँ संकुचित होती हैं और यह मलोत्सर्ग में मदद करता है। नितम्ब के जोड़ों के छोटे-मोटे भद्देपन को ठीक करता है। रीढ़ के निचले भाग को व्यायाम मिलता है। यह आसन सुन्दरता और गुणों से परिपूर्ण है। बिना प्रयास के (सहज ही) किये जाने और धनुष से बाण छोड़ने वाले प्रशिक्षित धनुषधारी की आकृति होने तक इस आसन का अभ्यास करना चाहिए।

७४. सालम्ब शीर्षासन एक चार * (चित्र १८४, १८५ और १९०)

सालम्ब का अर्थ "आधार के साथ" है। शीर्ष का अर्थ सिर है। यह सिर पर खड़े होने का आसन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यौगिक आसनों में से एक है। यह मौलिक शारीरिक स्थिति है। इसके अनेक प्रकार हैं; जो बाद में शीर्षासन की माला में वर्णित हैं। इस

पर प्रभुत्व-प्राप्ति शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के संतुलन तथा शरीर भार को समत्व देती है । इसके करने की विधि दो भागों में विस्तारपूर्वक दी गयी है; पहला भाग नौसिखुओं के लिए है और दूसरा भाग उनके लिए है जो आसन में संतुलित रह सकते हैं । दोनों विधियों के बाद शीर्षासन (करने) के सम्बन्ध में आवश्यक संकेतों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है ।

नौसिखुओं के लिए विधि :

१. चार तह किया हुआ कम्बल भूमि पर बिछाएँ और उसके समीप घुटने टेकें ।

२. कम्बल के बीच हाथों को टिकाएँ । ऐसा करते समय इस बात की सावधानी रखे कि भूमि पर कुहनियों का अन्तर कन्धों से अधिक चौड़ा नहीं है ।

३. अँगुलियों के अग्रभाग तक अँगुलियों को परस्पर गुँथाएँ (चित्र १७६), जिससे हथेलियाँ प्याले की आकृति की बन जायेंगी । कम्बल पर कनिष्ठिकाओं के पास पंजों के पार्श्वभाग रखें । अपने सिर से ऊपर उठते या संतुलन करते समय अँगुलियाँ कसकर बन्द की हुई होनी चाहिए । यदि उन्हें शिथिल छोड़ दिया गया, तो शरीर का भार उनपर पड़ता है और बाँहें दुखती हैं । इसलिए उन्हें अच्छी तरह परस्पर गुँथा कर रखने का ध्यान रखें ।

४. कम्बल पर केवल सिर का कपाल ही स्थिर करें, जिससे सिर का पृष्ठभाग कप की आकृति की हथेलियों का स्पर्श करें (चित्र १७७) । कम्बल पर केवल सिर के कपाल का मध्य (उच्चस्थान) या मूर्धा रहे । इसे करने के लिए सिर की ओर घुटनों को ले जाएँ ।

५. सिर की स्थिति को सुरक्षित (ठीक) करने के बाद, पैर की अँगुलियों को सिर के पास ले आते हुए भूमि से घुटनों को ऊपर उठाएँ (चित्र १७८) ।

६. श्वास छोड़ें, भूमि पर से हलकी उछाल लें और मुड़े घुटनों से भूमि पर से टाँगें ऊपर उठाएँ (चित्र १७९) । उछाल इस तरह लें कि दोनों पैर एक साथ भूमि छोड़ें । जब एक बार यह स्थिति निश्चित हो जाती है, तब टाँगों की विविध अवस्थाओं की चित्र १८०, १८१, १८२ और १८३ जैसी स्थितियों का क्रमशः अनुसरण करें ।

७. टाँगें तानें और भूमि की सीध में सारे शरीर को रखते हुए सिर पर खड़े हों (सामने की छवि : चित्र १८४, पृष्ठ छवि : चित्र १८५, पार्श्व छवि : चित्र १९०) ।

८. अन्तिम स्थिति में सामर्थ्य के अनुसार एक से पाँच मिनट रहने के बाद, घुटने झुकाएँ और जैसा कि चित्र १८३, १८२, १८१, १८०, १७९, १७८ और १७७ में है, विपरीत क्रम से भूमि की ओर नीचे आना शुरू करें ।

९. नौसिखुए को एक मित्र की सहायता आवश्यक है या वह दीवार के सहारे आसन करे । दीवार के सहारे अभ्यास करते समय, दीवार और सिर के बीच का अन्तर २ या

३ इंच से अधिक नहीं होना चाहिए। यदि अंतर अधिक है तो रीढ़ टेढ़ी हो जाएगी और पेट बढ़ जाएगा। शरीर का भार कुहनियों पर अनुभूत होगा और सिर की स्थिति के बदलने की संभावना है। चेहरा लाल और आँखें फैलायी हुई या तानी गयी मालूम पड़ेंगी। इसलिए नौसिखुओं के लिए यही उचित है कि वे जहाँ दो दीवारें मिलती हैं, उस कोने में किसी भी दीवार से लगभग २ से ३ इंच पर सिर रखकर शीर्षासन करें।

१०. दीवार या कोने के सहारे शीर्षासन करते समय नौसिखुए को चाहिए कि वह श्वास छोड़े, टाँगें ऊपर उछाले, नितम्बों को दीवार का सहारा दे और पैर ऊपर ले जाए। कोने में, वह दीवारों के दोनों तरफ एड़ियाँ रख सकता है। तब उसे पीठ को लम्बरूप में ऊपर तानना चाहिए, धीरे-धीरे दीवार का सहारा छोड़ना चाहिए और संतुलन पर प्रभुत्व पाना चाहिए। नीचे आते समय, वह पैरों तथा नितम्बों को दीवार के सहारे टिका सकता है, नीचे सरक सकता है और भूमिपर अपने घुटने टेक सकता है। नीचे आने और ऊपर जाने की क्रिया उच्छ्वसन के साथ की जानी चाहिए।

११. कोने में संतुलन करने से नौसिखुए को यह लाभ है कि उसका सिर और टाँगें दीवारों से बने हुए समकोण में स्थिर होंगी और उसे अपनी सही स्थिति का भी विश्वास होगा। यदि वह किसी एक सीधी दीवार के सहारे संतुलन करता है तो यह बात नहीं होगी। कारण जिस समय कमर या नितम्ब—इन दोनों में से किसी एक पर वह झुकेगा, उसकी टाँगें दीवार के सहारे होंगी, उसका संतुलन अनिश्चित है, वह हिल सकता है, अथवा उसका शरीर अपने पुष्ट भाग की ओर झुक या हिल सकता है। नौसिखुआ इस स्थिति में नहीं होगा कि वह जाने कि वह एक ओर झुका है, और इस गलती को तो वह अपने आप सुधार ही नहीं सकता। कुछ समय में वह सिर पर संतुलन करना सीख तो ले पर आदतन उसका शरीर हमेशा एक ओर झुका रहे या उसका सिर सीधा न रहे। शीर्षासन में गलत स्थिति को ठीक करना उतना ही कठिन है जितना कि बुरी आदत छोड़ना। इसके अलावा, यह गलत शारीरिक स्थिति सिर, गर्दन, कंधा और पीठ में वेदना और दर्द उत्पन्न करेगी। परन्तु दो दीवारों का कोना नौसिखुए को आसन यथाप्रमाण रखने में सहायता करेगा।

१२. जब एक बार संतुलन प्राप्त हो जाता है, तब उचित यह है कि टाँगें सीधी किये (अर्थात् घुटनों पर बिलकुल मोड़े बिना) और नितम्बों के पीछे की ओर की क्रिया के साथ भूमि पर नीचे आएँ। टाँगों को मोड़े बिना ऊपर जाना और नीचे आना पहले-पहले संभव नहीं है, परंतु उचित रीति से सीखना चाहिए। एक बार जब नौसिखुए को सिर से खड़े (शीर्षासन में) होने में विश्वास हो जाता है तब वह टाँगें एकत्र और सीधी किये, किसी प्रकार के झटके के बिना ऊपर ले जाने और नीचे लाने में इसे अधिक लाभदायक पाएगा।

१३. नौसिखुए को, जब कि वह अपने सिर पर संतुलन करता है, अपने आसपास के वातावरण से परिचित होने में समय लगता है। प्रथम-प्रथम प्रत्येक वस्तु पूर्णतया अपरिचित होती हुई मालूम पड़ेगी। निर्देश और सूचनाएँ भ्रामक मालूम होंगी और वह साफ-साफ समझने और विवेकपूर्वक काम करने में कठिनाई महसूस करेगा। इसका कारण गिरने का भय है। व्यक्ति जिस स्थिति से भयभीत है स्थिर चित्त से उसका सामना करना ही भय पर विजय प्राप्त करने का उत्तम तरीका है। तब व्यक्ति शुद्ध स्वरूप पाता है और वह फिर कभी भयभीत नहीं होता। शीर्षासन को सीखते समय लुढ़ककर गिरना उतना भयंकर नहीं है कि जितना हम कल्पना करते हैं। यदि कोई अधिक भारी है तो उसे ध्यान रखना चाहिए कि वह परस्पर गुँथी हुई अँगुलियों को शिथिल कर दे, स्वयं शिथिल हो जाए, लुढ़क जाए और घुटने ढीले कर दे। तब व्यक्ति तुरंत लुढ़क पड़ेगा और हँसेगा। यदि अँगुलियाँ शिथिल नहीं की जाती हैं तो उन्हें गिरने का झटका मिलेगा जो पीड़ाजनक होगा। गिरते समय यदि हम शिथिल न हों और न लुढ़कें तो हम बड़े झटके के साथ भूमि पर मार खाते हैं। यदि हम घुटने झुकाते हैं तो उन्हें गिरते देखना हमारे लिए संभव नहीं है। व्यक्ति द्वारा दीवार के सहारे या कोने में संतुलन करना सीख लेने के बाद, उसे कमरे के बीच में शीर्षासन करने की कोशिश करनी चाहिए। कुछ गलतियाँ होंगी परंतु व्यक्ति को ऊपर बतलायी गयी गिरने की कला अवश्य सीखनी चाहिए। कमरे के बीच में शीर्षासन करने का अभ्यास नौसिखुए को अत्यधिक विश्वास देता है।

संतुलन कर सकनेवालों के लिए विधि आठ

१. नौसिखुओं के लिए बतलायी गयी स्थिति १ से ४ की विधि का अनुसरण करें।

२. सिर की स्थिति निश्चित करने के बाद, भूमि से घुटने उठाते हुए टाँगें सीधी तानें। पीठ सीधी रखते हुए पैर की अँगुलियाँ सिर के पास लाएँ और भूमि पर एड़ियाँ दबाने की कोशिश करें (चित्र १८६)।

३. पृष्ठप्रदेश या रीढ़ का मध्यभाग तानें और समान रूप से श्वास लेते हुए लगभग ३० सेकंड के लिए इस स्थिति में रहें।

४. श्वास छोड़ें, एड़ियाँ उठाएँ और नितम्बों को पीछे की ओर ले जाते हुए भूमि से पैर की अँगुलियाँ हटाएँ। सींकचों-सा कड़ा करते हुए दोनों टाँगें एक ही समय उठाएँ (चित्र १८७)। श्वास लें।

५. पुनः एक उच्छ्वसन के साथ भूमि के समानान्तर होने तक टाँगें ऊपर ले जाएँ। इस स्थिति को–

७५. ऊर्ध्व दण्डासन आठ * (चित्र १८८)

कहते हैं । (ऊर्ध्व = ऊपर, दण्ड = सोटा)

समान रूप से श्वास लेते हुए १० सेकण्ड के लिए इस स्थिति में ठहरें ।

६. श्वास छोड़ें, चित्र १८९ के समान टाँगें ऊपर ले जाएँ और तब उन्हें लम्बरूप स्थिति में ऊपर खींचें (पार्श्वभाग : चित्र १९०) । समान रूप से श्वास लेते हुए १ से ५ मिनट तक इस स्थिति में ठहरें ।

७. उपर्युक्त विधि उलटे क्रम से ध्यान में रखते हुए धीरे-धीरे नीचे आएँ (चित्र १८९, १८८, १८७ और १८६) । भूमि पर पैर टेक दें, घुटने मोड़ें और भूमि या कम्बल पर से हाथ उठायें ।

८. नीचे आते समय, सामर्थ्य के अनुसार एक मिनट तक समान रूप से श्वास लेते हुए ऊर्ध्व दण्डासन में ठहरना उचित है । इस स्थिति में गर्दन और धड़ भूमि की सीध में नहीं रहेंगे, परन्तु वे पीछे की ओर जरा झुके रहेंगे । गर्दन, कंधे और रीढ़ पर अत्यधिक तनाव पड़ेगा और प्रारम्भिक अवस्था में कोई टाँगों से भूमि की सीध में कुछ सेकण्ड से अधिक नहीं ठहर सकता है । जैसे जैसे गर्दन, कंधे, उदर और रीढ़ ये अधिक पुष्ट होंगे वैसे वैसे अधिक समय के लिए ठहरना होगा ।

शीर्षासन सम्बन्धी सूचनाएँ

१. शीर्षासन में संतुलन मात्र महत्त्वपूर्ण नहीं है । व्यक्ति को क्षण-प्रतिक्षण निगरानी रखनी है और बारीक से बारीक स्थिति की जानकारी प्राप्त कर लेनी है । जब हम पैरों पर खड़े होते हैं तब हमें अतिरिक्त प्रयास, शक्ति या ध्यान की आवश्यकता नहीं होती है । कारण यह स्थिति प्राकृतिक है । फिर भी खड़े होने का ठीक तरीका हमारे ढंग और परिवहन को प्रभावित करता है । इसलिए ताड़ासन की सूचना में बतलाये गये उचित ढंग पर प्रभुत्व पाना आवश्यक है । शीर्षासन में भी उचित स्थिति पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहिए । कारण, इस आसन में गलत शारीरिक स्थिति सिर, गर्दन और पीठ में दर्द पैदा करेगी ।

२. शरीर का सारा भार केवल सिर पर ही उठाना चाहिए, न कि हथेलियों और हाथों पर । हाथ और हथेली किसी प्रकार के असंतुलन को रोकने के आधार के लिए ही उपयोग में लाये जाते हैं । अच्छी स्थिति में, भूमि पर कम्बल के सम्पर्क में, आप लगभग रुपये (सिक्के) के आकार में सिर के वर्तुल का अनुभव करेंगे ।

३. सिर का पृष्ठभाग धड़, जाँघों के पृष्ठभाग और एड़ियाँ भूमि की सीध में होनी चाहिए, न कि एक ओर झुकी हुई । गला, चिबुक और सीने की हड्डी एक पंक्ति में होती चाहिए, अन्यथा सिर एक ओर झुकेगा या आगे की ओर जाएगा । सिर के पीछे परस्पर गुँथे हाथ इसलिए हैं कि हथेलियाँ सिर से न सटने पायें । हथेलियों के ऊपरी

और निचले हिस्से एक सीध में होने चाहिए, अन्यथा सिर का कपाल ठीक तरह से भूमि पर स्थिर नहीं होगा।

४. कुहनियाँ और कंधे एक सीध में होने चाहिए और कुहनियाँ फैलायी हुई न हों। कंधों को उपर ले जाते हुए और उन्हें बगल में फैलाते हुए भूमि पर से जितना हो सके उतनी ऊँचाई पर रखना चाहिए। कंधों के उचित फैलाव सीखने के लिए परस्पर गुँथी हुई अँगुलियों को छोड़ दें और सिर के पीछे से हाथ हटाएँ और कुहनियों को स्थिर रखते हुए हाथ से कलाइयों को पसारें। हथेलियों को ऊपर किये भूमि पर कलाइयाँ रखें, कलाइयाँ भूमि पर रखते हुए अँगुलियों से कंधों का स्पर्श करें और संतुलन बनाएँ (चित्र १९१)। यह केवल संतुलन को ही विकसित नहीं करेगा अपितु आगे बतलायी गयी शीर्षासन की स्थितियों (आसन के प्रकारान्तर) के लिए आपको समर्थ करेगा।

५. जहाँतक धड़ की स्थिति की बात है, पृष्ठप्रदेश आगे की ओर और ऊपर खींचा होना चाहिए। कटि तथा बस्तिप्रदेश आगे की ओर निकालना नहीं चाहिए, बल्कि धड़ कंधों से लेकर बस्तिप्रदेश तक एक सीध में रखना चाहिए। यदि बस्तिप्रदेश कुछ निकला है तो इसका अर्थ यह है कि आप शरीर का भार न केवल सिर पर अपितु कुहनियों पर भी उठा रहे हैं। कारण, आपने पृष्ठप्रदेश (सीने) को ठीक ढंग से नहीं ताना है। जब पार्श्व से देखा जाय तो शरीर गर्दन से एड़ियों तक एक सीध में दिखलायी देना चाहिए।

६. जाँघ, घुटने, टखने तथा पैर की अंगुलियों को यथासंभव मिलाने की कोशिश करें। टाँगों, विशेषत: घुटने और जाँघों के पीछे के भाग को पूरी तरह तानें। अगर टाँगें पीछे झुक गयीं तो घुटनों तथा उदर के नीचे के मध्य भाग को पेडू के ऊपर कसें। इससे टाँगें सीधी रहेंगी। पैर की अँगुलियाँ ऊपर की ओर रखें। अगर टाँगें आगे की ओर झुकती हैं तो पृष्ठप्रदेश (छाती के पीछे पीठ का प्रदेश) तानें और बस्तिप्रदेश को कंधों की सीध में होने तक थोड़ा-सा पीछे ले जाएँ। तब शरीर हलका मालूम होगा ओर मुद्रा प्रफुल्लित होगी।

७. ऊपर जाते समय या शीर्षासन करते समय आँखें कभी रक्तपूर्ण नहीं होनी चाहिए। यदि वे होती हैं, तो आसन (स्थिति) दोषपूर्ण है।*

८. शीर्षासन के लिए कालमर्यादा व्यक्तिगत सामर्थ्य तथा व्यक्ति के पास उपलब्ध समय पर अवलम्बित है। व्यक्ति इसे १० से १५ मिनट सुविधापूर्वक

* मैंने यह आसन एक ६५ वर्षीय महिला को जो 'ग्लाकोमा' (आँख का एक रोग) से पीड़ित थी, सिखलाया है। अब वह आँखों को पूरी तरह शान्त स्थिर पाती है और उनकी पीड़ा काफी हदतक जाती रही है। डॉक्टरी जाँच-पडताल से पता चला है कि आँख की पुतलियों का तनाव घट गया है। शुद्ध शीर्षासन के महत्त्व को प्रमाणित करने के लिए मैं यह लिख रहा हूँ।

(आसानी से) कर सकता है। नौसिखुआ इसे २ मिनट के लिए कर सकता है और ५ मिनट तक बढ़ा सकता है। नौसिखुए को एक मिनट के लिए संतुलन सदा कठिन होता है, परन्तु जब एक बार वह सफलता प्राप्त करता है तब वह निश्चय कर सकता है कि वह शीर्षासन पर प्रभुत्व पाने में शीघ्र समर्थ होगा।

९. ऊपर जाते या नीचे आते समय दोनों टाँगें एक साथ एक एक इंच करके धीरे धीरे ले चलें। सारी क्रियाएँ (गतिविधियाँ) उच्छ्वसन के साथ की जानी चाहिए। जब किसी स्थिति में ठहरते हैं, तब श्वास लें। घुटने पर टाँगें मोड़े (झुकाए) बिना सीधे ऊपर जाने और नीचे आने का परिणाम यह होता है कि शान्त, मंद गति प्राप्त की जाती है और सिर में रक्तप्रवाह नियंत्रित होता है। झटके देनेवाली और तेज क्रिया से चेहरा लाल नहीं हो जाता। कारण कमर और टाँगों का रक्तप्रवाह भी नियंत्रित होता है। जब व्यक्ति सिर-संतुलन के बाद तत्काल खड़ा हो जाता है तब मूर्च्छा या पैरों की चेतना-शून्यता से संतुलन खोने का भय नहीं रहता है। कुछ समय में ऊपर जाने, ठहरने और नीचे आने की सारी क्रियाएँ यथासंभव कोशिश किये बिना सहज होनी चाहिए। पूर्ण शीर्षासन में आपका शरीर पूरी तरह तना मालूम होता है और साथ ही साथ आपको पूर्ण विश्रान्ति के अनुभव का भान होता है।

१०. शीर्षासन करने के पहले प्रथम सर्वांगासन (चित्र २२३) सिद्ध करना सर्वदा सुरक्षित है। यदि पहले बतलाये गये खड़े होने के आसन (चित्र १ से ३६) और सर्वांगासन तथा हलासन की विविध क्रियाओं (चित्र २३४ से २७१) पर प्रथम प्रभुत्व प्राप्त किया जाता है तो शीर्षासन अधिक प्रयास के बिना आएगा। यदि इन प्रारंभिक आसनों पर प्रभुत्व नहीं प्राप्त किया गया है तो शीर्षासन सीखने के लिए अधिक समय लगेगा।

११. शीर्षासन में संतुलन सीखने के बाद, किसी अन्य आसन का अभ्यास करने के पूर्व प्रथम शीर्षासन और उसकी माला (चित्र १९० से २१८) का करना उचित होगा। इसका कारण यह है कि यदि अन्य आसनों के करने से शरीर थक जाता है या यदि श्वासक्रिया तेज और कंपित होती है तो व्यक्ति संतुलन नहीं कर सकता या सिर के बल ठहर (शीर्षासन कर) नहीं सकता है। एक बार जब शरीर थक जाता है या श्वासक्रिया स्वाभाविक और सहज नहीं होती है तब शरीर कम्पित होगा और संतुलन बनाये रखना कठिन होगा। जब व्यक्ति प्रफुल्लित होता है तब प्रथम शीर्षासन का करना हमेशा अधिक अच्छा होता है।

१२. शीर्षासन और उसकी माला के बाद सर्वांगासन और उसकी माला का करना हमेशा उचित है। यह देखा गया है कि जो व्यक्ति सर्वांगासन के आसनों के किये बिना केवल शीर्षासन के करने में ही अभिरुचि लेते हैं वे तुच्छ बातों पर क्रुद्ध हो जाते हैं और शीघ्र चिढ़ते हैं। शीर्षासन सहित सर्वांगासन का अभ्यास इस लक्षण

को रोक देता है। यदि सर्वांगासन सभी आसनों की माता है तो शीर्षासन को सभी आसनों का पिता मानना चाहिए। और ठीक उसी तरह जैसे माता-पिता दोनों घर की शांति और आनन्द के लिए आवश्यक हैं शरीर को स्वस्थ और मन को संतुलित व शान्त बनाये रखने के लिए इन दोनों आसनों का अभ्यास करना आवश्यक है।

शीर्षासन के परिणाम

प्राचीन पुस्तकों में शीर्षासन को आसनों का राजा कहा गया है और इसके कारण ढूँढ़ निकालना कठिन नहीं है। जब हम जन्म लेते हैं तब प्रायः पहले सिर बाहर आता है और बाद में अन्य अवयव। खोपड़ी के अन्दर मस्तिष्क बन्द रहता है जो नाडीमंडल और ज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रित करता है। मस्तिष्क बुद्धि, चातुर्य, ज्ञान, विवेक, पांडित्य और शक्ति का स्थान है। यह ब्रह्मन् अर्थात् आत्मा का स्थान है। जिस प्रकार देश योग्य राजा या उसके मार्गदर्शन करनेवाले वैधानिक प्रमुख के बिना उन्नति नहीं कर सकता है, उसी प्रकार मानव शरीर भी स्वस्थ मस्तिष्क तथा बुद्धि के बिना उन्नति नहीं कर सकता है।

भगवद्गीता कहती है, "हे महाबाहु (अर्जुन), सत्त्व, रज और तम ये गुण प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं; ये देह में रहनेवाले अविनाशी अर्थात् निर्विकार आत्मा को देह में अच्छी तरह बाँध लेते हैं।"[1]

ये सारे गुण बुद्धि से प्रस्फुरित होते हैं और कभी एक गुण प्रबल होता है तो कभी दूसरा। सात्त्विक गुणों का केन्द्र सिर है, जो विवेक नियन्त्रित करता है; राजसिक गुणों का केन्द्र धड़ है, जो कामना, भावना और व्यापार नियन्त्रित करता है; तथा तामसिक गुणों का केन्द्र उरःप्राचीर का निम्न प्रदेश है, जो विषयगत सुख जैसे-खान–पान का उपभोग (तृप्ति) और लैंगिक स्फुरण एवं आनन्द को नियन्त्रित करता है।

शीर्षासन का नियमित अभ्यास मस्तिष्क की कोशिका में स्वस्थ शुद्ध रक्त प्रवाहित करता है। यह उन्हें पुनर्यौवन देता है, जिससे विचारशक्ति की वृद्धि होती है और विचार अधिक स्पष्ट होते हैं। जिनकी बुद्धि शीघ्र थक जाती है उनके लिए यह आसन पौष्टिक है। यह बुद्धि की पीयूषग्रंथियों (Pituitary glands) तथा शीर्षग्रंथियों (Pineal glands) में ठीक तरह से रक्तपूर्ति को सुरक्षित करता है। इन दो ग्रंथियों के व्यवस्थित व्यापार पर हमारा विकास, स्वास्थ्य तथा जीवन-शक्ति अवलम्बित है।

---

१ सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥
भगवद्गीता, अध्याय १४–५

निद्रा, स्मृति तथा जीवनशक्ति (चैतन्य) की न्यूनता (क्षय) से पीड़ित व्यक्तियों ने इस आसन के नियमित एवं उचित अभ्यास से उनकी पुनःप्राप्ति की है और वे ऊर्जा-स्रोत बने हुए हैं। फुफ्फुस किसी प्रकार की जलवायु का अवरोध करने की शक्ति प्राप्त करते हैं और किसी कार्य के लिए तत्पर रहते हैं, जो व्यक्ति को सर्दी, खाँसी, टॉन्सिल, दुर्गन्ध श्वास, नाड़ी की धड़कन से दूर रखता है। यह शरीर को गरम रखता है। सर्वांगासन की क्रियाओं (चित्र २३४ से २७१) के साथ यदि यह आसन किया जाय तो यह कोष्ठबद्धता से पीड़ित व्यक्ति के लिए वरदान है। शीर्षासन का नियमित अभ्यास रक्त की घटक हेमोग्लोबिन में विशेष प्रगति दिखलाएगा।

जब व्यक्ति अधिक या न्यून रक्तचाप से पीड़ित हो तो शीर्षासन और सर्वांगासन से प्रारंभ करना उचित नहीं है।

शीर्षासन का नियमित तथा विधिपूर्वक अभ्यास शरीर का विकास करता है, मन को अनुशासित करता है और स्फूर्ति तथा उत्साह की वृद्धि करता है। व्यक्ति दुख और सुख में, हानि और लाभ में, अपयश और यश में और हार और जीत में संतुलित तथा आत्मसंयमी रहता है।

शीर्षासन की माला

शीर्षासन की क्रियाओं के विविध प्रकार हैं जिनका सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १८४) में व्यक्ति के सामर्थ्य के अनुसार कम से कम ५ मिनट के लिए स्थित होने पर एक साथ अभ्यास किया जा सकता है। व्यक्ति ५ से १५ मिनट के लिए अभ्यास करें और तब इन विविध क्रियाओं को २० से ३० सेकंड के लिए दोनों ओर एक साथ करें।

७६. सालम्ब शीर्षासन दो पांच * (चित्र १९२)

विधि

१. कम्बल चार तह कर जमीन पर फैलायें और उसके पास घुटने टेकें।

२. दाहिने घुटने के बाहरी भाग के पास ही भूमि पर दायीं हथेली और बायें घुटने के बाहरी भाग के पास बायीं हथेली रखें। हथेलियाँ एक दूसरे के समानान्तर होनी चाहिए और अंगुलियाँ सिर की ओर सीधी हों। भूमि पर हथेलियों के बीच का अंतर कंधों की चौड़ाई से अधिक चौड़ा नहीं होना चाहिए।

३. घुटने सिर की ओर ले जाएँ और कम्बल के बीच में खोपड़ी का मध्यबिंदु रखें।

४. सिर की स्थिति निश्चित करने के बाद, भूमि से घुटने उठाते हुए टाँगों को सीधा तानें। पैर की अँगुलियों को सिर के और समीप ले जाएँ और पीठ सीधी करते हुए भूमि पर एड़ियाँ दबाएँ।

५. सीने को आगे निकालते हुए रीढ़ का पृष्ठप्रदेश (Dorsal) तानें और कुछ सेकंड के लिए इस स्थिति में रहें। ३ से ४साँस लें।

६. श्वास छोड़ें, भूमि पर से थोड़ा उछाल लें और घुटनों को ढीला करते हुए टाँगें ऊपर उठाएँ। दोनों टाँगों को एक साथ भूमि छोड़नी चाहिए। जब यह स्थिति निश्चित हो जाती है तब टाँगें ऊपर तानें, श्वास छोड़ें, पैर की अंगुलियों को ऊपर की ओर किये रखें, घुटने कसें और संतुलन बनाएँ (चित्र १९२)।

७. संतुलन की अवस्था में केवल सिर की खोपड़ी (कपाल) और दोनों हाथ भूमि पर रहें। कलाइयों से कुहनियों तक हाथ भूमि पर लम्बरूप में और एक दूसरे के समानान्तर रखे होने चाहिए। कुहनियों से कंधों तक बाँस का ऊपरी भाग भूमि और एक दूसरे के समानान्तर रखा होना चाहिए।

८. जो संतुलन करने में समर्थ हैं वे सालम्ब शीर्षासन एक में दी हुई विधि और संकेतों का अनुसरण करें।

९. अन्य उन्नत आसनों, जैसे-बकासन (चित्र ४१०), ऊर्ध्व कुक्कुटासन (चित्र ४१९), गालवासन (चित्र ४२७ और ४२८) तथा कौंडिन्यासन (चित्र ४३८) इत्यादि का अभ्यास करने के लिए शीर्षासन के इस प्रकार पर प्रभुत्व पाना आवश्यक है।

शीर्षासन माला (चालू)

७७. सालम्ब शीर्षासन तीन आठ * **(चित्र १९४ और १९५)**

विधि

१. कम्बल के समीप भूमि पर घुटने टेकें। घुटने लगभग एक फूट फैलाएँ।

२. हथेलियों को उलटें (अधोमुख रखें) और उन्हें घुटनों के बीच कम्बल पर रखें, जिससे अँगुलियाँ पैरों की ओर रहें। कलाइयों से कुहनियों तक हाथ भूमि पर लम्बरूप में और एक दूसरे के समानान्तर रखना चाहिए। हथेलियों के बीच का अन्तर कंधों के बीच के अन्तर से अधिक नहीं होना चाहिए।

३. कलाइयों के बिलकुल पीछे कम्बल पर सिर का कपाल स्थिर करें। मस्तक कलाइयों के अन्तर्भाग के सम्मुख होगा। सिर दोनों हाथों के मध्य में रखा होना चाहिए जिससे कपाल भूमि पर हथेलियों के समानान्तर हो।

४. कलाइयों और हथेलियों को नीचे जोर से दबाएँ, श्वास छोड़ें, भूमि से पैर उठाएँ, टाँगें लम्बरूप की स्थिति में ऊपर उठाएँ और सन्तुलन करें। कुहनियाँ न फैलाएँ, परन्तु यथासंभव उन्हें समीप लाने की कोशिश करें (चित्र १९३)।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए एक मिनट के लिए इस स्थिति में सन्तुलित हों और बाद में श्वास छोड़ें और टाँगें भूमि पर धीरे से नीचे लाएँ।

६. शीर्षासन के इस प्रकार में संतुलन सीखने के बाद हथेलियों के किनारे और कनिष्ठिकाओं के एक-दूसरे के स्पर्श होने तक हाथों को यथासम्भव समीप लाने का प्रयास करें (सामने की छबि : चित्र १९४; पार्श्व छबि : चित्र १९५)। इसके साथ-साथ घुटनों को मोड़े बिना टाँगें सीधी रखकर ऊपर जाना और नीचे आना सीखें (चित्र १९६ और १९७)। शीर्षासन का यह प्रकार सन्तुलन में स्थिरता और विश्वास उत्पन्न करेगा।

७८. बद्धहस्त शीर्षासन चार * (चित्र १९८)

बद्ध का अर्थ बंधा हुआ, पकड़ा हुआ, अधीन किया हुआ होता है। हस्त का अर्थ हाथ है। यह शीर्षासन का एक प्रकार है।

विधि

१. भूमि पर चार तह किया हुआ कम्बल फैलाएँ और उसके समीप घुटने टेकें।

२. सीने के सामने बाँहों को तहियाएँ और बाएँ हाथ से दाहिनी बाँह के ऊपर कुहनी के पास पकड़ें। उसी प्रकार दाहिने हाथ से बायीं बाँह के ऊपर कुहनी के पास पकड़ें।

३. कम्बल पर कुहनियाँ और कंधे तहियाये हुए हाथों को टिकाएँ। आगे झुकें और सिर का कपाल कम्बल पर बँधे हाथों के थोड़ा परे रखें। मस्तक बंधे हाथों के जरा पीछे होगा।

४. भूमि पर से घुटने उठाएँ और टाँगें बिलकुल सीधी तानें।

५. सिर और कुहनियों पर भार निश्चित करने के बाद, बँधे हाथों को नीचे दबाएँ, श्वास छोड़ें, हाथ की पकड़ छोड़े बिना धड़ को थोड़ा पीछे धीरे से ले जाएँ और टाँगें भूमि पर से ऊपर उठाएँ (चित्र १९८)।

६. जब टाँगें ऊपर लम्बरूप में जा रही होती हैं, तब गर्दन पर शरीर का भार होता है और उसमें तनाव मालूम होता है। गर्दन के पिछले भाग और हाथ पर हलकेपन का अनुभव होने तक टाँगें ऊपर की ओर ले जाएँ और धड़ का पृष्ठप्रदेश आगे की ओर तानें। जब आप हलकेपन का अनुभव करें तो आप निश्चित कर लें कि शरीर सीधा है। जो संतुलन कर सकते हैं वे सालम्ब शीर्षासन एक में बतलायी गयी विधि और संकेतों का अनुसरण करें।

७. शीर्षासन में एक मिनट के लिए सीधे रहें। फिर श्वास छोड़ें, कुहनियों को उठाये बिना नितम्बों को पीछे ले जाएँ और टाँगें भूमि पर धीरे से लाएँ। टाँगें नीचे लाते समय उन्हें सीधा रखने की कोशिश करें और घुटने पर मुड़ने न दें।

७९. मुक्तहस्त शीर्षासन छह* (चित्र २०० और २०१)

मुक्त का अर्थ स्वतंत्र है। हस्त का अर्थ हाथ है। शीर्षासन के इस प्रकार पर

प्रभुत्व प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। जब यह आसानी से आता है, तब व्यक्ति का शीर्षासन पर पूर्ण प्रभुत्व होता है। इस आसन में संतुलन करना अन्य की तुलना में आसान है परंतु टाँगों को घुटने पर मोड़े बिना उन्हें सीधा किये ऊपर ले जाना और नीचे ले आना अत्यन्त कठिन है।

विधि

१. भूमि पर चार तह किया हुआ कम्बल फैला दें और उसके समीप घुटने टेकें।

२. धड़ आगे झुकाएँ और सिर के कपाल का मध्य भूमि पर टेकें !

३. पैरों की ओर सीने के सामने बाँहें एकदम सीधी तानें और कलाइयों के पृष्ठभाग को भूमि पर टेकें। हथेलियों को ऊपर किये कुहनियों पर बाँहें सीधी रखें। जितना कंधों के बीच का अंतर हो, उतना ही कलाइयों के बीच का अंतर होना चाहिए।

४. भूमि पर लम्बरूप में होने तक धड़ को उठाएँ। भूमि पर कलाई धीरे से दबाएँ, श्वास छोड़ें और पैर उठाएँ (चित्र १९९) टाँगें तानें और धीरे-धीरे उन्हें ऊपर उठाएँ जबतक वे लम्बरूप हो जाएँ (पार्श्व छबि : चित्र २००)।

५. स्वाभाविक श्वास लेते हुए इस स्थिति में एक मिनट के लिए ठहरें। बाँहों को सीधा रखें, कुहनियों को तानें और कलाइयों की स्थिति बदले बिना कंधों को भूमि पर से यथाशक्ति ऊपर उठाएँ (सामने की छबि : चित्र २०१)।

६. श्वास छोड़ें, नितम्बों को थोड़ा पीछे झुकाएँ और कलाइयों पर शरीर का भार हलके से देकर पैरों को धीरे-धीरे भूमि पर लाएँ।

७. बाद में भूमि पर से सिर ऊपर उठाएँ, बैठें और सुस्ताएँ।

टिप्पणी : एक बार शीर्षासन के प्रकारों पर अधिकार प्राप्त कर लेने पर सिर के आधार पर संतुलन करते हुए हाथों की स्थिति को बदलना संभव है। तब व्यक्ति को हाथ की स्थिति बदलने के लिए नीचे आने की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति को धीरे-धीरे अभ्यास करना चाहिए, अन्यथा गर्दन और कंधों पर तनाव पड़ेगा।

८०. **पार्श्व शीर्षासन** आठ* (चित्र २०२ और २०३)

पार्श्व का अर्थ बगल या काँख है। शीर्षासन के इस प्रकार में सिर या हाथों की स्थिति में बाधा पहुँचाये बिना संतुलन बनाते हुए धड़ और टाँगें किसी एक बगल में झुकायी जाती हैं।

विधि

१. सीधे सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १८४) से, श्वास लें और सिर तथा हाथों

को छोड़कर शरीर को पार्श्व में घुमाएँ, दाहिनी ओर मुड़ते हुए रीढ़ घुमाएँ (सामने की छवि : चित्र २०२; पृष्ठ छवि : चित्र २०३)।

२. चित्र के अनुसार टाँगें और नाभि अपनी मूल स्थिति से ९० अंश तक बगल में झुकी होनी चाहिए। व्यक्ति को संचलित पसलियों के प्रदेश के पास तनाव का अनुभव होना चाहिए।

३. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए २० से ३० सेकंड इस स्थिति में रहें।

४. श्वास छोड़ें, सीधे सालम्ब शीर्षासन एक में वापस आ जाएँ। एक श्वास लें, आसन छोड़ें और उतने ही समय के लिए बायीं ओर आसन को दुहराएँ। श्वास छोड़ें और सीधे सालम्ब शीर्षासन एक की स्थिति में आ जाएँ।

परिणाम

यह आसन रीढ़ को मजबूत और लचकीला बनाता है।

८१. परिवृत्तैकपाद शीर्षासन दस* (चित्र २०५, २०६ और २०७)

परिवृत्त का अर्थ घूमा हुआ, चारों ओर घुमाया हुआ है। एक का अर्थ एक और पाद का अर्थ टाँग होता है। शीर्षासन के इस प्रकार में, टाँगें प्रथम फैलायी जाती हैं। और बाद में सिर या हाथों की स्थिति में बाधा पहुँचाए बिना संतुलन बनाये हुए धड़ और टाँगें किसी ओर बगल में झुकायी जाती हैं।

विधि

१. पार्श्व शीर्षासन (चित्र २०२) पूर्ण करने के बाद टाँगें पृथक् फैला दें, दाहिनी टाँग आगे और बायीं टाँग पीछे एक साथ ले जाएँ (चित्र २०४)। फिर श्वास छोड़ें, रीढ़ को बायीं ओर मोड़ें जिससे टाँगें घड़ी की तरह ९० अंश पर बगल में झुक जायें (पार्श्व छवि : चित्र २०५)।

२. बगल में घूमने के बाद, मंदिरशिराओं, घुटनों और टखनों को कसकर टाँगें सींकचे की तरह कड़ी रखें।

३. टाँगें और भी विस्तार में फैलाएँ और स्वाभाविक श्वास लेने की कोशिश करते हुए २० से ३० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

४. श्वास छोड़ें, सीधे सालम्ब शीर्षासन एक में आ जाएँ। अब बायीं टाँग आगे और दाहिनी टाँग पीछे ले जाएँ, दाहिनी ओर रीढ़ मोड़ें जिससे टाँगें घड़ी की विपरीत गति की तरह ९० अंश पर बगल में झुक जायें (सामने की छवि : चित्र २०६, पिछली छवि : चित्र २०७)। उतने ही समय के लिए इस स्थिति में ठहरें। श्वास छोड़ें, सालम्ब शीर्षासन में लौट आएँ।

परिणाम

यह आसन टाँग की मांसपेशियों को विकसित करता है और गुर्दा, मूत्राशय, शिश्न की ग्रंथियों तथा अँतड़ियों को ठीक करता है ।

८२. एकपाद शीर्षासन ग्यारह* (चित्र २०८ और २०९)

एक का अर्थ एक है । पाद का अर्थ पैर है । शीर्षासन का यह प्रकार सिर के सामने भूमि पर एक टाँग को नीचे कर और दूसरी टाँग सीधे ऊपर उठाकर किया जाता है ।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो में अपनी सामर्थ्य के अनुसार ठहरने के बाद, श्वास छोड़ें, और सिर के सामने भूमि पर दाहिनी टाँग नीचे ले आएँ (पार्श्व छवि : चित्र २०८) ।

२. जब दाहिनी टाँग नीचे लाते हैं और भूमि पर स्थिर करते हैं, तब बायीं टाँग शीर्षासन की तरह ऊपर सीधी रखनी चाहिए ।

३. प्रारंभ में, गर्दन में भयंकर तनाव का अनुभव होता है । बायीं टाँग भी आगे की ओर नीचे खींची जाती है । इस पर अधिकार पाने के लिए टाँगों को घुटनों पर कड़ा रखें और दोनों टाँगों की जाँघों की पीछे की मांसपेशियों को तानें । उदर के नीचे के मध्यभाग की मांसपेशियों को भी तानें ।

४. दोनों टाँगों के घुटने और अँगुलियाँ एक सीध में होनी चाहिए और बगल में झुकनी नहीं चाहिए ।

५. गहरी साँस लेते हुए १० से २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें । श्वास छोड़ें और दाहिनी टाँग शीर्षासन में ऊपर ले जाएँ ।

६. शीर्षासन में थोड़े समय ठहरने के बाद, बायीं टाँग भूमि पर लाएँ (सामने की छवि : चित्र २०९) और उसे भूमि पर उतने ही समय के लिए रखने के बाद श्वास छोड़ें, और शीर्षासन में वापस आ जाएँ ।

७. टाँगें नीचे लाते और ऊपर उठाते समय, उन्हें सीधा रखें और घुटने पर मुड़ने न दें । यदि घुटने मुड़ते हैं तो व्यक्ति सिर का संतुलन खो देता है ।

परिणाम

यह कठिन आसन है , इसलिए प्रारंभ में भूमि का स्पर्श करना कदाचित् संभव नहीं हो सकता है । धीरे-धीरे , ज्यों-ज्यों टाँगें लचीली होंगी और पीठ मजबूत होगी त्यों-त्यों टाँगें भूमि का स्पर्श करेंगी और सिर का संतुलन खोये बिना भूमि पर स्थिर होंगी ।

यह आसन गर्दन और उदर की दीवारों को भी मजबूत बनाता है। उदर के अवयव संकुचित होते हैं और अच्छी तरह कार्य करने के योग्य बन जाते हैं।

८३. पार्श्वैकपाद शीर्षासन बारह * (चित्र २१०)

पार्श्व का अर्थ बगल है। एक का अर्थ एक और पाद का अर्थ टाँग है। इस आसन में, एक टाँग भूमि पर सिर की सीध में बगल की ओर लायी जाती है, जब कि दूसरी टाँग ऊपर सीधी (लम्बरूप में) रहती है।

विधि

१. पीछे बतलायी गयी विधि के अनुसार एकपाद शीर्षासन (चित्र २०८ और २०९) पूर्ण करने के बाद इस आसन को करें।

२. श्वास छोड़ें और दाहिनी टाँग दाहिनी ओर बगल में नीचे लाएँ और उसे सिर की सीध में भूमि पर रखें (चित्र २१०)। बायीं टाँग शीर्षासन की तरह ऊपर सीधी रखें।

३. एकपाद शीर्षासन की अपेक्षा इस स्थिति में सिर के बल स्थिर होना (शीर्षा-सन करना) अधिक कठिन है। इस आसन में सिर पर संतुलन करने के लिए दोनों टाँगों की जाँघों के पीछे की मांसपेशियाँ तानें, घुटने और नीचे की हुई टाँग की बगल में उदर की आँतों के नीचे के भाग से सम्बन्धित प्रदेश में उर:संधि की मांसपेशियाँ कसें।

४. गहरी साँस लेते हुए १० से २० सेकण्ड इस स्थिति में रहें। मंदिरशिरा और जाँघों को तानें और उच्छ्वास के साथ दाहिनी टाँग शीर्षासन की स्थिति में ले जाएँ।

५. थोड़े समय के लिए शीर्षासन में ठहरें और बाद में श्वास छोड़ें, बायीं टाँग बगल में भूमि पर सिर की सीध में स्थिर होने तक नीचे ले आएँ। यहाँ भी उतने ही समय के लिए आसन (स्थिति) बनाये रखें। बाद में श्वास छोड़ें, और शीर्षासन में लौटें।

६. टाँगें नीचे लाते या ऊपर ले जाते समय घुटनों पर न मोड़ें, अन्यथा आप संतुलन खो बैठेंगे।

परिणाम

यह आसन गर्दन, उदर की दीवारें, और जाँघों को शक्ति प्रदान करता है। अँतड़ियों और रीढ़ को ठीक करता है और बल देता है।

८४. शीर्षासन में ऊर्ध्व पद्मासन छह * (चित्र २११)

ऊर्ध्व का अर्थ ऊपर या ऊँचा है। पद्मासन (चित्र १०४) पीछे बतलायी गयी

कमल (के रूप) की स्थिति है । इस प्रकार में, शीर्षासन में पद्मासन किया जाता है ।

विधि

१. एक पाद (चित्र २०८ और २०९) तथा पार्श्वैकपाद शीर्षासन (चित्र २१०) के बाद यह आसन किया जाना चाहिए । इन दो आसनों को पूर्ण करने के बाद पद्मासन की तरह टाँगें परस्पर गुथाएँ । पहले दाहिना पैर बायीं जाँघ पर और बायाँ पैर दाहिनी जाँघ पर रखें ।

२. घुटनों को एक दूसरे के समीप लाएँ और जाँघों को ऊपर सीधा तानें (चित्र २११) ।

३. गहरे और समान रूप से श्वास लेते हुए आधे मिनट तक इस स्थिति में रहें । बाद में श्वास छोड़ें और जितना पीछे हो सके उतना पीछे जाँघों को ले जाएँ (तानें) ।

४. परस्पर गुँथी टाँगें खोल दें और शीर्षासन में लौटें । अब दूसरी तरफ पहले दायीं जाँघ पर बायाँ पैर और तब बायीं जाँघ पर दायां पैर रखकर टाँगें परस्पर गुथाएँ । इस स्थिति में भी आधे मिनट के लिए ठहरें और तब जाँघों को पीछे ले जाएँ (तानें) ।

५. जाँघों को ऊपर तानते समय सिर या गर्दन की स्थिति में परिवर्तन न करें ।

परिणाम

यह आसन पृष्ठप्रदेश, पसलियों और वस्तिप्रदेश को अतिरिक्त तनाव देता है । परिणामत: सीना पूरी तरह फैलता है और वस्तिप्रदेश में ठीक तरह रक्त संचार होता है । व्यक्ति और अधिक तनाव देने के लिए, शीर्षासन करते समय, धड़ को बगल में मोड़ देते हुए इस आसन को कर सकता है । यह आसन –

८५. शीर्षासन में पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन सात * (चित्र २१८)

(पार्श्व का अर्थ बगल या काँख है ।)
कहलाता है ।

८६. शीर्षासन में पिंडासन * छह * (चित्र २१८)

पिंड का अर्थ भ्रूण है । शीर्षासन (चित्र २११) में पद्मासन से नितम्ब ढीले छोड़ दिये जाते हैं और काँख छूने के लिए टाँगें नीचे की जाती हैं ।

विधि

१. उपर्युक्त विधि से शीर्षासन में पद्मासन करें (चित्र २११)। श्वास छोड़ें, नितम्बों को शिथिल करें (चित्र २१७) और दो श्वास लें। पुनः एक उच्छ्वसन के बाद काँखों के पास बाँहों को स्पर्श करने तक टाँगें नीची करें (चित्र २१८)।

२. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए २० से ३० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें।

३. श्वास लें, ऊर्ध्व पद्मासन में वापस आएँ, पैरों को खोल दें और कुछ समय के लिए शीर्षासन में रहें। बाद में उलटी रीति से टाँगें परस्पर गुँथाएँ और आसन दुहराएँ।

४. परस्पर गुँथी हुई टाँगें एक के बाद एक शिथिल कर दें, शीर्षासन में उन्हें पीछे तानें और तब धीरे-धीरे नीचे करें और एक उच्छ्वसन के साथ सीधे भूमि पर लायें।

परिणाम

इस आसन का परिणाम पूर्व के आसन के समान ही है। इसके अतिरिक्त संकुचन तथा अधिक रक्तपूर्ति के कारण उदर के अवयव ठीक होते हैं।

८७. सालम्ब सर्वांगासन एक दो * (चित्र २२३, २२४ और २३४)

आलम्ब का अर्थ अवलम्ब, आधार और स का अर्थ 'के साथ' या 'के सहित' है। इसलिए सालम्ब का अर्थ है आधारित या अवलम्बित। सर्वांग (सर्व = सारा, संपूर्ण, पूर्ण, सभी; अंग = अवयव या शरीर) का अर्थ सम्पूर्ण शरीर या सारे अवयव होता है। इस आसन के अभ्यास से सारा शरीर लाभान्वित होता है इसलिए इसका यह नाम है।

नौसिखुओं के लिए विधि

१. टांगें फैलाकर दरी पर चित लेट जायें, घुटनों पर टाँगों को कड़ा कर लें टाँगों की बगल में हथेलियाँ नीचे किये हाथों को रखें (चित्र २१९)। कुछ गहरी साँसें लें।

२. श्वास छोड़ें, घुटने मोड़ें और जाँघों से पेट दबाये जाने तक टाँगें पेट की ओर ले जाएँ (चित्र २२०)। दो श्वास लें।

३. एक उच्छ्वसन के साथ नितम्बों को भूमि पर से उठाएँ और कुहनियों पर बाँह मोड़कर हाथ उन पर टिकाएँ (चित्र २२१)। दो श्वास लें।

४. श्वास छोड़ें, सीने से चिबुक छूने तक हाथों के सहारे धड़ को लम्बरूप में ऊपर उठाएँ (चित्र २२२)।

५. केवल सिर और गर्दन का पिछला भाग, कंधे और कुहनियों तक बाँहों के पिछले भाग भूमि पर टिकाने चाहिए । चित्र २२२ की तरह रीढ़ के बीच में हाथ रखें । दो श्वास लें ।

६. श्वास छोड़ें और पैर की अँगुलियाँ ऊपर की ओर किये टाँगें सीधी फैलाएँ (सामने की छवि : चित्र २२३ । पृष्ठभाग की छवि : चित्र २२४) ।

७. समान रूप से श्वास लेते हुए ५ मिनट के लिए इस स्थिति में रहें ।

८. श्वास छोड़ें, धीरे-धीरे नीचे आयें, हाथों को छोड़ें, लेटें और सुस्ताएँ ।

९. यदि इस आसन को आधार के बिना न कर सकें तो स्टूल का सहारा लें और विधि का अनुकरण करें (देखें चित्र २२५) ।

प्रगत साधकों ले लिए विधि

१. दरी पर पीठ के वल लेट जाएँ ।

२. घुटने पर कसकर टाँगें सीधी करें । टाँगों की बगल में हाथ रखें । हथेलियाँ नीची करें (चित्र २१९) ।

३. कुछ गहरी साँस लें । धीरे-धीरे श्वास छोड़ें और उसी समय दोनों टाँगें एक साथ उठाएँ और चित्र २२६, २२७ और २२८ में जैसे दिखाया गया है वैसे उन्हें शरीर के समकोण में लायें । इस स्थिति में रहें और टाँगें स्थिर रखते हुए श्वास लें ।

४. श्वास छोड़ें, चित्र २२९, २३० और २३१ के समान भूमि पर हथेलियों को धीरे से दवा कर भूमि पर से पीठ और नितम्बों को उठाते हुए टाँगें और अधिक ऊपर करें ।

५. जब सारा धड़ भूमि पर से ऊपर उठ जाए, कुहनियों को मोड़ें, और कंधों को भूमि पर अच्छी तरह स्थिर करते हुए पसलियों के पीछे हथेलियाँ रखें (चित्र २३२) ।

६. हथेलियों के दवाव का उपयोग करें और चित्र २३३ के समान धड़ और टाँगें लम्बरूप में उठाएँ, जिससे सीने की हड्डी मजबूत चिबुकबन्ध (जालंधरबन्ध) बनाने के लिए चिवुक दवाती है । गले का सिकोड़ना और मजबूत चिबुकबन्ध बनाने के लिए सीने की हड्डी के सामने चिबुक का दवाना जालन्धरबन्ध कहलाता है । ध्यान में रहे कि चिवुक को छूने के लिए सीने को आगे लाएँ, न कि चिबुक को सीने की ओर । यदि चिबुक को सीने की ओर लाते हैं तो रीढ़ पूरी तरह तानी नहीं जाती है और इस आसन के पूर्ण परिणाम का अनुभव नहीं होता है ।

७. सिर का केवल पिछला हिस्सा और गर्दन, कंधे तथा कुहनियों से ऊपर बाँह के ऊपरी भाग भमि पर टिकने चाहिए । शरीर के शेष अवयव एक सीध में भूमि पर

लम्बरूप में होने चाहिए । यह अंतिम पूर्ण स्थिति है (पार्श्व छवि : चित्र २३४) ।

८. प्रारंभ में टाँगों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे लम्बरूप में झुक जाएँ । इसे ठीक करने के लिए जाँघों की पीछे की मांसपेशियों को कसें और लम्बरूप में तानें ।

९. कुहनियों को कंधे से अधिक विस्तार में नहीं रखना चाहिए । गर्दन से दूर कंधों को फैलाने और कुहनियों को एक दूसरे के पास लाने की कोशिश करनी चाहिए । यदि कुहनियाँ फैली होती हैं तो धड़ ऊपर की ओर खींचा नहीं जा सकेगा और आसन अधूरा दिखाई देगा; और यह भी देखें कि उरोस्थि पर स्थित चिवुक के मध्य की सीध में गर्दन है । प्रारंभ में गर्दन बगल में चली जाती है और यदि यह सुधारा नहीं गया तो इससे दर्द होगा और यह गर्दन को नुकसान पहुँचा सकता है ।

१०. इस आसन में ३ मिनट से कम न रहें । धीरे-धीरे १५ मिनट तक समय वढ़ाएँ । इसका बुरा परिणाम नहीं होगा ।

११. हाथ छोड़ें, भूमि पर आ जाने दें, लेटें और सुस्ताएँ ।

इस आसन को सालम्ब सर्वांगासन कहते हैं; कारण सारे शरीर का भार गर्दन और कंधों पर होता है तथा भार को आधार देने के लिए हाथों का उपयोग किया जाता है । सर्वांगासन में विविध क्रियाएँ हैं जो ऊपर वर्णित मूलभूत आसन के अतिरिक्त की जा सकती हैं ।

परिणाम

सर्वांगासन के महत्त्व की अतिशयोक्ति तो नहीं की जा सकती, पर हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा मानव जाति को दिया गया यह महानतम प्रसाद है । सर्वांगासन सभी आसनों की माता है । जिस प्रकार माँ घर में शान्ति और सुख के लिए प्रयत्न करती है उसी प्रकार यह आसन मानव शरीर के सुख और शान्ति के लिए कोशिश करता है । अनेक सर्वसाधारण रोगों के लिए यह रामबाण औषधि है । मानव शरीर में अनेक अंतःस्रावक अवयव और अप्रणाल (नलीहीन) ग्रंथियाँ हैं जो रक्त में निमज्जित हैं, रक्त से पौष्टिक तत्त्व (आहार) ग्रहण करती हैं और संतुलित तथा पूर्ण विकसित शरीर एवं मस्तिष्क के उचित व्यापार के लिए न्यासर्ग (शरीर के भीतर का एक पुष्टिकारक रासायनिक तत्त्व) को अलगाती हैं । यदि ग्रंथियाँ अपने व्यापार को उचित रीति से करने में असमर्थ रहेंगी, तो उन्हें जितनी मात्रा में न्यासर्ग उत्पन्न करना आवश्यक है, उतना वे नहीं कर पायेंगी, और शरीर का ह्रास होने लगेगा । अनेक आसन ग्रंथियों को अत्यंत आश्चर्यजनक रीति से सीधे प्रभावित करते हैं और उचित रीति से कार्य करने में उनकी मदद करते हैं । दृढ जालंधरवन्ध से रक्तपूर्ति में वृद्धि होने के कारण सर्वांगासन ग्रीवा प्रदेश में स्थित कंठ-

ग्रंथियों तथा उपकंठग्रंथियों को इसी प्रकार आश्चर्यजनक रीति से सीधे प्रभावित करता है। और शरीर औंधा होने के कारण आकर्षण के प्रभाव से बिना तनाव के नाड़ियों का रक्त हृदय की ओर प्रवाहित होता है। गर्दन तथा सीने के चारों ओर शुद्ध रक्त प्रवाहित होने लगता है। परिणाम स्वरूप हाफनी, हृदय की धड़कन, श्वास-रोग, श्वासनलिका दाह तथा गले के रोगों से पीड़ित लोगों को आराम मिलता है। इस अधोमुख स्थिति में सिर के स्थिर रहने तथा दृढ जालन्धरबन्ध से उसके रक्त-पूर्ति के नियमित होने के कारण नाड़ियाँ शमित होती हैं और सरदर्द —पुराना भी क्यों न हो——चला जाता है। इस आसन का सतत अभ्यास सर्वसाधारण सर्दी तथा नासिका के अन्य रोगों को निर्मूल करता है। नाड़ियों पर इस आसन के शांतिकारक प्रभाव के कारण अधिक तनाव, संताप, चिड़चिड़ापन, नाड़ियों की दुर्बलता तथा निद्रानाश से पीड़ित व्यक्ति रोगमुक्त होते हैं। शरीरभार में परिवर्तन के कारण उदर के अवयव प्रभावित होते हैं जिससे बड़ी आँत की हलचल सहज होती है तथा कोष्ठबद्धता नष्ट होती है। परिणामस्वरूप शरीर-प्रणाली रोग-विष (टॉक्सिन) से मुक्त होती है और व्यक्ति पूर्ण उत्साह का अनुभव करता है। मूत्राशय की अव्यवस्था, गर्भाशय का स्थलांतर, मासिक ऋतुस्राव की पीड़ा, अर्श तथा हर्निया के लिए इस आसन को लाभप्रद बतलाया गया है। अपस्मार, जीवनशक्ति की न्यूनता तथा रक्तक्षय को दूर करने के लिए भी यह आसन मदद करता है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि व्यक्ति नियमित रूप से सर्वांगासन का अभ्यास करता है तो वह नया चैतन्य तथा नयी शक्ति का अनुभव करेगा और आनंदित एवं विश्वस्त होगा। उस में नये जीवन का संचार होगा, उसके मन को शांति मिलेगी और वह जीवन के आनंद का अनुभव करेगा। लंबी बीमारी के बाद प्रतिदिन दिन में दो बार इस का नियमित अभ्यास खोयी हुई शक्ति वापस लाता है। सर्वांगासन की माला उदर के अवयवों को कार्यरत करती है और पेट एवं अँतड़ियों के व्रण तथा उदर और बृहद् अंत्रदाह की गंभीर वेदना से पीड़ित व्यक्तियों को आराम पहुँचाती है।

उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को, पहले हलासन (चित्र २४४) किये बिना और उस में कम-से-कम ३ मिनट तक स्थिति बनाये बिना सालम्ब सर्वांगासन एक का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

हलासन पृष्ठ १४१ पर वर्णित है (चित्र २४४)।

सर्वांगासन की माला– सर्वांगासन एक (चित्र २२३) में ५ से १० मिनट तक अथवा सामर्थ्य के अनुसार उससे भी अधिक ठहरने के बाद, इन विविध क्रियाओं का अभ्यास एक दम में किया जा सकता है। हलासन – जिस में ३ से ५ मिनट तक लगातार रहना चाहिए – को छोड़कर इन आसनों को २० से ३० सेकण्ड दोनों तरफ करें।

८८. सालम्ब सर्वांगासन दो तीन * (चित्र २३५)

पहले की अपेक्षा यह आसन कुछ कठिन है ।

विधि

१. सालम्ब सर्वांगासन एक (चित्र २२३) करें।

२. धड़ के पीछे हाथों को शिथिल करें, अँगुलियों को परस्पर गुँथाएँ, कलाइयों को घुमाएँ और बाँह फैलाएँ। तब अंगूठे भूमि को छूएँगे और हथेलियाँ बाहर की ओर उन्मुख होंगी (चित्र २३५)। सिर लम्बरूप में फैले हुए शरीर के एक ओर होगा और बाँहें दूसरी ओर होंगी।

३. टाँगें और पीठ यथासम्भव स्थिर रखें।

४. सर्वांगासन १ करने के बाद, यह आसन एक मिनट के लिए किया जा सकता है।

परिणाम

इस आसन से पीठ और गर्दन को शक्ति मिलती है। कारण, पीठ की मांसपेशियों को तानने से संतुलन किया जाता है और शरीर का भार गर्दन के पीछे पड़ता है। बाँहों की मांसपेशियाँ भी ठीक की जाती हैं।

८९. निरालम्ब सर्वांगासन एक तीन * (चित्र २२३)

आलम्ब का अर्थ अवलम्ब, आधार है। निर्—से दूर, बिना, से मुक्ति का भाव प्रकट करता है। इसलिए निरालम्ब का अर्थ 'बिना आधार' है। सर्वांगासन का यह प्रकार पहले दो प्रकारों से कठिन है। कारण, इसमें शरीर को बाँहों का आधार नहीं दिया जाता है अपितु शरीर का भार और संतुलन गर्दन, पीठ और उदर की मांसपेशियों पर आधारित होता है जो इस प्रकार पुष्ट होते हैं।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र २२३) करें।

२. हाथ छोड़ें, उन्हें सिर पर लाएँ, सिर के समान ही लंबरूप शरीर की ओर ही भूमि पर तनी हुई बाँहें स्थिर करें और संतुलन बनाएँ (चित्र २३६)।

३. यह आसन भी एक मिनट के लिए किया जा सकता है।

९०. निरालम्ब सर्वांगासन दो चार* (चित्र २३७)

यह आसन सर्वांगासन की स्थितियों में कठिनतम है। यह अन्य सर्वांगासनों से

अधिक मेरुदण्ड की कशेरुका के बढ़ाने में व्यक्ति को समर्थ करता है और इस प्रकार पूर्ण सालम्ब सर्वांगासन की प्राप्ति में व्यक्ति की मदद करता है (चित्र २२३)।

विधि

१. पूर्व की स्थिति में, हाथों को उठाएँ और हथेलियों को घुटनों पर या बगल में रखें (चित्र २३७)। टाँगों को हथेलियों पर स्थिर न करें।

२. इस स्थिति में एक मिनट के लिए रहें। फिर थोड़े समय के लिए सालम्ब सर्वांगासन एक में आ जाएँ, हलासन (चित्र २४४) में सरकें और सर्वांगासन की अन्य क्रियाएँ एक के बाद दूसरी इस प्रकार चालू रखें।

परिणाम

सर्वांगासन की इन विविध क्रियाओं के अभ्यास से रक्त संचार में वृद्धि एवं विष उत्पादक निरर्थक वस्तुओं (मल, मूत्र आदि) के हटाये जाने से सारा शरीर ठीक होता है। ये आसन व्यक्ति को पौष्टिक आहार की तरह प्रोत्साहित करता है। व्यक्ति रोग शमन के बाद दुर्बलता से शीघ्रतर स्वास्थ्य लाभ के लिए इनका अभ्यास कर सकता है।

६१. **हलासन** चार * (**चित्र २४४**)

हल का अर्थ लांगल है। उस आकृति से यह आसन मिलता जुलता है इसलिए इसका यह नाम है। यह सर्वांगासन एक का भाग है और उसके आगे का प्रकार है।

विधि

१. मजबूत जालन्धरबन्ध के साथ सालम्ब सर्वांगासन एक (चित्र २२३) करें।

२. जालन्धरबन्ध छोड़ें, सिर पर से बाँहों और टाँगों को सरकाते हुए और भूमि पर पैर की अंगुलियाँ टिकाते हुए, धीरे-धीरे धड़ नीचे करें (चित्र २३८)।

३. जाँघों के पीछे की मंदिरशिराओं की मांसपेशियों को ऊपर खींचते हुए घुटने कसें और धड़ को ऊपर उठाएँ (चित्र २३९)।

४. पीठ के बीच में हाथों को रखें और धड़ को भूमि के समकोण में रखने के लिए उसे दबाएँ (चित्र २४०)।

५. बाँहों को अपनी ओर की टाँगों की विपरीत दिशा में भूमि पर फैलाएँ (चित्र २४१)।

६. अँगूठों को फँसाएँ और बाँहों और टाँगों को तानें (चित्र २४२)।

७. अंगुलियों को परस्पर गुँथाएँ (चित्र २४३) और कलाइयाँ घुमाएँ, जिससे

अंगूठे भूमि पर टिकें (चित्र २४४) । अंगुलियों के साथ हथेलियों को तानें । बाँहों को कुहनियों पर कसें और उन्हें कंधे से खींचें ।

८. टाँगें और हाथ विपरीत दिशा में ताने जाते हैं जिससे रीढ़ पर पूरी तरह तनाव पड़ता है ।

९. अंगुलियों को परस्पर गुँथाते समय यह उचित है कि परस्पर की गूँथ (स्थिति) को बदला जाए । मान लीजिए कि दाहिना अंगूठा पहले भूमि का स्पर्श करता है तो इस स्थिति को एक मिनट के लिए बनाए रखें । बाद में पकड़ छोड़ें और भूमि पर पहले बायाँ अंगूठा लायें, एक-एक कर अंगुलियाँ परस्पर गुँथाएँ और उतने ही समय के लिए बाँह बाहर फैलाएँ । यह दोनों कंधें, कुहनियाँ तथा कलाइयों के लयबद्ध विकास और लचीलेपन के लिए उपयोगी होता है ।

१०. प्रारंभ में परस्पर गूँथना कठिन होगा । ऊपर वर्णित स्थितियों के अभ्यास से धीरे-धीरे आप अंगुलियाँ सहज गुँथा सकेंगे ।

११. प्रारंभ में सिर के पीछे जमीन पर पैर की अंगुलियाँ दृढता से स्थिर करना भी कठिन होगा । यदि आप हलासन करने के पहले सर्वांगासन १ (चित्र २२३) का समय और तनाव बढ़ायेंगे तो पैर की अंगुलियाँ अधिक समय जमीन पर रहेंगी ।

१२. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए १ से ५ मिनट तक इस स्थिति में रहें ।

१३. हाथ छोड़ें, सर्वांगासन एक तक टाँगें ऊपर उठायें और धीरे-धीरे जमीन की ओर लायें । पीठ के बल चित लेटें और आराम करें ।

परिणाम

हलासन के परिणाम सर्वांगासन एक (चित्र २२३) के परिणामों के समान हैं । इसके अतिरिक्त उदर के अवयव सिकोड़े जाने के कारण नवचेतना प्राप्त होती है । आगे झुकने के कारण मेरुदण्ड में अधिक रक्त प्रवाहित होता है और इससे पीठ का दर्द कम करने में मदद होती है । हथेलियाँ तथा अंगुलियों के गुँथने और फैलने से हाथों की ऐंठन (अकड़) ठीक होती है । न मुड़नेवाले कंधों तथा कुहनियों, कटिवेदना और पीठ के जोड़ों की सूजन से पीड़ित लोग इस आसन से आराम पाते हैं । वायु के कारण होनेवाली पेट की मरोड़ की वेदना भी दूर होती है और तत्काल हलकेपन का अनुभव होता है ।

उच्च रक्तचाप की प्रवृत्तिवाले लोगों के लिए यह आसन अच्छा है । यदि वे पहले हलासन करके बाद में सर्वांगासन एक करते हैं तो वे रक्त के अति वेग का अथवा सिर भारी होने का अनुभव नहीं करेंगे ।

हलासन पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) की प्राथमिक अवस्था है । यदि व्यक्ति

हलासन में प्रगति करता है तो परिणामस्वरूप पीठ के लचीलेपन के परिणाम से वह अच्छे ढंग से पश्चिमोत्तानासन करने में समर्थ होता है ।

टिप्पणी

उच्च रक्तचापवाले लोगों के लिए सर्वांगासन एक का प्रयास करने के पहले हलासन करने के लिए निम्नलिखित विधि बतलायी गयी है––

१. पीठ के बल जमीन पर लेटें ।

२. श्वास छोड़ें, लंबरूप स्थिति होने तक टाँगें धीरे से उठायें और स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए करीब १० सेकंड के लिए इस स्थिति में रहें ।

३. श्वास छोड़ें, टाँगें ऊपर तथा सिर के परे ले जाएँ और अंगुलियों से जमीन का स्पर्श करें । अंगुलियाँ जमीन पर रखें और टाँगें घुटने पर कसी रखें ।

४. अगर आपको अंगुलियाँ जमीन पर रखने में कठिनाई होती है तो सिर के पीछे कुर्सी या स्टूल रखकर अंगुलियाँ उसी पर रखें ।

५. अगर साँस तेज या गहरी होती है तो जमीन पर अंगुलियाँ न रखें, उसके बदले स्टूल या कुर्सी पर रखें । तब सिर में भारीपन अथवा दबाव का अनुभव नहीं होगा ।

६. हाथ सिर के ऊपर फैलायें, उन्हें जमीन पर रखें और स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए ३ मिनट तक इस स्थिति में रहें ।

७. आसन करते समय सतत आँखें बंद किये नाक के अग्रभाग की ओर एकटक देखें ।

६२. कर्णपीडासन एक * (चित्र २४६)

कर्ण का अर्थ कान है । पीडा का अर्थ वेदना, अस्वस्थता या दबाव है । यह आसन हलासन का एक रूपांतर है और उसके साथ किया जा सकता है ।

विधि

१. हलासन (चित्र २४४) करें और उस आसन में निर्धारित समय पूर्ण होने पर घुटने शिथिल करें और दायें कान के पास दायाँ घुटना तथा बायें कान के पास बायाँ घुटना रखें ।

२. दोनों घुटने कानों पर दबाव देते हुए जमीन पर रहने चाहिए ।

३. पैर की अंगुलियाँ बाहर फैलायी रखें और एड़ियाँ और अँगुलियाँ परस्पर मिलाएँ । हाथ पसलियों के पीछे रखें (चित्र २४५) अथवा अँगुलियों को गुँथाएँ और हलासन के समान बाहें बाहर फैलायें (चित्र २४६) ।

४. स्वाभाविक श्वास लेते हुए इस स्थिति में आधे या एक मिनट तक रहें ।

परिणाम

यह आसन धड़, हृदय तथा टाँगों को आराम देता है। घुटने मोड़ते समय मेरुदण्ड अधिक ताना जाता है और यह कटिप्रदेश के रक्ताभिसरण में मदद करता है।

९३. सुप्त कोणासन दो* (चित्र २४७)

सुप्त का अर्थ नीचे पड़े रहना और कोण का अर्थ कोना है। यह हलासन का एक रूपांतर है जिसमें टाँगें अलग फैलायी जाती हैं।

विधि

१. कर्णपीडासन (चित्र २४६) से टाँगें सीधी तानें और उन्हें यथासंभव पृथक् फैलायें।

२. धड़ ऊपर खींचें और घुटने कसें।

३. दायें हाथ से दायें पैर की अंगुली (अंगूठा) और बायें हाथ से बायें पैर की अंगली (अंगूठा) पकड़ें। एड़ियाँ ऊपर करें। अंगुलियाँ पकड़ने पर मेरुदण्ड का पृष्ठप्रदेश अधिक आगे करें और मंदिरशिराओं की मांसपेशियाँ फैलायें (चित्र २४७ और २४८)।

४. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए २० से ३० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

परिणाम

यह आसन टाँगों को ठीक करता है और उदर के अवयव सिकोड़ने में मदद करता है।

९४. पार्श्व हलासन चार* (चित्र २४९)

हलासन (चित्र २४४) में दोनों टाँगें सिर के पीछे होती हैं। इस आसन में वे सिर की एक ओर तिरछी तथा सिर की सीध में होती हैं। यह हल के पार्श्वभाग की स्थिति है।

विधि

१. सुप्त कोणासन (चित्र २४७) करें और हलासन में वापस आ जाएँ।

२. पसलियों के पीछे हथेलियाँ रखें।

३. यथासमय दोनों टाँगें बायीं ओर करें।

४. दोनों घुटने कसें, हथेलियों के सहारे धड़ ऊपर उठायें और टाँगें तानें (चित्र २४९)।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए आधे मिनट तक इस स्थिति में रहें ।

६. श्वास छोड़ें, सिर की सीध में होने तक टाँगें दायीं ओर ले जाएँ और आधे मिनट तक यह स्थिति बनाये रखें । जब टाँगें बदली जाती हैं तब सीने तथा धड़ की स्थिति में परिवर्तन न आने दें । सीने तथा धड़ को सर्वांगासन या हलासन की स्थिति में रहना चाहिए ।

परिणाम

इस आसन में मेरुदण्ड का पार्श्वभाग सक्रिय होता है, जिससे मेरुदण्ड अधिक लचीला बनता है । बड़ी आँत, जो आसन करते समय उलटी हो जाती है, को ठीक व्यायाम मिलता है, जिससे निष्कासनक्रिया पूर्ण हो जाती है । असाध्य अथवा पुरानी बद्ध-कोष्ठता, जो बहुतेरे रोगों की जननी है, से पीड़ित लोग इस आसन से बहुत लाभ पाते हैं । यदि कूड़ा-कचरा अपने घर के बाहर चारों ओर फेंका जाता है तो हम अस्वस्थता का अनुभव करते हैं । इसलिए निरर्थक पदार्थ को जबकि वे विष-जीव का निर्माण करते हैं कितने अधिक समय तक अपने शरीर में सहभागी होने देना उचित है ? यदि निरर्थक पदार्थ हटाये नहीं जाते हैं तो रोग चोर की तरह शरीर में प्रवेश करेंगे और हमारे स्वास्थ्य की चोरी करेंगे । यदि आँतें सहज रीति से कार्य नहीं करती हैं तो मन उदास और शीघ्रकोपी होता है । यह आसन आँत को मुक्त रखने में हमारी मदद करता है और इससे हम स्वास्थ्य का पुरस्कार प्राप्त करते हैं ।

९५. एकपाद सर्वांगासन पाँच* **(चित्र २५०)**

एक का अर्थ एक-अकेला है । पाद का अर्थ पैर है । सर्वांगासन के इस रूपांतर में एक टाँग हलासन में जमीन पर होती है जबकि दूसरी धड़ सहित सीधी ऊपर होती है ।

विधि

१. सालम्ब सर्वांगासन १ (चित्र २२३) करें ।

२. बायीं टाँग सर्वांगासन में ऊपर रखें । श्वास छोड़ें और दायीं टाँग हलासन की स्थिति तक (चित्र २५०) जमीन की ओर ले जाएँ । वह कसी हुई तथा सीधी होनी चाहिए और घुटने पर न मुड़नी चाहिए ।

३. दायीं टाँग जमीन पर टिकाते समय बायाँ घुटना कसा रखें और उसे बगल में झुकने न दें । बायीं टाँग सिर की ओर उन्मुख तथा सीधी रखें ।

४. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में २० सेकण्ड के लिए रहें ।

५. श्वास छोड़ें, दायीं टाँग सर्वांगासन की स्थिति तक पीछे उठाएँ और बाद में दायीं टाँग ऊपर सीधी तथा कसकर रखते हुए बायीं टाँग हलासन में जमीन पर ले जायें । व्यक्ति की दोनों टाँगें एक साथ हलासन में नीचे लाने की अपेक्षा बायीं टाँग

जमीन पर से वापस सर्वांगासन तक उठाना उदर के अवयवों को अधिक व्यायाम देता है ।

६. उतने ही समय के लिए इस ओर रहें ।

परिणाम

यह आसन गुर्दे तथा टाँगों की मांसपेशियों को ठीक करता है ।

९६. पार्श्वैकपाद सर्वांगासन छह* (चित्र २५१)

पार्श्व का अर्थ बगल है । एकपाद सर्वांगासन (चित्र २५०) में नीचे की टाँग सिर के पीछे स्थिर होती है जबकि इसमें वह धड़ की दिशा में बगल की ओर टिकती है ।

विधि

१. ऊपर लिखे अनुसार प्रत्येक ओर एकपाद सर्वांगासन करें और सर्वांगासन में वापस आ जाएँ ।

२. श्वास छोड़ें, धड़ की दिशा में होने तक दायीं टाँग बगल में नीचे जमीन पर लायें (चित्र २५१), दायीं टाँग सीधी तथा कसी रखें और घुटने पर न मोड़ें ।

३. बायीं टाँग जो सीधी ऊपर है सरल रखें और उसे दायीं ओर मुड़ने न दें । सीने को पूरी तरह फैलाने के लिए हथेलियों से पसलियाँ उठानी चाहिए ।

४. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में २० सेकंड के लिए रहें । श्वास छोड़ें और सर्वांगासन में वापस आ जाएँ । उतने ही समय के लिए दूसरी टाँग से पुनरावृत्ति करें और सर्वांगासन में लौट जाएँ ।

परिणाम

यह आसन कोष्ठबद्धता दूर करता है तथा गुर्दे को ठीक करता है ।

९७. पार्श्व सर्वांगासन नौ* (चित्र २५४)

पार्श्व का अर्थ बाजू या बगल है । सर्वांगासन का यह रूपांतर धड़ को पीछे से घुमाकर किया जाता है ।

विधि

१. सालम्ब सर्वांगासन एक (चित्र २२३) से धड़ तथा टाँगें दायीं ओर घुमायें ।

२. बायीं हथेली बायें नितम्ब पर रखें, जिससे गुदास्थि कलाई पर टिके (चित्र २५२) । बायें हाथ पर शरीर नीचे करें और शरीर भार बायीं कुहनी तथा कलाई पर लें (चित्र २५३) ।

३. सर्वांगासन की तरह बायीं हथेली पृष्ठभाग पर पीछे रहेगी ।

४. कोण बनाते हुए टाँगें बायीं हथेली के परे ले जाएँ (चित्र २५४) और स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए २० सेकंड के लिए इस स्थिति में रहें ।

५. श्वास छोड़ें, सालम्ब सर्वांगासन एक में वापस आयें और उतने ही समय के लिए दायीं ओर दुहरायें (चित्र २५५) ।

परिणाम

यह आसन कलाइयों को पुष्ट करता है । यह यकृत, पाचकग्रंथि (अग्न्याशय) तथा प्लीहा को व्यायाम भी देता है और उनमें नियमित रूप से विपुल रक्तपूर्ति के लिए कारण बनता है । इस कारण ये अवयव स्वस्थ रखे जाते हैं ।

९८. सेतुबन्ध सर्वांगासन – (उत्तान मयूरासन भी कहा जाता है) दस * (चित्र २५९)

सेतु का अर्थ पुल है और सेतुबन्ध का अर्थ पुल का ढांचा या रचना है । इस स्थिति में शरीर मंडलाकार होता है और कंधे, तलवे तथा एड़ियों पर आधारित होता है । कमान को कमर के पास हाथों का आश्रय मिलता है ।

उत् का अर्थ तीव्र और तान का अर्थ तनाव (फैलाव) है । फैले (ताने) हुए मयूर के सदृश होने से इस आसन का यह नाम है ।

विधि

१. सालम्ब सर्वांगासन करें (चित्र २२३) ।

२. पीठ पर हथेलियाँ अच्छी तरह स्थिर करें, मेरुदण्ड ऊपर उठायें, टाँगें सीधे पीछे ले जाएँ (चित्र २५६) या घुटने मोड़ें (चित्र २५७) और टाँगों को पीछे जमीन पर कलाइयों से आगे ले जाएँ (चित्र २५८) । टाँगें बाहर तानें और उन्हें एक साथ रखें (चित्र २५९) ।

३. सारा शरीर पुल बनता है, जिसका भार कुहनियों पर और कलाइयों पर होता है । सिर तथा गर्दन के पृष्ठभाग, कंधे, कुहनियाँ तथा पैर शरीर के ये भाग ही जमीन से सटे रहेंगे । स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक इस स्थिति में रहें ।

४. जमीन पर एड़ियाँ मजबूती से टिकाये हुए, मेरुदण्ड को गर्दन की ओर तानकर कुहनियों तथा कलाइयों पर का भार हलका किया जा सकता है ।

९९. एकपाद सेतुबन्ध सर्वांगासन (एकपाद उत्तान मयूरासन भी कहा जाता है) ग्यारह * (चित्र २६०)

एक का अर्थ एक है और पाद का अर्थ पैर है । एक टाँग ऊपर हवा में उठाये पहले आसन का यह एक प्रकार है ।

विधि

१. सेतुबन्ध सर्वांगासन (चित्र २५६) में ठहरने के बाद, श्वास छोड़ें और दाहिनी टाँग लम्बरूप स्थिति में ऊपर उठायें (चित्र २६०)। दोनों टाँगें पूरी तरह तानें और इस स्थिति को १० सेकंड के लिए बनाये रखें।

२. साँस लें, दायीं टाँग जमीन पर लायें, श्वास छोड़ें, बायीं टाँग लंबरूप स्थिति में ऊपर उठायें और दोनों टाँगें पूरी तरह तानें। उतने ही समय के लिए इस स्थिति में रहें। साँस लें और टाँग जमीन पर लायें।

३. श्वास छोड़ें, टाँगें सर्वांगासन में वापस ले जायें (चित्र २२३), पीठ से हाथ हटाते हुए उन्हें जमीन पर धीरे-धीरे सरकायें और जमीन पर स्थिर करें।

सेतुबन्ध सर्वांगासन तथा एकपाद सेतुबन्ध सर्वांगासन के परिणाम

ये दोनों आसन मेरुदण्ड को पीछे की ओर मोड़ (गति) देते हैं और सर्वांगासन अन्य विविध गतिविधियों से उत्पन्न गर्दन के तनाव को दूर करते हैं।

स्वस्थ एवं लचीला मेरुडदण्ड स्वस्थ नाडीसंस्थान (नाडीमण्डल) का सूचक है। यदि नाडियाँ स्वस्थ हैं तो मनुष्य मन तथा शरीर से स्वस्थ रहता है।

१००. सर्वांगासन * चार में ऊर्ध्व पद्मासन (चित्र २६१)

ऊर्ध्व का अर्थ ऊपर, ऊँचा है। पद्म का अर्थ कमल है। सर्वांगासन के इस प्रकार में टाँगें सीधी रखने के बदले घुटनों पर मोड़ी जाती हैं और परस्पर गुँथायी होती हैं जिससे दायाँ पैर बायीं जाँघ पर टिके और बायां पैर दायीं जाँघ पर, जैसा कि कमलासन में है (चित्र १०४)।

विधि

१. सालम्ब सर्वांगासन से टाँगें घुटनों पर मोड़ें और दोनों को परस्पर गुँथाए रखें। प्रथम दायां पैर बायीं जाँघ पर और बाद में बायां पैर दायीं जाँघ पर रखें।

२. गुँथायी हुई टाँगें सीधी तानें, घुटनों को एक दूसरे के निकट करें और यथा-संभव टाँगें नितम्वीय भाग से पीछे करें (चित्र २६१)।

३. गहरी तथा समान रूप से श्वास लेते हुए करीब २० से ३० सेकंड तक इस आसन में रहें।

४. पार्श्व सर्वांगासन की विधि का अनुसरण करते हुए तनाव को बढ़ाने के लिए धड़ को पीछे की ओर घुमाव देकर यह आसन पूरा करें (चित्र २५४)। इस आसन को—

१०१. सर्वांगासन सात * **में पार्श्व पद्मासन (चित्र २६२ से २६५)** (पार्श्व का अर्थ बगल है)

कहते हैं ।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए १०–१५ सेकंड तक दोनों ओर रहें ।

६. श्वास छोड़ें, ऊर्ध्व पद्मासन की स्थिति में वापस आ जायें और थोड़ी देर आराम करें ।

७. अब सेतुबन्ध सर्वांगासन (चित्र २५९) की विधि का अनुसरण करते हुए एक उछ्वसन के साथ पीछे की ओर धड़ की कमान करें (चित्र २६६) । धीरे-धीरे हाथों पर सेतु बनाते हुए घुटने जमीन पर टिक जाने तक जाँघों को पीछे की ओर तानें । इस आसन को––

१०२. उत्तान पद्म मयूरासन पच्चीस * **(चित्र २६७)**

कहते हैं ।

उत्तान का अर्थ तीव्र तनाव है, पद्म का अर्थ कमल है और मयूर–मोर है ।

८. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए १०–१५ सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें ।

९. श्वास छोड़ें, ऊर्ध्व पद्मासन की स्थिति में वापस आ जाएँ ।

१०. टाँगों की गुत्थी खोल दें, सालम्ब सर्वांगासन की स्थिति में वापस आ जाएँ और पहले बायें पैर को दाहिनी जाँघ पर रखें, बाद में दाहिने पैर को बायीं जाँघ पर रखकर इस आसन को दुहरायें । इस के पहले वर्णित इन सब स्थितियों में उतने ही समय के लिए रहें ।

१०३. सर्वांगासन में पिंडासन पाँच * **(चित्र २६९)**

पिण्ड का अर्थ भ्रूण या गर्भस्थ शिशु है । सर्वांगासन के इस प्रकार में, जो पूर्व के आसन का अगला क्रम है, सिर पर स्थिर होने तक झुकी और गुँथी टाँगें नीचे लायें । इस आसन की स्थिति गर्भस्थ भ्रूण के सदृश होने के कारण इसका यह नाम है ।

विधि

१. सर्वांगासन में ऊर्ध्व पद्मासन (चित्र २६१) से, श्वास छोड़ें, झुकें और नितम्बों के पास से गुँथी हुई टाँगों को सिर की ओर नीचे करें ।

२. टाँगें सिर पर स्थिर करें (चित्र २६८) ।

३. पीठ पर के हाथों को मुक्त कर दें और टाँगों को परस्पर फँसा लें । फँसाते वक्त टाँगों को ठीक तरह से टिकाने के लिए धड़ को गर्दन के पास ले आएँ ।

४. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए करीब २० से ३० सेकण्ड तक इस आसन में रहें और सर्वांगासन में ऊर्ध्व धनुरासन में वापस आ जाएँ ।

१०४. सर्वांगासन में पार्श्व पिण्डासन आठ* (चित्र २७० और २७१)

पार्श्व का अर्थ बगल या काँख है। पूर्व के आसन के रूपांतर इस पिण्डासन में दोनों मुड़े हुए घुटनों को बगल की ओर ले जाया जाता है और धड़ के उसी बगल में जमीन पर रखा जाता है। सर्वांगासन की यह पार्श्वस्थ भ्रूण की स्थिति है।

विधि

१. पिण्डासन (चित्र २६९) से गुँथे हाथों को मुक्त करने के बाद हाथ पीछे ले जाएँ और पसलियों के पीछे हथेलियों को रखें (चित्र २६८)।

२. नितम्बों को दाहिनी ओर तिरछे घुमायें, श्वास छोड़ें, घुटनों को भूमि की ओर नीचे करें। बायां घुटना दाहिने कान के पास होना चाहिए (चित्र २७०)।

३. शुरू में बायां कन्धा जमीन से ऊपर उठेगा। कन्धे को जमीन की ओर ले जाएँ और पीठ पर अच्छी तरह कसकर बायें हाथ से दबायें। यदि यह नहीं किया जाता है तो आप अपना संतुलन खो बैठेंगे और एक तरफ लुढ़क जाएँगे।

४. पार्श्ववर्ती घुमाव के कारण श्वासक्रिया तेज और कठिन होगी, कारण उरःप्राचीर इस स्थिति में दब जाता है।

५. आरंभ में घुटना कान के पास जमीन पर नहीं रहेगा पर दीर्घ अभ्यास के बाद रहेगा।

६. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस आसन में २० से ३० सेकण्ड तक रहें।

७. श्वास छोड़ें, दाहिनी ओर से ऊपर उठें और परस्पर गुँथे पैरों को बायीं ओर बढ़ाएँ जिससे बायां पैर बायें कान के पास होगा (चित्र २७१)। इस स्थिति में भी उतने ही समय तक रहें।

८. ऊर्ध्व पद्मासन में लौट आएँ (चित्र २६१)। परस्पर गुँथे पैरों को मुक्त कर पद्मासन को छोड़ दें और सालम्ब सर्वांगासन में लौट आएँ।

९. अब परस्पर गुँथी टाँगों की स्थिति बदलें। पहले दायीं जाँघ पर बायां पैर और बाद में दायां पैर बायीं जाँध पर रख पुनः टाँगों को दूसरी स्थिति में परस्पर गुँथाएँ, जैसा कि पहले किया गया है।

१०. दोनों तरफ पुनः क्रियाओं को दुहरायें।

सर्वांगासन में ऊर्ध्व पद्मासन तथा पार्श्व पिंडासन की क्रियाओं के परिणाम

परस्पर गुँथी टाँगों का परिवर्तन उदर तथा बड़ी आँत के दोनों ओर समान दबाव लाता है और कोष्ठबद्धता दूर करता है। जो पुराने कब्ज से पीड़ित हैं उनके लिए दीर्घ कालतक पार्श्व पिंडासन में रहना उपयोगी बताया गया है। दोनों तरफ १-१ मिनट का समय यदि दिया जाय तो वह बहुत प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा। इन आसनों से पेट की मरोड़ को दूर किया जाता है।

लचीले घुटनेवाले व्यक्ति इन आसनों को आसानी से कर सकते हैं। फिर भी पद्मासन में टाँगों को परस्पर गुँथाना बहुतेरे लोगों के लिए कठिन है। उनके लिए पार्श्व हलासन–(चित्र २४६) (उसमें भी मेरुदण्ड और धड़ में पार्श्वगत मोड़ तो है ही लेकिन टाँगें सीधी रहती हैं।) में ज्यादा देर रहने की सिफारिश की गयी है।

इन सभी स्थितियों में शुरू-शुरू में श्वासक्रिया पहले तेज तथा श्रमसाध्य होगी। स्वाभाविक रूप से श्वास बनाये रखने की कोशिश करें।

टिप्पणी

सर्वांगासन के इन प्रकारों में मेरुदण्ड को पार्श्व, पृष्ठ तथा अग्र की ओर से सक्रियता प्राप्त होती है, जबकि हलासन, एकपाद सर्वांगासन, कर्ण पिण्डासन तथा पिण्डासन में मेरुदण्ड केवल आगे की ओर झुकता है। सर्वांगासन, पार्श्व हलासन और पार्श्व पिण्डासन में मेरुदण्ड पार्श्व से गतिशील होता है जैसा कि पार्श्व सर्वांगासन और पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन में होता है। सेतुबन्ध और उत्तान पद्म मयूरासन में उसे पीछे की ओर गति देते हैं। ये क्रियाएँ हर तरफ से मेरुदण्ड को ठीक रखती हैं और स्वस्थ भी।

यह कहा जाता है कि कृतयुग (विश्व का प्रथम युग) में दानवों (दैत्यों और राक्षसों) की सेना वृत्र के सेनापतित्व में संग्राम में अजेय हो गयी थी और सभी दिशाओं में देवों (देवताओं) को तितर बितर करती जा रही थी। जबतक वृत्र का नाश नहीं होता तबतक शक्ति की पुन:प्राप्ति नहीं हो सकती, ऐसा अनुभव कर, देवगण अपने पूर्वज विश्वनिर्माता ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित हुए। ब्रह्मा ने विष्णु से पूछने के लिए कहा, जिन्होंने दधीचि नामक ऋषि से उनकी अस्थियाँ प्राप्त करने के लिए कहा जिससे कि दैत्यवध के लिए हथियार तैयार किया जा सके। विष्णु के परामर्श के अनुसार देवगण ऋषि के पास पहुँचे और उन्होंने अस्थि की माँग की। देवों के हितार्थ उस ऋषि ने अपना शरीर त्याग दिया। दधीचि के मेरुदण्ड से वज्र बनाया गया जिसे देवताओं के राजा इन्द्र ने वेग से उछाला और वृत्र का वध किया।

यह कहानी प्रतीकात्मक है। दानव मानव के तामसिक गुणों और रोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। देव स्वास्थ्य, समस्वरता, और शांति का प्रतिनिधित्व करते हैं। तामसिक गुणों और रोगों को नष्ट करने और स्वास्थ्य-आनन्द का भोग करने के लिए हम लोगों को अपनी रीढ़ की हड्डी को वज्र के समान मजबूत बनाना पड़ता है, जैसी कि दधीचि की रीढ़ की हड्डी थी। तब हम लोग स्वास्थ्य, समस्वरता, आनंद का ज्यादा भोग कर सकेंगे।

१०५. जठर परिवर्तनासन पांच* (चित्र २७४ और २७५)

जठर का अर्थ उदर या पेट है। परिवर्तन का तात्पर्य घुमाव, लुढ़कन या चक्कर है।

विधि

१. जमीन पर पीठ के बल लेटें (चित्र २१६) ।

२. कंधों की सीध में दोनों बाँहें बगल में फैलायें जिससे शरीर 'क्रास' की स्थिति में होता है ।

३. श्वास छोड़ें, दोनों टाँगों को जमीन पर लम्बरूप होने तक एक साथ उठायें । उन्हें सींकचे की तरह कड़ा होना चाहिए जिससे वे घुटने पर न मुड़ें (चित्र २७२) ।

४. कुछ साँस लेते हुए इस स्थिति में रहें । तब साँस छोड़ें, दोनों टाँगों को बाहर फैलाये हुए बायें हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग को बायें पैर की अंगुलियाँ बहुतांश में छने तक (चित्र २७४) बायीं ओर जमीन पर तिरछे ले जायें (चित्र २७३) । प्रयन्त्न करें और पीठ को जमीन पर अच्छी तरह रखें । आरम्भिक अवस्थाओं में, दायां कंधा जमीन पर से उठा होगा । इसे रोकने के लिए, जबकि टाँगें बायीं ओर तिरछे घूमती हैं, अपने किसी मित्र को उसे दबाने के लिए कहें अथवा दायें हाथ से फर्नीचर की कोई वजनी चीज पकड़ें ।

५. घुटनों को निरंतर तना रखते हुए दोनों टाँगों को एक साथ नीचे जाना चाहिए । यथासम्भव पीठ का कटिभाग जमीन पर रखें और नितम्ब के पास ही टाँगों को घुमा दें । जब टाँगें बाहर फैलाये हुए बायें हाथ के निकट होती हैं, उदर को दायीं ओर झुकायें ।

६. शुरू से अंततक टाँगों को कड़ा रखते हुए इस स्थिति में करीब २० सेकंड तक रहें । बाद में एक उच्छ्वसन के साथ अभी भी कड़ी टाँगों को धीरे से पीछे लंबरूप में खिसकायें (चित्र २७२) ।

७. लंबरूप में खड़ी टाँगों के साथ कुछ साँस लें और बाद में टाँगों को दायीं ओर नीचा कर उदर को बायीं ओर घुमाकर इन क्रियाओं को दुहरायें (चित्र २७५) । उतने ही समय के लिए इस आसन में रहें और एक उच्छ्वसन के साथ लम्बरूप टाँगों की स्थिति में वापस आ जायें (चित्र २७२) । तब धीरे से टाँगों को जमीन पर लायें (चित्र २१६) और आराम करें ।

परिणाम

यह आसन मोटाई की अधिकता को कम करने के लिए अच्छा है । यह यकृत, प्लीहा और अग्न्याशय की मंदता को खत्म करता है और उन्हें ठीक रखता है । यह जठरदाह दूर करता है और आँत को पुष्ट करता है । इसके नियमित अभ्यास से उदर के सभी अवयव व्यवस्थित रहते हैं । पीठ के निम्नभाग और नितम्बीय प्रदेश की मरोड़, मोच और अकड़ को दूर करने में मदद करता है ।

१०६. ऊर्ध्व प्रसारित पादासन एक* (चित्र २७६ से २७९)

ऊर्ध्व का अर्थ सीधे ऊपर या ऊँचा है। प्रसारित का अर्थ फैला हुआ, तना हुआ है। पाद का अर्थ पैर है।

विधि

१. टाँगों को तानें और घुटनों पर कड़ा किये पीठ के बल लेटें। हाथों को टाँगों की बगल में रखें (चित्र २१९)।

२. श्वास छोड़ें, भुजाओं को सिर के ऊपर ले जायें और उन्हें सीधा तानें (चित्र २७६) । दो श्वास लें ।

३. श्वास छोड़ें, ३० अंश तक टाँगों को ऊपर उठायें (चित्र २७७) और स्वाभाविक श्वास लेते हुए १५ से २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

४. श्वास छोड़ें, ६० अंश तक टाँगें ऊपर करें (चित्र २७८) । और स्वाभाविक श्वास लेते हुए १५ से २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

५. पुनःश्वास छोड़ें, टाँगों को और भी लम्बरूप होने तक और ऊँचा करें (चित्र २७९) । और स्वाभाविक श्वास लेते हुए ३० से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

६. अब श्वास छोड़ें, धीरे-धीरे टाँगें जमीन पर लायें और आराम करें।

७. २ से ६ की स्थितियों को तीन या चार बार करें।

टिप्पणी

यदि आप एक ही दम में तीनों स्थितियों को नहीं कर सकते हों तो उन्हें प्रत्येक स्थिति के बाद थोड़ी विश्रांति लेते हुए तीन चरणों में करें।

परिणाम

यह आसन उदर के चारों ओर की मोटाई कम करने के लिए आश्चर्यजनक व्यायाम है। यह पीठ के कटिभाग को मजबूत बनाता है, उदर के अवयवों को ठीक करता है और जो वायुरोग और मोटाई (उदर की) से पीड़ित हैं उन लोगों को रोगमुक्त करता है।

१०७. चक्रासन चार* (चित्र २८० से २८६)

चक्र का अर्थ पहिया है। इस आसन में जमीन पर लेट जायें, दोनों टाँगें उठायें, फिर दोनों को एक साथ ऊपर उठाते चले जायें और उन्हें हलासन में (चित्र २३९) सिर के ऊपर ले आयें। कानों के पास हाथ रखें और सिर के बल लुढ़कें। यह लुढ़कना पहिये की गति का अनुकरण करता है अतः इसका यह नाम है।

विधि

१. पीठ के बल जमीन पर लेटें (चित्र २१९)।

२. श्वास छोड़ें, दोनों टाँगों को एक साथ उठायें और उन्हें सिर के ऊपर ले जायें और हलासन (चित्र २३९) की भाँति जमीन पर पैर की अंगुलियों को टिकायें। दो या तीन साँस लें ।

३. हाथों को सिर के ऊपर ले जायें, कुहनियों को मोड़ें, अंगुलियों को पैरों की ओर इशारा करते हुए हथेलियों को कन्धों के पास रखें (चित्र २८०) ।

४. श्वास छोड़ें, हथेलियों को जमीन पर दबाये रखें, और गर्दन का पिछला भाग उठाने के लिए टाँगों को और आगे तानें और चित्र २८१, २८२ और २८३ की तरह सिर के बल लुढ़कें ।

५. अब भुजाओं को सीधा तानें और अधोमुख श्वानासन (चित्र ७५) में आएँ।

६. कुहनियों को झुकायें, जमीन की ओर धड़ को नीचे ले आएँ, पीछे की ओर पलटें और आराम करें ।

परिणाम

यह आसन उदर के अवयव तथा मेरुदण्ड को ठीक रखता है। चक्राकार गति के कारण मेरुदण्ड के स्तम्भ में रक्त संचरित होता है और उसे अनुप्राणित करता है। वायुरोग तथा मंद यकृत से पीड़ितों के लिए भी यह लाभकारी है।

१०८. सुप्त पादांगुष्ठासन (चित्र २८५)

सुप्त का तात्पर्य नीचे लेटना है। पाद पैर है। अंगुष्ठ का अर्थ पैर का अंगूठा है। यह आसन तीन क्रियाओं में किया जाता है।

विधि

१. पीठ के बल लेट जाएँ, दोनों टाँगों को तानें और घुटनों को कसा रखें (चित्र २१९) ।

२. श्वास लें, लम्बरूप होने तक बायीं टाँग जमीन पर से उठायें। जमीन पर दायीं टाँग पूरी तरह तनी रखें और दायें हाथ को दायीं जाँघ पर टिकाएँ।

३. बायीं भुजा को ऊपर उठाएँ और बायें पैर के अंगूठे को, तर्जनी और मध्यमा के बीच पकड़ें (चित्र २८४) । तीन या चार बार गहरी साँस लें ।

४. श्वास छोड़ें, जमीन पर से सिर और धड़ ऊपर उठायें। कुहनी पर बायीं भुजा मोड़ें और घुटने पर बिना झुकाये बायीं टाँग सिर की ओर खींचें । टाँग को नीचे करें, सिर और धड़ को साथ साथ उठायें, चिबुक को बायें घुटने पर टिकाएँ (चित्र २८५) । स्वाभाविक श्वास लेते हुए, दायीं टाँग को जमीन पर सीधे तानें, लगभग २० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें ।

५. साँस लें, सिर और धड़ को जमीन की ओर पीछे और बायीं टाँग पीछे लम्बरूप ले जाएँ (चित्र २८४) । यह पहली क्रिया की पूर्ति है।

६. श्वास छोड़ें, बायें पैर का अंगूठा पकड़ें, बायें घुटने को मोड़ें और पकड़ा हुआ अंगूठा दायें कन्धे की ओर करें। बायीं कुहनी को मोड़ें, सिर के पीछे बायीं भुजा तानें और बायीं अग्रभुजा तथा बायीं नली के बीच के अन्तराल में सिर ऊपर करें (चित्र २८६)। कुछ गहरी साँस लें।

७. साँस लें, जमीन की ओर सिर पीछे करें, सिर के सामने बायीं भुजा लायें और बायीं भुजा और टाँग को सीधा करें। अंत तक पैर के अंगूठे को पकड़े हुए बायीं टाँग पीछे की ओर लम्बरूप में ले जाएँ (चित्र २८४)। इस क्रिया में भी शुरू से अंत तक दायीं टाँग पूरी तरह जमीन पर फैली होती है और दायां हाथ दायीं जाँघ पर टिका होता है। यह दूसरी क्रिया की पूर्ति है।

८. श्वास छोड़ें, बिना सिर व धड़ को हिलाये या जमीन पर से दायीं टाँग उठाये, बायीं टाँग और भुजा तिरछे बायीं ओर जमीन की ओर घुमायें (चित्र २८७)। पैर की अंगुलियों की पकड़ को न छोड़ें लेकिन बायीं भुजा को कन्धे की सतह तक ले आयें। बायीं टाँग को घुटने पर बिना मोड़े इस स्थिति में लगभग २० सेकण्ड तक रहें। स्वाभाविक रूप से श्वास लें।

९. अब साँस लें और बायीं टाँग को घुटने पर बिना मोड़े, और बायें पैर के अंगूठे की पकड़ को छोड़ें या जमीन पर के दायें पैर के तनाव को कम किये बिना उसे पुनः लंबरूप में लाएँ (चित्र २८४)।

१०. श्वास छोड़ें, पैर की अंगुलियों की पकड़ छोड़ें, बायीं टाँग को जमीन पर दायीं टाँग के पास रखें और बायां हाथ बायीं जाँघ पर रखें। यह तीसरी क्रिया की पूर्ति है। आरंभ में फैली टाँग को इन तीनों क्रियाओं तक जमीन पर रहने में कठिनाई होती है। इसलिए घुटने ठीक ऊपर जाँघ को दबाते हुए या पैर को दीवार पर दबाने के लिये मित्र से कहते हुए टाँग को नीचे रखें।

११. बायीं ओर तीनों क्रियाओं को पूरा करने के बाद कुछ गहरी साँस लें और 'दायें' शब्द के लिए 'बायें' शब्द का प्रयोग कर इन्हें दायीं ओर दुहरायें।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से टाँगें अच्छी तरह विकसित होंगी। कूल्हे की वेदना तथा टाँगों के लकवे से पीड़ित व्यक्ति इससे बहुत लाभ उठायेंगे। रक्त टाँगों और नितम्बों में संचारित किया जाता है जहाँ नाडियों को नवयौवन प्राप्त होता है। यह आसन नितम्बों की सन्धि की जड़ता को दूर करता है और हर्निया से बचाता है। इसका अभ्यास पुरुष और स्त्री दोनों के द्वारा किया जा सकता है।

१०९. अनन्तासन नौ * (चित्र २९०)

अनन्त विष्णु का नाम है और विष्णु की शैया-शेषनाग का नाम भी है। हिन्दु पुराण कथाओं के अनुसार, विष्णु क्षीरसागर में सहस्त्रशिर शेषनाग पर शयन करते

हैं। निद्रावस्था में उनकी नाभि से एक कमल निकलता है। उसी कमल से सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा का जन्म हुआ है जिन्होंने इस संसार का सृजन किया है। सृष्टि-निर्माण के बाद विष्णु वैकुंठ का राज्य करने के लिए जागते हैं। यह रूप दक्षिण भारत में त्रिवेन्द्रम् के भगवान् अनन्त पद्मनाभ (पद्म=कमल; नाभ=नाभि) के मंदिर में पाया जाता है।

विधि

१. पीठ के बल लेट जायें (चित्र २१९), श्वास छोड़ें, बायीं ओर घूमें और जमीन से पार्श्वगत सम्बन्ध बनाये हुए शरीर को टिकायें।

२. सिर उठाएँ, धड़ की सीध में बायीं बाँह सिर के परे फैलाएँ, बायीं कुहनी मोड़ें, अग्रभुजा को उठाएँ, सिर अपनी बायीं हथेली पर, जिसे कान के ऊपर रखा जाना चाहिए, टिकाएँ (चित्र २८८)। स्वाभाविक या गहरी साँस लेते हुए कुछ सेकण्ड के लिए इस स्थिति में रहें।

३. दायें घुटने को मोड़ें, और दायें पैर के अंगूठे को दाहिने अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा से पकड़ें (चित्र २८९)।

४. श्वास छोड़ें, दायीं भुजा और टाँग लम्बरूप में साथ साथ उठाएँ (चित्र२९०)। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए १५ से २० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें।

५. श्वास छोड़ें, दायें घुटने को मोड़ें और दूसरे अनुच्छेद में बतलायी गयी स्थिति में आ जाएँ।

६. बायीं हथेली से सिर नीचे करें और पीठ के बल लुढ़क जाएँ (चित्र २१९)।

७. उतने ही समय के लिए दूसरी ओर इस आसन को दुहराएँ और बाद में आराम करें।

परिणाम

इस आसन से नितम्बीय भाग लाभान्वित होता है और मन्दिरशिरा की मांस-पेशियाँ पूरी तरह ठीक होती हैं। यह आसन पीठ के दर्द को भी दूर करता है और हर्निया को बढ़ने से रोकता है।

११०. उत्तानपादासन नौ (चित्र २९२)

उत्तान का अर्थ तना हुआ या मुँह ऊपर किये पीठ के बल लेटा हुआ है। पाद का अर्थ पैर है।

विधि

१. पैरों को एक साथ रखें और घुटनों को तानें, पीठ के बल लेट जाएँ (चित्र २१९)। दो या चार गहरी साँसें लें।

२. श्वास छोड़ें, जमीन से पीठ ऊपर उठाएँ और गर्दन को तानें। फिर जमीन पर कपाल छूने तक सिर को पीछे ले जाएँ (चित्र २९१)। यदि जमीन पर कपाल टिकाने में कठिनाई होती है तो सिर की बगल में हाथों को लाएँ, गर्दन उठाएँ और पृष्ठप्रदेश तथा कटिप्रदेश के पिछले भाग को जमीन से ऊपर उठाते हुए सिर को यथासंभव पीछे खींचें। बाद में बगल में बाँहों को टिकाएँ। दो या तीन साँस लें।

३. पीठ तानें तथा एक उच्छ्वसन के साथ जमीन से ४५ से ५० अंश होने तक टाँगें उठायें। भुजाएँ उठाएँ, हथेलियाँ मिलाएँ और उन्हें टाँगों के समानान्तर रखें (चित्र २९२)। भुजाएँ और टाँगें कड़ी रखी जानी चाहिए, कुहनी या घुटनों पर झुकें नहीं। जाँघें, घुटने, टखने और पैर एकसाथ सटे रहें।

४. पसलियों को पूरी तरह फैलायें और आधे मिनट तक इस स्थिति में स्वाभाविक श्वासक्रिया के साथ रहें। शरीर का संतुलन केवल सिर के कपाल तथा नितम्ब पर होना चाहिए।

५. श्वास छोड़ें, जमीन की ओर टाँगों और बाँहों को नीचे करें, गर्दन को सीधा रखें, सिर की पकड़ छोड़ें, धड़ को नीचा करें और जमीन पर पीठ के बल लेटकर आराम करें।

परिणाम

यह आसन वक्ष:स्थल को पूर्ण विकास देता है और मेरुदण्ड के पृष्ठभाग को लचीला तथा स्वस्थ रखता है। गर्दन तथा पीठ को यह ठीक करता है और शुद्ध, एवं स्वस्थ रक्त की पूर्ति निश्चित करके कंठग्रंथियों के कार्य को नियमित करता है। इससे उदर की मांसपेशियाँ फैलती हैं और मजबूत होती हैं।

१११. सेतुबन्धासन चौदह (चित्र २९६)

सेतु का अर्थ पुल है। सेतुबन्ध का तात्पर्य पुल का निर्माण है। इस स्थिति में पूरा शरीर एक मेहराब का निर्माण करता है। और वह एक किनारे सिर के कपाल पर तो दूसरे किनारे पैरों पर आधारित होता है, इसलिए इसका यह नाम है।

विधि

१. पीठ के बल जमीन पर लेट जाएँ (चित्र २१९), कुछ गहरी साँस लें।

२. घुटनों को मोड़ें, घुटनों के पास टाँगों को फैलाएँ (अलग करें) तथा एड़ियों को नितम्ब (बैठक) की ओर अन्दर ले आएँ।

३. एड़ियों को साथ रखें और जमीन पर उनके बाहरी भाग को अच्छी तरह टिकाएँ।

४. हाथ सिर की ओर लाएँ और एक उच्छ्वसन के साथ धड़ को उठाएँ और

जमीन पर सिर के कपाल को टिकाने के लिए शरीर की मेहराब बनाएँ (चित्र २९३)। गर्दन को ऊपर तानकर तथा पीठ और कटिप्रदेश के पिछले भागों को जमीन पर से उठाकर सिर को यथासम्भव पीछे की ओर खींचें।

५. सीने पर भुजाओं को मोड़ें, दाहिने हाथ से बायीं कुहनी तथा दाहिनी कुहनी को बायें हाथ से पकड़ें (चित्र २९४)। दो या तीन साँस लें।

६. श्वास छोड़ें, नितम्बों को ऊपर उठाएँ (चित्र २९५) और टाँगें सीधी होने तक तानें (चित्र २९६)। पैरों को सटा लें और जमीन पर दृढतापूर्वक रखें। पूरा शरीर एक सेतु या मेहराब बनता है। इसका एक किनारा सिर के कपाल पर और दूसरा किनारा पैरों पर आधारित होता है।

७. स्वाभाविक श्वास लेते हुए कुछ सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें।

८. श्वास छोड़ें, भुजाओं को मुक्त करें (खोलें) और जमीन पर हाथ रखें, घुटनों को मोड़ें, टाँगों और धड़ को जमीन की ओर झुकाएँ, शिरोभाग की पकड़ को छोड़ दें, गर्दन को सीधा करें, पीठ के बल लेट जाएँ और आराम करें।

परिणाम

यह आसन गर्दन को बल देता है और मेरुदण्ड की धमनी, पृष्ठ, कटि तथा त्रिकास्थि प्रदेशों को ठीक करता है। पीठ की प्रसारक मांसपेशियाँ सशक्त होती हैं और नितम्ब संकुचित एवं कठिन होते हैं। शीर्षग्रन्थियाँ, पीयूषग्रन्थियाँ और कण्ठग्रन्थियाँ, और वृक्कशिर ग्रन्थियाँ रक्त से परिप्लावित होती हैं तथा उचित रीति से कार्य करती हैं।

११२. भारद्वाजासन एक * (चित्र २९७ तथा २९८)

कौरव और पाण्डवों के युद्धविद्या के गुरु द्रोण (जिन्होंने महाभारत में वर्णित घोर संग्राम किया) के पिता का नाम भारद्वाज था। यह आसन भारद्वाज को समर्पित है।

विधि

१. सामने सीधे पैरों को ताने जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटनों को मोड़ें, पैरों को पीछे ले जाएँ तथा दोनों को नितम्ब के पास दाहिनी ओर ले आएँ।

३. जमीन पर नितम्ब रखें, बायीं ओर करीब ४५ अंश धड़ को घुमाएँ, दायीं भुजा को सीधा रखें, बायें घुटने के पास बायीं जाँघ के बाहरी भाग पर दायां हाथ रखें। हथेली से जमीन का स्पर्श करते हुए दायां हाथ बायें घुटने के नीचे ले जाएँ।

४. श्वास लें, कंधे से पीठ के पीछे बायीं बाँह घुमाएँ, बायीं कुहनी मोड़ें, बायें हाथ से, दायीं कुहनी के ऊपर दायीं बाँह का ऊपरी भाग पकड़ें।

५. दक्षिण की ओर गर्दन घुमाएँ और दाहिने कंधे के ऊपर एकटक देखें (चित्र २९७ और २९८)।

६. गहरी साँस लेते हुए आधे मिनट तक इस स्थिति में रहें।

७. हाथ की पकड़ को ढीला करें, टाँगों को सीधा करें, दूसरी ओर इस स्थिति को दुहराएँ, यहाँ बायें नितम्ब की बगल में दोनों पैरों को ले आएँ, दायीं ओर धड़ को घुमाएँ, बायीं भुजा सीधी करें, दायें घुटने के नीचे बायीं हथेली रखें, पीठ के पीछे से दायां हाथ लाकर कुहनी के पास बायीं बाँह का ऊपरी भाग पकड़ें। उतने ही समय के लिए इस स्थिति में रहें।

परिणाम

यह सुगम आसन मेरुदण्ड के पीठ तथा कटि भाग में कार्य करता है। अत्यन्त कठिन पीड़ावाले व्यक्ति पार्श्वगत घुमाव की स्थिति को अत्यन्त कठिन पाते हैं। यह आसन पीठ को लचीला बनाने में सहायता देता है। जोड़ों की सूजनवाले व्यक्ति इसे अत्यंत लाभदायक पाते हैं।

११३. भारद्वाजासन एक दो* (चित्र २९९ तथा ३००)

विधि

१. टाँगों को सामने सीधा ताने हुए जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटने के पास बायीं टाँग को मोड़ें और बायाँ पैर हाथों से पकड़ें और उसे कटि प्रदेश के पास दाहिनी जाँघ के मूल में रखें, जिससे बायीं एड़ी नाभि के पास रखी जाए। तब बायीं टाँग अर्ध पद्म की स्थिति में होगी।

३. दाहिनी टाँग को घुटने पर से मोड़ें, दाहिने पैर को पीछे लाएँ और दाहिनी एड़ी को दाहिने नितम्ब के पार्श्व में रहने दें। दाहिनी पिंडली का भीतरी भाग दाहिनी जाँघ के बाहरी भाग का स्पर्श करेगा। दोनों घुटनों को एक दूसरे के पास जमीन पर रखें।

४. श्वास छोड़ें, कंधे से बायीं भुजा को पीठ के पीछे घुमाएँ, बायीं कुहनी को मोड़ें, दाहिने नितम्ब के निकट बायां हाथ ले आएँ और बायाँ पैर बायें हाथ से पकड़ें।

५. दाहिनी भुजा को सीधा करें, दायें हाथ को बायें घुटने के पास बायीं जाँघ के बाहरी भाग पर रखें। बायें घुटने के नीचे दायाँ हाथ घुसाएँ, जिससे हथेली जमीन को छूए तथा अंगुलियाँ दाहिनी ओर संकेत करें (चित्र २९९ तथा ३००)।

६. बायें पैर को कसकर पकड़ें, जितना संभव हो सके बायीं ओर धड़ को घुमाएँ। गर्दन को प्रत्येक दिशा में घुमाएँ और कन्धे पर दृष्टि गड़ायें।

७. स्वाभाविक या गहरी साँस लेते हुए इस आसन में आधे से एक मिनट तक रहें।

८. तब यह स्थिति छोड़ दें, और उसे उतने ही समय के लिए दूसरी ओर दुहराएँ। यहाँ दाहिना पैर बायीं जाँघ के मूल पर रखा जाएगा और दाहिने हाथ से पीठ के पीछे से उसे पकड़ा जाएगा। बायीं टाँग घुटने के पास मुड़ेगी, बायें नितम्ब के पास जमीन पर बायीं एड़ी होगी। दायें घुटने के नीचे बायाँ हाथ रखा जाएगा और यथासम्भव धड़ को दायीं ओर घुमाया जाएगा।

९. दोनों तरफ आसन पूरा करने के बाद टाँगों को तानें और भुजाओं को सीधा करें तथा आराम करें।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से घुटने और कन्धे लचीले बनते हैं। लचीले मेरुदण्ड की गतिवाले लोगों के लिए यह अत्यन्त प्रभावकारी नहीं होता है परंतु जोड़ों की सूजन-वाले इसे वरदान स्वरूप पाएँगे।

११४. मरीच्यासन तीन दस* **(चित्र ३०३ और ३०४)**

यह आसन बैठे हुए पार्श्वगत घुमाव के आसनों में से एक है।

विधि

१. पैरों को सामने सीधा ताने जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायां घुटना मोड़ें, बायें पैर की एड़ी और तलवे को जमीन पर चपटा रखें। बायीं टाँग की नली जमीन पर लम्बरूप में होनी चाहिए और पिंडली को जाँघ का स्पर्श करना चाहिए। बायीं एड़ी को मूलाधार के पास रखें। बायें पैर के भीतरी भाग को तनी दायीं जाँघ के भीतरी भाग का स्पर्श करना चाहिए।

३. एक उच्छ्वसन के साथ, बायीं ओर करीब ९०° मेरुदण्ड को घुमाएँ जिससे सीना मुड़ी बायीं जाँघ के बाहर जाए और दायीं भुजा बायीं जाँघ पर लाएँ (चित्र ३०१)।

४. बायें घुटने के बाहर दायाँ कंधा रखें और मेरुदण्ड को ज्यादा बायीं ओर मोड़ कर और दायीं तैरती पसलियों के पृष्ठभाग को तानते हुए दायीं भुजा को आगे की ओर तानें (चित्र ३०२)। दो साँस लें।

५. एक उच्छ्वसन के साथ बायें घुटने को बायीं भुजा से लपेट लें। दायीं कुहनी को मोड़ें, कमर के पृष्ठभाग पर दायीं कलाई रखें। श्वास लें और आसन को बनाये रखें।

६. गहरी साँस लें, कंधे के पास से बायीं भुजा को पीठ के पीछे घुमाएँ। पीठ के पीछे दायें हाथ से बायें को या इसका उलटा दायें हाथ को बायें हाथ से पकड़ लें (चित्र ३०३ और ३०४)। आरम्भ में व्यक्ति धड़ को तिरछे मोड़ने में कठिनाई महसूस करता है; लेकिन अभ्यास से काँख मुड़े हुए घुटने को छू लेती है। घुटने को

भुजा से लपेटने के बाद भी व्यक्ति एक हाथ की अँगुलियों को दूसरे हाथ की अँगुलियों के बीच फँसाने में कठिनाई महसूस करता है। वह धीरे धीरे पीठ के पीछे अँगुलियाँ फँसाना सीखता है तब हथेली और कलाई के पास हाथ पकड़ना सीखता है।

७. दायीं भुजा से बायां मुड़ा घुटना कसकर जकड़ लेना चाहिए। दायीं काँख तथा मुड़े बायें घुटने के बीच अंतर नहीं होना चाहिए।

८. पीछे हाथों को परस्पर पकड़ने के बाद, इन पकड़े हाथों को खींचते हुए मेरुदण्ड को बायीं ओर और अधिक घुमाएँ।

९. बाहर फैली हुई पूरी दाहिनी टाँग सुरक्षित रूप से जमीन पर रहनी चाहिए, परन्तु प्रारंभ में इस स्थिति को प्राप्त करने में आप असमर्थ होंगे। बाहर फैली हुई जाँघ की मांसपेशियों को कसें, जिससे घुटने की चक्की जाँघ की ओर खींची जाय और बाहर फैली हुई टांग की पिंडली की मांसपेशियों को भी तानें। तब टाँगें जमीन पर फैली हुई और स्थिर रहेंगी।

१०. स्वाभाविक श्वास लेते हुए आधे मिनट से एक मिनट तक इस स्थिति में रहें। जमीन पर फैली टाँग की अंगुलियों की ओर या कन्धे की ओर एकटक देखने के लिए गर्दन को घुमाया जा सकता है।

११. पीठ पर के हाथों को खोल दें, और धड़ को पीछे की ओर मूल स्थिति मं घुमाएँ। मुड़ी टाँग को नीचे करें और जमीन पर पूरी तरह फैलाएँ।

१२. दूसरी ओर इस आसन को दुहराएँ। इस बार दायें घुटने को मोड़ें, जमीन पर दायां पैर मजबूती से रखें जिससे दायीं एड़ी मूलाधार का स्पर्श करे और दायें पैर का भीतरी भाग तनी बायीं जाँघ का स्पर्श करे। धड़ को करीब ९० अंश पर दायीं ओर घुमाएँ जिससे बायीं काँख मुड़े हुए दायें घुटने को छूए। एक उच्छ्वसन के साथ दायें घुटने के चारों ओर बायीं भुजा लपेटें और बायाँ हाथ कमर के पीछे ले जाएँ। बाद में दायीं भुजा को कन्धे से पीठ के पीछे झटकें और दायीं कुहनी को मोड़ कर दायें हाथ को बायें हाथ के पास लाएँ और उन्हें परस्पर मिलाएँ। दायीं ओर और अधिक घुमायें और तनी बायीं टाँग की अंगुलियों पर या दायें कन्धे के ऊपर एकटक देखें। उतने ही समय के लिए इस ओर भी रहें। हाथों को खोल दें, धड़ को पीछे घुमाकर स्वाभाविक स्थिति में लाएँ, दायीं टाँग को जमीन पर तानें और आराम करें।

परिणाम

इस आसन के नियमित अभ्यास से पीठ की तीव्र वेदना, कटिपीडा और नितम्बीय पीडा शीघ्र ही मिट जाती है। यकृत और प्लीहा सिकुड़े जाते हैं और इस प्रकार ठीक होते हैं, यह उन्हें सुस्त होने से रोकता है। गर्दन की मांसपेशियाँ शक्ति पाती

हैं। कंधे की मोच और स्कन्धास्थि का स्थलांतरण ठीक होता है और कंधों की क्रिया स्वाभाविक होती है। इस आसन से अंतड़ी को भी लाभ पहुँचता है। इसका प्रभाव दुबले व्यक्तियों पर कम होगा, जिनके लिए आगे अच्छे आसन बताये गए हैं। उदर के आकार को कम करने में यह मदद करता है।

११५. मरीच्यासन चार ग्यारह* (चित्र ३०५)

यह प्रकार मरीच्यासन दो (चित्र १४६) तथा मरीच्यासन तीन (चित्र ३०३) की क्रियाओं का योग है।

विधि

१. टाँगों को सामने सीधे तानकर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटने के पास दाहिनी टाँग को मोड़ें और दाहिने पैर को दाहिनी जाँघ के मूल में रखें। दाहिनी एड़ी नाभि पर दबानी चाहिए और पैर की अँगुलियाँ तनी और सीधी होनी चाहिए। अब दाहिनी टाँग अर्ध पद्मासन की स्थिति में होगी।

३. घुटने के पास बायीं टाँग मोड़ें, बायें पैर की एड़ी और तलवे को जमीन पर रखें। नली को जमीन के लम्बरूप रखें जिससे दाहिनी जाँघ और पिंडली एक दूसरे का स्पर्श करें और बायीं एड़ी मूलाधार का स्पर्श करे।

४. उच्छ्वसन के साथ मेरुदण्ड को ९० अंश पर बायीं तरफ घुमाएँ जिससे दाहिनी काँख दाहिनी जाँघ के बाहरी भाग का स्पर्श करें।

५. दायाँ कंधा बायें घुटने पर रखें और तरंगित पसलियों के पृष्ठभाग को तानते हुए मेरुदण्ड को बायीं ओर और अधिक घुमाते हुए दाहिनी भुजा को सामने फैलाएँ। श्वास लें।

६. श्वास छोड़ें, दाहिनी भुजा बायें घुटने के चारों ओर लपेटें, दाहिनी कुहनी को मोड़ें और अपनी कमर के पीछे दाहिना हाथ रखें। दाहिनी काँख में बाय घुटना कसकर बँधा होता है। श्वास लें।

७. अब गहरे उच्छ्वसन के साथ बायीं भुजा कंधे से पीठ के पीछे ले जाएँ और पीठ के पीछे दाहिने हाथ को बायें हाथ से पकड़ें। सीना तानें और मेरुदण्ड को ऊपर खीचें (चित्र ३०५ तथा ३०६)।

८. इस आसन में ३० सेकण्ड के लिए रहें। साँस तेज होती जायगी।

९. हाथों को छोड़ दें और टाँगें सीधी करें।

१०. दूसरी ओर बायें के लिए दायां और दायें के लिए बायाँ पढ़ते हुए इस आसन को दुहराएँ। उतने ही समय के लिए दोनों ओर ठहरें। हाथों को छोड़ें और टाँगों को सीधा करें और आराम करें।

परिणाम

नाभि पर का एड़ियों का दबाव तथा पीठ के पीछे हाथों की पकड़ नाभि के

चारों ओर की नाड़ियों को अनुप्राणित करती है। यह प्लीहा, यकृत तथा अग्न्याशय को ठीक करता है। स्कन्धास्थि में संग्रहीत कॅलशियम का पृथक्करण होता है और यह आसन कंधों की स्वतंत्र क्रिया को मदद करता है।

११६. अर्ध मत्स्येन्द्रासन एक आठ * (चित्र ३११ तथा ३१२)

अर्ध का अर्थ आधा है। हठयोग प्रदीपिका में मत्स्येन्द्र को हठविद्या का एक प्रवर्तक बताया गया है। यह कहा जाता है कि एक बार शिव निर्जन द्वीप में गए और उन्होंने अपनी सहचरी पार्वती को योगरहस्य बतलाया। तट के पास की मछली ने सब कुछ ध्यान से सुना और सुनते समय वह निश्चल रही। शिव ने यह समझ कर कि मछली ने योग सीख लिया है, उस पर पानी छिड़का, तथा शीघ्र ही मछली ने दिव्यरूप प्राप्त कर लिया और मत्स्येन्द्र बन गयी और उसके बाद योगज्ञान का प्रचार किया। परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (चित्र ३३६ और ३३९) जिसमें मेरुदण्ड को सर्वाधिक पार्श्वगत मोड़ दिया जाता है, मत्स्येन्द्र को समर्पित है। अर्ध मत्स्येन्द्रासन उस आसन का सौम्य रूप है।

विधि

१. सीधे सामने टाँगों को ताने हुए जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायें घुटने को मोड़ें, जाँघ और पिंडली को मिला दें, जमीन से बैठक ऊपर उठायें, नितम्ब के नीचे बायें पैर को रखें, और बायें पैर पर बैठें जिससे बायीं एड़ी बायें नितम्ब के नीचे रहे। टखनों का बाहरी भाग और पैर की छोटी अंगुली जमीन पर टिकाए हुए बैठक के रूप में उपयोग किया गया और जमीन पर समतल रखा जाना चाहिए। यदि पैर इस तरह नहीं रखा गया है तो उसपर बैठना असंभव होगा। इस स्थिति में संतुलन निश्चित रूप से करें।

३. बाद में दायाँ घुटना मोड़ें और जमीन पर से दायीं टाँग उठाकर बायीं जाँघ के बाहरी भाग के पास रखें जिससे दायें टखने का बाहरी भाग बायीं जाँघ के बाहरी भाग का जमीन पर स्पर्श करें। दायीं नली को लम्बरूप में जमीन पर रखकर इस स्थिति में संतुलन करें (चित्र ३०७)।

४. बायीं काँख दायीं जाँघ के बाहरी भाग को छूने तक दायीं ओर ९० अंश तक धड़ को घुमाएँ। दायें घुटने पर काँख ले आएँ (चित्र ३०८), श्वास छोड़ें, कंधे से बायीं भुजा तानें और दायें घुटने के चारों ओर लपेटें। बायीं कुहनी मोड़ें और बायीं कलाई कमर के पीछे की ओर ले जाएँ।

५. बायीं बाँह से, झुका हुआ दाहिना घुटना कसकर बँधा होना चाहिए और बायीं काँख और झुके बायें घुटने के बीच कोई अंतर नहीं होना चाहिए। यह प्राप्त करने के लिए श्वास छोड़ें और धड़ को आगे करें। इस आसन में रहें और दो साँस लें।

६. अब गहरी साँस छोड़ें और दाहिनी भुजा को कन्धे से पीछे की ओर ले जाएँ, दाहिनी कुहनी को मोड़ें, कमर के पीछे दायें हाथ को ले जाएँ और बायें हाथ से उसे पकड़ें या दायें से बायाँ हाथ पकड़ें। आरम्भ में एक या दो अंगुलियाँ पकड पाएँगे। अभ्यास से हथेलियों को, बाद में कलाइयों को पीठ के पीछे पकड़ना संभव होगा (चित्र ३०९)।

७. गर्दन को बायीं ओर झुकाया जा सकता है और बायें कन्धे पर ध्यान केन्द्रित करें (चित्र ३१०) या दायीं ओर तथा भ्रूमध्य में केन्द्रित करें (चित्र ३११ तथा ३१२)। दायें की अपेक्षा यदि बायीं ओर गर्दन घुमायी जाती है तो मेरुदण्डीय मोड़ अधिक होगा।

८. उरःप्राचीर मेरुदण्डीय मोड़ से दब जाने के कारण पहले पहले श्वासक्रिया तेज और लघु हो जाती है। हतोत्साह न हों। कुछ अभ्यास के बाद इस आसन में आधे मिनट से एक मिनट तक स्वाभाविक श्वासक्रिया के साथ रहा जा सकता है।

९. हाथों को मुक्त करें, जमीन से दाहिनी टाँग को हटायें, और दाहिनी टाँग को सीधा करें, बाद में बायीं टाँग को।

१०. दूसरी ओर इस आसन को दुहराएँ और उतने ही समय के लिए इसमें रहें। दाहिनी टाँग को मोड़ें और दाहिने पैर पर बैठें जिससे दायीं एड़ी दायें नितम्ब के नीचे होगी। दायीं टाँग पर बायीं टाँग रखें और बायाँ पैर जमीन पर रखें। जिससे बायें टखने का बाहरी भाग बायीं जाँघ के बाहरी भाग का स्पर्श जमीन पर करे। बायें घुटने पर दायीं काँख रखकर धड़ को ९० अंश बायीं ओर मोड़ें और बायें घुटने के चारों ओर दायीं भुजा लपेटें। दायीं कुहनी को मोड़ें और कमर के पीछे दायां हाथ ले जाएँ। इस स्थिति को बनाये रखें और दो साँस लें। पुनः पूरी तरह श्वास छोड़ें और कंधे पर से बायीं भुजा पीछे ले जाएँ। बायीं कुहनी मोड़ें और कलाइयों के पृष्ठभाग पर हाथों को पीछे मिला लें। बाद में उन्हें छोड़ दें और आराम करें।

११. आरम्भ में किसी भी भुजा के लिए विपरीत घुटने को लपेटना सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में कुहनी पर भुजा को सीधा रखते हुए विपरीत पैर को पकड़ने का प्रयत्न करें (चित्र ३१३ तथा ३१४)। पीठ के पीछे हाथों को मिलाने में कुछ समय लगता है। धीरे धीरे भुजाओं का पीछे की ओर तनाव बढ़ेगा और व्यक्ति पहले अंगुलियों, उसके बाद हथेलियों, और बाद में कलाइयों और इस प्रकार स्थिति पर प्रभुत्व पाने पर कलाई के ऊपर अग्रभुजा भी पकड़ने में समर्थ होगा। नौसिखुए जो पैर पर बैठने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, जमीन पर बैठ सकते हैं (चित्र ३१५ और ३१६)।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से व्यक्ति मरीच्यासन तीन (मुद्रा ११४ चित्र ३०३) में

वर्णित लाभ पाता है। परन्तु इसमें क्रिया का विस्तार तीव्रतर होता है इसलिए परिणाम भी अपेक्षाकृत अधिक होता है। मरीच्यासन तीन में उदर का ऊपरी भाग दब जाता है। यहाँ उदर का निम्न भाग व्यायाम का लाभ पाता है। यदि कोई नियमित रूप से अभ्यास करता है तो शिश्नग्रंथियाँ तथा मूत्राशय नहीं बढ़ता।

११७ **मालासन** आठ * (**चित्र ३२१**)

माला का अर्थ हार है।

इस आसन को करने की दो भिन्न विधियाँ हैं जो नीचे बतलायी गयी हैं।

विधि

१. पैरों को साथ किये नितम्ब के बल उकड़ू बैठें। तलवों और एड़ियों को पूरी तरह जमीन पर टिका होना चाहिए। जमीन से बैठक ऊपर उठाएँ तथा संतुलन बनाएँ (चित्र ३१७)।

२. घुटनों को फैलाएँ और धड़ को आगे की ओर करें।

३. श्वास छोड़ें, झुकी टाँगों के चारों ओर भुजाएँ लपेटें और हथेलियों को जमीन पर रखें (चित्र ३१८)।

४. पीठ के पीछे हाथ एक एक कर ले जाएँ और अंगुलियों को पकड़ें (चित्र ३१९ तथा ३२०)।

५. पीठ को तानें तथा सिर को ऊपर करें।

६. स्वाभाविक श्वास लेते हुए इस आसन में ३० से ६० सेकण्ड तक रहें।

७. अब श्वास छोड़ें, आगे की ओर झुकें, सिर को जमीन पर रखें (चित्र ३२१)। स्वाभाविक श्वास लेते हुए इस आसन में ३० से ६० सेकंड तक रहें।

८. साँस लें, सिर जमीन पर से उठाएँ और स्थिति ५ में आ जाएँ।

९. हाथों को मुक्त कर दें और जमीन पर आराम करें।

परिणाम

यह आसन उदर के अवयवों को ठीक करता है और पीठ के दर्द को दूर करता है।

११८. **मालासन दो** दो * (**चित्र ३२२**)

विधि

१. दोनों पैरों को एक साथ किये नितम्ब के बल उकड़ू बैठें। तलवों और एड़ियों को जमीन पर पूरी तरह टिका लें। जमीन पर से बैठक ऊपर उठाएँ तथा संतुलन बनाएँ (चित्र ३१७)।

२. जाँघों तथा घुटनों को फैलाएँ और घुटनों के परे काँख के फैलने तक धड़ को आगे ले जाएँ।

३. आगे की ओर झुकें, टखनों के पीछे का भाग पकड़ें ।

४. टखनों को पकड़ने के बाद श्वास छोड़ें, और पैर की अंगुलियों की ओर सिर झुकाएँ और ललाट को उनपर (अंगुलियों पर) टिकाएँ (चित्र ३२२) ।

५. स्वाभाविक श्वास लेते हुए इस आसन में करीब एक मिनट रहें ।

६. श्वास लें, सिर उठाएँ, टखनों की पकड़ छोड़ें और जमीन पर आराम करें।

परिणाम

इस आसन को करने से उदर के अवयवों को व्यायाम मिलता है और वे शक्ति प्राप्त करते हैं। मासिक रक्तस्राव के समय पीठ की तीव्र वेदना से पीडित होने-वाली नारियाँ इस आसन से आराम पाती हैं और पीठ की पीडा शांत होती है। इन दोनों आसनों में भुजाएँ गर्दन से माला की भाँति लटकती हैं, इसलिए आसन का यह नाम है।

११६. पाशासन पन्द्रह * **(चित्र ३२८ तथा ३२९)**

पाश का अर्थ रज्जु या रस्सी है। इस आसन में जमीन पर उकड़ू बैठ जाएँ, धड़ को किसी एक दिशा में ९० अंश तक घुमाएँ, एक भुजा दोनों जाँघों के चारों ओर लपेटें और दूसरी भुजा कंधे पर से घुमाते हुए पीठ के पीछे दोनों हाथ परस्पर मिलाएँ। धड़ को टांगों तक पकड़ने के लिए भुजाओं का रज्जु जैसा उपयोग किया जाता है इसलिए यह नाम है।

विधि

१. जमीन पर एड़ियों और तलवों को अच्छी तरह रखते हुए जमीन पर उकड़ू बैठें।

२. घुटनों और पैरों को एक साथ रखें, जमीन पर से बैठक ऊपर उठाएँ और संतुलन बनाएँ (चित्र ३१७) ।

३. संतुलन रखते हुए दाहिने घुटने के पास दाहिनी जाँघ के बाहरी भाग के परे बायीं काँख होने तक धड़ को दाहिनी ओर ९० अंश तक घुमाएँ (चित्र ३२३) । अधिक से अधिक घुमाव पाने के लिए बायें घुटने को एक इंच आगे की ओर मोड़ें।

४. श्वास छोड़ें, कंधे से बायीं भुजा को फैलाएँ (चित्र ३२४), बायीं काँख और दायीं जाँघ के बीच जरा भी अंतर न रहने दें, बायीं भुजा को दायीं जाँघ के चारों ओर घुमाएँ और बायीं कुहनी को बायीं टाँग की ओर मोड़कर बायें हाथ को बायें नितम्ब के पास ले आएँ। साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, कंधे से दाहिनी भुजा को पीठ के पीछे घुमाएँ, दाहिनी कुहनी मोड़ें और पीठ के पीछे नितम्ब के पास अंगुलियों को परस्पर फँसा लें (चित्र ३२५)।

६. धीरे-धीरे हथेलियों को मिलाएँ (चित्र ३२६) और जब यह सध जाय, तो कलाइयों को पकड़ें (चित्र ३२७,३२८ और ३२९)।

७. संतुलन बनाए रखने के लिए पिंडली की मांसपेशियों को कसें और यथा-सम्भव मेरुदण्ड को दाहिनी ओर घुमायें और स्वाभाविक श्वास लेते हुए इस स्थिति में ३० से ६० सेकण्ड तक रहें। गर्दन को घुमाएँ और कंधे की ओर एकटक देखें।

८. हाथ की पकड़ छोड़ें और दूसरी ओर इस आसन को दुहराएँ। धड़ को बायीं ओर घुमाएँ, बायीं जाँघ के चारों ओर दायीं भुजा को ले आएँ, दाहिनी कुहनी को मोड़ें, दाहिने नितम्ब के पास दाहिने हाथ को ले आएँ। अब एक उच्छ्-वसन के साथ कंधे के पास से बायीं भुजा को घुमाएँ, बायीं कुहनी को मोड़ें और पीठ के पीछे दाहिने नितम्ब के पास दाहिने हाथ को बायें हाथ से पकड़ें।

परिणाम

यह आसन टखनों में शक्ति और लचीलापन लाता है। जिन लोगों को घंटों खड़े रहकर काम करना पड़ता है उनके पैरों को इस आसन से आराम मिलता है। यह मेरुदण्ड को ठीक रखता है और व्यक्ति को चुस्त बनाता है। कंधे सरलता से घूमते हैं और दृढ़तर होते हैं। यह आसन उदर के पास की मोटाई को कम करता है, उदर के अवयवों की मालिश करता है और साथ-साथ सीने को पूरी तरह से फैलाता है। अर्ध मत्स्येन्द्रासन एक और दो (चित्र ३११ तथा ३३०) की अपेक्षा यह अधिक कठिन है और इस कारण यह अधिक लाभकारी है। यह यकृत, प्लीहा तथा अग्न्याशय की मंदता को दूर करता है और मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति के लिए यह उपयुक्त बताया जाता है। यह पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

१२०. अर्ध मत्स्येन्द्रासन दो उन्नीस* (चित्र ३३० तथा ३३१)

अर्ध मत्स्येन्द्रासन एक (चित्र ३११) का यह एक प्रकार है और मेरुदण्ड को अधिक पार्श्वगत घुमाव देता है।

विधि

१. सामने सीधे टाँगें तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. दाहिने घुटने को मोड़ें, नाभि पर एड़ी को दबाते हुए दाहिने पैर को उठाकर बायीं जाँघ के मूल पर रखें।

३. श्वास छोड़ें, बायीं ओर ९० अंश धड़ को घुमाएँ, बायीं भुजा को कंधे पर से पीठ के पीछे ले जाएँ, बायीं कुहनी को मोड़ें और बायें हाथ से दाहिने टखने या नली को पकड़ें।

४. अंततक बायीं टाँग जमीन पर सीधी तनी होनी चाहिए और बायें पैर का तलवा या अँगूठा दाहिने हाथ से पकड़ा जाना चाहिए और दाहिनी भुजा सीधी रखी जानी चाहिए। आरंभ में व्यक्ति बायीं टाँग को आरम्भ से अंततक तना हुआ रखने में कठिनाई का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में बायें घुटने को झुकाएँ, बायें पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ से पकड़ें और तब दाहिनी भुजा और बायीं टाँग को सीधा तानें। गर्दन को दाहिनी ओर मोड़ें और दाहिने कंधे पर दृष्टि स्थिर करें (चित्र ३३० तथा ३३१)।

५. घुटनों को एक दूसरे के पास रखें। और स्वाभाविक साँस लेने का प्रयत्न करते हुए, जो शुरू में पार्श्वगत घुमाव के साथ तेज होगी, ३० से ६० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें।

६. टाँगों पर की पकड़ छोड़ें, उन्हें सीधा करें, और दाहिनी की जगह बायीं और बायीं की जगह दाहिनी टाँग बदलकर दूसरी ओर इस आसन को दुहराएँ।

७. दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें और तब आराम करें।

परिणाम

एक ओर सिकुड़कर और दूसरी ओर तनकर उदर के अवयव ठीक होते हैं। मेरुदण्ड के पार्श्वगत घुमाव के कारण पीठ दर्द, कमर दर्द और नितम्बों के जोड़ों का दर्द शीघ्र ही दूर हो जाता है। गर्दन की मांसपेशियाँ अधिक सशक्त होती हैं और कंधों की क्रिया सहज होती है। यदि कोई आसन का अभ्यास नियमित रूप से करे तो शिश्नग्रंथियाँ तथा मूत्राशय की वृद्धि नहीं होगी। यह परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (चित्र ३३६ तथा ३३९) को, जिसमें मेरुदण्ड को अधिक से अधिक पार्श्वगत घुमाव दिया जाता है, प्राप्त करने में सहायता देता है।

१२१. अर्ध मत्स्येन्द्रासन तीन बाइस* **(चित्र ३३२ तथा ३३३)**

विधि

१. सामने टाँगों को सीधा तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायें घुटने को मोड़ें, एड़ी को नाभि पर दबाते हुए बायें पैर को दाहिनी जाँघ के मूल पर रखें।

३. दाहिने घुटने को मोड़ें, जमीन पर से दाहिनी टाँग उठाएँ और उसे बायीं जाँघ के बाहरी भाग पर रखें। तब जमीन पर दाहिने टखने का बाहरी भाग बायीं जाँघ के बाहरी भाग का स्पर्श करेगा। दो या तीन साँस लें।

४. श्वास छोड़ें, धड़ को ९० अंश तक दाहिनी ओर घुमाएँ, और बायें कंधे को दाहिने घुटने पर रखें। बायीं काँख और दाहिनी जाँघ के बीच किसी प्रकार का अंतर न छोड़ें और बायें हाथ से दाहिने पैर को पकड़ें।

५. कुहनी के पास मोड़ते हुए दाहिनी भुजा पीठ के पीछे ले जाएँ और दाहिने हाथ को पीठ पर रहने दें।

६. दाहिनी ओर गर्दन घुमाएँ, चिबुक उठाएँ, और भ्रूमध्य या नासिकाग्र पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करें (चित्र ३३२ और ३३३)।

७. इस आसन में यथाशक्ति करीब ३० से ६० सेकंड तक रहें। साँस तेज होगी लेकिन उसे स्वाभाविक बनाने की कोशिश करें।

८. दाहिने पैर पर की पकड़ को छोड़ दें और उसे उठाकर बायीं जाँघ पर रखें और दाहिनी टाँग को सीधा तानें। बाद में बायीं टाँग को छोड़ दें और उसे सीधे बाहर फैलाएँ।

९. दूसरी ओर उतने ही समय के लिए इस आसन को दुहराएँ तथा आराम करें।

परिणाम

इससे उदर के अवयवों को व्यायाम और मालिश मिलती है और वे स्वस्थ रहते हैं। यह मेरुदण्ड को ठीक करता है तथा उसे लचीला बनाता है। यह परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (चित्र ३३६ तथा ३३९) की प्रारंभिक अवस्था है।

१२२. परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन अड़तीस * (चित्र ३३६ तथा ३३९)

परिपूर्ण का अर्थ समस्त या पूर्ण है। मत्स्येन्द्र हठयोग के प्रवर्तकों में से एक थे।

हठयोग प्रदीपिका के २७ वें श्लोक में कहा गया है कि मत्स्येन्द्रासन जठराग्नि को सुलगाकर भूख को बढ़ाता है तथा शरीर के भयंकर रोग को दूर करता है; जब अभ्यास किया जाता है तो यह कुण्डलिनी को जागृत करता है और चन्द्रमा को स्थिर करता है।

यह कहा जाता है कि दाहिनी नासिका का श्वास ऊष्ण तथा बायीं नासिका का श्वास शीतल होता है। इसलिए दाहिनी नासिका के श्वास को सूर्यश्वास और दाहिनी नाड़ी को पिंगल (अग्नि के रंग का) कहा जाता है तथा बायीं नासिका के श्वास को चन्द्रश्वास और बायीं नाड़ी को इड़ा कहा जाता है। चन्द्र इड़ा में भ्रमण करते हुए समस्त प्रणाली में अमृत छिड़कता है और सूर्य पिंगल में भ्रमण करते हुए सम्पूर्ण प्रणाली को सुखा देता है, क्योंकि मानव शरीर को विश्व का सूक्ष्म चित्र बताया जाता है। यह कहा जाता है कि चन्द्र तालु के मूल में स्थिर है और शीतल अलौकिक सुधा की बूँदें सतत टपकाता है जो जठराग्नि द्वारा खा लिये जाने से नष्ट हो जाती है। मत्स्येन्द्रासन इसे रोकता है।

हठविद्या के प्रवर्तक मत्स्येन्द्र को यह आसन समर्पित है।

विधि

१. सामने सीधे टाँगें तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. दायें घुटने को मोड़ें और दायीं एड़ी से नाभि को दबाते हुए दायां पैर बायीं जाँघ के मूल पर रखें। बायें घुटने को ऊपर मोड़ें और सीने के पास ले आएँ।

३. श्वास छोड़ें, बायीं ओर धड़ को घुमाएँ और कंधे पर से बायीं भुजा घुमाते हुए पीठ के पीछे से बायें हाथ से दायां टखना पकड़ें (चित्र ३३४)। टखना कसकर पकड़ें। यही पहली अवस्था है।

४. बायें पैर को दाहिनी जाँघ के ऊपर से उठाकर दायें घुटने के बाहरी भाग के पास जमीन पर रखें (चित्र ३३५)। कुछ श्वास लें। यह दूसरी अवस्था है।

५. पुनः श्वास छोड़ें। बायें घुटने पर दायां कंधा लाने के लिए बायीं ओर धड़ को घुमाएँ और दाहिने हाथ से बायां पैर पकड़ें। बायीं ओर गर्दन घुमाएँ, चिबुक उठाएँ और एकटक ऊपर देखें (चित्र ३३६)। यह आसन की अन्तिम अवस्था है। यथाशक्ति ३० से ६० सेकंड तक इस आसन में रहें। उरःप्राचीर पर दबाव होने के कारण साँस तेज होगी।

६. पहले बायें पैर पर की पकड़ को ढीला करें, उसे दायी जाँघ पर से उठा कर सीधे फैलाएँ। बाद में दायें टखने पर की पकड छोड़ें और दायीं टाँग सीधे फैलाते हुए आराम करें।

७. इस आसन में मेरुदण्ड को अत्यधिक सीमा तक मोड़ दिया जाता है और इसलिए यदि उच्छ्वसन के साथ सारी क्रियाएँ की जायँ तो यह आसान हो जाता है।

दूसरी ओर करने के लिए निम्न लिखित विधि को अभ्यास के लिए व्यवहार में लाया जाना चाहिए।

१. सामने सीधे टाँगों को ताने जमीन पर बैठें। बायें घुटने को मोड़ें और बायीं एड़ी से नाभि पर दबाव डालते हुए दायीं जाँघ के मूल पर बायां पैर रखें।

२. श्वास छोड़ें, धड़ को दायीं ओर घुमाएँ, कंधे पर से दायीं भुजा को झुलाएँ, दाहिने हाथ से बायें टखने को पीठ के पीछे से कसकर पकड़ें और दायीं टाँग ऊपर की ओर मोड़ें (चित्र ३३७)। यह पहली अवस्था है।

३. बायां पैर उठाकर बायीं जांघ पर रखें और उसे बायें घुटने के बाहरी भाग के पास जमीन पर रखें (चित्र ३३८)। कुछ साँस लें, यह दूसरी अवस्था है।

४. पुनः श्वास छोड़ें, बायां कंधा दाहिने घुटने के परे लाने के लिए धड़ को दाहिनी ओर घुमाएँ और बायें हाथ से दाहिना पैर पकड़ें। गर्दन को दायीं ओर घुमाएँ, चिबुक उठाएँ और ऊपर देखें (चित्र ३३९)। यह अन्तिम अवस्था है। दूसरी ओर की भाँति उतने ही समय के लिए इस आसन में रहें।

५. दायें पैर की पकड़ को छोड़ें, उसे बायीं जाँघ पर उठाएँ और दायीं टाँग सीधी करें। बाद में बायें टखने पर की पकड़ छोड़ें, बायीं टाँग को सीधा करें और आराम करें।

परिणाम

यह कठिन पार्श्वगत क्रिया मेरुदण्डीय नाड़ियों को रक्त की विपुल पूर्ति कर मेरुदण्ड को ठीक रखती है। यह जठरीय क्रिया को बढाती है, अन्न को पचाने में सहायता देती है और विष को दूर करती है। मेरुदण्ड और उदर स्वस्थ होकर शरीर और मानस को शांति मिलती है। मेरुदण्ड को अत्यधिक पार्श्वगत घुमाव दिया जाता है।

१२३. अष्टावक्रासन तेरह* (चित्र ३४२ तथा ३४३)

यह आसन मुनि अष्टावक्र जो सीता के पिता, मिथिला नरेश राजा जनक के आध्यात्मिक गुरु थे, को समर्पित है। यह कहा जाता है कि जब वह मुनि माता के गर्भ में थे तब उनके पिता कगोल (या कहोल) ने वेद के पवित्र मंत्रोच्चारण करते समय अनेक गलतियाँ कीं। इन्हें सुनकर गर्भस्थ मुनि हँसा। उनके पिता क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने पुत्र को अष्टावक्र होने का शाप दिया। इसलिए ऐसा हुआ कि जब वह पैदा हुआ उसके आठ अंग टेढ़े थे। इन वक्रों के कारण उनका अष्टावक्र नाम पड़ा। मिथिला के विद्वानों की सभा में मुनि के पिता दर्शन के शास्त्रार्थ में दण्डी से पराजित हुए थे। जब वह मुनिकुमार एक महान् पंडित हुआ उसने दण्डी को तर्क के शास्त्रार्थ में नीचा दिखाकर तथा जनक का आध्यात्मिक गुरु बनकर अपने पिता के पराभव का बदला लिया। तब पिता ने आशीर्वाद दिया, उनकी कुरूपता (वक्रता) दूर हो गई और वे सुरूप हो गए।

विधि

१. लगभग १८ इंच की दूरी पर दोनों पैर फैलाकर खड़े हों।

२. घुटनों को मोड़ें, जमीन पर पैरों के बीच दायीं हथेली रखें और बायें पैर के ठीक बाहर जमीन पर बायीं हथेली रखें।

३. दाहिनी भुजा पर दाहिनी टाँग लाएँ और दाहिनी भुजा के पीछे ठीक कुहनी के ऊपर दायीं जाँघ का पृष्ठभाग टिकाएँ। बायीं टाँग को भुजाओं के बीच आगे परंतु दाहिनी के पास ले आएँ (चित्र ३४०)।

४. श्वास छोड़ें, जमीन पर से दोनों टाँगें उठाएँ। दायें पैर पर टखने के पास बायां पैर रखकर टाँगों को फँसाएँ (चित्र ३४१) और टाँगों को दायीं तरफ तिरछे फैलाएँ (चित्र ३४२)। दायीं भुजा, जाँघों के मध्य पकड़ में आ जाएगी और कुहनी पर जरा झुकी होगी। बायीं भुजा सीधी होनी चाहिए। स्वाभाविक श्वास-क्रिया के साथ कुछ सेकंड के लिए इस स्थिति में हाथ पर संतुलन बनाएँ। यह पहली अवस्था है।

५. अब श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ें तथा जमीन के समानान्तर होने तक

धड़ तथा सिर को नीचे करें (चित्र ३४३)। स्वाभाविक श्वास लेते हुए सिर और धड़ को इस ओर से उस ओर घुमाएँ। यह दूसरी अवस्था है।

६. साँस लें, भुजाओं को सीधा करें, धड़ को उठाएँ (चित्र ३४२)। टाँगों को खोलें और ढ़ीला करें और उन्हें जमीन पर ले आएँ।

७. ऊपर की २ से ५ स्थितियों तक दाहिने के लिए बायाँ शब्द पढ़कर इस आसन को दूसरी ओर दुहराएँ।

परिणाम

यह आसन कलाइयों और भुजाओं को मजबूत बनाता है और उदर की मांस-पेशियों को विकसित करता है।

१२४. एकहस्त भुजासन पाँच* **(चित्र ३४४)**

एक का अर्थ एक है। हस्त का अर्थ हाथ तथा भुजा का अर्थ बाहु है।

विधि

१. सामने सीधे टाँगें तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. श्वास छोड़ें, दाहिनी टाँग घुटने पर मोड़ें और उसे दाहिने हाथ से टखने के पास पकड़ें और दाहिनी भुजा के ऊपर के पिछले भाग पर रखें। अब दाहिनी जाँघ का पिछला भाग दाहिनी भुजा के ऊपर के पिछले भाग का स्पर्श करेगा। यथाशक्ति उसे ऊपर रखें।

३. हथेलियाँ जमीन पर रखें और उच्छ्वसन के साथ जमीन पर से पूरे शरीर को उठाएँ और संतुलन करें (चित्र ३४४)।

४. स्वाभाविक श्वास लेते हुए २० से ३० सेकंड तक इस आसन में रहें।

५. संतुलन करते समय आदि से अंततक बायीं टाँग सीधी और जमीन के समानान्तर रखें।

६. श्वास छोड़ें, जमीन की ओर धड़ को झुकाएँ, दायीं टाँग को मुक्त करें, उसे सामने सीधा तानें और उतने ही समय तक दूसरी ओर इसे दुहराएँ।

परिणाम

यह आसन भुजाओं को मजबूत बनाता है और उदर के अवयवों को व्यायाम देता है।

१२५. द्विहस्त भुजासन चार* **(चित्र ३४५)**

द्वि का अर्थ दो या दोनों है, हस्त का अर्थ हाथ और भुजा का अर्थ बाहु है। यह एकहस्त भुजासन (चित्र ३४४) का एक रूप है।

विधि

१. १८ इंच की दूरी पर पैरों को फैलाकर खड़े हों।

२. घुटनों को मोड़ें और जमीन पर पैरों के बीच हथेलियाँ रखें।

३. दाहिनी भुजा पर दायीं टाँग रखें और दाहिनी भुजा के ऊपर के पिछले भाग पर दायीं जाँघ का पिछला भाग टिकाएँ। इस रीति से बायीं जाँघ को बायीं भुजा पर रखें।

४. श्वास छोड़ें, जमीन पर से पैरों को उठाएँ और हाथों पर संतुलन बनाएँ। भुजाओं को सीधा तानें और पैरों को एक साथ ऊँचा रखें (चित्र ३४५)।

५. स्वाभाविक श्वास लेते हुए करीब २० से ३० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

६. श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ें, जमीन की ओर शरीर को झुकाएँ, टाँगों को मुक्त करें, उन्हें सामने सीधा करें तथा आराम करें।

परिणाम

इसके परिणाम एकहस्त भुजासन के समान ही हैं।

१२६. भुजपीडासन आठ * **(चित्र ३४८)**

भुज का अर्थ बाहु या भुजा है। पीड का अर्थ पीडा या दबाव है। इस आसन में कंधे पर घुटनों के पीछे का भाग रखकर हाथों पर शरीर का संतुलन बनाया जाता है, अतः इसका यह नाम है।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १)। पैरों में लगभग दो फुट का अंतर होने तक टाँगों को फैलाएँ।

२. आगे की ओर झुकें और घुटनों को मोड़ें।

३. टाँगों के बीच हथेलियों को जमीन पर करीब डेढ़ फुट की दूरी पर अलग रखें (चित्र ३४६)।

४. भुजा के ऊपर के पिछले भाग पर जाँघ के पिछले भाग को टिकाएँ। कंधों और कुहनियों के बीच में भुजा के ऊपरी भाग के मध्य पर जाँघों को टिकाएँ।

५. इस स्थिति में जाँघों को रखते समय, आरंभ में जमीन पर से एड़ियों को ऊपर उठाएँ।

६. श्वास छोड़ें। धीरे धीरे एक एक कर जमीन पर से पैर की अंगुलियों को उठाएँ और हाथों पर संतुलन बनाये रखें (चित्र ३४७) और उसके बाद टखनों पर पैरों को परस्पर मिलाएँ (चित्र ३४८)। आरम्भ में टाँगें फिसल जाएँगी और संतुलन में कठिनाई होगी। संतुलन के लिए प्रयत्न करें और भुजा के ऊपर के भाग

पर जाँघों के पीछे का भाग यथाशक्ति ऊँचा उठाकर रखें। भुजाएँ कुहनी पर कुछ मुड़ी होंगी। प्रयत्न करें और जितना हो सके, भुजाएँ फैलाएँ और सिर ऊपर उठाएँ।

७. जबतक कलाई शरीर-भार सहन कर सकती है तबतक स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस संतुलित स्थिति में रहें। एक एक कर टाँगों को पीछे करते हुए पैर मुक्त करें (चित्र ३४६ तथा ३५०)। बाद में उन्हें जमीन पर रखें। जमीन पर से हाथों को उठा लें और ताड़ासन में खड़े हो जाएँ (चित्र १)।

८. परस्पर मिलाये हुए टखनों की स्थिति बदलकर इस आसन को दुहराएँ। यदि आरम्भ में बायें पैर पर टखने के पास दायाँ पैर रखा है तो इस आसन को दुहराने के लिए बायें पैर को दायें पैर के टखने के पास रखें।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से हाथ और कलाइयाँ मजबूत होती हैं। उसी प्रकार उदर के सिकोड़े जाने के कारण उदर के स्नायु सशक्त होते हैं। शरीर हलकेपन का अनुभव करता है। इस आसन के अभ्यास से, जिसमें किसी विशेष उपकरण अथवा व्यायाम की आवश्यकता नहीं रहती, भुजा की छोटी मांसपेशियाँ विकसित एवं ठीक होती हैं। शरीर के विभिन्न अवयव भार और प्रतिभार की पूर्ति करते हैं। इसके लिए केवल इच्छाशक्ति (संकल्प) की आवश्यकता है।

१२७. मयूरासन नौ * **(चित्र ३५४)**

मयूर का अर्थ मोर है।

विधि

१. घुटनों को जरा अलग रखते हुए जमीन पर घुटने टेकें।

२. आगे की ओर झुकें, हथेलियाँ उलटें और उन्हें जमीन पर रखें। छोटी अंगुलियों को स्पर्श करना चाहिए। अंगुलियाँ पैर की ओर निकली हुई होनी चाहिए (चित्र ३५१)।

३. कुहनियाँ मोड़ें, अग्रभुजाओं को साथ रखें। कुहनियों पर उरःप्राचीर और भुजा के ऊपर के पिछले भाग पर सीने को टिकाएँ (चित्र ३५२)।

४. एक एक कर टाँगों को सीधा तानें, दोनों को साथ और कड़ा रखें। (चित्र ३५३)।

५. श्वास छोड़ें, कलाइयों और हाथों पर शरीर भार लें, जमीन पर से टाँगों को उठाएँ (एक एक कर या एकसाथ) और उसी समय धड़ और सिर को आगे की ओर तानें। टाँगों को सीधा तानते हुए और पैरों को एकसाथ रखते हुए संपूर्ण शरीर को जमीन के समानान्तर रखें (चित्र ३५४)।

६. जितनी देर तक संभव हो सके, धीरे-धीरे ३० सेकंड से ६० सेकंड तक समय बढ़ाते हुए इस स्थिति में रहें। पसलियों पर भार न दें। उरःप्राचीर के दब जाने से साँस श्रमित होगी।

७. जमीन पर पहले सिर और बाद में टाँगें ले आएँ। हाथों की बगल में जमीन पर घुटनों को रखें, तब हाथ उठाएँ और आराम करें।

८- इस स्थिति पर अधिकार पा लेने के बाद इस स्थिति का अभ्यास करते समय टाँगों को बाहर सीधे फैलाने की अपेक्षा पद्मासन (चित्र १०४) की भाँति उन्हें परस्पर गूँथना सीखें। यह प्रकार

१२८. पद्म-मयूरासन दस* **(चित्र ३५५)**

कहलाता है।

परिणाम

यह आसन शरीर के उदरभाग को आश्चर्यजनक ढंग से ठीक करता है। उदरीय महा-धमनी पर कुहनी का भार होने के कारण उदर के अवयवों में रक्त पूर्ण रूप से संचरित होता है। यह पाचनशक्ति बढ़ाता है, उदर और प्लीहा के रोगों को दूर करता है और दोषपूर्ण भोजन की आदत से उत्पन्न होनेवाले विषों के जमाव को रोकता है। मधुमेह से पीडित व्यक्ति इसे लाभदायक पाएँगे। जिस तरह मयूर साँपों का विनाश करता है उसी तरह यह आसन शरीर के विषों का नाश करता है। यह अग्रभुजाओं, कलाइयों तथा कुहनियों को सशक्त करता है।

१२९. हंसासन दस* **(चित्र ३५६)**

हंस का अर्थ मराल है। यह आसन मयूरासन (चित्र ३५४) से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, इसमें केवल हाथों की स्थिति भिन्न है। मयूरासन में छोटी अँगुलियाँ छूती हैं और बड़ी अंगुलियाँ पैरों की ओर संकेत करती हैं। जबकि हंसासन में हाथ इस तरह रखे जाते हैं कि अंगूठे स्पर्श करते हैं और अंगुलियाँ सिर की ओर संकेत करती हैं। यह आसन आधुनिक व्यायाम के स्तंभ संतुलन का अनुकरण करता है।

विधि

१. जमीन पर थोड़े अन्तर पर घुटने टेकें।

२. आगे की ओर झुकें और जमीन पर हथेलियाँ रखें। अंगूठे स्पर्श करें और अंगुलियों को आगे की ओर संकेत करना चाहिए।

३. कुहनियाँ मोड़ें और अग्रभुजाओं को एक साथ रखें। उरःप्राचीर को कुहनियों पर और सीने को भुजाओं के ऊपर के पृष्ठभाग पर टिकाएँ।

४. एक-एक कर टाँगों को सीधा तानें तथा उन्हें साथ रखें।

५. श्वास छोड़ें, धड़ को आगे करें, कलाइयों और हाथों पर शरीर भार लें, टाँगों को जमीन पर से उठाएँ, और पैरों को एक साथ मिलाये जमीन के समानान्तर रखते हुए टाँगों को सीधा तानें (चित्र ३५६)।

६. जितनी देर तक कर सकते हों, उतनी देर बिना साँस रोके, इस स्थिति में संतुलन बनाएँ। हाथों की स्थिति के फलस्वरूप कलाइयों पर होनेवाले अत्यधिक दबाव के कारण अग्रभुजाएँ जमीन के समानान्तर नहीं रहेंगी। मयूरासन की अपेक्षा हंसासन में संतुलन बनाना कठिन होता है। उरःप्राचीर के दब जाने के कारण श्वासक्रिया कठिन और श्रमित होगी। मयूरासन की तरह अग्रभुजाएँ शरीर-भार नहीं ग्रहण करतीं।

७. श्वास छोड़ें, सिर और पैर की अंगुलियों को जमीन पर रखें, घुटनों को हाथों की बगल में जमीन पर रखें, कुहनियों पर से शरीर भार हटा लें, हाथ और सिर जमीन पर से उठा लें और आराम करें।

परिणाम

यह आसन शरीर के उदरीय भाग को ठीक रखता है, क्योंकि उदरीय महाधमनी पर कुहनियों का दबाव पड़ने के कारण, उदर के अवयवों में पर्याप्त रीति से रक्तसंचार होता है। यह पाचनशक्ति को बढ़ाता है और पाचन प्रणाली में विष-संचार को रोकता है। यह कुहनियों, अग्रभुजाओं तथा कलाइयों को विकसित करता है एवं सशक्त बनाता है।

१३०. पिच्छ मयूरासन बारह* **(चित्र ३५७)**

पिच्छ का अर्थ पंख है। मयूर का अर्थ मोर है। वर्षा ऋतु के आने पर मयूर नृत्य करते हैं। आरंभ में वे अपने आमतौर पर नीचे झुके पंखों को ऊपर उठाते हैं और पंखे के आकार में फैला देते हैं। इस आसन में धड़ और टाँगें जमीन पर से उठायी जाती हैं और अग्रभुजाओं और हथेलियों पर शरीर को संतुलित किया जाता है। इस आसन में व्यक्ति नृत्यारंभ करनेवाले मयूर के समान दिखाई पड़ता है।

यह आसन नीचे दो चरणों में बताया गया है। दूसरे चरण में, संतुलन कुहनियों पर ही बनाया जाता है और जमीन पर से हाथ उठा लिये जाते हैं और हथेलियों की अंजलियों पर चिबुक स्थिर होता है। दूसरी अवस्था को शयनासन (चित्र ३५८) कहते हैं।

विधि

१. जमीन पर घुटने टेकें। आगे की ओर झुकें, कुहनियों, अग्रभुजाओं और हथेलियों को जमीन पर रखें। कुहनियों के बीच का अंतर कंधों के बीच के अंतर से अधिक नहीं होना चाहिए। अग्रभुजाएँ तथा हाथ एक दूसरे के समानान्तर रहें।

२. गर्दन को तानें और यथासम्भव सिर ऊपर उठाएँ।

३. श्वास छोड़ें, टाँगों को ऊपर उठाएँ और सिर के पीछे टाँगों को बिना गिराये संतुलन बनाने की कोशिश करें (चित्र ३५७) ।

४. सीने के भाग को लम्बरूप में तानें । घुटनों और टखनों को सटाये रखते हुए टाँगों को लम्बरूप में ताने रहें । पैर की अंगुलियाँ ऊपर की ओर निकली होनी चाहिए ।

५. नितम्ब और घुटनों की मांसपेशियाँ कसें । संतुलन करते समय कंधों को ऊपर तानें और जाँघों को कड़ा रखें । एक मिनट के लिए संतुलन बनाएँ । यह प्रथम अवस्था है । आरम्भ में, इस आसन को दीवार के सहारे कर संतुलन प्राप्त करने की कोशिश करें जिससे आप लुढ़क न जाएँ । धीरे धीरे मेरुदंड तथा कंधों को तानना और सिर को ऊपर किये रहना सीखें, तथा संतुलन पर अधिकार कर लेने पर इस आसन को कमरे के बीच में करें ।

६. प्रथम अवस्था को पूरा करने के उपरान्त, जब संतुलन प्राप्त कर लिया जाता है, जमीन पर से एक एक कर हाथ उठा लें, कलाइयों को मिला दें, हथेलियों की अंज-लियाँ बनाकर उसे चिबुक के नीचे रखें । आसन की इस दूसरी अवस्था में कुहनियों पर ही शरीर संतुलित होता है । यह कठिन है परंतु निश्चय और नित्य अभ्यास से व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है । यह दूसरी अवस्था आराम की अवस्था हैं ।

१३१. शयनासन पंद्रह* (**चित्र ३५८**)

परिणाम

यह आसन कंधों और पीठ की मांसपेशियों को विकसित करता है । मेरुदण्ड को ठीक करता है और उदर की मांसपेशियों को फैलाता है ।

१३२. अधोमुख वृक्षासन दस* (**चित्र ३५९**)

अधोमुख का अर्थ नीचे की ओर मुख होना । वृक्ष का अर्थ पेड़ है । आधुनिक व्यायाम पद्धति में यह आसन बाहों का संपूर्ण संतुलन है ।

विधि

१. ताड़ासन में खडे हों (चित्र १) । आगे की ओर झुकें और दीवार से लगभग एक फुट की दूरी पर हथेलियाँ जमीन पर रखें । हथेलियों के बीच का अंतर कंधों के बीच के अंतर जितना ही होना चाहिए । भुजाओं को पूरी तरह ताने हुए रहें ।

२. टाँगें पीछे ले जाएँ, और घुटनों को मोडें । साँस छोड़ें, और उछलकर टाँगों को ऊपर दीवार की ओर करें और संतुलन बनाएँ । यदि हाथों को दीवार से दूर रखा जाता है तो जब टाँगें दीवार पर आश्रित हैं, मेरुदंड पर झुकाव अधिक पड़ेगा और तनाव का कारण बनेगा । यदि दीवार से हाथ दूर रखे जाते हैं तो संतुलन बनाये रखना

भी कठिन होता है । इस स्थिति में स्वाभाविक श्वास लेते हुए एक मिनट रहें ।

३. दीवार के सहारे हाथों पर संतुलन का अभ्यास कर लेने के बाद, पैरों को दीवार से अलग हटाएँ । तब कमरे के बीच में इस आसन का अभ्यास करने का प्रयत्न करें। टाँगों को अच्छी तरह ताने हुए और पैर की अंगुलियाँ सीधी ऊपर की ओर निकली हुई रखें । जितना हो सके सिर को ऊपर उठाएँ (चित्र ३५६) ।

परिणाम

यह आसन शरीर को लयबद्ध रूप से सुडौल बनाता है । यह कंधों, भुजाओं और कलाइयों को सशक्त बनाता है और सीने को पूर्ण विकसित करता है ।

१३३. कूर्मासन चौदह* **(चित्र ३६३ तथा ३६४)**

कूर्म का अर्थ कछुआ है । यह आसन विश्वरक्षक विष्णु के कच्छप-अवतार को समर्पित है । अनेकानेक दिव्य निधियाँ अमृत के साथ ही, जिससे देवगण यौवन अक्षय रखा करते थे, विश्वव्यापी जलप्लावन में खो गईं । खोयी निधियों की पुन:प्राप्ति के लिए देवताओं ने दैत्यों के साथ संधि की और सम्मिलित रूप से विश्वसागर के मंथन का कार्यारंभ किया । विष्णु विराट् कच्छप हो गए और उन्होंने सागर-तल में डुबकी लगाई । उनकी पीठ पर मंदराचल मथानी की तरह विराजमान् था और उस पहाड़ के चारों ओर रस्सी के रूप में देवनाग वासुकि लपेटा गया । देवताओं और दैत्यों के संमिलित प्रयास से नाग को खींचकर पहाड़ को वेग से नचाया गया । इस तरह समुद्र मंथन हुआ । समुद्र मंथन से अमृत और ऐश्वर्य और सौंदर्य की देवी, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के साथ अनेक अन्य निधियाँ निकलीं ।

इस आसन की तीन अवस्थाएँ हैं । अन्तिम अवस्था अपने कवच में सिर तथा अवयवों को समेटे हुए कछुए का अनुकरण है और यह सुप्त कूर्मासन (चित्र ३६८) कहलाता है ।

विधि

१. सामने सीधे टाँगें ताने जमीन पर बैठें (चित्र ७७) । घुटनों के बीच का अंतर करीब डेढ़ फुट हो जाने तक दोनों टाँगें फैलाएँ ।

२. घुटनों को मोड़ें और धड़ के सामने खींचकर उन्हें ऊपर उठाएँ ।

३. श्वास छोड़ें, धड़ को आगे की ओर झुकाएँ, और एक-एक कर दोनों हाथों को घुटनों के नीचे घुसाएँ (चित्र ३६० तथा ३६१) । घुटनों के नीचे से भुजाएँ आगे ले जाएँ और उन्हें बगल में सीधी तानें । कंधों को जमीन पर रखें और हथेलियों को भी जमीन पर रखें (चित्र ३६२), फिर साँस लें ।

४. श्वास छोड़ें, धड़ और अधिक फैलाएँ, गर्दन फैलाएँ और ललाट, बाद में चिबुक और अंत में सीना जमीन की ओर नीचे लाएँ । तब टाँगों को पुन: सीधा तानें (चित्र

३६३ तथा ३६४) । घुटने काँख के निकट होंगे और घुटनों का पृष्ठभाग भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग को काँखों के पास स्पर्श करेगा ।

५. चिबुक तथा सीना जमीन पर टिकने तक धीरे-धीरे तनाव बढाते जाएँ । पूर्णतया टाँगों को भी फैलाएँ और एडियों को जमीन पर दबाएँ । यह पहली अवस्था है । ३० से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

६. अब कलाइयों को पलटें जिससे हथेलियाँ ऊपर की ओर हों, और टाँगें, धड़ तथा सिर को उसी स्थिति में रखते हुए भुजाएँ कंधों से पीछे ले जाएँ और उन्हें सीधे तानें जिससे अग्रभुजाएँ नितंबसंधि के पास हों (चित्र ३६५) । कुहनियों को बिना झुकाए ३० से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें । यह दूसरी अवस्था है ।

७. घुटनों को मोड़ें और ऊपर उठाएँ । बाद में जमीन से सीना जरा-सा ऊपर उठाएँ, कुहनियों पर मोड़ते हुए हाथों को पीठ के पीछे की ओर ले जाएँ और उन्हें परस्पर मिलाएँ (चित्र ३६६) ।

८. अब सिर की ओर पैर खिसकाएँ, दायें पैर को बायें पैर पर अथवा ठीक इसके विपरीत (दायें पैर पर बायां पैर) रखकर टखने के पास पैरों को परस्पर मिलाएँ । (चित्र ३६७) ।

९. श्वास छोड़ें, पैरों के बीच सिर डालें और ललाट जमीन पर रखें । सिर का पिछला भाग, टखनों के पास मिलाये हुए पैरों को स्पर्श करेगा । यह अंतिम अवस्था है, जिसे

१३४. सुप्त कूर्मासन चौदह* (चित्र ३६८)

कहते हैं ।

इस स्थिति में १ से २ मिनट तक रहें । पैरों को मिलाते समय पैरों का स्थान बदलना उपयुक्त है, जिससे यदि आरंभ में दायां पैर बायें पैर रखा गया है तो पैरों का स्थान बदलते समय बायां पैर दायें पैर पर रखें । यह टाँगों को समान रूप में विकसित करता है ।

१०. साँस लें, सिर उठाएँ, हाथों और पैरों को मुक्त करें, टाँगों को सीधा तानें, जमीन पर झुकें और आराम करें ।

११. ऊपर वर्णित तीनों अवस्थाओं में स्वाभाविक श्वास लेते रहें ।

परिणाम

यह आसन योगी को समर्पित है । स्थितप्रज्ञ की विशेषताओं को बताते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं – "जिस प्रकार कछुवा अपने अंगों को सभी ओर से समेट लेता है, उसी प्रकार पुरुष जब सब ओर से अपने इंद्रियों को विषयों से हटाकर अपने में समेट लेता है अर्थात् उन पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है, तब उसकी बुद्धि पूर्ण रूप से स्थिर

होती है " । इस आसन में अंग समेटे जाते हैं और शरीर कछुए के रूप में होता है । मन शांत और संतुलित हो जाता है और व्यक्ति दुःख या सुख में चित्त के समभाव को बढ़ाता है । जब काम-वासना, भय और क्रोध मन पर अपना अधिकार कम कर देंगे, यह धीरे-धीरे दुःख की व्याकुलता से मुक्त और आनंद से उदासीन हो जाता है । शुद्ध शारीरिक स्तर पर इसके परिणाम भी बहुत हैं । यह मेरुदंड को ठीक करता है, उदर के अवयवों को सक्रिय करता है और व्यक्ति को फुर्तीला और स्वस्थ रखता है । यह मस्तिष्क के नाड़ी – तन्तुओं को शांत रखता है और इसे पूरा करने के बाद वह ऐसा प्रफुल्लित होता है जैसे कि लंबी गहरी नींद से अभी जागा हो ।

यह आसन योगाभ्यास की पंचम अवस्था अर्थात् प्रत्याहार (विषयों से इंद्रियों को परावृत्त करना) के लिए व्यक्ति को योग्य बनाता है ।

१३५. एकपाद शीर्षासन पंद्रह* (चित्र ३७१)

एक का अर्थ एक है, पाद का अर्थ टाँग या पैर और शीर्ष का अर्थ सिर है ।

विधि

१. सामने टाँगें सीधे फैलाएँ, जमीन पर बैठें (चित्र ७७) ।

२. घुटने को मोड़ें, बायां पैर उठाएँ और दोनों हाथों से बायें टखने को पकड़े हुए बायें पैर को धड़ के निकट ले आएँ (चित्र ३६९) ।

३. साँस छोड़ें, बायीं जाँघ ऊपर पीछे की ओर ले जाएँ, धड़ को जरा-सा आगे ले आएँ और गर्दन के पृष्ठभाग पर बायीं टाँग रखें (चित्र ३७०) । बायीं टाँग के निचले हिस्से का बाहरी भाग, टखने के ठीक ऊपर गर्दन के पृष्ठभाग को स्पर्श करेगा ।

४. गर्दन और सिर ऊपर उठाएँ, पीठ सीधी रखें, बायें टखने को सरकने दें और सीने के सामने हथेलियाँ मिलाएँ (चित्र ३७१) । तब बायीं जांघ का पृष्ठभाग बायें कंधे के पृष्ठभाग का स्पर्श करेगा । यदि सिर ठीक तरह स्थिर नहीं है तो टाँग गर्दन पर से फिसल जाएगी । जमीन पर दायीं टाँग सीधी रहनी चाहिए । पूरी टाँग का पृष्ठभाग जमीन से सटा रहना चाहिए और पैर की अंगुलियाँ आगे की ओर निकली होनी चाहिए ।

५. गहरी साँस के साथ १५ से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

६. हथेलियों को छोड़ दें, बायें टखने को दोनों हाथों से पकड़ें, बायीं टाँग को जमीन पर नीचे लाएँ और उसे सीधा करें ।

७. गर्दन के पीछे दायीं टाँग रखकर, दायीं तरफ इस आसन को दुहराएँ । जमीन पर बायीं टाँग सीधी रहनी चाहिए । दोनों ओर समान अवधि तक इस स्थिति में रहें ।

परिणाम

इस आसन के अभ्यास से गर्दन और पीठ सबल होती है, जब कि जाँघें और मंदिर-शिरा की मांसपेशियाँ पूरी तरह तनती हैं। (उदर की मांसपेशियाँ सिकोड़ी जाती हैं और पाचनशक्ति बढ़ती है।) जबतक व्यक्ति इस आसन का अभ्यास नहीं करता तबतक वह गर्दन पर पड़ी हुई टाँग के भार और दबाव का अनुभव नहीं कर सकता।

एकपाद शीर्षासन चक्र

निम्नलिखित आसन एकपाद शीर्षासन (चित्र ३७१) के क्रम में एक के बाद एक; एक साथ किये जा सकते हैं। उन्हें अलग अलग करने की आवश्यकता नहीं।

सर्वप्रथम, गर्दन के पृष्ठभाग पर एक टाँग चढ़ाकर एकपाद शीर्षासन करते हुए आसनों की सम्पूर्ण माला पूरी करें। बाद में एक या दो मिनट के लिए आराम करें और गर्दन के पृष्ठभाग पर दूसरी टाँग चढ़ाकर माला पूरी करें। ये आसन श्रमसाध्य हैं और इनपर अधिकार पाने के लिए दीर्घ अभ्यास की आवश्यकता है।

१३६. स्कन्दासन सोलह* (चित्र ३७२)

स्कन्द युद्धदेवता कार्तिकेय का नाम है। कालिदासलिखित महाकाव्य कुमार-सम्भव की विषयवस्तु इन्हीं के अवतार की कहानी है। एकबार तारकासुर के द्वारा देवगण उत्पीडित हुए। हिमालय पर्वत की रूपवती कन्या पार्वती और शिव के पुत्र द्वारा वह मारा जाएगा ऐसी भविष्यवाणी की गई थी। परंतु अन्य देवताओं को शिव से पुत्रोत्पत्ति की आशा करना कठिन प्रतीत हुआ, क्योंकि अपनी पत्नी सती के देहान्त के बाद वे अटूट समाधि में लीन हो गए थे। पार्वती को, जो सती की पुनरावतार थी, देवताओं ने शिव की सेवा करने के लिए भेजा। पार्वती ने अनेक प्रयत्न किये, पर शिव की समाधि भंग नहीं हुई। ऋतुराज वसंत तथा कामदेव ने पार्वती को शिवप्राप्ति के लिए पूर्ण रूप से सहयोग दिया। काम ने अपना विषयबाण उनपर चलाया और इस तरह उनकी समाधि भंग हो गयी। शिव ने तीसरा नेत्र खोल दिया और उससे निकली ज्वाला से कामदेव जलकर भस्म हो गया। पूर्व जीवन के अपने पति को पाने के लिए पार्वती ने तपश्चर्या में शिव का साथ देने का निश्चय किया। उसने सारे अलंकार उतार दिये और निकटस्थ शिखर पर संन्यस्त जीवन बिताने लगी। कामबाण से आहत शिव ने इस वेष में उसे देखा और उस पर आसक्त हो गए। सभी देवगणों की उपस्थिति में शिव और पार्वती एक बडी सभा में विवाह-बद्ध हुए। पार्वती ने युद्धदेव स्कन्द को जन्म दिया, जिसने यौवन प्राप्त करने पर तारकासुर का संहार किया।

विधि

१. एकपाद शीर्षासन करें (चित्र ३७१) ।

२. एक उच्छ्वसन के साथ, धड़ को आगे की ओर झुकाएँ और पश्चिमोत्तानासन की भाँति दोनों हाथों से तनी हुई दायीं टाँग को पकड़ें (चित्र १६०) और दायें घुटने पर चिबुक रखें ।

३. टाँग को फिसलने से रोकने के लिए चिबुक को आगे ले जाएँ ।

४. गहरी साँस लेते हुए करीब २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

१३७. बुद्धासन बाइस* (चित्र ३७३)

बुद्ध का अर्थ है ज्ञानी । यह आसन स्कन्दासन (चित्र ३७२) के अनुक्रम में है ।

विधि

१. स्कन्दासन (चित्र ३७२) के बाद गर्दन के पीछे बायीं टाँग रखें, साँस लें और सिर तथा धड़ को ऊपर उठाएँ ।

२. बायें हाथ से बायें टखने को पकड़ें और टाँग को और भी नीचे करें ।

३. दायीं भुजा कंधे से उठाएँ, उसे बगल की ओर ले जाएँ । बायें पैर के ऊपर से बायें टखने पर लाने के लिए अग्रभुजा को पीछे ले जाएँ (चित्र ३७३) ।

४. गहरी साँस लेते हुए करीब १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें । साँस लें, सिर और धड़ को ऊपर उठाएँ ।

१३८. कपिलासन बाइस* (चित्र ३७४)

महामुनि कपिल सांख्यदर्शन के प्रवर्तक आचार्य थे । यह आसन बुद्धासन (चित्र ३७३) के अनुक्रम में ही है ।

विधि

१. गर्दन के पृष्ठभाग पर बायीं टाँग रखें, बुद्धासन में हाथ की पकड़ को बनाये रखें, श्वास छोड़ें, धड़ को आगे की ओर झुकाएँ और पश्चिमोत्तानासन की भाँति चिबुक को बाहर किये हुए दाहिने घुटने पर रखें (चित्र १६०)।

२. गहरी साँस लेते हुए १० से १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें । साँस लें, सिर तथा धड़ को उठाएँ और हाथ की पकड़ को छोड़ दें ।

१३९. भैरवासन सोलह* (चित्र ३७५)

भैरव का अर्थ है भयानक, उग्र । यह शिव के आठ रूपों में से एक है ।

विधि

१. कपिलासन (चित्र ३७४) में हाथ की पकड़ को छोड़ने के बाद श्वास छोड़ें, और पीछे की ओर लुढ़कें ।

२. सीने पर भुजाओं को परस्पर गुँथाएँ । जमीन पर दायीं टाँग को सीधा ताने रखें (चित्र ३७५) ।

३. गहरी साँस लेते हुए २० सेकण्ड तक इस स्थिति में रहें ।

१४०. कालभैरवासन उन्नीस* (चित्र ३७८)

कालभैरव सृष्टि के प्रलय करनेवाले शिव का ही एक रूप है—काल अर्थात् विनाश का विग्रहावतार !

विधि

१. भैरवासन (चित्र ३७५) पूरा करने के बाद, सीने पर से भुजाओं को मुक्त करें । जमीन पर हथेलियाँ रखें और एकपाद शीर्षासन में वापस आ जाएँ । हथेलियाँ नितम्बों की बगल में रखी जानी चाहिए ।

२. दायीं टाँग को दायीं तरफ तिरछे ले जाएँ ।

३. श्वास छोड़ें, ज़मीन पर से शरीर उठाएँ (चित्र ३७६) और दो साँस लें ।

४. श्वास छोड़ें, जमीन पर से दायीं भुजा उठाएँ, धड़ को दायीं ओर घुमाएँ और बायीं भुजा को दायीं जाँघ पर रखें (चित्र ३७७) । दो साँस लें ।

५. अब दायीं भुजा को लम्बरूप में ऊपर तानें (चित्र ३७८) ।

६. जमीन पर दायीं टाँग से ३० अंश का कोण बनाते हुए बगल में बायीं हथेली और दायें पैर के बाहरी भाग पर सम्पूर्ण शरीर का संतुलन करें ।

७. करीब २० सेकण्ड तक गहरी साँस लेते हुए इस स्थिति में रहें ।

१४१. चकोरासन बीस (चित्र ३७९ तथा ३८०)

चकोर तीतर के समान एक पक्षी है । कहा जाता है, इसका जीवननिर्वाह चन्द्र-किरणों पर होता है ।

विधि

१. कालभैरवासन (चित्र ३७५) के बाद, दायीं हथेली जमीन पर रखें, दायें घुटने को मोड़कर गर्दन के पीछे दायीं टाँग रख जमीन पर टेकें, इस तरह एकपाद शीर्षासन (चित्र ३७१) में वापस आएँ ।

२. नितम्बों की बगल में, जमीन पर हथेलियाँ दृढ़ रखें ।

३. नितम्बों को जमीन से ऊपर उठाएँ और हथेलियों पर शरीर का संतुलन करें । जमीन से ६० से ७५ अंश का कोण बनाने तक (चित्र ३७९ तथा ३८०)

बाहर फैली हुई दायीं टाँग ऊपर उठाएँ। स्वाभाविक श्वास लेते हुए यथाशक्ति इस स्थिति में रहें।

१४२. दुर्वासासन इक्कीस* (चित्र ३८३)

दुर्वासा एक अति क्रोधी ऋषि का नाम था जिनका क्रोध अब एक कहावत बन गया है।

विधि

१. चकोरासन (चित्र ३७९) के बाद, बाहर फैलायी दायीं टाँग को जमीन पर रखें। दायें घुटने को मोड़ें और हथेलियाँ जमीन पर रखकर उकड़ू बैठ (चित्र ३८१)।

२. बाद में हथेलियों को दायीं जाँघ पर रखें। श्वास छोड़ें, दायीं जाँघ पर हथेलियाँ दबाएँ, धड़ को ऊपर उठाएँ और मांसपेशियों को कड़ा किये तथा टाँग को सीधा रखते हुए, दायीं टाँग के बल पर धीरे धीरे खड़े हो जाएँ (चित्र ३८२)।

३. कमर और सीने को ऊपर खींचें, सीने के सामने हाथों को परस्पर गुँथाएँ और दायीं टाँग पर शरीर संतुलित करें (चित्र ३८३), बायीं टाँग गर्दन के पिछले भाग पर आरपार, एक ओर से दूसरी ओर तक, पड़ी रहेगी। स्वाभाविक रूप से साँस लेने का प्रयत्न करें।

४. जितनी देर रह सकें उतनी देर इस स्थिति में रहें। चूँकि संतुलन करना कठिन है, आरम्भ में दीवार अथवा किसी मित्र का सहारा लें।

१४३. रुचिकासन अठारह* (चित्र ३८४ तथा ३८५)

विष्णु के छठे अवतार भगवान् परशुराम के दादा—एक ऋषि का नाम रुचिक था।

विधि

१. दुर्वासासन (चित्र ३८३) पूरा करने के बाद श्वास छोड़ें, धड़ को आगे की ओर झुकाएँ, दायें पैर के दोनों ओर हथेलियाँ रखें (चित्र ३८४ तथा ३८५)।

२. गर्दन के पृष्ठभाग से बायें पैर को फिसलने न देते हुए दायें घुटने पर सिर रखें। उत्तानासन की भाँति चिबुक दायें घुटने को स्पर्श करने तक गर्दन को बढ़ाते जाएँ (चित्र ४८)।

३. स्वाभाविक साँस लेते हुए करीब १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

४. दायां घुटना मोड़ें, जमीन पर बैठें, गर्दन के पृष्ठभाग से बायीं टाँग हटा लें और आराम करें।

५. बाद में दायीं टाँग गर्दन के पीछे रखें और 'बायें' की जगह 'दायां'

तथा उसके ठीक विपरीत 'दायें' की जगह 'बायाँ' पढ़ते हुए ऊपर वर्णित आसनों की माला दुहराएँ ।

एकपाद शीर्षासन माला के आसनों का परिणाम–

आसनों की इस माला की विविध क्रियाएँ पूरे शरीर की स्नायुसंस्था, नाड़ी-संस्था एवं रक्ताभिसरणसंस्था को ठीक करती हैं । मेरुदण्ड को विपुल रक्त प्राप्त होता है, जिससे चक्र – (मेरुदण्डस्थ विविध नाड़ीतंतुजाल) अर्थात् मानव शरीर यंत्र में संतुलन बनाये रखनेवाले चक्कों को उर्जा-शक्ति मिलती है । इन आसनों से सीना विकसित होता है, और श्वासक्रिया अधिक परिपूर्ण तथा शरीर अधिक सुदृढ़ होता है, शरीर का नाड़ी कम्पन नहीं होता है और उससे होनेवाले रोग से व्यक्ति सुरक्षित रहता है, शरीर के प्रत्येक अंग को शुद्ध रक्त की पूर्ति कर तथा शुद्धीकरण के लिए अशुद्ध रक्त हृदय और फुप्फुस की ओर वापस लाकर विषों को दूर करने में भी ये आसन सहायता पहुँचाते हैं । इन आसनों के अभ्यास से रक्त के लाल कण (हेमोग्लोबिन) की मात्रा बढ़ती है, शरीर और मन बलवान होते हैं और कार्य-शक्ति बढ़ती है ।

१४४. विरंच्यासन एक उन्नीस* (चित्र ३८६ और ३८७)

विरंच या विरंचि आदिदेव ब्रह्मा का ही एक नाम है, जिन्हें सृष्टि की उत्पत्ति का काम सौंपा गया है । ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन त्रिदेवों में ब्रह्मा आदिम हैं ।

विधि

१. टाँगों को सामने सीधा ताने बैठें (चित्र ७७) ।

२. दायें घुटने को मोड़ें और अर्ध पद्मासन में बायीं जाँघ के मूल पर दायां पैर रखें ।

३. बायें घुटने को मोड़ें, पैर धड़ के निकट लाएँ और दोनों हाथों से बायां टखना पकड़ें । श्वास छोड़ें, बायीं जाँघ को ऊपर और पीछे खींचें, धड़ को जरा-सा आगे झुकाएँ और गर्दन के पृष्ठभाग पर बायीं टाँग रखें । टखने के ठीक ऊपर का बायीं टाँग का बाहरी भाग गर्दन के पृष्ठभाग को स्पर्श करेगा ।

४. सिर और गर्दन ऊपर उठाएँ, पीठ सीधी रखें और उनके ऊपर से बायें टखने को जाने दें ।

५. अब बायीं भुजा को लंबरूप में ऊपर उठाएँ, उसे कुहनी पर मोड़ें और गर्दन के पृष्ठभाग पर फैलायी हुई बायीं टाँग पर पीछे ले जाएँ । दायीं भुजा नीचे करें, उसे कुहनी पर मोड़ें, दोनों पंखों के समतल तथा पंखों के बीच होनेतक दायीं अग्रभुजा को पीठ के पीछे ऊपर उठाएँ । कन्धों के बीच पीठ के पीछे हाथों को मिला लें (चित्र ३८६ तथा ३८७) ।

६. स्वाभाविक श्वासक्रिया के साथ १० से २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें। हाथों को खोल दें, बायीं टाँग नीचे करें, दायीं को सीधा करें और १ की स्थिति में वापस आ जाएँ।

७. दायें की जगह बायां और ठीक इसके विपरीत बायें की जगह दायां पढ़कर उतने ही समय तक दूसरी ओर इस आसन को दुहराएँ।

१४५. विरंच्यासन दो दस* (**चित्र ३८८**)

विधि

१. टाँगों को सामने सीधा ताने जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. बायीं टाँग घुटने पर मोड़ें और उसे पीछे करे, बायां पैर नितम्ब-संधि पर रखें, पैर की अंगुलियों को पीछे की ओर संकेत करती हुई जमीन पर रखें। अब बायीं टाँग वीरासन में होगी (चित्र ८९)।

३. बाद में, विरंच्यासन एक (चित्र ३८६) के लिए बतायी विधि का अनुसरण करें।

परिणाम

ये दोनों आसन पीठ और गर्दन को सशक्त करते हैं जबकि कंधों की क्रिया अधिक सहज होती है। जाँघों और मंदिरशिरा की मांसपेशियाँ पूरी तरह फैलती हैं, उदरीय मांसपेशियाँ सिकोड़ी जाती हैं और पाचनशक्ति बढ़ती है।

१४६. योगनिद्रासन अठारह* (**चित्र ३९१**)

निद्रा का अर्थ है नींद। योगनिद्रा निद्रा और जागरण के बीच की अवस्था है। विश्व के एक युग के अंत में विष्णु की महानिद्रा को भी यह नाम दिया गया है।

इस आसन में पीछे गर्दन के पृष्ठभाग पर टाँगें परस्पर गूँथी होती हैं और हाथ पीछे परस्पर मिले होते हैं, जो जमीन पर टिकते हैं। टाँगों से योगी का तकिया बनता है और पीठ उसकी चारपाई (बिछाना) है। इस आसन के अभ्यास से शरीर तत्काल गर्म हो उठता है। अतः बहुत ऊंचाई पर रहनेवाले योगी शरीर को गर्म रखने के लिए यह आसन करते हैं।

विधि

१. पीठ के बल जमीन पर लेट जाएँ (चित्र २१९)।

२. दोनों घुटने मोड़ें और टाँगों को सिर पर ले आएँ।

३. श्वास छोड़ें, एकपाद शीर्षासन (चित्र ३८९) के समान दोनों हाथों से दायां पैर पकड़ें और उसे गर्दन के पृष्ठभाग पर ठीक तरह से रखते हुए दायीं टाँग दायें कंधे के पीछे से ले जाएँ।

४. कई बार साँस लेते हुए दायीं टाँग की वही स्थिति बनाये रखें ।

५. श्वास छोड़ें, बायीं हथेली की सहायता से बायें कंधे के पीछे बायीं टाँग ले जाएँ और उसे दायीं टाँग के नीचे रखें (चित्र ३९०), टखनों पर पैरों को फसा लें ।

६. कंधे अच्छी तरह ऊपर उठाएँ, भुजाएँ पीठ के पीछे ले जाएँ और अंगुलियाँ परस्पर फंसाएँ (चित्र ३९१) । भुजाओं के ऊपर का पृष्ठभाग जाँघों के पृष्ठभाग का स्पर्श करता रहेगा । कुछ साँस लें ।

७. श्वास छोड़ें, सीने को अच्छी तरह ऊपर उठाएँ और गर्दन को पीछे की ओर तानें । यह अन्तिम अवस्था है । यह सुप्त कूर्मासन (चित्र ३६८) की विपरीत स्थिति है । स्वाभाविक श्वास लेते हुए ३० से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

८. श्वास छोड़ें, पीठ के पीछे की हाथों की पकड़ तथा गर्दन के पीछे की टाँगों की पकड़ छोड दें ।

९. कुछ समय के लिए टाँगों को सीधा रखकर आराम करें ।

१०. पहले बायीं टाँग को गर्दन के पृष्ठभाग पर तथा दायीं टाँग उसके नीचे रखकर उतने ही समय के लिए इस आसन को दुहराएँ ।

११. हाथों और टाँगों की पकड़ छोड़ें और जमीन पर आराम करें ।

१२. पहले दोनों टाँगों को परस्पर गुँथाकर बाद में उन्हें गर्दन के पीछे न ले जाएँ । यह आसन की ठीक अनुभूति नहीं देगा । ध्यान रहे कि पहले एक टाँग गर्दन के पृष्ठभाग पर पीछे लानी है और बाद में दूसरी टाँग पहली टाँग के नीचे रखनी है । गर्दन के पीछे टाँगों को रखने के पहले गर्दन और पृष्ठप्रदेश को उठाएँ तथा कन्धों को भी फैलाएँ जिससे सीने तथा टाँगों के बीच कंधे अटके न रह जाएँ । इससे निश्चत होगा कि आसन सही रूप में है ।

परिणाम

इस आसन में मेरुदण्ड को आगे की ओर पूरा ताना जाता है और व्यक्ति पीठ में आनन्ददायक भावना का अनुभव करता है । आगे झुकनेवाले अच्छे आसनों में से यह एक है । पश्चिमोतानासन का अधिकाधिक तनाव भी ठीक अभ्यास, आराम और सुख की उतनी अनुभूति नहीं देता जितनी कि योगनिद्रासन के ठीक अभ्यास से होती है ।

पीछे झुककर किये जानेवाले आसनों में फुप्फुस तथा उदर की मांसपेशियों को सर्वाधिक विस्तार दिया जाता है । इस आसन में फुप्फुस और उदर की मांसपेशियाँ पूर्णतया सिकोड़ी जाती हैं । थोडे ही समय में इस आसन का अभ्यास गुर्दा, यकृत, प्लीहा, आँत, पित्ताशय, शिश्नग्रन्थियाँ तथा मूत्राशय को ठीक करता है । इस आसन के सतत अभ्यास से उदर के अवयव रोगमुक्त होते हैं । यह जननग्रन्थियों को व्यायाम देता है और शक्ति और बल देता है । इससे नाड़ी-तन्तुओं को आराम मिलेगा और

अच्छ विचार तथा अच्छे कार्य के लिए शरीर में शक्तिसंचय होगा ।

१४७ द्विपाद शीर्षासन चौबीस* (चित्र ३९३)

द्वि पाद (द्वि–दो या दोनों, पाद–टाँग या पैर) का अर्थ दोनों पैर है । एकपाद शीर्षासन (चित्र ३७१) में गर्दन के पृष्ठभाग के पीछे एक टाँग रखी जाती है । इस आसन में दोनों टाँगें उसी प्रकार रखी जाती हैं, हाथ सीने के सामने मुड़े होते हैं, शरीर बैठक के एक भाग (–पुच्छास्थि) पर संतुलित किया जाता है । यह कठिन है और व्यक्ति पीछे की ओर गिर जाने की स्थिति में होता है । यह आसन योगनिद्रासन (चित्र ३९१) से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, लेकिन इसमें शरीर लंबरूप होता है जब कि योगनिद्रा में पीठ जमीन पर टिकी रहती है ।

विधि

१. सामने टाँगें सीधी ताने जमीन पर बैठें (चित्र ७७) ।

२. घुटनों को मोड़ें और पैरों को धड़ के पास ले आएँ ।

३. श्वास छोड़ें, दोनों हाथों से दायें टखने को पकड़ें, दायीं जाँघ को ऊपर और पीछे की ओर खींचें, धड़ को जरा आगे झुकाएँ और एकपाद शीर्षासन की भाँति गर्दन के पृष्ठभाग पर दायीं टाँग रखें । तब दायें कंधे के पीछे के भाग को दायीं जाँघ का पृष्टभाग स्पर्श करेगा । टखनों पर से हाथों को मुक्त करें और कुछ साँस लें ।

४. श्वास छोड़ें, बायें हाथ से बायाँ टखना पकड़ें, बायीं जाँघ को ऊपर और पीछे की ओर खींचें, और ऊपर बताये अनुसार बायीं टाँग दायीं टाँग पर रखें । टखने पर से हाथ मुक्त करें, पर पैरों को टखने पर परस्पर गुँथा हुआ ही रखें । नितम्बों के बगल में जमीन पर हाथ रखें और पुच्छास्थि के पास बैठक के भाग पर शरीर को सीधा संतुलित करें (चित्र ३९२) । इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है । स्वाभाविक श्वासक्रिया करने का प्रयत्न करें ।

५. जमीन पर से हाथ उठायें, सीनें के सामने उन्हें मोड़ लें और कुछ सेकंड के लिए या १० से ३० सेकंड तक जितनी देर तक कर सकते हों, लंबरूप स्थिति में संतुलन बनाये रखें (चित्र ३९३) । यह अन्तिम अवस्था है ।

६. इस स्थिति में रहने के बाद, नितम्बों के बगल में हथेलियाँ जमीन पर रखें, श्वास छोड़ें, भुजाएँ सीधी करें और हाथों पर भार लेकर शरीर को ऊपर की ओर उठाएँ । टखनों पर की गूँथन को न छोड़ें (चित्र ३९४) । अपनी शक्ति के अनुसार १० से २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

७. टखने पर की पैरों की गूँथन छोड़ दें, लंबरूप में टाँगों को ऊपर तानें और हाथ पर संतुलन बनाएँ । इसे–

१४८. टिट्टिभासन बाइस* (चित्र ३९५)

कहा जाता है ।

टिट्टिभ जुगनू के समान एक कीड़ा होता है ।

कुछ सेकंड तक इस स्थिति में ठहरने के बाद, घुटनों पर टाँगों को मोड़ें, जमीन की ओर शरीर को नीचे करें, भुजाओं पर से टाँगों को मुक्त करें और उन्हें सीधे सामने तानें और कुछ सेकंड तक आराम करें ।

८. इस बार पहले गर्दन के पृष्ठभाग पर बायीं टाँग रखें और बाद में दायीं टाँग बायीं टाँग के ऊपर रखकर उतने ही समय तक इन क्रियाओं को दुहराएँ । अंत में जमीन पर आराम करें ।

परिणाम

इस आसन में फुप्फुस और उदर की मांसपेशियाँ सबसे अधिक कसकर सिकोड़ी जाती हैं । मेरुदण्ड को पूर्ण रूप से आगे की ओर तनाव मिलता है और उदर के अवयव इस व्यायाम से शीघ्र लाभ पाते हैं । योगनिद्रासन (चित्र ३९१) के परिणामों के समान ही इसका परिणाम है, परंतु इस आसन में जाँघें अधिक तनती हैं और गर्दन एवं मेरुदण्ड के त्रिककटीय भाग तथा उदर पर अधिक तनाव का अनुभव होता है ।

१४९. वशिष्ठासन अठारह* (चित्र ३९८)

वशिष्ठ, सूर्यवंशी राजाओं के पुरोहित और अनेक वेदमंत्रों, विशेषतया ऋग्वेद के सातवे मंडल के रचयिता, एक प्रसिद्ध ऋषि तथा द्रष्टा थे । वे ब्राह्मणत्व के गौरव और शक्ति के विशेप प्रतिनिधि थे । वे उन सप्तर्षियों में से एक हैं जो सप्तर्षि तारा-मंडल के रूप में प्रसिद्ध हैं । उनके तथा विश्वामित्र के बीच चलनेवाली प्रतिस्पर्धा अनेक पुराणकथाओं का विषय बनी है । विश्वामित्र प्रारंभ में एक क्षत्रिय योद्धा थे, जिसने बादमें धर्मनिष्ठा और वैराग्य से अपने को ब्राह्मण स्तर को पहुँचा दिया था ।

यह आसन ऋषि वशिष्ठ को समर्पित है ।

विधि

१. ताडासन में खड़े हों (चित्र १) । आगे की ओर झुकें, हथेलियों को जमीन पर रखें और टाँगों को करीब ४ से ५ फुट इस तरह पीछे ले जाएँ मानो आप अधोमुख श्वानासन (चित्र ७५) कर रहे हों ।

२. शरीर को बायीं ओर तिरछे घुमाएँ और केवल दायें हाथ और पैर पर संतुलन बनाएँ । दायें पैर का बाहरी भाग जमीन पर अच्छी तरह टिका होना चाहिए । बायां पैर दायें पर रखें, बायीं हथेली बायें नितम्ब पर रखें, और शरीर सीधा रखकर संतुलन बनाएँ (चित्र ३९६) । इस स्थिति में संतुलन करने की कला सीखने

के लिए दीवार से सटे रहें, जिससे दायें पैर का अन्तर्भाग उस पर टिक सके ।

३. श्वास छोड़ें, बायें पैर को घुटने पर मोड़ें, शरीर को जरा आगे की ओर करें और अंगूठा, तर्जनी तथा मध्यमा के बीच बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें (चित्र ३९७)। बायीं भुजा और बायीं टाँग को लंबरूप में ऊपर की ओर खींचें (चित्र ३९८) । बायें पैर के अंगूठे पर की पकड़ सुप्त पादांगुष्ठासन में वर्णित की गयी है, उसके अनुसार होगी (चित्र २८४)। भुजाओं और टाँगों को कड़ा किये, गहरी श्वासक्रिया के साथ करीब २० से ३० सेकंड तक इस स्थिति में संतुलन बनाये रखें ।

४. बायां हाथ फिर एक बार नितम्ब के पास ले आएँ ।

५. श्वास छोड़ें, शरीर को बायीं ओर इस तरह घुमाएँ, जिससे वह केवल बायें हाथ और पैर पर संतुलित रहे । ऊपर निर्दिष्ट विधि का अनुसरण करते हुए तथा बायें के लिए दायां और दायें के लिए बायां पढ़ते हुए उतने ही समयतक इस ओर आसन को दुहराएँ ।

परिणाम

यह आसन कलाइयों को पुष्ट करता है, टाँगों को व्यायाम देता है तथा मेरुदण्ड के कटिप्रदेश और गुदास्थिप्रदेश को ठीक करता है ।

१५०. कश्यपासन उन्नीस* (चित्र ३९९ और ४००)

यह आसन ब्रह्मा के पुत्र मरीची ऋषि के पुत्र कश्यप मुनि को समर्पित है । उन्होंने सृष्टि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था । कहा जाता है कि दक्ष की तेरह कन्याओं के साथ कश्यप ने विवाह किया था । उन्होंने अदिति से द्वादश (बारह) आदित्य और दिति से दैत्य (राक्षस) उत्पन्न किए । उन्हें अपनी अन्य पत्नियों से अनेक विचित्र संतानें थीं, जैसे–सर्प, रेंगनेवाले जंतु, पक्षी, चन्द्र-ग्रह की अप्सराएँ। इस प्रकार वे सूर्य और सभी सजीव प्राणियों के पिता थे तथा उन्हें बहुधा प्रजापति कहा जाता है ।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १), आगे की ओर झुकें, उत्तानासन (चित्र ४७) की तरह हथेलियों को जमीन पर टिकाएँ और अधोमुख श्वानासन (चित्र ७५) की तरह करीब ४ से ५ फुट तक अपनी टाँगें पीछे ले जाएँ ।

२. पूरे शरीर को दायीं ओर तिरछे घुमाएँ और दायें हाथ और पैर पर संतुलन करें । दायें पैर का बाहरी भाग जमीन पर अच्छी तरह जमा होना चाहिए । बायां पैर दायें पर रखें, बायें नितम्ब पर बायीं हथेली टिकाएँ और शरीर सीधा रखते हुए संतुलन बनाएँ (चित्र ३९९) ।

३. श्वास छोड़ें, बायें घुटने को मोड़ें, अर्ध पद्मासन की तरह दायीं जाँघ के मूल पर बायां पैर रखें। कंधे पर से बायीं भुजा पीठ के पीछे झुलाएँ और बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ें। यह अन्तिम अवस्था है (चित्र ३९९ तथा ४००)। गहरी श्वासक्रिया के साथ इस स्थिति में कुछ देर तक संतुलन बनाए रखें। पूरा सीना तथा फैली दायीं भुजा की सतह एकसमान हो।

४. श्वास छोड़ें, बायें पैर को मुक्त करें, पुनः उसे दायें पर रखें और बायें हाथ को बायीं जाँघ पर रखें (चित्र ३९६)। कुछ गहरी साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, बायीं ओर शरीर को उलटें जिससे वह बायें हाथ और पैर पर संतुलित रहे। अर्ध पद्मासन में बायीं जाँघ के मूल पर दायां पैर रखें और दायें हाथ से पीठ के पीछे की ओर से दायें पैर का अंगूठा पकड़ें। दोनों ओर उतने ही समय के लिए संतुलन बनाएँ।

६. श्वास छोड़ें, दायां पैर छोड़ें, और उसे बायें पैर पर और दायें हाथ को दायीं जाँघ पर रखें।

७. जमीन पर दायीं हथेली रखें और उत्तानासन (चित्र ४७) में वापस आ जाएँ, कुछ साँस लें और एक उच्छ्वसन के साथ ताड़ासन (चित्र १) में वापस आ जाएँ।

परिणाम

यह आसन हाथों को पुष्ट करता है और मेरुदण्ड के त्रिकास्थि प्रदेश की पीड़ा तथा अकड़न को दूर करता है।

१५१. विश्वामित्रासन बीस* (चित्र ४०३)

विश्वामित्र एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम था। वह कान्यकुब्ज के राजा थे और मूलतः क्षत्रिय थे। एक दिन जब वे शिकार के लिए गये थे, ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे और कामधेनु देखकर उसके बदले उन्होंने ऋषि को अगणित निधियाँ देनी चाहीं। वशिष्ठ ने जब उनकी बात न मानी तब उसे बलात् ले जाने की चेष्टा की। दीर्घ काल तक लड़ाई चलती रही, जिसमें राजा की हार हुई। बुरी तरह संतप्त होने पर भी वे ब्राह्मणत्व की शक्ति से अत्यंत प्रभावित हुए बिना न रह सके। ऋषि, महर्षि, और अंत में ब्रह्मर्षि, के पद तथा स्थान को सफलतापूर्वक प्राप्त करने तक राजा ने अत्यंत घोर तपस्या की, फिर भी वशिष्ठ द्वारा जबतक वह ब्रह्मर्षि नहीं कहलाये तबतक वह संतुष्ट नहीं हुए। जब वह कठोर तपश्चरण कर रहे थे, उस समय स्वर्ग की अप्सरा मेनका ने उन्हें आकृष्ट कर लिया। इस गर्भधारण से कालिदास के प्रसिद्ध नाटक की नायिका शकुन्तला का जन्म हुआ।

यह आसन विश्वामित्र को अर्पित है।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १), आगे की ओर झुकें, हथेलियाँ जमीन पर

टिकाएँ और अधोमुख श्वानासन (चित्र ७५) की तरह टाँगें करीब ४ से ५ फुट तक पीछे ले जाएँ ।

२. श्वास छोड़ें, दायीं टाँग दायें हाथ पर ले जाएँ और दायीं जाँघ का पृष्ठभाग दायीं भुजा के ऊपर के पिछले भाग पर रखें (चित्र ४०१) ।

३. शीघ्र ही शरीर को दायीं ओर घुमाएँ, बायीं भुजा और बायीं जाँघ को एक साथ रखें और संतुलन बनाएँ (चित्र ४०२) ।

४. बायां पैर तिरछे घुमाएँ और तलवे तथा एड़ी को जमीन पर दबाएँ ।

५. दायीं टाँग सीधी ऊपर लायें और दो साँस लें ।

६. श्वास छोड़ें, बायीं भुजा कंधे से लंबरूप में ऊपर तानें और बाहर फैलाये बायें हाथ पर टकटकी लगाएँ (चित्र ४०३) ।

७. गहरी साँस लेते हुए २० से ३० सेकंड तक इस आसन में रहें ।

८. श्वास छोड़ें, दायीं टाँग ढीली छोड़ें और स्थिति १ में वापस आ जाएँ ।

९. ऊपर निर्दिष्ट विधि का पालन करते हुए दायें को बायां और बायें को दायां पढ़ते हुए दूसरी ओर उतने ही समय के लिए आसन को दुहराएँ ।

परिणाम

यह आसन हाथों और उदर के अवयवों को पुष्ट करता है और जाँघ की मांसपेशियों को व्यायाम देता है ।

१५२. बकासन नौ* (चित्र ४०६ तथा ४१०)

बक का अर्थ सारस या बगुला है ।

इस आसन में शरीर तालाब में तैरनेवाले सारस का अनुकरण करता है, अतः यह नाम है ।

यहाँ विधियाँ दो भिन्न रूप में दी गयी हैं । एक नौसिखुओं के लिए, दूसरी प्रगत साधकों के लिए ।

विधि—नौसिखुओं के लिए

१. नितम्ब के बल पैर एक साथ रख उकड़ू बैठें । एड़ियाँ और तलवों को जमीनपर पूरी तरह टिका रहना चाहिए । जमीन पर से आसन उठाएँ और संतुलन करें (चित्र ३१७) ।

२. घुटनों को अलग फैलाएँ और धड़ को आगे की ओर झुकाएँ ।

३. साँस छोड़ें, मुड़ी टाँगों के चारों ओर भुजाएँ लपेट लें और हथेलियाँ जमीन पर रखें (चित्र ३१८) ।

४. कुहनियों को मोड़ें, जमीन पर से एड़ियाँ उठाएँ, धड़ को और आगे की ओर

झुकायें, काँख के पास बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर नलियाँ टिकायें (चित्र ४०४)। दो या तीन सांस लें ।

५. साँस छोड़ें, आगे की ओर शरीर झुकायें और पैर की अंगुलियाँ जमीन पर से उठायें (चित्र ४०५) ।

६. बाँह को सीधा तानें और हाथों पर पूरे शरीर का संतुलन बनायें (चित्र ४०६) ।

७. इस स्थिति में २० से ३० सेकंड तक स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए रहें ।

८. श्वास छोड़ें, कुहनियों को मोड़ें, धड़ नीचा करें, काँख से टाँगों को ढीला करें और जमीन पर उकड़ू बैठें और आराम करें ।

विधि–प्रगत साधकों के लिए

१. सालम्ब शीर्षासन (चित्र १९२) करें ।

२. श्वास छोड़ें, घुटने मोड़ें और टाँगें नीची करें, जिससे जाँघें पेट और सीने का स्पर्श करें ।

३. यथासंभव काँख के पास दायां घुटना दायीं बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर रखें । फिर उसी तरह बायां घुटना बायीं भुजा पर रखें । दोनों पैर साथ रखे जाने चाहिए (चित्र ४०७) । इस स्थिति को बनाये रखें और समान रूप से साँस लेते हुए संतुलन करें ।

४. श्वास छोड़ें, धड़ को ऊपर उठायें, जमीन पर से सिर ऊपर उठायें (चित्र ४०८) । भुजाओं को तानें और सीधा करें और नितम्बों को उठायें (चित्र ४०९) । गर्दन को बढ़ायें और यथासंभव सिर को ऊँचा करें (चित्र ४१०) ।

५. उरःप्राचीरप्रदेश की मांसपेशियों को ताने हुए कुछ सेकंड तक इस स्थिति में रहें । हाथों पर संतुलन बनायें । स्वाभाविक रूप से साँस लेने का प्रयत्न करें ।

६. साँस छोड़ें, जमीन पर सिर टिकायें और सालम्ब शीर्षासन दो में आ जायें । बाद में टाँगें जमीन पर लायें और आराम करें । प्रगत साधक, शीर्षासन में ऊपर जाने के बाद टाँगों को पीछे गिराकर और बाद में ताड़ासन (चित्र १) में खड़े होकर ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) कर सकते हैं । जिसने विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार कर लिया है; ऊर्ध्व धनुरासन के अभ्यास के बाद उसके लिए यह आसन बहुत आसान होता है ।

परिणाम

यह आसन भुजाओं तथा उदर के अवयवों को सशक्त बनाता है क्योंकि उदर के अवयव सिकुड़ते हैं ।

१५३. पार्श्व बकासन सोलह* (चित्र ४१२)

पार्श्व का अर्थ है बगल, काँख, तिरछा; बक का अर्थ है बगुला या तैरनेवाला पंछी। इसमें टाँगें पार्श्वस्थ होती हैं।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो (चित्र १९२) करें।

२. श्वास छोड़ें, घुटनों को मोड़ें, जिससे जाँघें उदर और सीने का स्पर्श करें।

३. दोनों जाँघों और टाँगों को एक साथ रखें, मुड़ी टाँगों और धड़ को तिरछे दायीं ओर घुमायें। दायीं बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर बायीं जाँघ को यथासंभव काँख के पास स्थिर करें (चित्र ४११)। कुछ गहरी साँस लें और संतुलन करें।

४. बाद में एक उच्छ्वसन के साथ जमीन पर से सिर उठायें, उरःप्राचीर के पास मांसपेशियों को कड़ा करें, बाहें सीधी करें और हाथों पर संतुलन बनायें (चित्र ४१२)। समान रूप से श्वास लेते हुए कुछ सेकंड तक इस स्थिति में रहें। पूर्णतया मुक्त भुजा पर अधिक तनाव अनुभव किया जाएगा।

५. कुहनियाँ मोड़ें, जमीन पर सिर टिकायें (चित्र ४११)। पुनः सालम्ब शीर्षासन एक में वापस आ जायें।

६. बाद में घुटनों को मोड़ लें, मुड़ी टाँगें बायीं ओर तिरछी घुमायें। बायीं बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर दायीं जाँघ काँख के पास यथासंभव स्थिर करें। श्वास छोड़ें, जमीन पर से सिर उठायें और ४ की स्थिति की तरह संतुलन बनायें।

७. जमीन पर सिर रखकर सालम्ब शीर्षासन एक में पुनः आ जायें। बाद में प्रत्येक टाँग को जमीन पर लायें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हो जायें। जब कोई विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार कर लेता है तब ऊर्ध्व धनुरासन के बाद इसका अभ्यास आसान होता है।

परिणाम

यह आसन बाहों को सशक्त बनाता है। इसके लगातार अभ्यास से उदर की पार्श्वगत मांसपेशियाँ बढ़ेंगी और आँतें मजबूत होंगी।

१५४. ऊर्ध्व कुक्कुटासन अठारह* (चित्र ४१७, ४१८ तथा ४१९)

ऊर्ध्व का अर्थ है ऊपर। कुक्कुट का अर्थ है मुर्गा। इस आसन में शरीर डौलदार मुर्गे जैसा होता है, अतः यह नाम है।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२)।

२. स्थिरता प्राप्त करने के बाद दायाँ पैर बायीं जाँघ के मूल पर और बायाँ पैर दायीं जाँघ के मूल पर रखकर पद्मासन (चित्र ४१३) में आ जायें और तब एक उच्छ्वसन के बाद टाँगें मोड लें और उन्हें यथासंभव काँख के पास ऊपरी भुजाओं के पृष्ठभाग पर रखें (चित्र ४१४) । इस स्थिति को बनाये रखें और स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए संतुलन बनायें ।

३. श्वास छोड़ें, हथेलियाँ जमीन पर कसकर दबाएँ, धड़ को ऊपर खींचें और चित्र ४१५ तथा ४१६ में वर्णित क्रिया की अवस्थाओं का अनुसरण करते हुए सिर जमीन पर से उठायें । बाँह तानें और सीधी करें और नितम्ब उठायें । गर्दन बढ़ायें तथा सिर यथासंभव ऊंचा रखें (चित्र ४१७, ४१८ तथा ४१९) ।

४. उरःप्राचीर प्रदेश की मांसपेशियों को तानते हुए कुछ सेकंड तक हाथों पर संतुलन बनायें । स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयत्न करें ।

५. श्वास छोड़ें, कुहनियाँ मोड़ें, चित्र ४१४ और ४१५ का अनुसरण करते हुए सिर को जमीन की ओर नीचा करें और पद्मासन के पादबंधन को मुक्त कर सालम्ब शीर्षासन में वापस आ जायें ।

६. इस बार पहले बायाँ पैर दायीं जाँघ के मूल पर और दायाँ पैर बायीं जाँघ के मूलपर रखकर पुनः पद्मासन करें, तब ऊपर बतलायी गयी विधि से इस आसन को दुहरायें ।

७. उतने ही समय के लिए दोनों ओर रहने के बाद सालम्ब शीर्षासन दो में वापस आ जायें । टाँगें जमीन पर लायें और आराम करें । प्रगत साधक टाँगों को पीछे की ओर गिराकर और भुजाएँ फैलाकर ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) कर सकते हैं और तब ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों । जब कोई विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार कर लेता है तब ऊर्ध्व धनुरासन के बाद यह आरामदायक अभ्यास होता है ।

परिणाम

मेरुदण्ड अच्छी तरह तना होता है और पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) का परिणाम बहुत कम समय में प्राप्त किया जाता है । बाहें और उदर के अवयव पुष्ट होते हैं ।

यह सारे जटिल एवं कठिन आसन आसान आसनों की अपेक्षा शीघ्र परिणाम दिखाते हैं । जब शरीर लचीला हो जाता है तब सुगम आसन थोड़ा परिणाम करते हैं या बिलकुल ही परिणाम नहीं करते । अतः बुद्धिमान् इन्हें नहीं अपनाते और जटिल आसनों का अभ्यास करते हैं, जैसे कि विद्वान् प्रतिदिन वर्णमाला नहीं दुहराता है । लेकिन, जिस तरह नर्तक मूल ठेकों का नित्य अभ्यास करते हैं, ठीक उसी तरह योगाभ्यासी को शीर्षासन (चित्र १८४ से २१८) तथा सर्वांगासन (चित्र

२३४ से २७१) का उनकी मालाओं के साथ प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए।

१५५. पार्श्व कुक्कुटासन चौबीस* (**चित्र ४२४ तथा ४२४ अ; ४२५ तथा ४२५ अ**)

पार्श्व का अर्थ बगल, काँख है। कुक्कुट का अर्थ है मुर्गा।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२)।

२. पहले दायां पैर बायीं जाँघ के मूल पर रखें उसके बाद बायां पैर दायीं जाँघ के मूल पर रखकर पद्मासन करें (चित्र ४१३)। स्थिरता प्राप्त करने के बाद, श्वास छोड़ें, धड़ को दायीं ओर घुमायें (चित्र ४२०) और टाँगें नीची करें, जिससे बायीं जाँघ दायीं बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर टिके (चित्र ४२१)। इस स्थिति को बनाये रखें और धड़ के पार्श्वगत घुमाव के कारण कुछ तेज परंतु समान रूप से श्वास लेते हुए कुछ देर तक संतुलन बनायें।

३. यह आसन कठिन है, इसका दुष्करतम अंश जाँघ को सामने के हाथ पर रखना है। आरंभ में जाँघ को उचित जगह पर रखते समय संतुलन बनाना कठिन होता है और व्यक्ति प्रायः तेज झटके के साथ जमीन पर बैठ जाता है।

४. साँस छोड़ें, जमीन पर कसकर हाथ दबाएँ, जमीन पर से सिर उठा लें (चित्र ४२२) और धड़ को खींचें (चित्र ४२३)। बाँह तानें और सीधी रखें तथा नितम्बों को उठायें। गर्दन को आगे बढ़ायें और यथासंभव सिर को ऊपर उठाये रखें (चित्र ४२४)।

५. यह अंतिम अवस्था है। कुछ सेकंड के लिए जितनी देर तक आप कर सकते हैं, हाथों पर शरीर को संतुलित करें। बायीं बाँह पर दबाव ज्यादा होगा जो स्पष्ट रूप से मुक्त है।

६. श्वास छोड़ें, कुहनी मोड़ें, जमीन की ओर सिर नीचे करें और पुनः शीर्षासन दो में ले जाएँ। बाद में पद्मासन के पादबंधन को छोड़ें।

७. कुछ देर तक शीर्षासन में रहें। इस बार पहले बायाँ पैर दायीं जाँघ के मूल पर और फिर दायां पैर बायीं जाँघ के मूल पर रखकर पुनः पद्मासन करें। बाद में इस स्थिति को बायीं ओर दुहरायें (चित्र ४२५)। इस स्थिति में दायीं जाँघ बायीं बाँह के ऊपरी पृष्ठभाग पर टिकेगी। बायीं ओर शरीर का संतुलन करते समय पद्मासन में टाँगों की स्थिति में परिवर्तन करना आवश्यक है। यदि वे नहीं बदली गयीं तो भुजा के विरुद्ध ऊपर के पृष्ठभाग पर जाँघ का टिकाना अत्यंत कठिन होगा।

८. दोनों ओर उतने ही समय के लिए रहें।

९. अनुच्छेद ४ और ७ में बतायी गयी विधि के अनुसार उन स्थितियों को

पूरा कर लेने के बाद अनुच्छेद ६ के पादबंधन को छोड़े बिना बायीं ओर शरीर घुमाने के लिए प्रयत्न किया जा सकता है, बायीं भुजा के ऊपरी भाग पर दायीं जाँघ टिकायें, जमीन पर से सिर उठायें और संतुलन करें (चित्र ४२४ अ)।

१०. शीर्षासन दो में वापस आ जायें। उसके बाद परस्पर गूँथी टाँगों को बदले बिना शरीर को दायीं ओर घुमाते हुए अनुच्छेद ७ से आसन पूरा कर, बायीं जाँघ को दायीं भुजा के ऊपर के भाग पर रखने का प्रयत्न करें, जमीन पर से सिर उठायें और संतुलन बनायें (चित्र ४२५ अ)।

११. सभी स्थितियों में समान अवधि तक इस आसन में रहें। बाद में शीर्षासन दो में आ जायें, जमीन पर टाँगों को रखें और आराम करें। अथवा ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें ओर उसके बाद ताड़ासन (चित्र १) में खड़े रहें। विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद और ऊर्ध्व धनुरासन के अभ्यास के बाद यह एक आनंददायक अभ्यास होता है।

परिणाम

व्यक्ति ऊर्ध्व कुक्कुटासन (चित्र ४१९) से इसमें अधिक लाभ यह पाता है कि इस प्रकार में मेरुदण्ड में पार्श्वगत ऐंठन कुछ ज्यादा होती है। वह सुचारु रूप से कार्य करता है। सीना, भुजाएँ और उदर की मांसपेशियाँ और अवयव सबलतर होती हैं और जीवनशक्ति बढ़ती है।

१५६. गालवासन सोलह* (चित्र ४२७ और ४२८)

गालव ऋषि विश्वामित्र के शिष्य थे। यह आसन उन्हें समर्पित है।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२)।

२. दायां पैर बायीं जाँघ के मूल पर और बायाँ पैर दायीं जाँघ के मूल पर रखकर पद्मासन में आ जायें (चित्र ४१३)। साँस छोड़ें, धड मोड़ें, जिससे जाँघें सीने और उदर का स्पर्श करें।

३. कुछ साँस लें, धड़ को दायीं ओर मोड़ें और एक उच्छ्वसन के साथ मुड़ी टाँगों को दाहिनी बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर, जहाँ नलियाँ एक दूसरे के विपरीत होती हैं, यथासंभव काँख के पास नीचे करें (चित्र ४२६)। इस स्थिति में रहें, कुछ गहरी साँस लें, और संतुलन बनायें।

४. श्वास छोड़ें, जमीन से सिर उठाकर शरीर को ऊपर खींचें, उर:प्राचीर के पास मांसपेशियों को तानें, भुजाएँ सीधी करें, हाथ पर संतुलन बनायें (चित्र ४२७)। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ सेकंड तक इस आसन में रहें। इस आसन

में बायें कंधे तथा भुजा पर, जो स्पष्टरूप से मुक्त है, ज्यादा दवाव अनुभव किया जाता है।

५. कुहनियाँ मोड़ें, जमीन पर सिर रखें और पद्मासन के पादबंधन को छोड़े बिना सालम्ब शीर्षासन दो में आ जायें।

६. श्वास छोड़ें, धड़ को झुकायें, बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर टाँगें टिकायें और जिस तरह दायीं ओर किया उसी तरह संतुलन करें (चित्र ४२८)।

७. कुहनियाँ मोड़ें, जमीन पर सिर रखें और सालम्ब शीर्षासन दो करें और पादबंधन को खोलें। इस बार पहले बायाँ पैर दायीं जाँघ के मूल पर रखकर और बायीं जाँघ के मूल पर दायाँ पैर रखकर पुनः पद्मासन करें। ऊपर बतायी गयी विधि के अनुसार इस आसन को दुहरायें।

८. पुनः सिर जमीन पर रखकर सालम्ब शीर्षासन दो करें। फिर दोनों टाँगें जमीन पर लायें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों। जब कोई विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार कर लेता है तब ऊर्ध्व धनुरासन के अभ्यास के बाद यह अभ्यास आरामदेह होता है।

परिणाम

इस आसन के लगातार अभ्यास से कलाइयाँ और उदर के अवयव सबल होंगे और उदर की पार्श्वगत मांसपेशियाँ भी विकसित होंगी। मेरुदण्ड अधिक लचीला होगा और गर्दन और कंधे अधिक सशक्त होंगे। यह आसन शीर्षासन (चित्र १८४), पद्मासन (चित्र १०४) और पश्चिमोत्तानासन (चित्र १६०) का सम्मिलित परिणाम देता है।

१५७. एकपाद गालवासन इक्कीस* (चित्र ४३१ तथा ४३३)

एक का अर्थ एक है, पाद का अर्थ टाँग है, गालव एक ऋषि का नाम है।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो (चित्र १९२) करें।

२. श्वास छोड़ें, अर्ध पद्मासन की भाँति दायां पैर बायीं जाँघ के मूल पर रखें तथा टाँगें जमीन के समानान्तर होने तक धड़ को झुकाएँ।

३. घुटने पर बायीं टाँग मोड़ें। कुछ गहरी साँस लें। श्वास छोड़ें और बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर दायां पैर रखें। पैर रखते समय उसे इस तरह घुमायें कि पैर की अंगुलियाँ उस दिशा की ओर संकेत करें जिधर हाथ की अंगुलियाँ करती हैं। दायें घुटने को दायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर टिकायें (चित्र ४२९)।

४. दायीं टाँग की स्थिति बनाये रखें और कुछ साँस लें। बायीं टाँग सीधी तानें और जमीन के समानान्तर रखें (चित्र ४३०)।

५. श्वास छोड़ें, और जमीन पर से सिर उठाकर अपना शरीर ऊपर उठायें। बायीं टाँग सीधी और जमीन के समानान्तर रहती है। कुहनियाँ मुड़ी होती हैं, बाँह के ऊपरी भाग जमीन के समानान्तर होते हैं और अग्रभुजाएँ कलाइयों से कुहनियों तक लम्बाकार रहती हैं (चित्र ४३१)।

६. गर्दन उठायें और सिर यथासंभव ऊंचा रखें। कुछ सेकंड तक इस स्थिति में रहें। चूँकि उर:प्राचीर दबा होता है, साँस तेज और श्रमसाध्य होगी।

७. बायीं टाँग घुटने पर मोड़ें, जमीन पर सिर रखें और पुन: सालम्ब शीर्षासन दो में आ जाएँ।

८. कुछ गहरी साँस लें और इस बार अर्ध पद्मासन की भाँति बायीं टाँग मोड़कर बायाँ पैर दायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर और बायाँ घुटना बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर रख आसन को दुहरायें। तथा जमीन पर से सिर उठायें (चित्र ४३२ तथा ४३३)। दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें। पुन: शीर्षासन में आ जाएँ।

९. यह आसन टाँगों को जमीन पर रखकर पूरा किया जा सकता है या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) और बाद में ताड़ासन (चित्र १) में खड़े होकर। जब व्यक्ति विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार कर लेता है तब यह अभ्यास ऊर्ध्व धनुरासन के अभ्यास के बाद आनंददायक होता है।

परिणाम

यह आसन कलाइयों को पुष्ट करता है। पैरों का दबाव पेट पर पड़ता है जिससे उदर के अवयवों की मालिश हो जाती है।

१५८. द्विपाद कौंडिन्यासन वाईस* (चित्र ४५८)

द्विपाद (द्वि–दो या दोनों; पाद– टाँग या पैर) का अर्थ दोनों पैर है। कौंडिन्य ऋषि वशिष्ठ के परिवार से सम्बन्धित थे और कौंडिन्य गोत्र के प्रवर्तक थे। यह आसन उन्हें अर्पित है।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२)।

२. श्वास छोड़ें और जमीन के समानान्तर होने तक टाँगों को एक साथ सीधे नीचे करें (चित्र ४३४)। यहाँ कुछ ठहरें और कुछ साँस लें।

३. श्वास छोड़ें, दायीं ओर धड़ जरासा घुमाएँ और दोनों टाँगों को दायीं ओर मोड़ें (चित्र ४३५)। दायीं भुजा पर दोनों टाँगों को एक साथ रखें जिससे घुटने

के ऊपर बायीं जाँघ का बाहरी भाग यथासंभव काँख के निकट दाहिनी बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर टिके (चित्र ४३६) ।

४. संतुलन करें और कुछ साँस लें । फिर श्वास छोड़ें और जमीन पर कसकर हथेलियाँ दबाते हुए जमीन पर से सिर उठायें (चित्र ४३७) । तब धड़ उठायें और गर्दन तानें (चित्र ४३८) । यह अंतिम स्थिति है जिसमें जमीन के समानान्तर आकाश में टाँगें होंगी, उस समय धड़ मुड़ा हुआ होने के कारण श्वासक्रिया तेज होगी । १० से २० सेकंड तक जितनी देर संभव हो संतुलन करें । बायें कंधे और भुजापर, जो स्पष्ट रूप से मुक्त है, ज्यादा दबाव का अनुभव होगा ।

५. घुटनों को मोड़ें, जमीन पर सिर टिकायें और पुन: सालम्ब शीर्षासन दो करें । कुछ समय के लिए यहाँ ठहरें और उपर्युक्त रीति के अनुसार आसन को बायें को दायाँ और दायें को बायाँ पढ़कर बायीं ओर दुहरायें । इस स्थिति में बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर दायीं जाँघ टिकेगी । दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें । पुन: शीर्षासन करें ।

६. इस आसन को पूरा करने के लिए या तो जमीन पर टाँग ले आयें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों । जब व्यक्ति विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार प्राप्त कर लेता है तब ऊर्ध्व धनुरासन के बाद यह अभ्यास आनंददायक होता है ।

परिणाम

यह आसन उदर के अवयवों को ठीक रखता है, बड़ी आँत सक्रिय होती है और उसके अंदर के विष दूर होते हैं । अच्छी तरह तनी टाँगों पर संतुलन करने के लिए अनुभव की आवश्यकता होती है । पार्श्वगत क्रियाओं से मेरुदण्ड और अधिक लचीला होगा और गर्दन और भुजाएँ सबल होंगी ।

१५९. एकपाद कौंडिन्यासन एक तेईस* (चित्र ४४१)

एक का अर्थ एक है । पाद का अर्थ टाँग या पैर है । कौंडिन्य एक ऋषि का नाम है ।

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२) ।

२. श्वास छोड़ें, जमीन के समानान्तर होने तक दोनों टाँगों को एक साथ सीधे नीचे करें (चित्र ४३४), थोड़ा ठहरें और कुछ साँस लें ।

३. श्वास छोड़ें, टाँगों को मोड़ें और बायीं टाँग को दायीं ओर बगल में घुमाएँ । दायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर बायीं टाँग रखें जिससे बायीं जाँघ का बाहरी भाग घुटने के ऊपर यथासम्भव दायीं काँख के निकट रहे (चित्र ४३९) । कुछ साँस लें और संतुलन करें ।

४. बायीं टाँग सीधे तिरछे और दायीं टाँग ठीक सीधे पीछे तानें (चित्र ४४०)। दो साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, जमीन से सिर ऊपर उठायें, भुजाएँ फैलायें और हाथ पर संतुलन बनायें। दोनों टाँगों को सीधा और घुटनों के पास तना रखें (चित्र ४४१)। यह अन्तिम अवस्था है। ३० सेकंड तक यथाशक्ति इस आसन में स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए रहें।

६. दोनों घुटनों को मोड़ें, श्वास छोड़ें, जमीन पर सिर रखें और पुनः शीर्षासन करें। स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए कुछ समय के लिए इस स्थिति में ठहरें।

७. दूसरी ओर उतने ही समय के लिए इस आसन को बायें को दायां और दायें को बायां पढ़कर दुहराएँ। इसमें बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर दायीं जाँघ रहेगी और बायीं टाँग पीछे की ओर सीधी तनी होगी। स्थिति ६ में बताये अनुसार पुनः शीर्षासन करें।

८. इस आसन को पूरा करने के लिए या तो जमीन पर टाँगों को रखें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े रहें। जब व्यक्ति विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार पा लेता है तब यह अभ्यास ऊर्ध्व धनुरासन के बाद आनंददायक होता है।

परिणाम

इस आसन में टाँगों का दबाव पेट पर पड़ने से उदर के अवयवों की मालिश होती है। मेरुदण्डीय मोड़ मेरुदण्ड को जीवन देता है और सबल बनाता है। भुजाएँ और गर्दन सशक्त होती हैं।

१९०. एकपाद कौंडिन्यासन दो चौबीस* (चित्र ४४२ और ४४३)

विधि

१. दायीं टाँग को दायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर रख विश्वामित्रासन (चित्र ४०३) करें।

२. श्वास छोड़ें, जमीन पर बायीं हथेली रखें। सिर और धड़ को जमीन की ओर ले जाएँ। दोनों कुहनियों को मोड़ें, शरीर को जमीन के समानान्तर रखें; दोनों टाँगों को सीधा तानें और पैर की अंगुलियों को जमीन से ऊपर उठायें। जितनी देर तक संभव हो शरीर का संतुलन हाथों पर करें। बायीं टाँग पीछे की ओर सीधी तनी होगी जबकि दायीं टाँग दायीं ओर तनी हो। दायीं जाँघ का आन्तरिक भाग दायीं बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर टिकता है (चित्र ४४२ और ४४३)।

३. यह आसन बहुत दुष्कर है, और अधिकार पाने के लिए नित्य कठिन अभ्यास

की आवश्यकता होती है। श्वासक्रिया तेज और कठिन होगी। गर्दन को तानें और सिर को ऊँचा रखें।

४. जमीन पर बायीं टाँग रखें, दायीं टाँग को दायीं भुजा से हटायें और कुछ समय तक आराम करें।

५. अब दूसरी ओर, बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर बायीं टाँग और दायीं टाँग पीछे सीधी कर इस आसन को दुहरायें। इस स्थिति में उतने ही समय के लिए दोनों ओर रहें।

६. प्रगत साधक एकपाद कौंडिन्यासन एक (चित्र ४४१) की विधि का अनुसरण करते हुए सालम्ब शीर्षासन दो (चित्र १९२) कर सकते हैं पर चित्र ४४४ के अनुसार एक टाँग उसी तरफ की बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर रखें और बाद में जमीन से सिर उठाये हुए दोनों टाँगों को जमीन के समानान्तर एवं सीधा रखें।

७. दूसरी ओर उस आसन को दुहरायें और शीर्षासन दो (चित्र १९२) की स्थिति में आ जायें, ऊर्ध्व धनुरासन करें (चित्र ४८६) और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों, या विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) करें।

परिणाम

यह आसन भुजाओं, उदर के अवयवों और जाँघ की मांसपेशियों को पुष्ट करता है।

१६१. एकपाद बकासन छब्बीस* (चित्र ४४६ और ४४७)

एक का अर्थ एक है। पाद का अर्थ टाँग या पैर है। बक का अर्थ सारस या बगुला है।

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२)।

२. श्वास छोड़ें, जमीन के समानान्तर होने तक दोनों टाँगों को नीचा करें (चित्र ४३४)। दायें घुटने को मोड़ें, काँख के निकट जितना संभव हो सके, दायीं नली को दायीं बाँह के ऊपर के पृष्ठभाग पर रखें। बायीं टाँग को आकाश में जमीन के समानान्तर रखें (चित्र ४४५)। इस स्थिति को बनाये रखें और स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए संतुलन करें।

३. श्वास छोड़ें, धड़ को ऊपर उठायें, जमीन पर से सिर उठायें और गर्दन को आगे की ओर तानें। शरीर को जमीन के समानान्तर रखने की कोशिश करें और बायीं कुहनी पर शरीर का कोई अंग न टिकाएँ (चित्र ४४६ और ४४७)।

४. मेरुदण्ड का पूरा विस्तार कर तथा टाँगों को ताने हुए १० से २० सेकंड तक इस आसन में रहें। स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयत्न करें। इस आसन में संतुलन करना जरा कठिन है।

५. बायीं टाँग को मोड़ें, जमीन पर सिर रखें। श्वास छोड़ें और सालम्ब शीर्षासन दो की स्थिति में वापस आयें।

६. दायीं टाँग को जमीन के समानान्तर सीधे आकाश में तानें। इस आसन को बायीं ओर उतने ही समय के लिए दुहराएँ।

७. सालम्ब शीर्षासन दो में आ जाएँ, जमीन पर टाँगें रखें और आराम करें। प्रगत साधक ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) कर ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हो सकते हैं। जब व्यक्ति विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) पर अधिकार पा लेता है तब यह अभ्यास ऊर्ध्व धनुरासन के बाद आनंददायक होता है।

परिणाम

इस आसन में अवयव या उदर एक ओर सिकोड़ा जाता है और दूसरी ओर ताना जाता है। इस आसन में संतुलन करने के लिए उदर की मांसपेशियों और अन्य अवयवों पर भुजाओं से अधिक जोर पड़ता है।

१६२. एकपाद बकासन दो पचीस* (चित्र ४५१ तथा ४५२)

विधि

१. सालम्ब शीर्षासन दो करें (चित्र १९२)।

२. श्वास छोड़ें, जमीन के समानान्तर होने तक टाँगें नीचे करें (चित्र ४३४)। बायें घुटने को मोड़ें, बकासन की भाँति (चित्र ४१०) बायीं नली को बायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर यथासंभव काँख के निकट टिकाएँ। दायीं भुजा के बाहर होने तक दायीं टाँग दायीं ओर बढ़ाते जायें जिससे दायीं जाँघ का आन्तरिक भाग दायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग का स्पर्श करे (चित्र ४४८)।

३. श्वास छोड़ें, धड़ को ऊपर उठायें, जमीन पर से सिर ऊपर करें और गर्दन को आगे की ओर तानें (चित्र ४४९ और ४५०)। दायीं टाँग को सामने लायें, जमीन का स्पर्श किए बिना उसे सीधा तानें। भुजाओं को सीधा तानें और सतुलन करें (चित्र ४५१ तथा ४५२)।

४. मेरुदण्ड और दायीं टाँग के पूर्ण विस्तार के साथ १० से २० सेकंड तक इस आसन में रहें।

५. दायें घुटने को मोड़ें, जमीन पर रखें और सालम्ब शीर्षासन दो की स्थिति में आयें (चित्र १९२)।

६. बायीं टाँग सामने सीधी ताने हुए और मुड़ी दायीं टाँग को दायीं भुजा के ऊपर के पृष्ठभाग पर रखे हुए इस आसन को दूसरी ओर उतने ही समय के लिए दुहराएँ।

७. इस आसन को पूर्ण करने के दो तरीके हैं। आप सीधे सामने तनी टाँग को मोड़ सकते हैं, बाद में शीर्षासन करें और टाँगों को नीचे करें। यदि आपने इस प्रणाली पर अधिकार प्राप्त कर लिया है तो दूसरी प्रणाली अपनाने का प्रयत्न कर सकते हैं। इसमें आप टाँग सामने सीधे ताने रहते हैं। बाद में कुहनियों को मोड़ें, मुड़ी टाँग को पीछे की ओर तानें और उसे सीधे बिना जमीन का स्पर्श कराये जमीन के समानान्तर रखें। सारा शरीर और सिर जमीन से ऊपर रखें। अब आप एकपाद कौंडिन्यासन दो (चित्र ४४२ तथा ४४३) में होंगे। बाद में श्वास छोड़ें, जमीन पर सिर टिकायें, दोनों टाँगों को मोड़ें और शीर्षासन दो में आ जाएँ। विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) के साथ ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें।

परिणाम

उदर के अवयव और मांसपशियों के साथ-साथ हाथ, सीना और पीठ अधिक पुष्ट होते हैं। इसमें हमारा अपना शरीर भार उठानेवाले यंत्र की भाँति होता है और यह विभिन्न दिशाओं में शरीर के विभिन्न अवयवों को भार वहन के लिए गतिशील करता है। इस तरह सारे अवयव शक्ति प्राप्त करते ह।

१६३. योगदण्डासन उन्नीस* (चित्र ४५६)

योगदण्ड का अर्थ है योगी का डंडा। इस आसन में योगी एक टाँग को बैसाखी की भाँति काँख के नीचे लगाकर बैठता है। अतः इसका यह नाम है।

विधि

१. सामने सीधे टाँग तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. दायीं टाँग को घुटने पर मोड़ें और दायें नितम्ब के पास दायाँ पैर ले आयें। दायीं टाँग वीरासन (चित्र ८९) में होगी।

३. जाँघ के बीच की दूरी बढ़ाने के लिए बायीं टाँग बायीं ओर बढ़ायें और घुटने पर मोड़ें जिससे बायां पैर दायें घुटने के पास हो (चित्र ४५३)।

४. दायें हाथ से बायां पैर पकड़ें। दायीं ओर धड़ घुमायें और एक उच्छ्वसन के साथ, बायें घुटने को जमीन पर रखते हुए बायें पैर को सीने की ओर घुमायें। कुछ साँस लें, और एक उच्छ्वसन के साथ बायीं काँख के नीचे बायाँ पैर लाएँ। अब बायाँ पैर बैसाखी के समान बायीं काँख के नीचे टिकता है। इस क्रिया में तलवा काँख को छूना चाहिए (चित्र ४५४)।

५. कुछ साँस लेकर छोड़ें, कंधे पर से बायीं भुजा बायें पैर के चारों ओर लपेट लें और उसे पीठ के पीछे ले आएँ (चित्र ४५५)। कंधे से दायीं भुजा पीठ के पीछे ले आएँ और बायीं अग्रभुजा को पकड़ें; सिर बायीं ओर घुमाएँ, चिबुक उठायें और ऊपर देखें (चित्र ४५६)।

६. गहरी साँस के साथ करीब ३० सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

७. हाथों को छोड़ें और टाँगों को सीधा करें और आराम करें ।

८. दूसरी ओर उतने ही समय के लिए इस आसन को दुहराएँ । अब बायीं टाँग मोड़ें, जिससे बायें नितम्ब की बगल में बायाँ पैर हो और दायां पैर काँख के नीचे बैसाखी की भाँति रहे तथा पीठ के पीछे बायें हाथ से दायीं अग्रभुजा को पकड़ें ।

९. इस आसन में आराम पाने के लिए समय और अभ्यास की आवश्यकता है । लेकिन जब आप अभ्यास करते हैं, यह आरामदेह है ।

परिणाम

इस आसन में मेरुदण्ड आराम पाता है और शरीर ताजा होता है । यह घुटनों और टखनों को लचीला बनाता है, जिससे उनमें क्रियाशीलता बढ़ती है ।

१६४. सुप्त भेकासन इक्कीस* (चित्र ४५८)

सुप्त का अर्थ झुका हुआ है । भेक का अर्थ मेढ़क है । यह आसन भेकासन की विपरीत स्थिति है (चित्र १००) ।

विधि

१. वीरासन में बैठें (चित्र ८९) ।

२. हथेलियों को ऊपर घुमाएँ और प्रत्येक हाथ को अपने सामने के सम्बंधित पैरों के अंदर ले जाएँ । जमीन पर से पैरों को उठायें और पीछे झुकें । कुछ साँस लें ।

३. श्वास छोड़ें, जमीन पर से नितम्ब उठायें (चित्र ४५७) । जाँघों को ऊपर करें और जमीन पर कपाल रखकर धड़ को कमान-जैसा बनायें (चित्र ४५८) ।

४. शरीर सिर, कपाल, कुहनियों और घुटनों पर टिका होता है । जमीन पर अग्रभुजाएँ लम्बाकार होंगी और हाथ पैरों के बाहरी भाग को छोटी अंगुलियों के पास पकड़ेंगे । नितंब संधि के साथ पैर की अंगुलियों को उठाने का प्रयत्न करें ।

५. स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस आसन में २० से ३० सेकंड तक रहें ।

६. जमीन पर से सिर और पैरों पर से हाथ ऊपर उठायें जिससे टाँगें सुप्त वीरासन में हों (चित्र ९६) ।

७. वीरासन में बैठें, टाँगें सीधी करें और आराम करें ।

परिणाम

यह आसन मेरुदण्ड को ठीक करता है । इसमें रक्त घुटनों, टखनों, नितम्बों और गर्दन में संचरित होता है, पीठ का दर्द दूर होता है । किसी भी तरह की घुटनों की संधि की आंतरिक पीड़ा को खत्म करता है । पैरों पर हाथों का दबाव टखनों

को पुष्ट करता है और सपाट पैर को ठीक करता है। टाँग की मांसपेशियों के ह्रास तथा अन्य दोष सतत अभ्यास से खत्म होते हैं। फुफ्फुस पूरी तरह फैल जाता है और उदर के अवयव लाभ पाते हैं।

१६५. मूलबन्धासन बत्तीस* (**चित्र ४६२ तथा ४६३**)

मूल का अर्थ जड़, नींव, उद्‌गम या बुनियाद है। बन्ध का अर्थ कड़ी, बन्धन या स्थिति है।

विधि

१. बद्धकोणासन में बैठें (चित्र १०१)।

२. जाँघों और पिंडलियों के बीच हाथों को घुसायें और संबंधित हाथ से पैरों को पकड़ें।

३ एड़ियों और तलवों को मिलायें। एड़ियाँ उठायें, पैर की अंगुलियाँ जमीन-पर रखें और पैरों को मूलाधार के पास खींचें (चित्र ४५९)।

४. इस स्थिति में रहें और हाथ बढ़ायें जिससे हथेलियाँ नितम्बों के पृष्ठभाग पर टिकें (चित्र ४६०)।

५. हाथों के सहारे जमीन पर से शरीर को उठायें और बिना हिले एड़ियों को आगे की ओर ढकलने के लिए उसी समय नितम्बों को आगे की ओर करें (चित्र ४६१, ४६२ तथा ४६३)।

६. घुटनों और पैर की अंगुलियो पर शरीर टिकायें और गहरे श्वसन के साथ ३० से ६० सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

७. इस आसन को छोड़ने के लिए हाथों को सामने बढ़ायें और सारा भार उनपर ले लें। धड़ उठायें, एड़ियाँ घुमायें और तब टाँगें सीधी करें। आसन छोड़ते समय टाँगों पर कोई भार न दें।

परिणाम

यह आसन मूलाधार चक्र, शिश्न ग्रंथियों और जनन ग्रंथियों को व्यायाम देता है। अतिशय कामवासना को नियंत्रित करने की आश्चर्यजनक शक्ति इसमें होती है और वह शक्ति सुरक्षित करने में मदद करता है। अत: यह मस्तिष्क को नियंत्रित और शांत रखता है।

मन इन्द्रियों का स्वामी है, प्राण मन का स्वामी है; तल्लीनता या लय प्राण का स्वामी है और वह लय नाद (अन्तर्नाद) पर निर्भर करता है। जब मन लीन हो जाता है तब वह मोक्ष कहलाता है; पर कुछ कहते हैं कि ऐसा नहीं है। तो भी जब प्राण और मन को लीन कर लिया जाता है, एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है (हठयोगप्रदीपिका : चौथा अध्याय, श्लोक २९ तथा ३०)।

अत्यधिक कामवासनावालों के लिए बद्धकोणासन (चित्र १०१) और मूल-बन्धासन दोनों बड़ी सहायता करते हैं। जब यह इच्छा नियंत्रित होती है, शक्ति उदात्त होने लगती है। और जीवन के वास्तविक आनंद की सीमा ही नहीं रह जाती।

१६६. वामदेवासन एक पन्द्रह* (चित्र ४६५)

वामदेव एक ऋषि का नाम है, तथा शिव का भी– शिव अर्थात् हिन्दू त्रिमूर्ति के तीसरे देवता, जिन्हें संहार का कार्य सौंपा गया है।

विधि

१. बद्धकोणासन में बैठें (चित्र १०१)।

२. दायीं जाँघ की ओर पिंडली के बीच दायां हाथ घुसायें। दायें पैर की अंगुलियाँ जमीन पर रखें, एड़ी उठायें और पैर खींचकर मूलाधार के पास लायें। हाथ हटायें और एड़ी को आगे जमीन की ओर ले जाएँ, जमीन पर से शरीर उठायें, दायां नितम्ब आगे करें और दायां घुटना जमीन पर रखें। अब दायां पैर मूलबन्धासन में है (चित्र ४६४)।

३. दायीं जाँघ के मूल पर बायाँ पैर रखें जैसा कि पद्मासन में होता है (चित्र १०४)।

४. कंधे पर से बायीं भुजा पीठ के पीछे ले जायें और एक उच्छ्वसन के साथ बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें। बायें पैर का सामने का भाग दायें हाथ से पकड़ें।

५. गर्दन दायीं ओर घुमायें (चित्र ४६५) और गहरी साँस के साथ ३० सेकंड तक संतुलन बनायें।

६. यह स्थिति छोड़ कर बद्धकोणासन में आ जाएँ और उपर्युक्त विधि के अनुसार दायें को बायां और बायें को दायाँ पढ़ते हुए, इस आसन को उतने ही समय के लिए दूसरी ओर दुहरायें।

परिणाम

यह आसन टाँगों की कठिनता ठीक करता है और दर्द दूर करता है। जननेन्द्रियों को स्वस्थ रखता है। मेरुदण्ड को भी ठीक रखता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

१६७. वामदेवासन दो पंद्रह* (चित्र ४६६)

विधि

१. जमीन पर बैठें और जाँघों को फैलायें।

२. बायें घुटने को पीछे की ओर मोड़ें जिससे बायीं पिंडली बायीं जाँघ के पृष्ठभाग का स्पर्श करे ।

३. बायें हाथ से बायीं एड़ी और बायीं नितम्ब संधि का स्पर्श करने तक बायाँ पैर उठायें । भेकासन की भाँति बायाँ पैर बायें हाथ से पकड़ें (चित्र १००) ।

४. पद्मासन की भाँति दायें हाथ से दायें पैर को उठाकर बायीं जाँघ के मूल पर रखें ।

५. दोनों हाथों से तलवों के आपस में छू जाने तक उन्हें दबाते रहें (चित्र ४६६) ।

६. पद्मासन की भाँति धड़ टाँग की ओर झुकेगा । हाथों से पकड़कर संतुलन बनायें और गहरी साँस के साथ इस स्थिति में ३० सेकंड तक रहें ।

७. हाथों और टाँगों को छोड़ें, भेकासन की भाँति दायें पैर पर बायें पैर को पद्मासन की तरह रखकर इस आसन को दूसरी ओर दुहरायें । दोनों ओर उतने ही समय के लिए ठहरें ।

परिणाम

यह आसन दर्द दूर करता है, टाँगों के कड़ेपन को दूर करता है और जननेंद्रिय को स्वस्थ रखता है । यह मेरुदण्ड को ठीक करता है और पाचनशक्ति को भी बढ़ाता है ।

१६८. कन्दासन उन्तालिस* (चित्र ४७०, ४७१, ४७१ अ तथा ४७१ ब)

कंद का अर्थ है मूलग्रंथि, जड़, गाँठ । हठयोग प्रदीपिका के तृतीय अध्याय के श्लोक १०७ तथा ११३ में कन्द के सम्बन्ध में नीचे लिखे अनुसार बताते हैं—

१०७. कुंडलिनी कंद (नाभि के निकटस्थ स्थान, जहाँ नाड़ियाँ मिलती और अलग होती हैं) पर शयन करती है । यह योगियों को तो मोक्ष दिलाती है और मूर्खों को बंधन । सच्चा योगी वही है, जिसे कुंडलिनी का ज्ञान है ।

११३. कंद गुदद्वार के १२ इंच ऊपर होता है और दोनों तरफ ४–४ इंच फैलता है । इसे गोल बताया गया है और मानों वस्त्र के मुलायम सफेद टुकड़े से ढका हो । पाठ में वितस्ति शब्द प्रयुक्त है जिसका अर्थ १२ अंगुल के बराबर का लम्बाई का माप (एक अंगुल की चौड़ाई), फैलाये हुए अंगूठे और कनिष्ठिका के बीच की दूरी है ।

विधि

१. टाँगों को सामने सीधा ताने जमीन पर बैठें (चित्र ७७) । घुटनों को मोड़ें, जाँघों को चौड़ा करें, एड़ियों के मूलाधार तक आने तक धड़ की ओर पैर ले आयें और घुटनों को जमीन पर रखें । यह आसन बद्धकोणासन (चित्र १०१) के समान है ।

२. दायें पैर को दायीं हथेली से पकड़ें और बायें पैर को बायीं हथेली से पकड़ें।

३. हाथों की सहायता से पैरों को ऊपर उठाकर धड़ की ओर करें। टखनों को उलटा करें (चित्र ४६७), घुटनों और जाँघों को खींचें (चित्र ४६८)। नाभि और सीने पर एड़ियों और पैरों के बाह्य भाग को रखें (चित्र ४६९)। शुरू शुरू में पैर फिसलने की संभावना होती है। सीने पर पैरों को कसकर पकड़ कर कुछ हफ्तों तक अभ्यास करें।

४. हाथों को मुक्त करें और या तो भुजाएँ सीधी तानें और हाथों का पृष्ठभाग घुटनों पर टिकाएँ (चित्र ४७०) या सीने के सामने पंजों को परस्पर मिला लें। (चित्र ४७१)। पीठ सीधी करें और गहरी साँस के साथ ३० सेकंड तक इस आसन में रहें।

५. कुशल साधक हाथों और पंजों को एक साथ सिर के ऊपर उठा सकते हैं (चित्र ४७१ अ)। बाद में पीठ के पीछे पंजे मिलाने की कोशिश करें और संतुलन बनायें (चित्र ४७१ ब)। आसन का यह कठिनतम अंश है।

६. पैरों को हाथ से पकड़ें, उन्हें जमीन पर रखें और आराम करें।

७. बस्तिप्रदेश और टाँगों के अन्य जोड़ घूमते (चक्रगति में)हैं इसलिए इस आसन पर अधिकार प्राप्त करने में बहुत समय लगता है।

परिणाम

नाभि के नीचे की प्रत्येक मांसपेशी को व्यायाम मिलता है। यह आसन नितंब, घुटने और टखने की संधियों के कडेपन को दूर करता है। यह वीर्य को बचाता है और कामवासना को नियंत्रित करता है।

यह आसन स्वाधिष्टान चक्र (नाडीचक्र) और मणिपूरकचक्र (सौर नाडी-चक्र) को गतिशील करता है, इस कारण उचित पाचनशक्ति को मदद देता है।

१६९. हनुमानासन छत्तीस* (चित्र ४७५, ४७६, ४७६अ)

वायु तथा अंजनी के पुत्र हनुमान् विष्णु के सातवें अवतार राम के एक मित्र और सेवक थे। जब राम, उनकी पत्नी सीता और उनके भाई लक्ष्मण इन को दण्डकारण्य के साधु की तरह निर्वासित कर दिया गया, लंका का राक्षस नृप रावण संन्यासी के वेश में उनके आश्रम में आया और सीता का अपहरण कर लंका ले गया, जब कि राम और लक्ष्मण दोनों शिकार करने बाहर गये हुए थे। दोनों भाइयों ने बहुत दूरदूर तक सीता को खोजा और कपिराज सुग्रीव तथा उनके सेनापति हनुमान् की सहायता स्वीकार की। हनुमान् सीता की खोज में निकले, समुद्र को लांघकर पार किया। रावण के राजभवन में सीता को देखा और राम को समाचार दिया। बन्दरों और भालुओं की विशाल सेना की सहायता से राम ने लंका जाने के लिए समुद्र पर पत्थरों

का पुल बनवाया और घमासान युद्ध के बाद रावण और उसके जनों का वध किया तथा सीता का उद्धार किया। युद्ध में लक्ष्मण एक तीर से घायल हुए और अचेत हो गए। और कहा गया कि इसकी एकमात्र ओषधि हिमालय पर होनेवाली बूटी का रस है। एक आश्चर्यजनक छलांग मारकर हनुमान समुद्र पार कर गए और अपने साथ जिस पर्वत शिखर जिस पर संजीवनी बूटी उगी थी, उसे लाने के लिए हिमालय पर्वत पर पहुँच गए और इस तरह लक्ष्मण की प्राणरक्षा हुई। यह आसन हनुमान को अर्पित है और उनकी काल्पनिक छलांग की स्मृति दिलाता है। जमीन पर नीचे होकर दोनों टाँगें पार्श्व में फैलाकर और सीने के सामने हाथों को जोड़कर इसका अभ्यास किया जाता है। यह पश्चिमी 'बैले' के चरणक्षेप का अनुकरण है।

विधि

१. जमीन पर घुटने टेकें (चित्र ४०)।

२. शरीर के दोनों ओर एक फुट अंतर पर जमीन पर हथलियाँ रखें।

३. घुटनों को ऊपर उठायें। दायीं टाँग आगे ले आयें और बायीं को पीछे करें (चित्र ४७२)। एक गहरे उच्छ्वसन के साथ दोनों टाँगों को सीधे तानने का प्रयत्न करें और नितंव को ऊपर उठायें (चित्र ४७३)। बाद में टाँगों को और नितंबों को जमीन-पर टिकाएँ और सारा भार हाथों पर ले लें (चित्र ४७४)।

४. इस स्थिति पर अधिकार पाने के लिए ज्यादा समय लगता है और इसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को प्रत्येक दिन जमीन पर टाँगों को सीधा रखने के लिए नितंबों को भूमि पर सटाये कई बार प्रयत्न करना चाहिए। आगे की टाँग का पिछला हिस्सा और पीछे की टाँग का अगला हिस्सा जमीन से सटा होना चाहिए।

५. एक बार टाँगों को सीधा करने की स्थिति में आ जायें, तब जमीन पर बैठें, हाथों को उठायें, सीने पर उन्हें मोड़ लें और संतुलन करें (चित्र ४७५)। इस आसन में १० से ३० सेकंड तक स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए रहें।

६. बाद में हाथों के सहारे नितम्ब को ऊपर उठायें और उतने ही समय के लिए बायीं टाँग सामने और दायीं टाँग पीछे रखकर इसे दुहरायें (चित्र ४७६)।

७. यह ध्यान रहे कि सामने की टाँग के घुटने की संधि का पृष्ठभाग और पिछली टाँग का घुटना जमीन को अवश्य स्पर्श करे।

८. प्रगत साधक सिर के ऊपर हाथ उठा सकते हैं, तान सकते हैं, हथेलियों को साथ रख सकते हैं और संतुलन कर सकते हैं (चित्र ४७६ अ)। यह टाँगों को अतिरिक्त तनाव देता है और पीठ के तनाव को दूर करता है।

परिणाम

यह घुटने की गठिया और टाँगों के अन्य दोषों को दूर करता है। टाँग की

मांसपेशियाँ ठीक करता है, टाँगों को अच्छी हालत में रखता है। यदि नियमित रूप से अभ्यास किया जाय तो धावक इससे बडा लाभ उठा सकते हैं। यह जाँघ की अपवर्तिनी मांसपेशियों को ढीला और पुष्ट करता है।

१७०. **समकोणासन** अडतीस* (**चित्र ४७७**)

सम का अर्थ समान, अनुरूप, सम या सीधा है। कोण का अर्थ है कोना और कंपास की नोक। इस आसन में टाँगों को तिरछे अलग फ़ैलाकर अलगाव पूरा किया जाता है। और सीने के सामने हाथ मिलाये जाते हैं। हनुमानासन (चित्र ४७५) से इस आसन का करना कठिन है। दोनों टाँगें और शरीर का वस्ति प्रदेश एक सीध में होना चाहिए।

विधि

१. ताड़ासन में खडे हों (चित्र १)। नितम्ब पर हाथ रखें और अपनी शक्ति के अनुसार टाँगों को तिरछा अलग अलग फैलायें (चित्र २९)।

२. हथेलियाँ जमीन पर रखें (चित्र ३०) और एक उच्छ्वसन के साथ टाँगों को आगे तानते जायें, जबतक कि दोनों टाँगें एक सीध में तिरछी फैलाकर आप जमीन पर बैठ नहीं जाते। टाँगों का पृष्ठभाग विशेष कर घुटनों का पृष्ठभाग जमीन पर टिका होना चाहिए।

३. सीने पर हथेलियाँ मिलायें (चित्र ४७७)। इस आसन में कुछ सेकंड तक रहें।

४. हथेलियाँ जमीन पर रखें, नितम्ब उठाएँ, दोनों टाँगों को पुनः उत्तानासन में खड़े होने तक पास-पास लाते जायें। बाद में ताड़ासन (चित्र १) में खडे हों और आराम करें।

परिणाम

इस आसन में नितम्बों की संधियों को व्यायाम मिलता है और टाँगें हर दिशा में सरलता से घुमाने के योग्य बन जाती हैं। मेरुदण्ड ताना जाता है और मेरुदण्ड के निम्न भाग में होनेवाला दोष दूर हो जाता है। यह आसन हनुमानासन (चित्र ४७५) की भाँति, टाँगों की मांसपेशियाँ ठीक करता है और टाँगों को सुड़ौल बनाता है। यह अण्डकोश में आँत उतरने के रोग को बढ़ने से रोकता है और गठिया के दर्द को दूर करता है। वस्तिप्रदेश और जननेंद्रियों में होनेवाले रक्तसंचार को मदद करता है और उन्हें स्वस्थ रखता है।

१७१. **सुप्त त्रिविक्रमासन** उनतालीस* (**चित्र ४७८**)

सुप्त का अर्थ, झुका हुआ। त्रिविक्रम (त्रि-तीन, विक्रम-कदम, डग, फासला) विष्णु का एक नाम है। विष्णु के वामन अवतार को यह आसन समर्पित है। यह कहा

जाता है कि प्रल्हाद के प्रपौत्र दानवराज बलि ने विश्व पर अधिकार कर लिया। कठिन तपश्चर्या के कारण उसकी शक्ति इतनी बढ़ी कि उसने देवों को भी हराया, जिन्होंने विष्णु से सहायता के लिए प्रार्थना की। भगवान् विष्णु पृथ्वी पर आये और उन्होंने ब्रह्मर्षि कश्यप तथा उनकी पत्नी अदिति के यहाँ एक बौने पुत्र के रूप में जन्म लिया। बलि के एक यज्ञ में वामन के रूप में विष्णु उपस्थित हुए और उन्होंने तीन कदम जमीन की माँग की। बलि ने, जो अपनी दानशीलता के लिए विख्यात था, निस्संकोच हो उनकी यह बात मान ली। वामन ने एक कदम में पृथ्वी नाप ली और दूसरे में स्वर्ग लोक को। तीसरे कदम के लिये कोई जगह न बची। बलि ने अपना सिर आगे कर दिया, जिस पर विष्णु ने अपना पैर जमा दिया। तब उन्होंने उसे तथा उसकी पूरी सेना को पाताल लोक भेज दिया और उसे उसका शासक बना दिया। फिर एक बार विश्व पर देवगणों का अधिकार हो गया। यह आसन हनुमानासन (चित्र ४७५) से अधिक कठिन है। पीठ के बल जमीन पर लेट कर, उसके बाद फैलाव करते हुए सिर के पास एक पैर की एड़ी पकड़ कर जब कि दूसरी एड़ी जमीन पर रहती है, यह आसन किया जाता है।

विधि

१. दोनों टाँगों को सीधा रखें, पीठ के बल जमीन पर लेटें (चित्र २१९)।

२. दायीं टाँग ऊपर उठायें, अंगुलियों को परस्पर गुँथाएँ (चित्र २१६)। भुजाएँ तानें और हाथों की अंजुली में दायीं एड़ी को पकड़ें।

३. साँस छोड़ें, सिर के पीछे दायीं टाँग को सीधे नीचे करें और एड़ी को बिना छोड़े, जमीन पर दायें पैर के अंगूठे को रखें (चित्र ४७८)। दायीं पिंडली के अंदर का भाग दायें कान का स्पर्श करेगा और कुहनियाँ जरा फैली होंगी। बायीं टाँग जमीन पर सतत सीधी रहनी चाहिए।

४. इस आसन में जितनी देर तक रह सकते हों उतनी देर तक स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए रहें।

५. बायीं एड़ी को छोड़ दें और दायी टाँग बायीं टाँग के पास नीचे लायें।

६. अब बायीं एड़ी को पकड़कर और दायीं टाँग को जमीन पर रखकर उतने ही समय के लिए इस आसन को दुहरायें।

७. इस दुष्कर आसन को करने के बाद थोड़ी देर ठहरें और आराम करें।

परिणाम

इस आसन में टाँगें पूरी तरह तन जाती हैं। यह हार्निया को रोकता है। यह कामवासना को भी कम करता है और इस तरह मन को शांत रखता है।

१७२. ऊर्ध्व धनुरासन एक सात* **(चित्र ४८२)**

ऊर्ध्व का अर्थ ऊपर की ओर है। धनु का अर्थ धनुष है। इस आसन में शरीर को पीछे की ओर धनुषाकार बनाया जाता है और हथेलियों और एड़ियों पर टिकाया जाता है।

विधि (नौसिखुओं के लिए)

१. पीठ के बल जमीन पर लेट जायें (चित्र २१९)।

२. सिर के ऊपर कुहनियों को मोड़ें और उठायें और कंधों के नीचे हथेलियाँ रखें। हथेलियों के बीच की दूरी कंधों के बीच की दूरी से अधिक चौड़ी नही होनी चाहिए और अंगुलियाँ पैरों की ओर उन्मुख होनी चाहिए।

३. घुटनों को मोड़ें और उठायें, बाद में नितम्बों का स्पर्श करने तक पैरों को निकट ले आयें।

४. साँस छोड़ें, धड़ उठायें और जमीन पर सिर का कपाल रखें (चित्र ४८०)। दो साँसें लें।

५. अब साँस छोड़ें, सिर और धड़ को उठायें और पीठ को धनुषाकार करें जिससे उसका भार हथेलियों और तलवों पर लिया जा सके (चित्र ४८१)।

६. कुहनियाँ सीधी तन जाने तक, तथा साथ ही साथ जाँघ की मांसपेशियों को ऊपर करते हुए कंधे से भुजाएँ तानें (चित्र ४८२)।

७. अच्छा तनाव पाने के लिए साँस छोड़ें, जमीन पर से एड़ियाँ उठाकर जाँघों की मांसपेशियों को और ऊँचा उठायें। सीने को फुलायें, मेरुदण्ड के त्रैकभाग (sacral) को ऊपर इतना खींचें कि उदर का नीचे का भाग ड्रम की तरह सख्त हो जाय। और उसके बाद मेरुदण्ड के तनाव को बनायें हुए एड़ियाँ जमीन पर ले आयें।

८. स्वाभाविक श्वास लेते हुए आधे से एक मिनट तक इस स्थिति में रहें।

९. एक उच्छ्वसन के साथ, घुटनों और कुहनियों को मोड़ कर, शरीर को जमीन पर रखें।

१७२. (अ) ऊर्ध्व धनुरासन दो पन्द्रह* (चित्र ४८६)

विधि (यह मध्यम अवस्था के साधकों के लिए है।)

१. हथेलियाँ नितम्बों पर रखे हुए तथा पैरों को एक फुट की दूरी पर अलग अलग रखकर सीधे खड़े हों।

२. वस्ति प्रदेश को थोड़ा आगे ढकेलें (चित्र ४८३), और श्वास छोड़ें और धड़ को पीछे की ओर मोड़ें जिससे शरीर का भार जाँघों और पैर की अँगुलियों पर मालूम पड़े।

३. सिर के ऊपर भुजाएँ उठायें और जमीन पर हाथ नीचे रखें (चित्र ४८५)। जल्द ही कुहनियों पर भुजाएँ सीधी करें और हथेलियाँ जमीन पर टिकायें (चित्र ४८६), हथेलियाँ जमीन को छूते समय यदि कुहनियाँ तत्क्षण नहीं तानी गई तो

व्यक्ति के सिर में चोट लग सकती है ।

४. उपर्युक्त स्थिति को पा लेने के बाद टाँगें और भुजाएँ सीधी करें (चित्र ४८७) ।

५. इस आसन को इस तरीके से सीखते समय मित्र या दीवार का उपयोग करना लाभप्रद होता है । दीवार की ओर पीठ किये उससे तीन फुट दूर खड़े हों । पीठ को झुकाएँ और दीवार की ओर सिर करें । भुजाएँ सिर पर उठाएँ और हथेलियाँ दीवार पर टिकाएँ । वस्तिप्रदेश को आगे की ओर ढकेलें जिससे शरीर का भार जाँघों पर महसूस किया जा सके । जमीन का स्पर्श होने तक हथेलियाँ दीवार पर से नीचे की ओर खिसकाते जायें । ऊपर आने के लिए इसी ढंग से दीवार का उपयोग करें । इसमें पारंगत होने पर केवल आधे ऊपर आने तक दीवार का उपयोग करें । बाद में कमरे के बीच में इस आसन को करना सीखें ।

१७३. ऊर्ध्व धनुरासन में विपरीत चक्रासन छब्बीस* (**चित्र** ४८८ से ४९९)

विधि (यह प्रगत साधकों के लिए है ।)

१. सीधे खड़े हों । आगे की ओर झुकें और हथेलियाँ जमीन पर रखें । श्वास छोड़ें और टाँगें ऊपर की ओर ले जायें, मानो आप पूरी बाँह पर का संतुलन बना रहे हों (चित्र ३५९) । घुटनों को मोड़ें, पीठ धनुषाकार करें और टाँगों को सिर के पीछे ले जाएँ (चित्र ४८६) ।

२. टाँगें सिर के बाहर और पीछे लाते समय, नितम्बों को सिकोड़ें, पीठ ऊपर तान, पसलियों तथा उदर को तानें और कुहनियों पर भुजाओं को सीधा करें । जब तक ऐसा नहीं करेंगे आप जमीन पर झटके के साथ बैठेंगे ।

३. जब इन सब पर अधिकार हो जाय तब चित्र ४८८ से ४९९ में बताये अनुसार टाँगों की विपरीत दिशा में झुलाने की क्रिया सीखें जिससे व्यक्ति अपनी टाँगें ऊपर झुला सके और विपरीत कुदान गति में आ सके । यह उलटी कुदान आगे की ओर झुकाव की स्थिति में **विपरीत चक्रासन** कहलाती है - उलटे पहिये की स्थिति (विपरीत = उल्टा, विपर्यय, विरुद्ध, उलथा; चक्र=पहिया) । फिर भी बहुतेरे लोग अनुभवी गुरु की सहायता से ही इसे करना सीख सकते हैं ।

४. पर यदि कोई गुरु उपलब्ध नहीं है और अपने पर विश्वास है तो आप निम्नलिखित विधि से विपरीत कुदान की क्रिया को सीखने का प्रयत्न कर सकते हैं ।

दीवार के निकट ऊर्ध्व धनुरासन करें । दीवार से लगभग एक फुट की दूरी पर टाँगें रहें । एक उच्छ्वसन के साथ कंधे की ओर धड़ उछालें जिससे शरीरभार कलाइयों और कंधों पर लिया जा सके । उसके बाद जमीन पर से एक टाँग उठायें और लगभग दो फुट की ऊँचाई पर दीवार पर एक पैर टिकायें । वही पैर दीवार पर दबाकर स्थिर करें । दूसरी टाँग जमीन पर से उठायें और उलटी कुदान करते हुए एक उच्छ्वसन के साथ सिर पर टाँगों को उछालें । बारबार प्रयत्न करने पर आपको आत्मविश्वास

होगा । आप शरीर को आगे और पीछे की ओर झुलाना और उलटी कुदान में टाँगों की पीछे की गति के साथ कंधों की ओर अपना धड़ उछालना सीखेंगे । जब जमीन पर से टाँगें उठा लेने में आप निश्चित होते हैं तब दीवार से दूर कमरे के बीच विपरीत चक्रासन करें । यह वही प्रकार है,– जिससे मैंने विपरीत चक्रासन में उलटी कुदानक्रिया सीखी ।

परिणाम

पीछे की ओर झुकने के प्रगत एवं कठिन आसनों का यह आसन प्रारंभ है । यह मेरुदण्ड को पूर्णतया तानकर उसे ठीक रखता है, शरीर को चुस्त और लचीला बनाता है । पीठ मजबूत होती है और सजीव होती है । यह भुजाओं और कलाइयों को मजबूत बनाता है और सिर को बड़ी शांति देता है । एकबार विपरीत चक्रासन में पारंगत होने पर दिन में कई बार इसे किया जा सकता है । यह व्यक्ति को ऊर्जा और हलकापन प्रदान करता है ।

१७४. एक पाद ऊर्ध्व धनुरासन वारह* (चित्र ५०१ तथा ५०२)

एक का अर्थ एक है । पाद का अर्थ टाँग है । उर्ध्व का अर्थ ऊपर की ओर और धनु का अर्थ धनुष है ।

विधि

१. ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करने के बाद श्वास छोड़ें और जमीन पर से दायीं टाँग उठायें ।

२. दायीं टाँग सीधी तानें और जमीन से लगभग ४५ अंश के कोण पर रखें (चित्र ५००) ।

३. उसके बाद जमीन पर से दायाँ हाथ उठायें और दायीं जाँघ पर रखें (चित्र ५०१) । शरीर का संतुलन अब बायें हाथ और बायें पैर पर होगा (चित्र ५०१) । स्वाभाविक श्वास लेते हुए १० से १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

४. श्वास छोड़ें, हाथों तथा उठी टाँग को नीचे करें और ऊर्ध्व धनुरासन में वापस आ जायें ।

५. बायीं टाँग को उठायें और बायां हाथ बायीं जाँघ पर रखकर दायें हाथ और टाँग पर संतुलन करते हुए इस आसन को दुहरायें (चित्र ५०२) । उतने ही समय के लिए इस स्थिति में रहें ।

परिणाम

ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) से होने वाले लाभों के अतिरिक्त यह सुंदर आसन संतुलन वृत्ति को बनाता है, तथा शरीरसौष्ठव और सुघरता लाता है ।

१७५. कपोतासन इक्कीस* (चित्र ५०७ और ५१२)

कपोत का अर्थ है कबूतर। इस आसन में सीना फैल कर कबूतर की तरह फूलता है, अतः यह नाम है।

विधि (नौसिखुओं के लिए)

१. तहियाये कम्बल पर वीरासन में बैठें (चित्र ९०) ।

२. कम्बल पर पीछे की ओर झुकें और सुप्त वीरासन (चित्र ९५) करें। सिर के ऊपर भुजाएँ तानें, घुटनों को मोड़ें, अंगुलियाँ कंधे की ओर संकेत करती हुई हों, हथेलियों को कानों के पास रखें (चित्र ५०३) ।

३. हथेलियों पर भार लें और श्वास छोड़ें। भुजाएँ तानें और जाँघों को तान कर घुटने पर से पूरा शरीर उठा लें और उसके बाद घुटनों को मिला लें (चित्र ५०४) ।

४. नितम्बों को सिकोड़ें, पूरे मेरुदण्ड को तानें, कुहनियाँ मोड़ें और पैर की अंगुलियाँ पकड़ें (चित्र ५०५)। जमीन पर कुहनियाँ टिकायें (चित्र ५०६)। श्वासक्रिया तेज और श्रमसाध्य होती है क्योंकि उरःप्राचीर पूर्ण रूप से सिकोड़ा जाता है।

५. जल्दी जल्दी साँस लें, श्वास छोड़ें, जाँघों की मांसपेशियों को तान कर बस्तिप्रदेश को उठायें। धीरे धीरे एड़ियों के निकट हाथों को लाएँ और पैरों की ओर सिर लाकर उन्हें पकड लें। अब सिर के कपाल को पैरों के तलवे पर रखें (चित्र ५०७) ।

६. इस स्थिति में कुछ सेकंड तक ठहरें। अपनी शक्ति के अनुसार धीरे धीरे एक मिनट तक अपना समय बढ़ा लें।

७. श्वास छोड़ें, पैर की पकड़ को छोड़ दें और सुप्त वीरासन में पुनः आने तक अपना सिर और धड़ नीचे की ओर ले जायें (चित्र ९५) । एक-एक कर टाँगें सीधी करें और जमीन पर सुस्ताएँ।

विधि (प्रगत साधकों के लिए)

१. तहियाये कंबल पर पैरों और घुटनों को एक साथ रखकर घुटने टेक दें, नितम्बों पर हाथ रखें, जाँघों को तानें और उन्हें लंबरूप में जमीन पर रखें (चित्र ४०) ।

२. श्वास छोड़ें, चित्र ५०८ और ५०९ के अनुसार पूरे मेरुदंड को तानें, पीछे की ओर मोड़ें। भुजाएँ सिर पर से पैरों की ओर ले जायें, हथेलियाँ एडियों पर रखें और उन्हें पकड़ लें (चित्र ५१०) । श्वासक्रिया तेज और श्रमसाध्य होगी। कुछ साँसें तेजी से लें।

३. श्वास छोड़ें, मेरुदण्ड को और पीछे तानें, घुटनों को मोड़ें और उन्हें जमीन पर रखें (चित्र ५११) ।

४. गर्दन को पीछे की ओर तानें और सिर के कपाल को पैरों के तलवों पर टिकाएँ।

नितम्बों को सिकोड़ें, बस्तिप्रदेश को ऊपर उठायें, जाँघों को तानें और टखनों को पकड़ें (चित्र ५१२)।

५. जितनी देर तक रह सकें, करीब ६० सेकंड तक लयबद्ध श्वास लेते हुए इस स्थिति में रहें।

६. पैरों की पकड़ छोड़ दें। भुजाएँ फैलायें और घुटनों के बल खड़े होने तक शरीर को आगे लाएँ। फिर जमीन पर आराम करें।

परिणाम

यह आसन समग्र मेरुदण्डीय भाग को स्वस्थ एवं ठीक रखता है क्यों कि इससे स्तंभ के चारों ओर रक्त अच्छी तरह संचारित होता है। जब बस्तिप्रदेश तन जाता है, जननेंद्रिय स्वस्थ रहते हैं। उर:प्राचीर ऊपर उठता है इस कारण हृदय की सौम्य मालिश हो जाती है और उसे पुष्ट होने में मदद मिलती है। सीना पूरी तरह फैलता है। पीछे मुड़ने वाले उन अधिक कठिन आसनों को करने के पहले, जिन्हें कपोतासन और विपरीत दंडासन (चित्र ५१६) से मण्डलासन (चित्र ५२५ और ५३५) में आपके पारंगत होने तक नहीं किया जा सकता, कपोतासन में पारंगत होना आवश्यक है।

१७६. लघु वज्रासन तेईस* **(चित्र ५१३)**

लघु का अर्थ है छोटा, अल्प, सहज, साथ ही मनोरम, सुन्दर, आकर्षक। वज्र– देवताओं के राजा इन्द्र के एक आयुध का नाम है।

विधि

१. घुटनों और पैरों को साथ साथ रखें, जमीन पर घुटने टेक दें। कमर की बगल में हथेलियाँ टिकायें (चित्र ४०)।

२. श्वास छोड़ें, मेरुदण्ड को पीछे धनुष्य की तरह मोड़ें, और उसी समय जाँघों की माँसपेशियों को कसें (चित्र ५०४ और ५०६)।

३. नितम्बों को आगे करें और कपाल पैरों पर टिकने तक मेरुदण्ड को पीछे की ओर झुकाते जाएँ। मेरुदण्ड को लचीला बनाना जरूरी है, जो पर्याप्त अभ्यास के बाद संभव है। शरीर का भार केवल घुटनों पर ले लिया जाता है।

४. जब इस स्थिति पर पूर्ण अधिकार कर लिया जाय तब कमर पर से हाथ हटा दें, कंधों से भुजाएँ सीधी तानें और बायें हाथ से बायाँ घुटना तथा दायें से दायां घुटना पकड़ें (चित्र ५१३)।

५. मेरुदण्ड के ताने जाने से तथा उदर पर दबाव पड़ने से श्वासक्रिया तेज और कष्टकर होगी। स्वाभाविक श्वास लेते हुए करीब १० से १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

६. श्वास छोड़ें, घुटनों को स्थिर रखें और धड़ को पुन: घुटनों के टेकने तक उठाते जाएँ। उसके बाद जमीन पर बैठें और आराम करें।

परिणाम

यह आसन मेरुदण्डीय नाड़ियों को ठीक करता है और गुदास्थि (मेरुदण्ड की अन्तिम तिकोनी हड्डी) को व्यायाम देता है। यदि नियमित रूप से इस आसन का अभ्यास किया जाए तो यह आसन मेरुदण्ड के निचले भाग में होनेवाले दर्द और स्थलांतरित चक्की को ठीक करता है। धनुषाकार होने से उदर की मांसपेशियाँ और सीना पूर्ण रूप से फैलता है।

१७७. द्विपाद विपरीत दण्डासन चौबीस* (**चित्र ५१६**)

द्विपाद का अर्थ है दोनों पैर। विपरीत का अर्थ है विपर्यय या उलटा। दण्ड का अर्थ है दण्डा, छड़ का एक प्रतीक – अधिकार या दण्ड साथ ही साथ शरीर और उसका साष्टांग रूप। हिन्दु भक्त अपने भगवान के सामने हाथों को बाहर फैलाये जमीन पर अधोमुख लेट कर साष्टांग दण्डवत् करता है। परंतु दूसरी ओर योगी स्वयं निम्न वर्णित आकर्षक चापाकृति में साष्टांग दण्डवत् करता है।

विधि (नौसिखुओं के लिए)

१. पीठ के बल जमीन पर लेट जायें (चित्र २१९)।

२. सिर के ऊपर अपनी भुजाएँ ले जाएँ, कुहनियों को मोड़ लें और अंगुलियाँ पैरों की ओर संकेत करती हुई हों, हथेलियाँ कंधों के नीचे रखें, घुटनों को भी मोड़ें और उठायें; नितम्बों के पास पैर लायें और उन्हें जमीन पर रखें (चित्र ४७९)।

३. श्वास छोड़ें और उसी समय सिर और धड़ को उठायें और जमीन पर सिर का कपाल का भाग टिकायें (चित्र ४८०)। कुछ साँस लें।

४. श्वास छोड़ें, टाँगें फैलायें। फिर हाथ, सिर तथा गर्दन पर भार डालते हुए बारी बारी से दोनों टाँगों को सीधा करें (चित्र ५१४)।

५. जमीन पर से बायां हाथ उठा लें और कुहनियों को जमीन पर टिकाये हुए उसे सिर के पीछे रखें (चित्र ५१५), दो श्वास लें।

६. अब दायां हाथ हटा लें और जमीनपर कुहनी रखें, हाथ सिर के पीछ ले जायें, अंगुलियों को परस्पर गुँथाएँ और गुँथे हुए हाथ सिर के पीछे रखें। यह अंतिम अवस्था है (चित्र ५१६)। इसमें हाथों और सिर की स्थिति सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १९०) के समान होगी।

७. उर:प्राचीर के सिकुड़े होने से श्वासक्रिया तेज और लघु होगी। कुछ साँस लें, श्वास छोड़ें और जमीन पर जितना ऊँचे उठा सकें, उतना कंधों, सीना, धड़, नितम्ब,

वाँहों और पिंड़ली को उठायें। बस्तिप्रदेश से टखनों तक टाँगें सीधी रखें। जमीन में एड़ियाँ धसायें और इस स्थिति में अपनी शक्ति के अनुसार एक से दो मिनट तक रहें।

८. पैरों को सिर की ओर ले जायें, घुटनों को मोड़ें, गुँथी हुई अंगुलियों को खोल दें, जमीन पर से सिर उठायें, धड़ को नीचे करें और आराम करें।

९. गर्दन, सीना और कंधे पूर्णतया फैले हुए होने चाहिए और जमीन पर से यथासंभव वस्तिप्रदेश ऊपर उठना चाहिए। आरंभ करते समय गर्दन जमीन पर लम्बरूप में नहीं होगी जब कि होनी चाहिए और सिर तथा हाथों की झुकने की प्रवृत्ति होगी। इसलिए दीवार के सहारे पैरों को टिकायें और मेरुदण्ड तथा टाँगें फैलाते समय जमीन पर सिर तथा पैरों के बीच का अंतर व्यवस्थित होने तक कुहनियाँ दबाने के लिए अपने मित्र से कहें।

विधि (कुशल साधकों के लिए)

१. सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १९०) करें, घुटनों को मोड़ें और चित्र ५१७, ५१८ और ५१९ में निर्दिष्ट कुछ विविध क्रियाओं का अनुसरण करते हुए टाँगें जमीन पर पीछे रखें।

२. जमीन पर से बिना कुहनियाँ उठाये और जमीन पर सिर की स्थिति में बिना किसी परिवर्तन किए यह किया जाना चाहिए।

३. एक-एक कर टाँगें सीधी तानें (चित्र ५२० और ५१६) और उसी समय मेरुदण्ड के कटि और पीठ के भाग को उठायें और सीधा तानें। जमीन पर एडियाँ कसकर रखें।

४. नितम्बों को सिकोड़ें, बस्तिप्रदेश को ऊपर उठायें और घुटनों, जांघों तथा पिण्डलियों को कसें।

५. स्वाभाविक श्वास लेते हुए एक या दो मिनट तक इस परिस्थिति में रहने का प्रयत्न करें।

६. उसके बाद घुटनों को मोड़ें, और एक उच्छ्वसन के साथ टाँगों को उठाकर सालम्ब शीर्षासन एक में ले जाएँ। गहरी साँस लेते हुए कुछ सेकंड तक ठहरें और टाँगों को जमीन की ओर नीचे करें। अंगुलियों की पकड़ ढीली करें, जमीन पर से सिर उठायें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े रहें या विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) में आ जायें।

परिणाम

यह आनंददायक आसन मेरुदण्ड को मजबूत और स्वस्थ रखता है, इससे सीना पूर्ण रूप से फैलता है। इसके साथ व्यक्ति शीर्षासन के लाभ का भी अनुभव करता है। मेरुदण्ड के गुदास्थि प्रदेश के दर्द को दूर करने के लिए यह आसन उपयोगी बतलाया

गया है । यह आसन मनःशांति के लिए अत्यंत प्रभावकारी है इसलिए अति भावुक दुःखी व्यक्ति इसे एक महान् वरदान मानता है ।

१७८ एकपाद विपरीत दण्डासन एक छब्बीस* (चित्र ५२१)

एक का अर्थ है एक और पाद का अर्थ है टाँग या पैर । विपरीत का अर्थ है उलटा या विपर्यय । दण्ड डंडा या छड़ है जो अधिकार या दंड का प्रतीक है, उस का अर्थ शरीर भी है । यह आसन द्विपाद विपरीत दंडासन (चित्र ५१६) की आगे की क्रिया है ।

विधि

१. द्विपाद विपरीत दण्डासन करें (चित्र ५१६) ।

२. श्वास छोड़ें और विपरीत दण्डासन (चित्र ५२१) में दायीं टाँग जमीन पर रखते हुए बायीं टाँग लम्बरूप में उठायें ।

३. स्वाभाविक श्वास लेते हुए दस सेकंड तक इस स्थिति में रहें ।

४. बायीं टाँग को नीचे करें और विपरीत दण्डासन में आ जायें । उच्छ्वसन के साथ दायीं टाँग को लम्बरूप रखते हुए उतने ही समय के लिए इस आसन को दुहरायें ।

५. विपरीत दण्डासन में वापस आ जायें और जमीन पर आराम करें ।

६. प्रगत साधक उच्छ्वसन के साथ दोनों टाँगों को सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १९०) में ऊपर ले जा सकते हैं । बाद में उन्हें जमीन की ओर नीचे करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े रहें अथवा विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) में आ जायें ।

परिणाम

यह आसन मेरुदण्ड को ठीक करता है और सीने को पूरी तरह फैलाता है । इसके साथ ही शीर्षासन से होनेवाले (चित्र १९०) परिणाम भी इसमें होते हैं । यह आनंदप्रद आसन मन को शांत करता है ।

१७९ एकपाद विपरीत दण्डासन दो उन्तीस* (चित्र ५२३)

यह पहले के आसन का अत्यंत दुष्कर प्रकार है ।

विधि

१. द्विपाद विपरीत दण्डासन (चित्र ५१६) करें ।

२. सिर की ओर दोनों पैर ले जायें ।

३. अंगुलियों को छोड़ दें और कलाइयों को फैलायें और हथेलियों को जमीन पर रखें ।

४. उच्छ्वसन के साथ जमीन पर से सिर ऊपर उठायें और टाँगों की ओर गर्दन को तानें और दायीं टाँग को हाथों के निकट ले आयें ।

५. दोनों हाथों से दायें टखने को पकड़ें और पूरे पैर को जमीन पर रखें (चित्र ५२२) ।

६. जब टखने की पकड कड़ी हो जाय, तब श्वास छोड़ें और कंधों को तानते तथा मेरुदण्ड को फैलाते हुए बायीं टाँग को लम्बरूप में ऊपर उठायें । घुटना कसे हुए टाँग को ऊपर रखें (चित्र ५२३)।

७. करीब १० से १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें । उदर की मांसपेशियों के कारण श्वास क्रिया तेज और कठिन होगी ।

८. बायीं टाँग जमीन पर लायें ।

९. दायें टखने को छोड़ दें और बायें को पकड़ें । अब दायीं टाँग को लम्बरूप में उठाते हुए ऊपर वर्णित स्थिति को दुहरायें । उतने ही समय के लिए दूसरी ओर इस आसन में रहें । उसके बाद उठी टाँग को नीचे करें ।

१०. घुटने को छोड़ दें और उच्छ्वसन के साथ सालम्ब शीर्षासन के लिए टाँगें ऊपर ले जायें (चित्र १९०) । बाद में उन्हें जमीन पर रखें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन में खड़े रहें । या विपरीत चक्रासन में आ जायें (चित्र ४८८ से ४९९) ।

परिणाम

इस आसन में उदर की मांसपेशियों को व्यायाम मिलता है और मेरुदण्ड ठीक होता है । चूंकि इसमें झुकाव अधिक कठिन होता है, इस कारण उसके अनुरूप परिणाम भी अधिक है ।

१८०. चक्रबन्धासन इकत्तीस* (चित्र ५२४)

चक्र का अर्थ है नाड़ी-केंद्र, मानवीय शरीर-यंत्र में संतुलन चक्र । बन्ध का अर्थ है श्रृंखला या बंधन । मेरुदण्ड प्रदेश में जहाँ-जहाँ नाड़ियाँ एक दूसरे से होकर गुजरती हैं वह वह स्थान चक्र कहलाते हैं । सात चक्र मानव शरीर में हैं । वे हैं : (१) मूलाधार चक्र (pelvic plexus); (२) स्वाधिष्ठान चक्र (hypogastric plexus); (३) मणिपूरक चक्र (solar plexus) (सौर तंतुजाल); (४) अनाहत चक्र (cardiac plexus) (हृदय तंतुजाल); (५) विशुद्ध चक्र (pharynecal plexus); (६) आज्ञा चक्र (plexus of command between the two eyebrows) (दोनों भौहों के मध्य आज्ञा–तंतुजाल); तथा (७) सहस्रारचक्र (thousand petalled lotus, upper cerebral centre) (सहस्रदल कमल, प्रधान मस्तिष्क केंद्र) । चक्र सूक्ष्म हैं और आसानी

से नहीं जाने जाते हैं। यद्यपि इनकी तुलना विभिन्न तंतुजालों से की जाती है, पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि तंतुजाल मात्र ही चक्र हैं।

विधि

१. द्विपाद विपरीत दण्डासन करें (चित्र ५१६)।

२. उच्छ्वसन के साथ सिर की ओर दोनों पैर करें।

३. अंगुलियाँ छोड़ दें, कलाइयाँ फैलायें और पैरों की ओर संकेत करती हुई अंगुलियों से हाथों को जमीन पर रखें। दो साँस लें।

४. उच्छ्वसन के साथ जमीन पर से सिर ऊपर उठायें, गर्दन को टाँगों की ओर बढ़ाकर दोनों पैरों को हाथों के निकट ले आयें।

५. बाद में दायें हाथ से दायें टखने को पकड़ लें और बायें टखने को बायें हाथ से। जमीन पर पैरों को रखें। दो साँस लें।

६. टखनों को कसकर पकड़ें और उच्छ्वसन के साथ जमीन पर पैरों और कुहनियों को दबायें और कंधों तथा जाँघों को फैलाकर धड़ को धनुषाकार बनायें (चित्र ५२४)।

७. १० से १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें। साँस तेज चलेगी।

८. टखनों की पकड़ को छोड़ दें, सिर का कपाल जमीन पर रखें और सिर के पीछे अंगुलियाँ परस्पर गुँथाएँ। एक उच्छ्वसन के साथ सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १९०) में टाँगें ऊपर ले आयें और उसके बाद उन्हें जमीन की ओर नीचे करें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) करें या ताड़ासन में खड़े रहें।

परिणाम

सभी चक्र उत्तेजना प्राप्त करते हैं। यह आसन गुर्दाग्रंथियों (adrenal glands) को स्वस्थ रूप से क्रियाशील होने में मदद करता है। गुह्यद्वार, गुर्दाओं, गर्दन और नेत्र की मांसपेशियों को व्यायाम मिलता है।

१८१ मण्डलासन सत्ताईस* **(चित्र ५२५ से ५३५)**

मण्डल का अर्थ चक्र, अंगूठी, परिघ या वृत्त है। सिर और हाथों को सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १९०) की स्थिति में रखकर सिर के बायीं से दायीं ओर और उसके बाद दायीं से बायीं ओर घूमें। आपके पैर सिर के चारों ओर गोल-गोल चक्कर लगायेंगे, जबकि स्वयं सिर स्थिर रहेगा।

विधि

१. द्विपाद विपरीत दण्डासन (चित्र ५२५) करें।

२. सिर की स्थिति में बिना परिवर्तन किये कंधों और सीने को जितना ऊंचा हो सके, उठायें।

३. टाँगें बगल की ओर एक के बाद एक घड़ी की सूई के समान घुमायें और इस तरह सिर के चारों ओर वर्तुल बनायें। जब टाँगें ३ बजे या ९ बजे की स्थिति में आ जाएँ तब विपरीत दिशा के कंधे को जरा सा उठायें और सीने को उठायें तथा आगे निकाले हुए, चित्रों में बतलाये गये अनुसार धड़ को घुमायें (चित्र ५२५ से ५३५) मेरुदण्ड को ३६० अंश की मण्डलाकार परिक्रमा दी जाती है।

४. घड़ी के समान पूरा चक्कर लगाने के बाद जरा ठहरें और कुछ गहरी साँसें लें। उसके बाद उलटे क्रम में चित्रों का अनुसरण करते हुए दायीं से बायीं ओर चक्राकार गति को दुहराएँ।

५. पूरा लचीलापन पाने के लिए यह आवश्यक है कि ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) में विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) के अभ्यास से मेरुदण्ड को पहले लचीला बनाया जाय। शुरू-शरू में गर्दन और कंधे जमीन की ओर झुकते हैं। पर जब वे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेते हैं और पीठ लचीली बन जाती है तब यह आसन करने में सुगमता है।

परिणाम

चक्राकार गति में धड़ और उदर एक तरफ सिकुड़ जाते हैं और दूसरी ओर फैल जाते हैं। इससे मेरुदण्ड तथा उदर के अवयव सुगठित बनते हैं। स्वास्थ्य-वृद्धि होती है तथा आयु भी बढ़ती है।

१८२ वृश्चिकासन एक बत्तीस* (चित्र ५३६ और ५३७)

वृश्चिक का अर्थ है विच्छू। बिच्छू शिकार को डंक मारने के लिए अपनी पूंछ पीठ की ओर धनुष के समान मोड़ता है और सिर के परे डंक मारता है। यह आसन आक्रामक बिच्छू का अनुकरण करता है; अतः यह नाम पड़ा है।

विधि

१. जमीन पर घुटने टेकें। आगे की ओर झुकें और जमीन पर कुहनियों, हाथों और हथेलियों को एक-दूसरे के समानान्तर रखें। कंधों के बीच का अंतर हाथों के बीच के अंतर से अधिक नहीं होना चाहिए।

२. गर्दन तानें और जमीन पर से सिर यथाशक्ति ऊँचा उठायें।

३. श्वास छोड़ें, टाँगें और धड़ को ऊपर उछालें और सिर के बाहर टाँगों को बिना गिराये संतुलन बनाये रखने की कोशिश करें। कुहनी से कंधों तक भुजाओं को जमीन-पर लम्बरूप में रखकर सीने के भाग को लंबरूप में ऊपर तानें।

४. टाँगों को लम्बरूप में ऊपर तानें और संतुलन करें। यह पिंच मयूरासन है (चित्र ३५७)। हाथों पर संतुलन बनाये रखने के बाद श्वास छोड़ें, घुटनों को मोड़ें, जमीन पर से यथाशक्ति गर्दन और सिर ऊपर ऊँचा उठायें, कंधों से मेरुदण्ड को तानें

और एड़ियाँ कपाल पर स्थिर होने तक पैर नीचे करें (सामने की छवि : चित्र ५३६) । इसे सीख लेने के बाद घुटनों और टखनों को एकसाथ रखने तथा अंगुलियाँ आगे की ओर सीधी रखने का प्रयत्न करें (पार्श्व छवि: चित्र ५३७) । एड़ी से घुटनों तक टाँगें सिर के लंबरूप में होनी चाहिए। नलियों और भुजाओं के ऊपरी भाग एक दूसरे के समानान्तर होने चाहिए ।

५. इस आसन में गर्दन, कंधे, सीना, मेरुदण्ड और उदर—सब तने होते हैं इसलिए श्वासक्रिया बहुत तेज और भारी होगी। स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयत्न करें; करीब ३० सेकंड तक यथासंभव इस आसन में रहें ।

६. अपनी शक्ति के अनुसार इस आसन में रहने के बाद, सिर के परे जमीन पर टाँगें रखें, कुहनियाँ जमीन पर से उठायें और ऊर्ध्व धनुरासन करने के लिए भुजाएँ सीधी करें (चित्र ४८६) ।

७. बाद में या तो ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों या विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) करें।

८. वृश्चिकासन के कारण पीठ पर पड़े दबाव को दूर करने के लिए आगे की ओर झुककर और बिना घुटनों को मोड़े हथेलियों से जमीन का स्पर्श करें——उत्तानासन (चित्र ४८) ।

१८३ वृश्चिकासन दो तैंतीस* (चित्र ५३८)

यह आसन पहले के आसन की अपेक्षा अधिक कठिन है, कारण पूरा संतुलन केवल बाँह पर करना पड़ता है। अधोमुख वृक्षासन (चित्र ३५९) करते समय इसका अभ्यास किया जाता है ।

१. ताड़ासन में खड़ हों (चित्र १) । आगे झुकें और हथेलियाँ जमीन पर रखें। कंधों के बीच के अंतर के बराबर दोनों हाथों के बीच का अंतर होना चाहिए। भुजाओं को पूरी तरह फैला कर रखें ।

२. टाँगें उठायें और घुटनों को मोड़ें, श्वास छोड़ें, धड़ और टाँगें लम्बरूप में ऊपर उछालें और हाथों पर संतुलन करें । जमीन पर से यथासंभव गर्दन और सिर को ऊँचा उठायें । यह है अधोमुख वृक्षासन (चित्र ३५९)।

३. संतुलन बना लेने के बाद श्वास छोड़ें, घुटने मोड़ें, मेरुदण्ड और सीना तानें और एड़ी के कपाल पर टिकने तक पैरों को नीचे करें । पैर की अंगुलियाँ सामने की ओर रखें । घुटनों तथा टखनों को संतुलन के समय मिलाकर रखने का प्रयत्न करें। नलियों को सिर के लम्बरूप और भुजाओं को जमीन के लम्बरूप में रखें । नलियाँ और भुजाएँ एक दूसरे के समानान्तर होनी चाहिए (चित्र ५३८) ।

४. इस स्थिति में संतुलन बनाना अत्यंत कठिन है। क्योंकि पूर्ववर्णित पिंच मयूरासन (चित्र ५३७) की अपेक्षा इसका करना अधिक कठिन है ।

५. इस आसन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए अत्यत सशक्त मणिबन्धों की, दृढ संकल्प तथा निरंतर अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। चूँकि गर्दन, कंधे, सीना और मेरुदण्ड फैले होते हैं और उदर संकुचित होता है इसलिए श्वासक्रिया तेज और कष्टकर होगी। स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयास करें और १० से १५ सेकंड तक जितना हो सके इस आसन में रहें।

६. ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करने के लिए सिर के परे टाँगें ले जायें तथा या तो ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों या विपरीत चक्रासन करें (चित्र ४८८ से ४९९)

७. वृश्चिकासन के कारण होनेवाले पीठ पर के तनाव को दूर करने के लिए आगे की ओर झुकें और घुटनों को मोड़ें बिना हथेलियों से जमीन का स्पर्श करें–उत्तानासन (चित्र ४८)।

परिणाम

जब उदर की मांसपेशियां तन जाती हैं तब फुप्फुस पूरी तरह फैलते हैं। पूरा मेरुदण्ड सशक्त रूप में ठीक किया जाता है और स्वस्थ रहता है। इस आसन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी है। सिर, जो ज्ञान और शक्ति का स्थान है, वह गर्व, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, असहिष्णुता, और मत्सर का भी स्थान है। विच्छू के डंक में होनेवाले विष से भी ये भावनाएँ अधिक विषैली हैं। योगी अपने पैरों मे सिर पर मार देकर, आत्म-नाशक भावनाओं और वासनाओं को उन्मूलित करने का प्रयत्न करता है। अपने सिर में पदाघात कर योगी विनयशीलता, शांति और सहिष्णुता को बढ़ाता है और इस तरह अहंकार से भी मुक्त होने का प्रयास करता है। अहंकार-दमन से एकतानता और आनंद की प्राप्ति होती है।

१८४. एकपाद राजकपोतासन एक अट्ठाईस* (चित्र ५४२)

एक का अर्थ एक है, पाद का अर्थ है टाँग या पैर और कपोत का अर्थ है कबूतर। राजकपोत का अर्थ कपोतों का राजा है। इस आसन में होंठ आगे निकालनेवाले कबूतर की भाँति सीने को आगे की ओर ताना जाता है, इसलिए आसन का यह नाम है।

विधि

१. सामने सीधे टाँगें फैलाकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. दायें घुटने को मोड़ें और दायां पैर जमीन पर रखें जिससे दायीं एड़ी बायीं ऊरुसन्धि का स्पर्श करे। दायां घुटना जमीन पर रखें।

३. बायीं टाँग को पीछे ले जायें, पूरी लम्बाई के साथ इसे जमीन पर सीधे रखें।

तब बायीं जाँघ का अगला हिस्सा, घुटना, नली का अग्रभाग तथा बायें पैर की अंगुलियों का ऊपरी भाग जमीन पर होगा ।

४. कमर पर हथेलियाँ रखें, सीने को आगे की ओर निकालें, गर्दन तानें और यथासम्भव सिर को पीछे की ओर ले जायें तथा आसन की प्रारंभिक गति में कुछ समय तक संतुलन बनायें (चित्र ५३६) ।

५. अब जमीन पर सामने हाथ रखें, बायां घुटना मोड़ें और बायां पैर सिर के निकट ऊपर उठायें । टखने से घुटने तक बायीं टाँग जमीन के लम्बरूप में होनी चाहिए और इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए बायीं जाँघ की मांसपेशियों को तानें ।

६. एक उच्छ्वसन के साथ दायीं बाँह सिर पर ले जायें और दायें हाथ से बायां पैर पकड़ें (चित्र ५४०), कुछ साँसें लें । तब पुनः श्वास छोड़ें और बायें हाथ से बायां पैर पकड़ें । बायें पैर पर सिर को टिकायें (चित्र ५४१)।

७. सीने को आगे की ओर तानें, हाथों को नीचे की ओर ले जायें और टखनों को पकड़ें और सिर नीचे करें जिससे ऊपरी होंठ बायीं एड़ी को छू लें (चित्र ५४२)। करीब १० सेकंड तक इस स्थिति में रहें । इसमें उदर सिकोड़ा जाता है, सीना पूरी तरह फैलता है और इस कारण श्वासक्रिया तेज होती है । प्रयत्न करें और स्वाभाविक रूप से श्वास लें ।

८. एक एक कर बायें टखने पर की हाथों की पकड़ को ढीला करें और हथेलियाँ जमीन पर रखें । बायीं टाँग सीधी करें और सामने ले जायें, बाद में दायीं टाँग सीधी करें ।

९. उतने ही समय के लिए दूसरी ओर इस आसन को दुहरायें । इस बार बायां पैर दायीं ऊरुसन्धि का स्पर्श करेगा; दायी टाँग पीछे की ओर तनी होगी और दायां पैर सिर के ऊपर फैले दोनों बाहों से पकड़ा जायेगा ।

१८५ वालखिल्यासन पैंतालीस* (चित्र ५४४)

वालखिल्य सृष्टि कर्ता के शरीर से उत्पन्न अंगूठे के आकार के दिव्य पुरुष थे । उनके संबंध में कहा जाता है कि वे साठ हजार की संख्या में हैं और सूर्य के रथ के आगे चलते हैं । कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य में उनका उल्लेख है । यह दुष्कर आसन एकपादराजकपोतासन एक (चित्र ५४२) के आगे की अवस्था है । (एकपाद राजकपोतासन एक– जो पूर्वोक्त ढंग से आसानी से और अच्छी तरह किया जा सकता है– पर प्रभुत्व प्राप्त किये बिना इस आसन के लिए प्रयास न करें ।)

विधि

१. एकपाद राजकपोतासन एक (चित्र ५४२) करें । दोनों हाथों से बायें टखने को पकड़ने के बाद नितम्बों को सिकोड़ें और गुदास्थि को ऊपर करें । टखने को

बिना छोड़े बायीं टाँग पीछे करें (चित्र ५४३) और कुछ साँसें लें ।

२. श्वास छोड़ें, भुजाओं को आगे फैलायें और जमीन पर समतल होने तक टाँग को नीचे ले जायें । जाँघ से लेकर अंगुलियों तक टाँग के आगे के पूरे भाग को जमीन का स्पर्श करना चाहिए (चित्र ५४४) ।

३. कुछ सेकंड तक इस आसन में रहें । तब उदर के अवयव सिकुड़ जाते हैं, सीना पूरी तरह फैल जाता है, फलस्वरूप श्वासक्रिया तेज और कठिन होगी ।

४. टखने की पकड़ छोड़ें, पीठ को सीधा करें और थोड़े समय तक आराम करें ।

५. उतने ही समय के लिए इस आसन को दूसरी ओर दुहरायें ।

परिणाम

यह आसन जानु शीर्षासन (चित्र १२७) की प्रतिक्रिया है और मेरुदण्ड के निम्न भाग को पुनर्यौवन देता है । कटचस्थि भाग (पुरोनितम्बीय भाग) में अधिक रक्त संचरित होता है और वह स्वस्थ रहता है । इस आसन और राज-कपोतासन माला की अन्य स्थितियों का अभ्यास करने से मूत्रप्रणाली के दोष दूर हो जाते हैं । गर्दन और कंधों की मांसपेशियों को पूरी तरह व्यायाम मिलता है । कंठग्रंथि (thyroids), उपकंठग्रंथि (parathyroids), गुर्दा भाग तथा जननग्रंथियाँ प्रचुर मात्रा में रक्त प्राप्त करती हैं, जिससे व्यक्ति के पौरुष की वृद्धि होती है । कामवासना के नियंत्रण के लिए यह आसन और राज कपोतासन माला के अन्य आसन उपयोगी बताये गये हैं ।

१८६. एकपाद राजकपोतासन दो उन्तीस* (चित्र ५४५)

विधि

१. सामने सीधी टाँग फैलाकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७) ।

२. दायां घुटना मोड़ें और दायें पैर का तलवा और एड़ी को जमीन पर समतल रखें । दायीं टाँग की नली जमीन पर बहुतांश लंबरूप में होगी और पिंडली जाँघ के पृष्ठभाग का स्पर्श करेगी । दायीं एड़ी को मूलाधार (गुह्य भाग) के निकट रखें । अब दायीं टाँग मरीच्यासन एक (चित्र १४४) में होगी ।

३. बायीं टाँग को पीछे करें और पूरी लम्बाई के साथ जमीन पर टिकायें ।

४. बायीं नली को जमीन के लम्बरूप होने तक बायीं टाँग को घुटने के पास मोड़ें । दायें पैर और बायें घुटने पर शरीर का संतुलन बनायें । संतुलन बनाने के लिए दायीं जाँघ जमीन के समानान्तर होने तक जमीन से ४०° के कोण पर नली होने तक दायें घुटने को आगे की ओर करें ।

५. एक उच्छ्वसन के साथ दायीं भुजा सिर पर ले जायें और दायें हाथ से बायें पैर को कसकर पकड़ें । कुछ साँस लें और पुनः उच्छ्वसन के बाद बायीं भुजा को

सिर के ऊपर ले जायें और बायें हाथ से उसी पैर को अच्छी तरह पकड़ लें। सिर को पैर पर टिकायें (चित्र ५४५)।

६. सीने को आगे की ओर तानें और १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

७. सीने के फैलाव और उदर के संकुचन के कारण श्वासक्रिया तेज होगी। इसे स्वाभाविक रखने की कोशिश करें।

८. टखनों पर की पकड़ ढीली करें और टाँगें सीधी करें।

९. दूसरी ओर आसन को दुहरायें। इस बार बायीं टाँग मरीच्यासन एक में होगी, दायां पैर बायें हाथ द्वारा पकड़ा जायगा और उस पर सिर टिकाने से संतुलन बनाया जाता है। दोनों ओर उतने ही समय के लिए इस स्थिति में रहें।

१०. एकबार संतुलन बनाने की कठिनाई पर सफलता प्राप्त कर ली जाय तो यह आसन पहले से सुगमतर हो जाता है।

१८७ एकपाद राजकपोतासन तीन तीस* (चित्र ५४६)

विधि

१. सामने दोनों टाँगें सीधी तानकर जमीन पर बैठें (चित्र ७७)।

२. घुटने के पास बायीं टाँग को मोड़ें जिससे अंगुलियाँ पीछे की ओर हों और बायें नितम्ब के पास जमीन का स्पर्श करें। बायीं पिण्डली का अन्तर्भाग बायीं जाँघ के बहिर्भाग के साथ छूना चाहिए और बायें घुटने को जमीन पर रखा जाना चाहिए। बायीं टाँग वीरासन में न होगी (चित्र ८९)।

३. दायीं टाँग पीछे ले जायें और जमीन पर सीधी लम्बी रखें।

४. हथेलियाँ जमीन पर रखें। श्वास छोड़ें, दायें घुटने को मोड़ें और बायां पैर सिर के पास ऊपर ले जायें। घुटने से टखने तक दायीं नली जमीन पर लम्बरूप होनी चाहिए। और इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए दायीं जाँघ की मांसपेशियों को कसें और कुछ साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, मेरुदण्ड और गर्दन को तानें, सिर पीछे करें और एक-एक कर भुजाओं को सिर के ऊपर ले जाकर दायें पैर को पकड़ लें और उस पर सिर टिकायें (चित्र ५४६)। १५ सेकंड तक संतुलन करें और स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयास करें।

६. दायें टखने पर की पकड़ छोड़ दें और टाँगों को सीधा करें।

७. दूसरी ओर उतने ही समय के लिए इस आसन को दुहरायें। अब दायीं टांग वीरासन में होगी और सिर बायें पैर पर टिकेगा जो सिर के ऊपर ले जाये गये हाथों से पकड़ा हुआ होगा।

१८८ एकपाद राजकपोतासन चार चालीस* (चित्र ५४७)

विधि

१. जमीन पर घुटने टेकें और हथेलियाँ शरीर के दोनों ओर रखें। घुटनों को ऊपर उठायें। दायीं टाँग को आगे लायें और बायीं टाँग पीछे करें और एक उच्छ्वसन के साथ दोनों टाँगों को सीधा तानें। सामने टाँग के पृष्ठभाग और पीछे टाँग के ऊपरी भाग को जमीन का स्पर्श होना चाहिए। अब टाँगें हनुमानासन (चित्र ४७५) में होंगी, जो पाश्चात्य बैले नृत्य की एक मुद्रा के समान है।

२. सीने को आगे की ओर निकालें, गर्दन को बढ़ायें और जितना हो सके सिर को पीछे ले जायें। बायाँ घुटना मोड़ें और बायें पैर को सिर के पास ऊपर ले जायें। घुटने से टखने तक बायीं नली जमीन पर लंबरूप होनी चाहिए।

३. एक उच्छ्वसन के साथ बायीं भुजा को सिर के ऊपर ले जायें और बायें हाथ से बायाँ पैर पकड़ लें। कुछ साँस लेने के बाद पुनः श्वास छोड़ें, दायीं भुजा सिर के ऊपर ले जायें और दायें हाथ से बायें पैर को पकड़ें और उस पर सिर टिकायें (चित्र ५४७)।

४. करीब १० सेकंड तक इस स्थिति में रहें। बायें पैर की पकड़ को छोड़ दें और हनुमानासन में वापस आ जायें (चित्र ४७५)। हथेलियाँ जमीन पर रखते हुए जमीन पर से नितम्बों को उठायें।

५. इस बार सामने बायीं टाँग को जमीन पर सीधे फैलाते हुए हनुमानासन में वापस आ जायें। दायें घुटने को मोड़ें और बायां पैर सिर के पास ऊपर रखें।

६. दायें पैर को पकड़ कर तथा उस पर सिर टिकाकर इस आसन को दुहरायें। इस ओर भी उतने ही समय के लिए ठहरें।

एकपाद राजकपोतासन माला के परिणाम

ये स्थितियाँ मेरुदण्ड के कटि और पृष्ठभाग को नवजीवन देती हैं। गर्दन और कंधों की मांसपेशियों को पूरा व्यायाम मिलता है और टाँगों की विभिन्न स्थितियाँ टखनों और जांघों को मजबूत करती हैं। कंठग्रन्थि, उपकंठग्रंथि, गुर्दे, जनन-ग्रंथियाँ पर्याप्त मात्रा में रक्त प्राप्त करती हैं और अच्छी तरह क्रियाशील होती हैं; इससे जीवनीशक्ति बढ़ती है। इन स्थितियों में पुरोनितम्बीय भाग (कट्यस्थि भाग) में रक्त संचरित होता है, जो व्यक्ति को स्वस्थ रखता है। ये आसन मूत्र प्रणाली के दोष और कामवासना को नियंत्रित करने के लिए उपयोगी बतलाये गये हैं।

१८९ भुजंगासन दो सैंतीस* (चित्र ५५०)

भुजंग का अर्थ है साँप। यह आसन राजकपोतासन (चित्र ५५१) की प्रारंभिक

स्थिति है और दंश करने को सन्नद्ध सर्प की आकृति के समान है ।

विधि

१. पेट के बल जमीन पर लेट जायें । कुहनियां मोड़ें और कमर के किसी एक तरफ जमीन पर हथेलियाँ रखें ।

२. श्वास छोड़ें, भुजाओं को पूरी तरह तान कर पुरोनितम्बीय भाग और टाँगों को खिसकाये बिना सिर और धड़ ऊपर उठायें और पीछे करें (चित्र ७३) ।

३. कुछ सेकंड के लिए स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए इस स्थिति में रहें ।

४. श्वास छोड़ें । घुटने मोड़ें और पैरों को ऊपर उठायें । बस्तिप्रदेश, जांघों तथा हाथों पर शरीर–भार का अनुभव होगा । कुछ साँस लें ।

५. दायें हाथ पर अधिक दबाव देकर जमीन पर से बायां हाथ उठायें और एक गहरे उच्छ्वसन के साथ कंधे पर से बायीं भुजा झुलाकर पीछे ले जायें और बायें घुटने की चक्की पकड़ें (चित्र ५४८) । कुछ साँस लेने के बाद, तेज और गहरी सांसें लें, दायीं भुजा कंधे पर से झुलाकर पीछे की ओर ले जायें और हाथ से दायें घुटने की चक्की पकड़ें (चित्र ५४९) ।

६. घुटनों की पकड़ को ढीला किये बिना पुनः टाँगें जमीन पर सीधी तानें । गर्दन तानें तथा जितना पीछे कर सकें उतना सिर को पीछे करें (चित्र ५५०) । धीरे धीरे दोनों घुटनों को यथासम्भव निकट लाने का प्रयत्न करें ।

७. गुदा को सिकोड़ें, जाँघों को कसें और करीब १५–२० सेकंड तक इस स्थिति में रहें । जब उदर सिकोड़ा जाता है तब मेरुदण्ड, सीना और कंधे पूरी तरह फैलते हैं और श्वासक्रिया तेज और कठिन होती है ।

८. घुटने मोडें, घुटनों की चक्कियों से एक एक कर हाथ हटायें और जमीन पर टिकायें ।

परिणाम

यह आसन भुजंगासन एक (चित्र ७३) का तीव्रतर स्वरूप होने के कारण इसके परिणाम भी अधिक हैं । इसमें मेरुदण्ड के–– त्रिकोण, कटि व पृष्ठभाग को तो लाभ पहुंचता ही है, साथ ही गर्दन और कंधे की मांसपेशियों को भी फायदा होता है, क्योंकि इन मांसपेशियों पर काफी तनाव पड़ता है । इस आसन में पुरोनितम्बीय भाग में अधिक रक्त संचरित होने से वह होता है । कंठग्रंथि (गलग्रंथि), उपकंठग्रंथि, मूत्रजननेंद्रिय (वृक्कशिर), जननग्रंथियों को प्रचुर मात्रा में रक्त प्राप्त होता है और यह जीवनशक्ति की वृद्धि में परिणामकारी होता है । सीना भी पूर्णतया फैलता है ।

१९० राजकपोतासन अड़तीस* (चित्र ५५१)

राजकपोत का अर्थ कबूतर का राजा है। यह बहुत आकर्षक परंतु कठिन आसन है। अकड़कर चलनेवाले कबूतर की भाँति सीने को आगे की ओर किया जाता है, अतः यह नाम है।

विधि

१. पूरी लम्बाई में जमीन पर पेट के बल लेटें, कुहनियाँ मोड़ें और हथेलियाँ कमर के दोनों ओर जमीन पर रखें।

२. श्वास छोड़ें, भुजाएँ पूरी तानकर तथा पुरोनितम्बीय भाग और टाँगों को खिसकाये बिना सिर और धड़ को ऊपर उठायें और स्वाभाविक रूप से श्वास लेते हुए कुछ सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

३. श्वास छोड़ें, घुटनों को मोड़ें, और पैर को ऊपर उठायें। बस्तिप्रदेश और जाँघों पर शरीर-भार का अनुभव होगा। कुछ साँस लें।

४. दायें हाथ पर भार लेते हुए बायां हाथ उठायें और एक तेज, गहरे उच्छ्वसन के साथ कंधे पर से बायीं भुजा को पीछे की ओर ले जायें और बायें घुटने की चक्की को पकड़ें। (चित्र ५४८)। कुछ साँसें लें, पुनः एक तेज और गहरे उच्छ्वसन के साथ, कंधे पर से दायीं भुजा को पीछे की ओर ले जायें और दायें घुटने की चक्की को दायें हाथ से पकड़ें (चित्र ५४९)।

५. सीने को उठायें और तलवे तथा एडियों पर सिर स्थिर होने तक, घुटने पर की पकड़ का रंभे की तरह उपयोग करते हुए रीढ़ और गर्दन को पीछे ले जायें। पैरों को साथ रखें और यथासम्भव घुटनों को सटायें (चित्र ५५१)।

६. करीब १५ सेकंड के लिए जितना संभव हो इस स्थिति में रहें। जब मेरुदण्ड और सीना पूरी तरह तन जाता है और उदर जमीन से दब जाता है, श्वासक्रिया अतितेज और कष्टकर होगी और १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहना एक युग के समान मालूम पड़ेगा। यह आसन लघुवज्रासन (चित्र ५१३) से बहुत कुछ मिलता जुलता है, अंतर इतना ही है कि इसमें शरीर घुटनों से अंगुलियों तक की टाँगों के बदले बस्तिप्रदेश और जाँघों पर स्थिर होता है।

७. पुनः टाँगें सीधी तानें। घुटनों को छोड़ दें और एक एक कर हथेलियाँ जमीन पर सामने लायें। यदि दोनों हाथ एक ही समय मेरुदण्ड के दबाव से मुक्त हो जाते हैं तो व्यक्ति मुँह के बल गिर सकता है और घायल हो सकता है। सामने हथेलियों को एक-एक कर टिकाने के बाद सीने को जमीन पर टिकायें और आराम करें।

८. यदि यह कठिन है तो हथेलियाँ जमीन पर रखें और पैरों पर कपाल टिका लें (चित्र ५५२)।

परिणाम

कपोतासन (चित्र ५१२) में मेरुदण्ड में कटिभाग पर तनाव का अनुभव होता है। दूसरी ओर राजकपोतासन में मेरुदण्ड के कटि तथा पृष्ठ प्रदेश दोनों लाभान्वित होते हैं। गर्दन और कंधे की मांसपेशियाँ पूरी तरह तानी जाती हैं और उन्हें व्यायाम मिलता है। शरीर–भार पुरोनितम्बीय भाग पर पड़ता है इस कारण अधिक रक्त संचरित होता है जिससे यह अंग स्वस्थ होता है। उदर के अवयव जमीन से दब जाते हैं और इस तरह रगड़े जाते हैं। जननग्रंथियाँ पर्याप्त एवं विपुल रक्तभंडार पाती हैं, जिससे जीवनशक्ति में वृद्धि होती है। मूत्रप्रणाली संबंधी दोषों के लिए यह आसन लाभकारी बताया जाता है। कन्दासन (चित्र ४७१) तथा सुप्त त्रिविक्रमासन (चित्र ४७८) के साथ ही राजकपोतासन कामवासना के नियंत्रण के लिए उपयुक्त बताया जाता है।

१६१. पादांगुष्ठ धनुरासन तैंतालीस* (चित्र ५५५)

पाद का अर्थ है पैर। अंगुष्ठ का अर्थ अंगूठा और धनु का अर्थ धनुष है। यह धनुरासन का एक कठिन प्रकार है (चित्र ६३)। यहाँ कंधों से घुटनों तक शरीर एक तने धनुष का अनुकरण करता है। घुटनों से अंगुलियों तक टाँगें तथा सिर के ऊपर फैलायी हुई भुजाएँ तानकर खींची हुई प्रत्यंचा के समान है। यह स्थिति तीन क्रियाओं में नीचे दी गयी है।

विधि

१. पेट के बल जमीन पर अधोमुख लेटें।

२. हथेलियों को सीने के दोनों ओर जमीन पर रखें। उन्हें नीचे की ओर दबायें और भुजाएँ सीधी कर, भुजंगासन एक (चित्र ७३) की तरह जमीन पर से सिर और धड़ उठायें। घुटने मोड़ें और पैरों को ऊपर करें। श्वास छोड़ें, पैर और सिर को एक दूसरे के नजदीक लायें और पैरों से सिर को छूने का प्रयत्न करें (चित्र ५५२)।

३. पैर एक दूसरे पर चढ़ायें, तब एक ओर हाथ पर अधिक भार देकर जमीन पर से दूसरा हाथ उठा लें। तेज और गहरे उच्छ्वसन के साथ उठी हुई भुजा कंधे पर से सिर के ऊपर तानें और अंगुलियों को पकड़ें (चित्र ५५३)। अब एक उच्छ्वसन के साथ दूसरा हाथ जमीन पर से उठायें और अंगुलियाँ पकड़ें। अंगुलियों को कसकर पकड़े रहें और दायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को कसकर पकड लें और बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ लें (चित्र ५५४)। कुछ साँस लें।

४. पैरों को कसकर पकड़ें, अन्यथा वे हाथ से छूट जायेंगे। बाद में एक उच्छ्वसन के साथ यथासम्भव सिर से ऊपर भुजाएँ और टाँगें तानें। कुहनियों पर

भजाएँ सीधी रखने का प्रयत्न करें। यह पहली क्रिया है (चित्र ५५५)। इस आसन में करीब १५ सेकंड तक रहें।

५. अंगुलियों पर की पकड़ बनाये हुए एड़ियाँ सिर पर टिकने तक कुहनियाँ मोड़ें और पैरों को नीचे करें। धीरे-धीरे तनाव को बढ़ाते रहें जिससे एडियाँ पहले भाल पर बाद में आँखों पर और अन्त में अधरों पर टिकें (चित्र ५५६)। यह दूसरी क्रिया है। कुछ सेकड तक इस स्थिति में रहें।

६. अब भी अंगुलियों पर की मजबूत पकड़ को बनाये हुए कंधों की बगल को छूने तक पैरों को नीचे करते जायें (चित्र ५५७)। यह तीसरी क्रिया है। इसमें कुछ सेकंड तक रहें।

७. तीसरी क्रिया को पूरा करने के बाद श्वास छोड़ें और टाँगों और भुजाओं को ऊपर तानें। हाथों को तत्क्षण जमीन पर रखते हुए एक एक कर टाँगों को मुक्त करें अन्यथा मेरुदण्ड के पीछे की ओर मोड़ से व्यक्ति के मुँह में मार लगने की संभावना है। बाद में जमीन पर रहें और आराम करें।

८. गर्दन, कंधों, सीना और मेरुदण्ड के तनाव और जमीन पर उदर के दबाव के कारण श्वास क्रिया बहुत तेज और कठिन होगी। तीनों क्रियाओं में स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयत्न करें।

परिणाम

इस आसन में, तनाव से सभी कशेरुकाएँ लाभ पाती हैं। पूरे शरीर को तनाव मिलता है और वह अधिक लचीला बनता है। पूरा भार नाभि के निकट उदर भाग पर पड़ता है और उदरीय महाधमनी पर दबाव पड़ने के कारण उदर के अवयवों के चारों ओर पूर्ण रूप से रक्त का संचार होता है। यह उन्हें स्वस्थ रखता है और पाचनशक्ति का संवर्धन करता है। इस आसन में स्कन्धास्थियाँ अच्छी तरह तानी जाती हैं इसलिए कंधों का कड़ापन दूर हो जाता है। तथापि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि सारी क्रियाओं के अत्यधिक कठिन होने पर भी मन निष्क्रिय और शांत रहता है। यह आसन व्यक्ति के शरीर को सुडौल तथा युवा और मन को प्रफुल्ल एवं सक्रिय रखता है।

१६२ घेरण्डासन एक चौवालीस* (चित्र ५६१ और ५६२)

घेरण्ड संहिता के रचयिता घेरण्ड नामक ऋषि को यह आसन अर्पित है। यह आसन भेकासन (चित्र १००) और पादांगुष्ठ धनुरासन (चित्र ५५५) का मिश्रण है। एक तरफ की भुजा और टाँग इस आसन में पहले आसन की जैसी जबकि दूसरी तरफ की टाँग और भुजा बाद के आसन की जैसी होती है।

विधि

१. पेट के बल जमीन पर अधोमुख लेटें।

२. श्वास छोड़ें, बायां घुटना मोड़ें, बायें पैर को बायें नितम्ब की ओर घुमायें।

३. बायें हाथ से बायें पैर का तलवा पकड़ें। कुछ साँस लें। बायें हाथ को घुमायें जिससे हथेली बायें पैर के अगले भाग को छुए और हाथ तथा पैर की अंगुलियाँ सिर की ओर उन्मुख हों।

४. श्वास छोड़ें, तलवे और एड़ी को जमीन के पास लाने के लिए बायें हाथ से बायें पैर को नीचे ढकेलें। जमीन पर से सिर और सीना ऊपर उठायें। अब बायीं बाँह और टाँग भेकासन (चित्र १००) में होगी।

५. दायें घुटने को मोड़कर दायें हाथ से दायां अंगूठा पकड़ें (चित्र ५५८)। दायीं कुहनी और कंधे को घुमायें (चित्र ५५९) और दायीं भुजा तथा टाँग को ऊपर की ओर तानें (चित्र ५६०), कुछ साँस लें।

६. श्वास छोड़ें, दायें अंगूठे की पकड़ को छोड़े बिना दायीं भुजा और टाँग को सीधे उठायें (चित्र ५६१ तथा ५६२)। दायीं भुजा और टाँग अब पादांगुष्ठ धनुरासन में होंगी (चित्र ५५५)।

७. १५ से २० सेकंड तक इस स्थिति में रहें। जमीन पर उदर का दबाव होने से श्वासक्रिया तेज होगी।

८. तब श्वास छोड़ें, गर्दन को तानें और सिर को पीछे झुकायें, दायीं कुहनी और घुटने को मोड़ें और पैर के बायें कंधे को छूने तक दायीं टाँग नीचे करें (चित्र ५६३)।

९. कुछ सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

१०. एक उच्छ्वसन के साथ स्थिति ६ में वापस आ जायें (चित्र ५६१)।

११. अब पैरों को छोड़ें, जमीन पर टांगें तानें सिर और सीने को नीचे करें और थोडे समय तक आराम करें।

१२. इस बार दायीं भुजा और टाँग को भेकासन में रखें और बायीं भुजा और टाँग को पादांगुष्ठ धनुरासन में रखकर इस आसन को दुहरायें। इस स्थिति में भी उतने ही समय तक रहें। दायें के लिए बायां और बायें के लिए दायां पढ़ते हुए ऊपर निर्दिष्ट विधि का पालन करें।

१९३. घेरण्डासन दो छयालीस* (चित्र ५६४ और ५६५)

इस आसन में एक ओर की भुजा और टाँग बद्ध पद्मासन (चित्र ११८) में होती है जबकि दूसरी ओर भुजा और टाँग पादांगुष्ठ धनुरासन (चित्र ५५५) में होती है।

विधि

१. सामने जमीन पर टांगें सीधी फैलाकर बैठें (चित्र ७७) । दायें पैर को बायीं जंघा के मूल पर रखें और बाद में पीठ के बल लेटें ।

२. दायें पैर की स्थिति में बिना किसी परिवर्तन के पेट पर लुढ़कें । श्वास छोड़ें, और दायीं भुजा को कंधे से पीछे की ओर ले जाकर और दायें हाथ से दायां अंगूठा (पैर का) पकड़ लें । अब दायीं बाँह तथा टाँग बद्ध पद्मासन (चित्र ११८) में होगी । कुछ साँस लें और जमीन पर से सिर और सीने को ऊपर उठायें ।

३. श्वास छोड़ें, बायें घुटने को मोड़ें और बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें । भुजा और कंधे को घुमायें तथा पैर के अंगूठे की पकड़ को छोड़े बिना बायीं भुजा और टाँग को पादांगुष्ट धनुरासन में होने तक ऊपर उठायें (चित्र ५६४ तथा ५६५) ।

४. १५ सेकंड तक इस स्थिति में रहें । जमीन पर के दबाव के कारण श्वासक्रिया तेज और कठिन होगी ।

५. तब श्वास छोड़ें, गर्दन को तानें और सिर को पीछे झुकायें, बायीं कुहनी और घुटने को मोड़ें और पैर से दायां कंधा छूने तक बायीं टाँग को नीचे करें (चित्र ५६६) ।

६. कुछ सेकंड तक इस आसन में रहें । उदर पर दबाव एवं संकोच होने से श्वासक्रिया कठिन होगी ।

७. एक उच्छ्वसन के साथ स्थिति ३ में वापस आ जायें (चित्र ५६४) ।

८. पैर की पकड़ को छोड़ें, टाँगें सीधी फैला दें, फिर टाँगें, सीना और सिर तीनों को नीचे लाते हुए जमीन पर रख दें और थोड़े समय तक आराम करें ।

९. उतने ही समय के लिए दूसरी ओर इस आसन को दुहरायें । बायीं भुजा और टाँग बद्ध पद्मासन में होगी जबकि दायीं भुजा और टाँग पादांगुष्ठ धनुरासन में होगी । दायें की जगह बायां और बायें की जगह दायां पढ़ते हुए ऊपर निर्दिष्ट विधि का पालन करें ।

परिणाम

अधिक तनाव से सभी कशेरुकाएँ लाभ पाती हैं और पूरा शरीर अधिक लचीला बनता है । नाभि के पास का उदर भाग शरीर-भार वहन करता है और उदर की प्रमुख धमनी पर दबाव पड़ने के कारण उस भाग में रक्त पूर्णतया संचरित होता है, इससे उदर के अवयव स्वस्थ रहते हैं, और पाचनशक्ति बढ़ती है । स्कन्धास्थि पूरी तन जाती है, इसलिए कंधों के जोड़ की जड़ता कम हो जाती है । यह आसन घुटनों को दृढ़ बनाता है और वातरोग या गठिया के कारण होनेवाले घुटने के जोड़ के दर्द को दूर करता है । पैरों पर हाथों का दबाव कमान को ठीक करता है और

सपाट पैरों को ठीक करने में मदद करता है । यह आसन टखने के जोड को सुदृढ बनाता है, एड़ियों के दर्द को दूर करता है और पार्ष्णिका कंटक से पीड़ित व्यक्तियों को लाभ पहूँचाता है ।

१६४. कपिंजलासन तैंतालीस* (चित्र ५६७)

कपिंजल एक तरह का पक्षी है । इसीको चातक कहते हैं जिसके वारे में कहा जाता है कि वह स्वाति बिन्दु और ओसकण पर जीनेवाला है ।

यह आसन वशिष्ठासन (चित्र ३९८) और पादांगुष्ठ धनुरासन (चित्र ५५५) का मिश्रित रूप है । इस पर प्रभुत्व पाना कठिन है ।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १) । आगे की ओर झुकें, जमीन पर हथेलियाँ रखें और टाँगें करीब ४ से ५ फीट तक पीछे करें – मानो अधोमुख श्वानासन (चित्र ७५) कर रहे हों ।

२. पूरे शरीर को दायीं ओर बगल में घुमा लें और दायीं हथेली और पैर पर संतुलन करें । दायें पैर का बाहरी भाग जमीन पर अच्छी तरह टिका होना चाहिए ।

३. दायें पैर पर बायां पैर रखें, बायीं हथेली बायें नितम्ब पर रखें और शरीर को बिना हिलाये संतुलन करें (चित्र ३९६) । शरीर का दायां भाग वशिष्ठासन में है ।

४. श्वास छोड़ें, बायीं टाँग घुटनों पर मोड़ें और बायें पैर के अंगूठे को बायें हाथ के अंगूठे, तर्जनी तथा मध्यमा से कसकर पकड़ें ।

५. बायीं कुहनी और कंधे को घुमायें और बायीं भुजा और टाँग को धनुषाकार बनाने के लिए, बायें पैर के अंगूठे की पकड़ को छोड़े बिना पीठ के पीछे की ओर तानें (चित्र ५६७) । बायीं भुजा और टाँग अब पादांगुष्ठ धनुरासन में होगी ।

६. दायीं भुजा और टाँग को दृढ़ रखकर तथा बायें पैर के अंगूठे पर की बायें हाथ की पकड़ को बनाये हुए कुछ सेकंड तक संतुलन रखें । चूँकि मेरुदण्ड, सीना, गर्दन और कन्धे पूरी तरह ताने जाते हैं और उदर सिकोड़ा जाता है, साँस श्रमित होगी ।

७. बायें पैर के अंगूठे पर की पकड़ छोड़ दें, बायीं टाँग सीधी करें और बायां पैर दायें पैर पर और दायां हाथ बायें नितम्ब पर रखें । उपर्युक्त स्थिति के अनुसार दोनों हथेलियों और पैरों को जमीन पर टिकायें । उतने ही समय के लिए दूसरी ओर इस आसन को दुहरायें । शरीर का बायां भाग अब वशिष्ठासन में होगा (चित्र ३९८), जबकि दायां भाग पादांगुष्ठ धनुरासन (चित्र ५५५) में होगा । दायें की जगह बायें और बायें की जगह दायां पढ़ते हुए उपरिनिर्दिष्ट विधि का अनुसरण करें ।

परिणाम

इस आसन में कलाइयाँ पुष्ट होती हैं और स्कन्धास्थियों को पूरा व्यायाम मिलता है, जिससे कंधों के जोड़ की जड़ता दूर हो जाती है। टाँगें सुदृढ़ होती हैं और सभी कशेरुकाएँ लाभान्वित होती हैं। सीना पूरी तरह फैलता है और उदर की मांस-पेशियाँ सशक्त होती हैं। यह आसन पूरे शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करता है।

१९५. शीर्ष पादासन बावन* (चित्र ५७०)

शीर्ष का अर्थ है सिर और पाद का अर्थ है पैर। यह आसन पीछे झुक कर किये जाने वाले आसनों में सबसे अधिक कठिन है और शीर्षासन में सिर पर संतुलन करते समय इसका अभ्यास किया जाता है (चित्र १९०)। सिर पर खड़े (शीर्षासन) होने के बाद पीठ को मण्डलाकार किया जाता है और एड़ियाँ गर्दन के पृष्ठभाग पर टिकने तक और पैर के अंगूठे हाथों से पकड़े जाने तथा सिर के पृष्ठभाग को स्पर्श किये जाने तक पैरों को नीचे किया जाता है।

विधि

१. जमीन पर कम्बल फैलायें, घुटनें टेकें और सालम्ब शीर्षासन एक (चित्र १९०) करें।

२. घुटनों को मोड़ें, पीठ के पीछे टाँगें नीचे करें (चित्र ५१७ तथा ५१८)। श्वास छोड़ें, मेरुदण्ड को तानें, नितम्ब को सिकोड़ें और पैर की अंगुलियाँ सिर के पृष्ठभाग को छूने तक खींचें, और जाँघें (चित्र ५६८) और पैर (चित्र ५६९) नीचे करें। कुहनियों को बिना हटाये जमीन पर से कलाइयों को उठायें और अंगुली की पकड़ को ढीला किये बिना हाथों से पैर के अंगूठे को पकड़ें (चित्र ५७०), सीने को आगे की ओर तानें और यथासम्भव कुछ सेकंड तक इस स्थिति में रहें।

३. पीछे की ओर झुक कर किये जाने वाले अन्य आसनों में (मेरुदण्ड को तानने में) व्यक्ति को कुछ मदद मिल सकती है, जबकि इस आसन में आवश्यक मोड़ के लिए मेरुदण्ड को अपने ही सहारे क्रियाशील होना पड़ता है।

४. मेरुदण्ड, सीना, कंधे और गर्दन पूरी तरह ताने जाते हैं और उदर संकुचित होता है इसलिए स्वाभाविक रूप से श्वास लेना कठिन होता है। शीर्षासन में वापस आ जाएँ (चित्र १९०)। जमीन पर टाँगें सरकायें और आराम करें या ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) करें और ताड़ासन में खडे हों (चित्र १) या इसके बाद विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९) करें।

परिणाम

शीर्षासन एक के (चित्र १९०) परिणामों के अतिरिक्त सभी कशेरुकाओं को

इस आसन में व्यायाम मिलता है। मेरुदण्ड को अधिक रक्तपूर्ति होती है इस कारण नाड़ियाँ क्षीण नहीं होतीं। तनाव से उदर के अवयव ठीक हो जाते हैं।

१६६. गण्ड भेरुण्डासन छप्पन* **(चित्र ५८० तथा ५८१)**

गण्ड का अर्थ कपोल है, कनपट्टी-सहित चेहरे का पूर्ण पार्श्वभाग। भेंरुदण्ड का अथ है भयंकर, भयानक; यह पक्षी की एक जाति भी है। पीछे मुड़नेवाला यह कठिन आसन दो अवस्थाओं में नीचे बताया गया है।

विधि

१. जमीन पर कम्बल तहिया कर रखें, पेट के बल पूरी लम्बाई में लेटें, हाथ पीछे की ओर तानकर मुँह नीचे करें। गर्दन तानें और चिबुक को कम्बल पर दृढ़ता-पूर्वक रखें, जमीन पर रखने से खुरचेगा।

२. कुहनियों को मोड़ें, सिर की ओर संकेत करती हुई अंगुलियों से, हाथ सीने के पास रखें। घुटनों को मोड़ें, पैरों को सीने की ओर ले जायें जो धरती से जरासा ऊपर उठे होंगे (चित्र ५७१)।

३. श्वास छोड़ें, जमीन पर हथेलियाँ दबायें, टाँगों को झटका दें और सीधा तानें (चित्र ५७२)। त्रिबुक, गर्दन, भुजाएँ और ऊपर की पसलियाँ ही शरीर के वे अंग हैं जो जमीन पर कंबल का स्पर्श करेंगे।

४. शरीर का दबाव गर्दन और चिबुक पर ले लें, घुटनों को मोड़ें (चित्र ५७३), सिर पर टिकने तक पैर नीचे करें (चित्र ५७४), कुछ साँस लें।

५. श्वास छोड़ें, टाँगें और नीचे करते रहें और सिर के सामने पैरों को लायें (चित्र ५७५)।

६. ज़मीन पर से हथेलियाँ उठायें (कंधे से भुजाएँ फैलायें), उन्हें एक एक कर सिर के सामने ले जाएँ और हाथों से पैर मिलायें (चित्र ५७६ और ५७७)। दो श्वास लें।

७. श्वास छोड़ें, चेहरे के प्रत्येक ओर कनपट्टियों तथा गालों के पास पैरों को जमीन की ओर नीचे करें (चित्र ५७८)। एड़ियाँ कंधों को छूनी चाहिए। अब कलाइयों तथा अग्रभुजाओं से पैर की अंगुलियाँ नीचे दबायें (चित्र ५७९)।

८. अंगुलियों को परस्पर गुँथाएँ और कलाइयों से पैरों के ऊपर के भाग को दबाकर जमीन पर रखें। (चित्र ५८०)। यह पहली अवस्था है।

९. कुछ सेकंड तक इस आसन में रहें। मेरुदण्ड के तीव्र तनाव तथा उदर के सिकोड़े जाने के कारण श्वासक्रिया तेज और श्रमित होगी। श्वास को रोकें नहीं।

१०. भुजाओं को उड़नेवाले पक्षी के पंखों की भाँति बगल में सीधे फैलायें और कुछ सेकंड के लिए संतुलन करें (चित्र ५८१)। यह दूसरी अवस्था है जो पहले से अधिक कठिन है।

११. जमीन पर हथेलियाँ रख, शरीर को चिबुक पर लुढ़कायें (चित्र ५८२ तथा ५८३), ऊर्ध्व धनुरासन में आ जाएँ (चित्र ४८६) और ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों तथा आराम करें या विपरीत चक्रासन (चित्र ४८८ से ४९९)का अभ्यास करें।

परिणाम

पूरे मेरुदण्ड को तथा उदर के अवयवों को ठीक करने के अतिरिक्त यह आसन मूलाधार चक्र (pelvic plexus), स्वाधिष्ठानचक्र (hypo-gastric plexus), विशुद्धि चक्र (pharyngeal plexus) के नाडी केंद्रों को तथा वहाँ के अन्य ग्रंथियों को उत्तेजित करता है। इन ग्रंथियों को रक्त की विपुल पूर्ति होने के कारण उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है और इससे जीवनशक्ति की वृद्धि होती है।

१९७. विपरीत शलभासन अट्ठावन* **(चित्र ५८४)**

विपरीत का अर्थ उलटा, व्यतिक्रम या विपर्यय है। शलभ टिड्डी को कहते हैं। इस आसन में गण्ड भेरुण्डासन से अधिक तीव्र तनाव है (चित्र ५८० और ५८१) और हलासन की क्रियाओं से इसकी क्रियाएँ विपरीत हैं (चित्र २४१)।

विधि

१. जमीन पर कम्बल तहिया लें और पेट के बल पूरी लंबाई के साथ उस पर अधोमुख लेटें। गर्दन तानें और चिबुक को कसकर कंबल पर टिकायें अन्यथा वह खुरच जायेगा।

२. कुहनियों को मोड़ें, सिर की ओर संकेत करती हुई अंगुलियों से हथेलियाँ सीने के पास रखें।

३. श्वास छोड़ें, मुड़ें, घुटने उठायें और पैरों को सीने की ओर ले जायें जो जमीन से जरा सा ऊपर उठा होगा (चित्र ५७१)।

४. कुछ साँस लें, उसके बाद एक उच्छ्वसन के साथ, आकाश में अपनी टाँगें उछालें, शरीर को ऊपर तानें और चिबुक, गर्दन, कंधे, कुहनियों तथा कलाइयों पर शरीर का भार लेते हुए संतुलन बनायें (चित्र ५७२)। स्वाभाविक रूप से श्वास लेने का प्रयत्न करें।

५. श्वास छोड़ें, घुटनों को मोड़ें (चित्र ५७३), पैर की अंगुलियाँ जमीन पर टिकने तक टाँगें नीची करें और पैर सिर के ऊपर और बाहर ले जायें (चित्र ५८२)। सिर पर से जितनी दूर कर सकें पैर तानें और जितना संभव हो सके टाँगों को सीधा रखने का प्रयत्न करें। भुजाओं को पीछे तानें और हथेलियाँ नीचे रखें (चित्र ५८४)।

६. आसन की इस स्थिति में–जो अब हलासन (चित्र २४१) की विपरीत स्थिति सी दिखाई देती है, कुछ सेकंड के लिए रहें। मेरुदण्ड के गहरे तनाव और उदर पर दबाव पड़ने से, श्वासक्रिया अत्यंत तेज और श्रमसाध्य होगी इसलिए श्वास न रोकें।

७. कुहनियों को मोड़ें, भुजाएँ फैलायें। कंधों के पास हाथ ले आयें और जमीन पर हथेलियाँ रखें। घुटने मोड़ें, पैरों को सिर के पास निकट ले आयें (चित्र ५८२), चिबुक पर शरीर लुढ़कायें (चित्र ५८३) और ऊर्ध्व धनुरासन करें (चित्र ४८६), ताड़ासन (चित्र १) में खड़े हों या एक उच्छ्वसन के साथ विपरीत चक्रासन करें (चित्र ४८८ से ४९९) और आराम करें।

परिणाम

इस आसन के परिणाम गण्डभेरुण्डासन (चित्र ५८० और ५८१) के परिणामों के समान ही हैं। इन दोनों आसनों का उद्देश्य हमारे शरीर की दिव्य ब्रह्माण्ड शक्ति (divine cosmic energy) कुण्डलिनी को जागृत करना है, जो मेरुदण्ड के मूल के पास निम्नतम नाडीकेंद्र में शिथिल पड़े हुए कुंडली मारकर सोये हुए सर्प का प्रतीक है। योगी इस सुप्त शक्ति को जागृत करने और मेरुदण्ड से मस्तिष्क (ऊपरी मस्तिष्क केंद्र में सहस्रार या सहस्रदल कमल) तक ले जाने का प्रयत्न करता है और उसके बाद वह सांसारिक बंधन से मुक्ति पाने के लिए सारी शक्तियों के दैवी स्रोत (divine power) पर अपना ध्यान केंद्रित कर, अपने अहं को विलीन कर देता है। जिस तरह नदियाँ सागर में विलीन हो जाती हैं और अपना नाम तथा रूप खो देती हैं, उसी तरह नाम और रूप से मुक्त हुआ प्रबुद्ध व्यक्ति परम तत्त्व (supreme being) अनन्त को प्राप्त करता है।

१९८. त्र्यंग मुखोत्तानासन साठ* **(चित्र ५८६)**

त्र्यंग का अर्थ है तीन अवयव या उनके तीन भाग। मुख का अर्थ है चेहरा और मुख्य, प्रधान, प्रमुख भी। उत्तान अर्थात् जान बूझकर शरीर को अच्छी तरह फैला देना। पीछे मुड़कर किये जानेवाले इस आसन में भुजाओं, टाँगों और पूरे धड़ को तीव्र तनाव दिया जाता है।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १); टाँगों को एक फुट के अंतर पर फैलायें और हथेलियाँ नितम्ब पर रखें।

२. वस्ति प्रदेश को जरा आगे ले जायें (चित्र ४८३), श्वास छोड़ें, और धड़ को पीछे की ओर मोड़ें जिससे शरीर भार का जांघों और पैरों पर अनुभव किया जाए (चत्र ४८४)।

३. भुजाएँ सिर के ऊपर ले जायें और जमीन पर हाथों को टिकायें (चित्र ४८५)। शीघ्र ही कुहनियों पर भुजाएँ सीधी करें और जमीन पर हथेलियाँ रखें। अब यह ऊर्ध्व धनुरासन है (चित्र ४८६) ।

४. एड़ियों को बिना हिलाये पैर की अंगुलियों के बीच का अंतर ब ा दें जिससे पैर एक दूसरे के समानान्तर होने के वदले एक कोण पर होंगे ।

५. श्वास छोड़ें, धड़ को जमीन पर से यथाशक्ति ऊपर उठायें और हाथों को पैरों के और नजदीक करें। यथासम्भव सिर और गर्दन को पीछे की ओर तानें और पैरों को हाथों से स्पर्श करें (चित्र ५८५) । कुछ साँसें लें, जो उदर, सीना और पीठ के तीव्र तनाव के कारण और कठिन होंगी ।

६. एक गहरे उच्छ्वसन के साथ, एक एक कर जमीन पर से हाथ उठायें और ठीक टखनों के पास नलियों को पकड़ें (चित्र ५८६) । पैर की अंगुलियों को भीतर करें और संतुलन बनायें। यह अन्तिम अवस्था है। कुछ सेकंड तक यथाशक्ति इसे करने के वाद, हाथ एक एक कर जमीन पर रखें और ऊर्ध्व धनुरासन (चित्र ४८६) में और उसके वाद ताड़ासन (चित्र १) में वापस आ जाएँ । इस विधि में पारंगत होने पर व्यक्ति हाथों को मुक्त कर सकता है और बिना ऊर्ध्व धनुरासन में आये ताड़ासन में खड़ा हो सकता है ।

परिणाम

यह कठिन आसन टाँगों को सुदृढ और मेरुदण्ड तथा उदर के अवयवों को ठीक और सशक्त बनाता है। सीना और कंधों के जोड़ पूरी तरह तनते हैं जबकि बस्ति प्रदेश पर्याप्त रक्त की पूर्ति प्राप्त करता है और स्वस्थ होता है ।

१९९. नटराजासन अठ्ठावन* (चित्र ५९० और ५९१ तथा ५९१ अ)

नटराज (नट–नर्तक, राज–देवता, नृप) शिव का एक नाम है, देवता शिव केवल रहस्यपूर्ण शांति, मृत्यु, और संहार के देवता ही नहीं है अपितु नृत्य के देवता भी हैं। शिव अपने विशाल भवन कैलास पर्वत के आश्रम में और दक्षिण आश्रम चिद-म्बरम् के मंदिर में नृत्य करते हैं। भगवान् शिव ने सैकड़ों नृत्यों की उद्भावना की— कुछ शांत व कोमल और दूसरे भयंकर व रौद्र । रौद्र नृत्यों में से सर्वाधिक प्रधान तांडव – संहार का लौकिक नृत्य जिसमें शिव डमरू बजानेवाले अपने गणों से परिवृत्त हो भयानक स्वर में डमरू बजाते हैं, अपने श्वशुर दक्ष का अपनी प्राणप्रिया पत्नी सती के मरण में कारणीभूत होने के लिए नाश करते हैं और संसार को भयभीत करते हैं ।

नटराज के रूप में शिव ने कुछ सुन्दरतम भारतीय मूर्ति-निर्माण-कला और दक्षिण भारतीय कांस्यमूर्ति को प्रोत्साहित किया है ।

यह प्रबल और सुंदर आसन नटराज शिव --जो योग के भी स्रोत और उद्गम हैं--को अर्पित है ।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १), जमीन के समानान्तर रखते हुए बायीं भुजा को सीधा तानें ।

२. दायें घुटने को मोड़ें और दायें पैर को ऊपर उठायें । दायें पैर के अंगूठे को दायें हाथ के अंगूठे, तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलि से पकड़ें । उठाये हुए दायें घुटने को मोड़ें और टाँग ऊपर उठायें और पीछे करें (चित्र ५८७) ।

३. दायें पैर के अंगूठे के चारों ओर दायें हाथ की अंगुलियाँ और अंगूठे को घुमायें, साथ ही साथ दायीं कुहनी और कंधे को घुमायें और पैर के अंगूठे की पकड़ को छोड़े बिना ही दायीं भुजा को सिर के पीछे तानें (चित्र ५८८) । पुन: दायीं भुजा और टाँग को ऊपर खींचें जिससे पीछे की ओर धनुषाकार बन जायें (चित्र ५८९) । दायीं जाँघ जमीन के समानान्तर होगी और दायीं नली उसके लंबरूप होगी (चित्र ५९० तथा ५९१) ।

४. आगे संकेत करती हुई अंगुलियों से कंधे सहित बायीं भुजा एक ही सीध में सामने ले जायें ।

५. घुटने की चक्की को ऊपर खींचें और बायीं टाँग सींकचे की तरह कड़ी और जमीन पर लंबरूप रखें ।

६. गहरा और समान रूप से श्वास लेते हुए १० से १५ सेकंड तक अच्छी तरह संतुलन बनाये रखें ।

७. दायें पैर की पकड़ को छोड़ दें, दोनों भुजाएँ नीची करें और पुन: ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १) । उतने ही समय के लिए दूसरी ओर इस आसन को करें । इस बार दायीं टाँग पर संतुलन बनायें, पीठ के पीछे बायें पैर के अंगूठे को बायें हाथ से पकड़ें और दायीं भुजा सामने तानें ।

८. प्रगत साधक दोनों हाथों से पैर पकड़ सकते हैं और उसे सिर पर टिकाकर संतुलन बना सकते हैं (चित्र ५९१ अ) ।

परिणाम

यह कठिन संतुलन का आसन समतोलता और अच्छी वहनक्षमता को बढ़ाता है । यह आसन टाँग की मांसपेशियों को ठीक और पुष्ट करता है । स्कंधास्थियों को पूर्ण गति मिलती है और सीना पूरी तरह फैलता है । इस आसन के अभ्यास से सभी कशेरुकाओं की संधियाँ लाभान्वित होती हैं ।

२००. शवासन (मृतासन भी कहा जाता है) (चित्र ५६२)

शव या मृत का अर्थ है मुर्दा । इस आसन में एक शव का अनुकरण करना ही उद्देश्य है । एकबार जब प्राण निकल जाता है, शरीर निश्चल हो जाता है और कोई गति संभव नहीं होती । कुछ समय के लिए निष्क्रिय रह कर और मन को अविचल रखकर जब कि आप पूर्ण सचेत हैं, आराम करना सीखते हैं । यह सचेत विश्राम मन और शरीर को सशक्त और प्रफुल्ल करता है । परंतु शरीर की अपेक्षा मन को स्थिर रखना अधिक कठिन है । इसलिए सुगम दिखनेवाला यह आसन सीखने में अत्यधिक कठिन है ।

विधि

१. शव के समान पीठ के बल पूरी लम्बाई में लेटें । हथेलियाँ ऊपर उठाये हुए अपने हाथ जांघों से कुछ अंतर पर रखें ।

२. आँखें बंद करें । यदि संभव हो, चार तह किया हुआ काला कपड़ा आँखों पर रखें । एड़ियाँ साथ में और पैर की अंगुलियाँ अलग रखें ।

३. प्रारंभ में गहरी साँसें लें । बाद में शरीर या मेरुदण्ड को बिना हिलाये–डुलाये हलकी तथा धीमी श्वास लें ।

४. गहरे और धीमे उच्छ्वसन पर ध्यान दें, जिसमें नासिका रंध्र श्वास की उष्णता का अनुभव न करें ।

५. नीचे का जबड़ा ढीला, लटका होना चाहिए और जकड़ा न हो । जीभ को विचलित नहीं किया जाना चाहिए और यहाँ तक कि आँखों की पुतलियाँ भी पूरी तरह निःस्पन्द होनी चाहिए ।

६. पूरी तरह विश्राम लें और धीरे से श्वास छोड़ें ।

७. यदि मन भटकता है, प्रत्येक मंद उच्छ्वसन के बाद बिना किसी दबाव के ठहरें ।

८. इस स्थिति में १५ से २० मिनट तक रहें ।

९. आरंभ में व्यक्ति सो जाने की स्थिति में हो जाता है, धीरे धीरे जब नाड़ियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं, व्यक्ति पूर्णतया विश्राम और प्रफुल्लता का अनुभव करता है ।

पूर्ण विश्राम की स्थिति में मस्तिष्क के पृष्ठभाग से एड़ी की ओर शक्ति के प्रवाह का अनुभव किया जा सकता है । यह प्रवाह और दूसरे किसी तरह नहीं होता । ऐसा लगता है जैसे शरीर का विस्तार हो गया है ।

परिणाम

हठयोग प्रदीपिका के प्रथम अध्याय में ३२ वें श्लोक में कहा है – पीठ के बल जमीन पर शव की तरह व्यक्ति का पूरी लंबाई में लेटना ही शवासन कहलाता है ।

यह अन्य आसनों से उत्पन्न थकावट को दूर करता है और मन को शांति प्रदान करता है।

घेरण्ड संहिता के द्वितीय अध्याय के ११ वे श्लोक में मृतासन इस तरह वर्णित है : शव की भाँति (पीठ के बल) जमीन पर लेट जाना ही मृतासन है। यह आसन थकावट दूर करता है और मन की चंचलता को शांत करता है।

'मन इन्द्रियों का राजा है; प्राण मन का राजा है। जब मन विलीन होता है तो वह मोक्ष कहलाता है; जब प्राण और मनस् (मन) विलीन होते हैं तब अनिर्वचनीय आनन्द उद्भूत होता है' (हठयोग प्रदीपिका अध्याय ४, श्लोक २९ तथा ३०)।

प्राण-पोषण नाड़ियों पर निर्भर है। शरीर में हलचल के बिना स्थिर, कोमल, मंद तथा गहरी श्वासक्रिया नाड़ियों की थकान को कम करती है तथा मन को शांत करती है। आधुनिक सभ्यता का दबाव नाड़ियों पर बोझ है जिसके लिए शवासन सर्वोत्तम ओषधि है।

बन्ध और क्रिया

२०१. उड्डीयान बन्ध बारह* (चित्र ५९३ और ५९४)

उड्डीयान का अर्थ है उड़ता हुआ। यदि सही तौर पर कहा जाय तो यह एक आसन नहीं है, एक बन्ध है, संयम है। जिस तरह कंडेंसर (condensers), फ्यूज (fuses) और स्विच (switches) विद्युत् प्रवाह को नियंत्रित करते है; उसी तरह बन्ध जीवन-शक्ति को नियंत्रित करते हैं। इस बंध में जीवनशक्ति को उदर के निचले भाग से सिर की ओर ऊर्ध्वोन्मुख किया जाता है। बंध और प्राण के विस्तृत विवरण के लिए देखें भाग ३ में वर्णित प्राणायाम।

विधि

१. ताड़ासन में खडे हों (चित्र १)।

२. एक फुट अंतर पर अपनी टाँगें रखें।

३. घुटनों को जरा-सा मोड़कर आगे की ओर झुकें और जाँघों के मध्य में अंगुलियाँ फैलाकर हाथ रखें।

४. सीने की हड्डी के ऊपरी भाग पर, हँसुलियों के बीच दाँतों में चिबुक स्थिर होने तक हाथों को नीचे करें।

५. गहरी साँस लें और उसके बाद जल्द साँस छोड़ें जिससे फेफड़े से बडी तेजी में सारी वायु बाहर निकाली जाय।

६. साँस रोके रहें। पूरे उदर भाग को मेरुदण्ड की ओर पीछे करें। उदर भाग को सिकोड़ें और हाथों को जाँघों पर दबायें, उसे सीने की हड्डी की ओर ऊपर करें (चित्र ५९३)।

७. उदर की पकड़ बनाये हुए जाँघों पर से हाथ उठा लें और उन्हें नितम्ब पर टिकायें।

८. बिना उदर की पकड़ को ढीला किये या बिना चिबुक को सीने की हड्डी पर से उठाये दोनों टाँगें और पीठ सीधी करें (चित्र ५९४)।

९. बिना सिर और चिबुक को हिलाये उदर की मांसपेशियों को ढीला करें। यदि सिर खिसकता है तो हृदय पर तुरंत भार का अनुभव होता है।

१०. धीरे से गहरी साँस लें।

११. ६ से ९ की स्थितियों के बीच साँस न लें। अपनी सहनशक्ति पर निर्भर रहते हुए ५ से १० सेकंड से ज्यादा इस स्थिति में न रहें।

१२. कुछ साँसें लें। उसके बाद ऊपर के १ से १० अनुच्छेदों में निर्दिष्ट चक्र को दुहरायें। तो भी २४ घंटों में एक दम में छह से आठ बार से अधिक न दुहरायें। एक अनुभवी गुरु के निर्देशन में ही केवल आसन की अवधि या चक्र की आवृत्ति बढ़ायें।

१३. एक दम में चक्रों को दिन में एक ही बार करना चाहिए।

१४. मूत्राशय और आँत को रिक्त करने के बाद खाली पेट से अभ्यास करना चाहिए।

१५. खड़े होकर पहले उड्डीयान बंध का अभ्यास करें, बाद में प्राणायाम के अभ्यास के लिए प्राथमिक अवस्था की तरह, बैठने की स्थिति में इसका अभ्यास करें।

१६. तीसरे भाग में वर्णित प्राणायाम के अनेक प्रकारों में रेचक और कुंभक के समय इसे किया जाना चाहिए।

परिणाम

यह उदर के अवयवों को ठीक करता है। जठराग्नि को प्रज्वलित करता है, पाचन मार्ग के जहर का नाश करता है।

२०२. नौलि सोलह* (चित्र ५९५ और ५९६)

नौलि शब्द मानक शब्दकोशों में नहीं मिलता है। तरंग या लहर अर्थ के वाचक उल्लोल शब्द से नौलि की प्रक्रिया का कुछ ज्ञान हो सकता है, जिसमें उदर की मांसपेशियाँ और उदर के अवयवों को तरंग की गति में तिरछे और लम्बरूप में गतिशील किया जाता है। 'नौ' का अर्थ नौका है और 'लि' का अर्थ चिपकना, लेटना, छिपाना, या ढँकना है। तूफानी समुद्र में नौका का डगमगाना 'नौलि' की प्रक्रिया का कुछ भाव व्यक्त करता है।

नौलि एक क्रिया या प्रक्रिया है, न कि आसन। इसे करते समय सावधानी बरतनी चाहिए अन्यथा यह प्रक्रिया अनेक रोगों का कारण बन जाती है। अतः यह सभी अभ्यासकों को नहीं बताया जाता है। नौलि को, जो घेरण्ड संहिता में लौलिकी के नाम से वर्णित है, करने के पूर्व पहले उड्डीयान बंध में पारंगत हों।

विधि

१. ताड़ासन में खड़े हों (चित्र १)।

२. एक फुट की दूरी पर टाँगों को फैलायें, घुटनों के पास जरा-सा मोड़ें और आगे की ओर झुकें ।

३. घुटने के ठीक ऊपर जाँघों पर, अंगुलियाँ फैलाते हुए हाथों को रखें ।

४. सीने की हड्डी के ऊपरी भाग पर, हँसुलियों के बीच के दाँतों में चिबुक स्थिर होने तक सिर नीचा करें ।

५. गहरी साँस लें, उसके बाद तेजी से श्वास छोड़ें जिससे फेफड़ों से बड़ी तेजी में सारी वायु बाहर निकाली जा सके ।

६.साँस रोके रहें, (विना उच्छ्वसन के), मेरुदण्ड की ओर पूरे उदर भाग को ले जायें ।

७. उदर के दोनों ओर नितम्बीय घेरा और तरंगित पसलियों के बीच के भाग को खोखला बनाने के लिए निष्क्रिय किया जाना चाहिए । उसी समय उदर के घेरे को आगे लाएँ (चित्र ५९५, सामने की छवि और चित्र ५९६ पार्श्व छवि) ।

८. अपनी शक्ति के अनुसार इस स्थिति में ५ से १० सेकंड तक रहें ।

९. घेरे की पकड़ को छोड़ दें और ऊपर के अनुच्छेद ६ में वर्णित स्थिति में वापस आ जाएँ ।

१०. उदर को शिथिल करें और धीरे धीरे साँस लें ।

११. कुछ गहरी साँसें लें । ऊपर वर्णित १ से १० अनुच्छेद के अनुसार इस चक्र को ६ से ८ बार एक दम में २४ घंटे में एक ही वार करें ।

१२. मूत्राशय तथा बड़ी आँत को रिक्त करने के बाद खाली पेट नौलि का अभ्यास करें ।

परिणाम

उदरीय घेरे सशक्त होते हैं । उड्डीयान बन्ध के समान ही नौलि के अन्य परिणाम हैं।

भाग ३

प्राणायाम

संकेत और दक्षता

आगे बताये गये प्राणायामों की विधियों के लिए कोशिश करने के पूर्व नीचे लिखी सूचनाओं और सावधानियों को अच्छी तरह पढ़ें और समझें।

१. पात्रता

१. जिस प्रकार पदव्युत्तर पढ़ाई व्यक्ति द्वारा पदवी प्राप्ति के विषय में अधिकार प्राप्ति की योग्यता एवं अनुशासन पर निर्भर है, ठीक उसी प्रकार प्राणायाम की शिक्षा के लिए आसनों पर अधिकार और उनसे प्राप्त शक्ति तथा अनुशासन की आवश्यकता होती है।

२. प्राणायाम की शिक्षा एवं प्रगति के लिए साधक की पात्रता, अनुभवी गुरु या शिक्षक द्वारा प्रमाणित होनी चाहिए और उनका व्यक्तिगत निरीक्षण आवश्यक है।

३. वायुसंचालित हथियार कठिन से कठिन चट्टान को काट सकते हैं। योगी प्राणायाम में अपने फुप्फुसों को वायुसंचालित शस्त्र की तरह उपयोग में लाता है। यदि उनका उपयोग ठीक तरह से नहीं किया गया तो वे दोनों--हथियार और उनके उपयोग करनेवाले व्यक्ति का नाश कर देते हैं। प्राणायाम की भी यही वास्तविक स्थिति है।

२. स्वच्छता तथा अन्न

४. व्यक्ति अशुद्ध मन एवं शरीर से मन्दिर में प्रवेश नहीं करता है। योगी अपने शरीर-मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व स्वच्छता के नियमों पर ध्यान देता है।

५. प्राणायाम का अभ्यास प्रारंभ करने के पूर्व अँतड़ियों को खाली और मूत्राशय को रिक्त कर देना चाहिए। इससे बन्धों में सुविधा होती है।

६. यह उचित है कि खाली पेट से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए, परन्तु यह कठिन है, तो एक कप दूध, चाय, कॉफी या कोको लिया जा सकता है।

प्राणायाम का अभ्यास करने के पूर्व भोजन के बाद कम-से-कम छह घंटे बीत जाने दें।

७. प्राणायाम का अभ्यास समाप्त करने के आधे घटे के बाद हलका भोजन किया जा सकता है।

३. समय और स्थान

८. अभ्यास के लिए उत्तम समय बड़े सबेरे (सूर्योदर से पहले) और सूर्यास्त के बाद का है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम का अभ्यास दिन में चार बार प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या तथा मध्यरात्रि में एक दम में ८० चक्र से करना चाहिए (अध्याय २, श्लोक १)। आधुनिक गतिमान युग में इसकी संभावना अत्यंत कठिन है। इसलिए दिन में कम-से-कम १५ मिनट अभ्यास करने को कहा गया है। परन्तु ८० चक्र, गंभीरता से तत्पर अभ्यासकों के लिए कहा गया है और न कि साधारण गृहस्थों के लिए।

९. अभ्यास आरंभ करने की उत्तम ऋतु वसन्त तथा शरद् है, जबकि जलवायु समशीतोष्ण होती है।

१०. प्राणायाम स्वच्छ, हवादार और कीड़े-मकोड़ों से रहित स्थान में किया जाना चाहिए। चूंकि आवाज अशान्ति पैदा करती है, शान्ति के समय में अभ्यास करें।

११. प्राणायाम का अभ्यास संकल्प एवं नियमितता के साथ, एक ही समय और स्थान पर तथा एक ही स्थिति में करना चाहिए। प्राणायाम के प्रकारों में अभ्यस्त होने पर ही उसके दूसरे प्रकार करने की अनुमति है; जैसे यदि पहले दिन सूर्यभेदन प्राणायाम किया गया है तो दूसरे दिन शीतली की जा सकती है और तीसरे दिन भस्त्रिका की जाय फिर भी प्रतिदिन नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

४. स्थिति

१२. शीतली और शीतकारी को छोड़कर प्राणायाम के अभ्यास में श्वसन क्रिया केवल नाक से करनी चाहिए।

१३. प्राणायाम भूमि पर तहियाये कंबल पर बैठकर उत्तम प्रकार से किया जाता है। सिद्धासन, वीरासन, पद्मासन, और बद्ध कोणासन की स्थितियाँ योग्य हैं। कोई अन्य बैठने का आसन भी अपनाया जा सकता है, यदि उसमें मेरुदंड के मूल से गर्दन तक और भूमि के समकोण में पीठ बिलकुल सीधी रहे। तथापि कुछ प्रकार आगे वर्णित झुक कर किये जाने वाले आसनों में किये जा सकते हैं।

१४. अभ्यास करते समय मुख के स्नायुओं में, आँखों और कानों अथवा गर्दन की मांसपेशियों में, कंधों, बाँहों, जाँघों और पैरों में तनाव का अनुभव नहीं होना चाहिए। जाँघों और बाँहों को जानबूझकर विश्रांति देनी चाहिए; क्योंकि प्राणायाम करते

समय उनपर अनजाने तनाव पड़ता है ।

१५. जीभ को निष्क्रिय रखें अन्यथा मुँह में लार एकत्रित होगी। यदि ऐसा होता है तो रेचक के पूर्व निगल जाएँ, न कि कुंभक के समय ।

१६. पूरक और कुंभक के समय पसलियों का पिंजर आगे और बगल में दोनों ओर फैलना चाहिए; परंतु स्कन्धास्थि और काँख के नीचें के भाग केवल आगे की ओर फैलने चाहिए ।

१७. प्रारंभ करते समय प्रस्वेद और प्रकंपन होंगे, जो थोड़े समय में लुप्त हो जाएँगे ।

१८. बैठे हुए आसन में किये जानेवाले सभी प्राणायामों के अभ्यासों में चिबुक हँसुलियों और सीने (हृदय पर बीच की) की हड्डियों के बीच दाँतों में स्थिर करते हुए ग्रीवापृष्ठ (nape of the nake) से नीचे झुका होना चाहिए । यहाँ से आगे विशेष रूप से वर्णित विधियों को छोड़कर अन्यत्र इस जालन्धर-बन्ध का प्रयोग करना चाहिए ।

१९. आँखें सतत बन्द किये रहें, कारण, अन्यथा मन बाहरी वस्तुओं में भटकेगा और विक्षिप्त होगा । अगर आँखें खुली रह गयीं तो जलन और खुजलाहट मालूम होगी ।

२०. प्राणायाम का अभ्यास करते समय कान के अंदर दबाव का अनुभव नहीं होना चाहिए ।

२१. बायीं कलाई के पिछले भाग को बायें घुटने पर स्थिर करते हुए बायीं बाँह सीधे रखी जाती है । तर्जनी का सिरा अँगूठे के सिरे का स्पर्श करता हुआ, तर्जनी अँगूठे का ओर झुकी होती है । यही 'ज्ञानमुद्रा' आगे की विधि में वर्णित है ।

२२. दायीं बाँह कुहनी पर मुड़ी होती है और श्वास की समान गति बनाने और उसकी चंचलता का प्रमाण निश्चित करने के लिए हाथ नाक पर रखा जाता है । तर्जनी और कनिष्ठिका के अग्रभागों से, जो बायीं नासिका नियंत्रित करते हैं और अंगूठे के सिरे से, जो दायीं नासिका नियंत्रित करता है, इसका अनुभव किया जाता है। दायें हाथ की स्थिति के बारे में विधि में बतलाया गया है। प्राणायाम की कुछ पद्धतियों में दोनों हाथ ज्ञानमुद्रा में घुटनों पर होते हैं ।

२३. जब बच्चा स्वयं चलना सीखता है तब माता शरीर से निष्क्रिय बनी रहती है परंतु मन से सजग रहती हैं । संकट में, जब बच्चा गिरने लगता है तो उसे गिरने से बचाने के लिए उसका शरीर तत्क्षण सक्रिय हो जाता है । इसी प्रकार प्राणायाम के अभ्यास में बुद्धि निष्क्रिय परन्तु सजग रखी जाती है । जब शरीर के अवयव ठीक तरह से काम नहीं करते हैं तब सतर्क बुद्धि चेतावनी का संदेश भेजती है । कान को श्वास की उचित ध्वनि सुनने के लिए कहा गया है (जिसका वर्णन नीचे दिया गया है)। हाथ और नाक को नासिकारन्ध्र से प्रवाहमान श्वास की अनुभूति की ओर

ध्यान देने के लिए कहा गया है।

२४. यह पूछा जा सकता है कि यदि बुद्धि के लिए अवयवों को चेतावनी भेजना आवश्यक है तो व्यक्ति प्राणायाम पर कैसे ध्यान केंद्रित कर सकता है? अपने काम में लगे चित्रकार को देखिये –– वह अनेक बातों –– जैसे, रूप और रचना, रंगों की छवि एवं छटा (रंगों के प्रकाश और अन्धकार का देखावा) और समीप का प्रधान भाग तथा दूर के पृष्ठ भाग का गौण भाग और रंग की तूलिका का हलका-गहरा स्पर्श इन सभी बातों पर एक साथ ध्यान देता है। संगीतज्ञ वादक किसी धुन को बजाते समय अपनी अँगुलियों की हलचल, स्वर के रूप, वाद्ययंत्र की ध्वनि और उसके आरोह को देखता है। यद्यपि कलाकार और संगीतज्ञ अनेक बातों पर ध्यान देते हैं और उन्हें ठीक करते हैं, परन्तु वे अपने काम में एकाग्रचित्त होते हैं। इसी प्रकार योगी भी अनेक बातों–जैसे समय, स्थिति और यहाँ तक कि श्वास की लय पर ध्यान देता है, और अपने प्राण के अजस्र प्रवाह के प्रति सतर्क एवं सचेत रहता है।

२५. जिस प्रकार सावधान माता अपने बच्चे को निश्चिन्त होकर चलना सिखाती है, उसी प्रकार योगी की सतर्क बुद्धि इन्द्रियों को निश्चित होना सिखाती है। प्राणायाम के सतत अभ्यास से इंद्रियाँ उस विषयलोलुपता की प्रेत-बाधा से मुक्त हो जाती हैं, जिसने उन्हें पहले बहुत ही त्रस्त किया होता है।

२६. प्राणायाम करते समय प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामर्थ्य की सीमा से परिचित होना चाहिए और उससे आगे बढ़ना नहीं चाहिए। यह इस प्रकार मापा जा सकता है : मान लीजिये, पाँच मिनट के समय में एक व्यक्ति लयपूर्ण माला में श्वसन और उच्छ्वसन दोनों १०–१० सेकंड के लिए आसानी से करता है। यदि लय में किसी प्रकार का परिवर्तन है, जिसमें श्वसन या उच्छ्वसन का समय घट जाता है, यों कहिए कि ७ या ८ सेकंड होता है, तो व्यक्ति अपने सामर्थ्य की सीमा तक पहुंचा है। इस सीमा का अतिक्रमण करना, फुप्फुस पर अनुचित रीति से दबाव डालना है और श्वास-संबंधी रोगों को निमंत्रण देना है।

२७. गलत अभ्यास फुप्फुसों और उरःप्राचीर पर अनुचित दबाव डालता है। श्वसनसंस्था बिगड़ती है और नाड़ीमण्डल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम के गलत अभ्यास के कारण स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन का मूल ही हिल जाता है। भस्त्रिका प्राणायाम को छोड़कर शेष प्राणायामों में बलपूर्वक और खींचा हुआ श्वसन या उच्छ्वसन गलत है।

२८. श्वासक्रिया की समता ज्ञानतंतुओं को स्वस्थ रखती है और उसी तरह मन तथा स्वभाव को समता प्रदान करती है।

२९. प्राणायाम के बाद, शीघ्र ही आसनों का अभ्यास कदापि नहीं करना चाहिए। यदि प्राणायाम पहले किया गया है तो आसन प्रारंभ करने के पूर्व एक घंटा व्यतीत हो जाने दें। कारण स्नायु, जो प्राणायाम में शान्त, स्थिर हो जाते हैं, आसनों में होने-

वाली हलचल से अस्तव्यस्त तथा असम हो जाते हैं ।

३०. प्राणायाम आसनों के सहज अभ्यास के बाद, कम-से-कम १५ मिनट पर किये जा सकते हैं ।

३१. दुष्कर आसनों से थकान आती है । जब थक गये हों तो किसी भी बैठी हुई स्थिति में प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए । कारण, पीठ सीधी नहीं रह सकती है, शरीर काँपता है, और मन विचलित होता है । विश्राम एवं शवासन की स्थिति में की गयी उज्जायी के समान गहरी श्वासक्रिया थकान दूर करती है ।

३२. जब गहरी, स्थिर, दीर्घ श्वासक्रिया लय में नहीं की जा सकती है तब ठहर जाएँ । आगे न बढ़ें । पूरक ('इ श् श् श् श् श् ' जो सायकल के छिद्रवाले ट्यूब के समान ध्वनि करता है) और रेचक (हूम ऽऽऽऽऽऽ ध्वनि करता है) में उत्पन्न नासिका की ध्वनि से इस लय की अवधि नापी जानी चाहिए । यदि ध्वनि का विस्तार न्यून होता है तो ठहर जाएँ ।

३३. पूरक और रेचक में सम अनुपात प्राप्त करने की कोशिश करें । उदाहरणार्थ, यदि एक दी हुई निरन्तर माला का समय ५ सेकंड के लिए है तो दूसरी भी उतने ही समय के लिए होनी चाहिए ।

३४. प्राणायाम के उज्जायी तथा नाड़ीशोधन प्रकार अत्यधिक लाभप्रद हैं, जिनका अभ्यास विशेषत: गर्भवती स्त्रियाँ बद्धकोणासन में कर सकती हैं । तथापि गर्भावस्था में अनुभवी शिक्षक के मार्गदर्शन के बिना श्वास कभी रोकना नहीं चाहिए ।

३५. प्राणायाम का प्रत्येक अभ्यास पूर्ण करने के बाद, हमेशा शवासन (चित्र ५९२) में मुर्दे के समान पीठ के बल कम-से-कम ५ या १० मिनट के लिए शान्त लेट जाएँ । मन पूर्णत: निश्चल और सभी अवयव तथा ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्णतया निष्क्रिय होनी चाहिए, मानो वे मृत हैं । प्राणायाम के बाद शवासन शरीर और मन दोनों को प्रफुल्लित बनाता है ।

५. कुंभक

३६. जालन्धर, उड्डीयान, तथा मूल ये तीनों बन्ध कुंभक (पूर्ण पूरक के बाद श्वास का रोकना अथवा अनुगामी पूर्ण रेचक का अवरोध करना, जो आगे वर्णित है) में किये जाने चाहिए । बन्ध सुरक्षा यंत्र (safty valve) के समान हैं, जिन्हें कुम्भक का अभ्यास करते समय बन्द किया जाना चाहिए ।

३७. अंतर्कुम्भक सीखने का प्रयास करने के पूर्व पूरक (श्वसन) और रेचक (उच्छ्वसन) पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है ।

३८. जबतक अंतर्कुम्भक स्वाभाविक रीति से नहीं होता है तबतक बाह्य कुम्भक के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए ।

३९. कुम्भक का अभ्यास करते समय वायु को अंदर लेने तथा अवरोध की अवधि बढ़ाने के लिए उर:प्राचीर एवं उदर के अवयवों को तानने और शिथिल करने की प्रवृत्ति होती है। यह अज्ञान से और निर्हेतुक होता है। इसे टालने के लिए सावधानी रखनी चाहिए।

४०. प्रत्येक पूरक और रेचक के बाद श्वास रोकने में यदि कठिनाई होती है तो गहरे श्वसन के कुछ चक्रों को करें और बाद में कुम्भक का अभ्यास करें। उदाहरण के लिए, गहरे श्वसन के ३ चक्र करने के बाद कुम्भक का चक्र किया जा सकता है। बाद में गहरे श्वसन के दूसरे ३ चक्र करने के बाद कुम्भक का दूसरा १ चक्र किया जा सकता है और इसी प्रकार आगे भी।

४१. यदि श्वास रोकने से पूरक अथवा कुम्भक की लय में किसी प्रकार का व्यत्यय होता है तो कुम्भक की कालावधि कम करें।

४२. आँख अथवा कान के रोग (जैसे–चक्षुरोग (ग्लुकोमा) और कान से पीव बहना) से पीड़ित व्यक्तियों को श्वास रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

४३. कुम्भक का प्रारंभ करते समय कभी कभी प्राथमिक अवस्था में कोष्ठबद्धता की शिकायत होती है। वह अल्पकालिक है और कुछ समय में नहीं रह जाती।

४४. श्वास की स्वाभाविक गति प्रति मिनट १५ है। अजीर्ण, ज्वर, सर्दी और खाँसी अथवा भय, क्रोध या काम जैसी भावनाओं से जब शरीर अस्वस्थ हो जाता है तब यह गति बढ़ जाती है। श्वसन की स्वाभाविक गति प्रत्येक २४ घंटों में २१,६०० श्वसित तथा उच्छ्वसित श्वसन है। योगी अपना आयुमान दिनों की गणना से नहीं अपितु श्वासों की गणना से करता है। चूँकि प्राणायाम में श्वसन की अवधि बढ़ायी जाती है, इसका अभ्यास दीर्घायु की ओर ले जाता है।

४५. प्राणायाम का सतत अभ्यास साधक के वैचारिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लायेगा तथा ऐहिक सुख, जैसे–धूम्रपान, मद्यपान और विषय-भोग की ओर उसके इंद्रियों की लालसा बहुत कुछ कम कर देगा।

४६. प्राणायाम के अभ्यास में इंद्रियाँ अंतर्मुखी होती हैं और कुम्भक की शांति में साधक अपने अंतर्नाद की पुकार सुनता है "अन्दर देखो, सारे आनंद का स्रोत अन्दर है।" यह उसे योग की अगली अवस्था, प्रत्याहार के योग्य भी बनाता है, जो इद्रियों की प्रबलता और दु:शासन से मुक्त होने में प्रवृत्त करता है।

४७. चूँकि प्राणायाम के अभ्यास में आँखें निरन्तर बन्द की हुई होती हैं, पवित्र मंत्र या नाम के जप से कालावधि जानी जाती है। पवित्र मन्त्रों अथवा नामों का यह जप योगी के मन में बोया हुआ बीज है। यह बीज अंकुरित एवं विकसित होता है और उसे योग की छठी अवस्था –– ध्यान अथवा एकाग्रता के योग्य बनाता है। परिणामत: यह समाधि का फल प्राप्त करता है, जहाँ पूर्ण चैतन्य और दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है, जहाँ योगी सृष्टिकर्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और

एसा अनुभव करता है जिसे वह प्रकट नहीं कर सकता है फिर भी पूर्णतः उसे छिपा भी नहीं सकता। शब्द उस अनुभूति को पूर्ण व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं, कारण, मन ऐसे शब्दों को नहीं जानता है, जिनसे वह उसका ठीक वर्णन कर सके। यह उस शांति की अनुभूति है, जो ज्ञानातीत है।

बंध, नाड़ी एवं चक्र

प्राणायाम की विधियों का अनुसरण करने के लिए बन्धों, नाड़ियों एवं चक्रों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

बन्ध का अर्थ बन्धन, एकत्र मिलाना, शृंखला या पकड़ है। यह एक शारीरिक स्थिति भी है, जिसमें शरीर के कुछ अवयव या भाग सिकोड़े और नियंत्रित किये जाते हैं।

नाड़ी शरीर में नली मार्ग है, जिससे ऊर्जा प्रवाहित होती है।

चक्र पहिये या वर्तुल हैं, जो शरीर में शरीर-यंत्र के संतुलन पहिये हैं।

जब विद्युत्शक्ति उत्पन्न की जाती है तब उस शक्ति को निश्चित स्थान पर ले जाने के लिए ट्रान्स्फार्मर, कंडक्टर, फ्यूज, स्विच् और इंसुलेटेड वायर की जरूरत होती है; कारण इनके बिना उत्पन्न की गयी विद्युत्शक्ति प्राणघातक हो सकती है। जब प्राणायाम के अभ्यास से योगी के शरीर में प्राण का संचार किया जाता है तब ऊर्जा के अपव्यय को रोकने में बन्ध का उपयोग करना और अन्यत्र हानि पहुँचाये बिना उसे उचित कक्ष में ले जाना योगी के लिए समान रूप से आवश्यक हो जाता है। बन्ध के बिना प्राण घातक है।

प्राणायाम के लिए महत्त्वपूर्ण तीन मुख्य बन्ध ये हैं: (१) जालन्धर बंध, (२) उड्डीयान बंध, और (३) मूल बंध।

१. प्रथम जालन्धर बन्ध है, जिस पर योगी का अधिकार होना चाहिए। जाल का अर्थ फन्दा, जाला, जाली या झंझरी होता है। जालन्धर में गर्दन और गले को संकुचित किया जाता है और चिबुक को हँसुली और सीने की हड्डी के ऊपरी सिरे के बीच गड्ढे में टिकाया जाता है। सर्वांगासन (देखें चित्र २३३–२३४) और उसकी मालाएँ करते समय इस पर अधिकार प्राप्त किया जाता है। कारण, यहाँ पर भी चिबुक उरोस्थि पर दबाया जाता है। जालन्धर बन्ध रक्तप्रवाह और प्राण को हृदय, ग्रीवाग्रंथियों तथा मस्तिष्क सहित सिर में संचालित करता है। यदि प्राणायाम जालन्धर बंध के बिना किया जाता है तो तत्काल हृदय, आँख की पुतलियों के पीछे तथा कान के छिद्रों में दबाव का अनुभव होता है और सिर भ्रमित मालूम पड़ता है। जालन्धर बंध प्राणायाम की तीन प्रक्रियाओं--पूरक (श्वास लेना), रेचक (श्वास छोड़ना) और कुंभक (श्वास रोकना)-- में आवश्यक है।

२. उड्डीयान का अर्थ है ऊपर उड़ना। उड्डीयान बंध की प्रक्रिया में उरःप्राचीर को

ऊपर वक्ष:स्थल की ओर उठाया जाता है और अधोउदरीय अवयवों को मेरुदण्ड की ओर! कहते हैं कि उड्डीयान बंध के द्वारा महापक्षी प्राण को नाड़ी की ऊर्जा प्रवाहित होने के मुख्य मार्ग अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी से होकर उड़ने के लिए विवश किया जाता है। सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड या रीढ़स्तंभ के अन्दर स्थित है। कहा जाता है कि बन्धों में सर्वोत्तम बंध उड्डीयान है और जो अपने गुरु या शिक्षक द्वारा सिखायी गयी पद्धति से इसका सतत अभ्यास करता है, वह पुन: युवा हो जाता है। यह आसन वह सिंह है, जो मृत्युरूपी गज को मार डालता है। यह रेचक के बाद एक मात्र बाह्य कुंभक में करना चाहिए, अर्थात् पूर्ण उच्छ्वसन और नवीन श्वसन के बीच के समय में, जब श्वासोच्छ्वास क्रिया रुकी रहती है। यह उर:प्राचीर और उदर के अवयवों को व्यायाम देता है। उर:प्राचीर के उठने से निर्मित खोह हृदय की मांसपेशियों को सौम्य मालिश देता है, जिससे वह ठीक होता है। अन्तर्कुम्भक के समय अर्थात् पूर्ण श्वसन और उच्छ्वसन प्रारंभ करने के बीच के समय, जब श्वास रुका रहता है, उड्डीयान बंध कदापि नहीं करना चाहिए, अन्यथा यह हृदय और उर:प्राचीर पर दबाव डालेगा और आँखें बाहर खींची जाएँगी।

३. मूल का अर्थ जड़, स्रोत, प्रारंभ या कारण, नींव या बुनियाद है। मूल बंध गुदा और अण्डकोष की थैली के बीच का प्रदेश है। इस जगह के सिकुड़ने से नीचे की ओर गतिवाला अपानवायु (उदर के निचले भाग में स्थित प्राण) हृदयस्थ प्राणवायु के साथ गतिशील होता है।

मूलबन्ध पहले अन्तर्कुम्भक (श्वास को रोके रखना) में करना चाहिए। नाभि और गुदा के मध्य निचले उदर-प्रदेश को रीढ़ की ओर सिकोड़ा जाता है और उर:-प्राचीर की ओर खींचा जाता है। उड्डीयान बंध में गुदा से उर:प्राचीर तथा ऊपरी उरोस्थि तक सारा प्रदेश मेरुदण्ड की ओर पीछे खींचा और ऊपर उठाया जाता है। परंतु मूलबंध में गुदा और नाभि के मध्य का सारा निचला उदर का भाग सिकोड़ा जाता है, मेरुदण्ड की ओर खींचा जाता है और उर:प्राचीर की ओर ऊपर उठाया जाता है।

गुदा के समीप की संकोचक मांसपेशियों के सिकोड़ने का अभ्यास – अश्विनी मुद्रा – मूलबंध पर अधिकार प्राप्त करने में व्यक्ति की मदद करता है। अश्व का अर्थ है घोड़ा। मूत्र करते हुए घोड़े का सूचक होने से इसे अश्विनी मुद्रा कहते हैं इसे विविध आसन– विशेषत: ताड़ासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्व धनुरासन, उष्ट्रासन तथा पश्चिमोत्तानासन करते समय सीखना चाहिए।

कहा जाता है कि इन बंधों के अभ्यास से सोलह आधार बंद हो जाते हैं। आधार (धृ धातु से–सहारा देना) का अर्थ अवलम्ब, मर्मस्थान है। सोलह मर्मस्थान हैं– अंगूठे, टखने, घुटने, जाँघ, शिश्न के ऊपर की खुली त्वचा, जननेन्द्रियाँ, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, तालु, नासिका, भ्रूमध्य, भाल, सिर तथा ब्रह्मरन्ध्र (सिर के

कपाल का छिद्र जिसके द्वारा, कहते हैं, शरीर छोड़ते समय आत्मा भाग जाती है)।

अनुभवी गुरु या शिक्षक के व्यक्तिगत निरीक्षण के बिना स्वयं उड्डीयान और मूलबंध सीखने के प्रयास में अत्यन्त खतरा है। उड्डीयान बंध का गलत प्रयोग अनैच्छिक वीर्यपतन का और पौरुष की हानि का कारण होगा; जब कि मूलबंध पौरुषहीन साधक को अत्यन्त दुर्बल बना देंगे। मूलबंध के उचित प्रयोग में भी खतरा बना रहता है। यह लैंगिक धारणाशक्ति की वृद्धि करता है जिससे उस शक्ति के दुरुपयोग के लिए साधक लालायित होता है। यदि वह उस लोभ के वशीभूत होता है तो उसका सर्वनाश होता है। उसकी सभी सुप्त वासनाएँ उत्तेजित की जाती हैं और लाठी से मार खाये सोये हुए सर्प की तरह प्राणघातक होती ह। तीन बंधों पर प्रभुत्व-प्राप्ति से योगी अपने गन्तव्य के चौराहे पर होता है। एक मार्ग भोग या सांसारिक आनन्द के सुखभोग की ओर जाता है; दूसरा मार्ग योग या परमात्मा से मिलन की ओर ले जाता है। सांसारिक सुखभोग का आकर्षण बहुत होता है। फिर भी योगी के लिए इन आनन्दोपभोगों के कर्ता के प्रति अधिक आकर्षण होता है। इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होती हैं और परिणामतः वे विषयों की ओर आकृष्ट होती हैं और भोग के मार्ग को अपनाती हैं। यदि इन्द्रियों की दिशा परिवर्तित की जाती है, जिससे वे अन्तर्मुखी हो जाएँ, तब वे योगमार्ग का अनुसरण करती हैं। योगी की इन्द्रियाँ सम्पूर्ण सृष्टि के स्रोत, सृष्टिकर्ता से मिलने के लिए अन्तर्मुख होती हैं। गुरु के मार्गदर्शन की वास्तविक आवश्यकता उस समय होती है जब कि साधक ने तीन बंधों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया होता है। कारण केवल उचित मार्गदर्शन में ही यह बढ़ी हुई शक्ति उच्च एवं सुन्दर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उदात्तत्व प्राप्त करती है। फिर साधक ऊर्ध्वरेतस् (ऊर्ध्व–ऊपर की ओर; रेतस्–वीर्य) होता है अथवा ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है और अपने पौरुष को नष्ट नहीं करता है। बाद में वह नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है। उसके अंदर की शक्ति सूर्य के समान तेजपूर्ण होगी।

मूलबंध का अभ्यास करते समय योगी सच्चे स्रोत अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि के मूल तक पहुँचने के लिए प्रयास करता है। उसका लक्ष्य पूर्ण नियंत्रण, अर्थात् चित्तबंध है जिसमें मन, बुद्धि, और अहंकार समाविष्ट हैं।

मनुष्य का शरीर स्वयं में विश्व का एक लघुरूप है। हठ यह शब्द ह और ठ इन दो अक्षरों के समूह से बना हुआ है, जिसका अर्थ क्रमशः सूर्य और चन्द्र है। कहा जाता है कि सौर एवं चान्द्र ऊर्जाएँ दो मुख्य नाड़ियों–पिंगला तथा इड़ा–से होकर बहती है, जो क्रमशः दाहिने और बायें नासिकारन्ध्र से प्रारंभ होती हैं तथा नीचे मेरुदण्ड के मूल को जाती हैं। पिंगला सूर्यनाड़ी है तो इडा चन्द्रनाड़ी है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी है जो अग्निनाड़ी है। जैसा कि पहले कहा गया है सुषुम्ना नाड़ी जीवन ऊर्जा के बहने का मुख्य मार्ग है और यह मेरुदण्ड या

रीढ़ में स्थित है। पिंगला और इड़ा एक दूसरे से होकर गुजरती हैं और इस प्रकार सुषुम्ना भी अनेक स्थानों पर उनसे होकर गुजरती है। ये संगम स्थल चक्र या पहिये कहलाते हैं और इंजिन को संचालित करनेवाले संतुलनचक्र की तरह शरीर यंत्र को संचालित करते हैं।

मुख्य चक्र हैं : मूलाधार चक्र जो गुदा के ऊपर कटिप्रदेश में स्थित है (मूल= जड़, कारण, स्रोत; आधार=अवलम्ब, मर्मस्थान); जननेन्द्रियों के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र (स्व=प्राणभूत शक्ति, आत्मा; अधिष्ठान=स्थान या निवास); नाभि मणिपूरक चक्र है (मणिपूरक= नाभि); नाभि और हृदय के मध्य मनस् और सूर्य चक्र (मनस्=मन; सूर्य=रवि); हृदय प्रदेश में अनाहत चक्र (अनाहत= हृदय); अन्न प्रणाली प्रदेश में विशुद्ध चक्र (विशुद्ध=पवित्र); भौंहों के मध्य आज्ञा चक्र (आज्ञा=आदेश); मस्तिष्क की खोह में का सहस्रार चक्र, जो सहस्रदलों का कमल कहलाता है; और ललाट चक्र, जो भाल के ऊपर स्थित है (ललाट=भाल)।

हो सकता है कि ये चक्र अंतःस्रावक ग्रंथियों के अनुरूप हों, जो दूसरी प्रणाली के न्यासर्ग (शरीर के अन्दर का एक पुष्टिकर रासायनिक तत्त्व) और अन्तर्गत स्राव (शरीर से निकला हुआ रस या मल) की पूर्ति करते हैं। मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्र कदाचित् जननेन्द्रियों (पुरुषों के अंडाशय, शिश्न और शिश्न की ग्रंथियाँ और स्त्रियों के अंडाशय, गर्भाशय और योनी) से सम्बन्धित हैं। इन दो चक्रों के बीच जननेन्द्रियों (शिश्न और भग) का स्थान है जिसे कामदेव के नाम पर कामरूप कहते हैं। उदर के अवयव–जैसे पेट, प्लीहा, यकृत और अग्न्याशय कदाचित् मणिपूरक चक्र से सम्बन्धित हैं। सूर्य और मनस् चक्रों का संबंध संभवतः दो मूत्रपिण्डों (गुर्दों) से है। अनाहत चक्र हृदय है और मुख्य रक्तवाहिनी नलियाँ उसके चारों ओर हैं। विशुद्ध चक्र संभवतः कंठग्रन्थि, उपकंठग्रन्थि तथा हृदयासन्न ग्रन्थियों से सम्बन्धित है। आज्ञा, सहस्रार और ललाट चक्रों का सम्बन्ध मस्तिष्क की वस्तु, पीयूषग्रन्थि तथा शीर्षग्रन्थि से है।

तान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुसार प्राणायाम का उद्देश्य शरीर में स्थित ब्रह्माण्डशक्ति कुंडलिनी को जागृत करना है। मेरुदण्ड के मूल में स्थित सबसे नीचे नाड़ी केंद्र–मूलाधार चक्र में कुण्डली मारकर सोये हुए सर्प का प्रतीक है कुंडलिनी। इस गुप्त शक्ति को जगाना होगा और मेरुदण्ड प्रदेश से चक्रों को भेदन करते हुए सहस्रार चक्र (सिर में सहस्रदलयुक्त कमल, मस्तिष्क में नाड़ियों का तंतुजाल) तक ऊपर ले जाना और वहाँ परमात्म तत्त्व से मिलना होगा। कदाचित् अत्यधिक चेतनाशक्ति का वर्णन करने की यह लाक्षणिक रीति है, विशेषतः जीवनीशक्ति, जिसे ऊपर वर्णित उड्डीयान और मूलबंध के अभ्यास से प्राप्त किया जाता है। कुंडलिनी को जगाना और उसे ऊपर ले जाना, कदाचित् वासना-शक्ति के उदात्तीकरण का प्रतीक है।

प्राणायाम की विधि एवं परिणाम

२०३. उज्जायी प्राणायाम (चित्र ५९७)

क्रिया और संज्ञा के साथ प्रयुक्त उद् उपसर्ग का अर्थ है ऊपर की ओर या 'पद में श्रेष्ठ'। इसका अर्थ हवा भरना और फैलाना भी है। यह प्रकर्ष तथा सामर्थ्य को भी व्यक्त करता है।

जय का अर्थ जीतना, विजय, विजयोत्सव या सफलता है। दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो इसका अर्थ प्रतिरोध या अवरोध है।

उज्जायी वह प्रक्रिया है जिसमें फुप्फुस पूरी तरह फैलाये जाते हैं और अभिमानी विजेता के समान सीना बाहर निकाला जाता है।

विधि

१. पद्मासन (चित्र १०४), सिद्धासन (चित्र ८४) अथवा वीरासन (चित्र ८९) जैसे किसी सुविधाजनक आसन में बैठें।

२. पीठ को सीधा और कड़ा रखें। धड़ की ओर सिर को नीचा करें। सीने की हड्डी के ठीक ऊपर हँसुलियों के बीच कटाव पर चिबुक स्थिर करें (यह जालन्धर बन्ध है)।

३. बाहों को सीधे बाहर फैलायें और घुटनों पर कलाइयों का पिछला भाग टिकाएँ। दूसरी अंगुलियों को फैलाए हुए अंगूठों के अग्रभागों को तर्जनियों के अग्रभागों से मिलाएँ। हाथ की यह स्थिति या भाव ज्ञानमुद्रा कहलाती है, तर्जनी जीवात्मा का और अंगूठा विश्वात्मा का प्रतीक है। दोनों का मिलन ज्ञान का प्रतीक है।

४. आँखें बंद करें और दृष्टि को अन्तर्मुखी कर लें (चित्र ५९७)।

५. पूरी तरह श्वास छोड़ें।

६. अब श्वास की उज्जायी प्रणाली प्रारम्भ होती है।

७. दोनों नाकों से धीमी, गहरी, स्थिर श्वास लें। अंदर आती हुई हवा के मार्ग

का अनुभव तालु के ऊपरी भाग पर होता है और सिसकार की ध्वनि (स) होती है। इस ध्वनि को सुनना चाहिए।

८. फुफ्फुस को ऊपर तक पूरा भरें। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पूरक की प्रक्रिया में उदर न फूले। (सभी प्रकार के प्राणायामों में इसका ध्यान रखें)। यह वायुभरण पूरक (श्वसन) कहलाता है।

९. सम्पूर्ण उदर का भाग भगास्थि से ऊपर सीने की हड्डी तक मेरुदण्ड की ओर पीछे खींचा होना चाहिए।

१०. एक या दो सेकंड के लिए श्वास रोकें। अन्दर श्वास रोकने की इस क्रिया को 'अन्तर्कुम्भक' कहते हैं।

११. फुप्फुस पूरी तरह रिक्त होने तक धीरे, गहरे और स्थिर श्वास छोड़ें। रेचक के प्रारम्भ में, उठाये हुए उरःप्राचीर को शिथिल न करें, २ या ३ सेकंड के रेचक के अनंतर उरःप्राचीर को धीरे धीरे एवं क्रमशः शिथिल करें। तभी रेचक में बाहर जाती हुई हवा के मार्ग का अनुभव तालु के ऊपरी भाग पर होता है। तालु पर हवा के साफ करने की ध्वनि साँस खींचकर हवा निकालने की ध्वनि (ह) जैसी हो। श्वास निकालने की इस क्रिया को रेचक कहते हैं।

१२. पुनः नया श्वास लेने के पहले कुछ सेकंड के लिए ठहरें। ठहरने की इस अवधि को 'बाह्य कुम्भक' कहते हैं।

१३. अनुच्छेद ७ से अनुच्छेद १२ तक वर्णित प्रक्रिया द्वारा उज्जायी प्राणायाम की एक मालिका पूरी होती है।

१४. सतत आँखें बन्द किये हुए पाँच से दस मिनट के लिए इस मालिका को दुहराएँ।

१५. भूमि पर शवासन (चित्र ५९२) में चित लेट जाएँ।

१६. जालन्धर बंध के बिना चलते समय या नीचे लेटे हुए भी उज्जायी प्राणायाम किया जाए। यही एक ऐसा प्राणायाम है जिसे दिन और रात में सभी समय किया जा सकता है।

परिणाम

प्राणायाम का यह प्रकार फुप्फुसों को हवा से भरता है, कफ दूर करता है, धैर्य-सहिष्णुता देता है, नाड़ियों को शान्त करता है और सारी प्रणालियों को ठीक करता है। झुकी हुई स्थिति में बिना कुम्भक के किया गया उज्जायी प्राणायाम उच्च रक्तचाप या कपालवेदना से पीडित व्यक्तियों के लिए उत्तम है।

२०४. सूर्यभेदन प्राणायाम (चित्र५९९)

सूर्य का अर्थ रवि है। भिद् धातु से भेदन बना है। भिद् का अर्थ छेदना, तोड़ना या आरपार जाना है।

सूर्यभेदन प्राणायाम में, दाहिने नासिकारंध्र से श्वास लिया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्राण पिंगला या सूर्यनाड़ी से गुजरता है। बाद में कुम्भक किया जाता है और तब बायीं नाक से श्वास छोड़ा जाता है जो कि इडानाड़ी कहलाती है।

विधि

१. पद्मासन (चित्र १०४), सिद्धासन (चित्र ८४) अथवा वीरासन (चित्र ८९) जैसे किसी सुविधाजनक आसन में बैठें।

२. पीठ को सीधा और कड़ा रखें। सिर को धड़ की ओर नीचे लाएँ। सीने की हड्डी के ठीक ऊपर हँसुलियों के मध्य कटाव में चिबुक स्थिर करें (यह जालन्धर बन्ध है)।

३. बायीं बाँह फैलाएँ। बायें घुटने पर बायीं कलाई का पिछला हिस्सा टिकाएँ। बायें हाथ से ज्ञानमुद्रा करें (जैसा कि उज्जायी की विधि की स्थिति ३ में वर्णित है)।

४. कुहनी पर दायीं बाँह मोड़ें। तर्जनी और मध्यमा को निष्क्रिय बनाये हथेली की ओर मोड़ें। अनामिका और कनिष्ठिका को अंगुष्ठ की ओर ले आएँ (चित्र ५९८)।

५. दाहिना अंगूठा नाक की दाहिनी ओर नाक की हड्डी के ठीक नीचे और अनामिका व कनिष्ठिका नाक की बायीं ओर नाक की हड्डी के ठीक नीचे, ऊपर के जबड़े पर नाक की मोटी रचना के मोड़ के ठीक ऊपर रखें।

६. नाक की बायीं ओर को पूरी तरह बंद करने के लिए अनामिका और कनिष्ठिका को दबाएँ।

७. दाहिने अंगूठे से दाहिनी ओर की मोटी कोशाओं को दबाएँ; जिससे नासिका पटल की कोमलास्थि के निचले किनारे के समानान्तर दाहिनी नाक का बाहरी किनारा रहे।

८. दाहिना अंगूठा ऊपरी जोड़ पर मुड़ता है और अंगूठे का अग्रभाग नासिका पटल के समकोण में रखा जाता है (चित्र ५९९)।

९. अब अंगूठे के नख के पास के अग्रभाग से दाहिनी नाक का छेद नियंत्रित करते हुए धीरे और गहरी साँस लें। फुफ्फुसों को वायु से लबालब भर दें (पूरक)।

१०. बाद में दाहिना नासिका रन्ध्र बंद करें जिससे अब दोनों नासिका रन्ध्र बंद हो जाएँ।

११. मूलबन्ध का अभ्यास करते समय ५ सेकंड के लिए श्वास रोकें (अन्तर्कुम्भक)।

१२. दाहिनी नाक पूरी तरह बन्द रखते हुए, बायीं नाक का थोड़ा भाग खोलें और धीरे तथा गहराई से साँस छोड़ें (रेचक)।

१३. श्वास छोड़ते समय, अनामिका और कनिष्ठिका से दबाव व्यवस्थित करते हुए बायीं नाक से वायु को समप्रवाह में जाने दें, जिससे नासिका पटल के समानान्तर बायीं नाक का बाहरी भाग रखा जा सके । दबाव अंगुलियों के अंदर के भाग से (नखों से दूर) देना चाहिए ।

१४. इस प्रकार सूर्यभेदन प्राणायाम का एक चक्र पूरा होता है । शक्ति के अनुसार, एक दम में पाँच से दस मिनट तक और भी चक्र करते रहें !

१५. सूर्यभेदन प्राणायाम में सभी श्वसन दाहिनी नाक से और सभी उच्छ्वसन बायीं नाक से होते हैं ।

१६. प्रक्रिया के बीच वायु का मार्ग अंगुलियों के अग्रभाग, अंगूठे और नाक की झिल्लियों–जहाँ दबाव डाला जाता है, से जाना जाता है । वायु की गति से उसी प्रकार की आवाज आती है जिस प्रकार साईकल के ट्यूब से हवा निकलते समय होती है । इस आवाज़ को नाकों पर के दबाव बदलते हुए भी सतत बनाये रखना चाहिए ।

१७. आँखों, कनपट्टियों, भौंहों और ललाट की चमड़ी को सर्वथा निष्क्रिय होना चाहिए और उन पर किसी तरह के तनाव का चिह्न नहीं दिखना चाहिए ।

१८. वायु की गति की योग्य ध्वनि के सुनने और श्वासक्रिया में उचित लयबद्धता बनाये रखने में मन को पूरी तरह लगाना चाहिए।

१९. प्रत्येक श्वसन एवं उच्छ्वसन दोनों बराबर समय तक टिकना चाहिए।

२०. श्वसन एवं उच्छ्वसन को बलपूर्वक नहीं करना चाहिए । सर्वदा समान और मन्द लयबद्धता बनायी रखनी चाहिए ।

२१. प्राणायाम करने के बाद शवासन में लेट जाएँ (चित्र ५९२) ।

परिणाम

नासिका रन्ध्रों पर दबाव पड़ने के कारण, उज्जायी की अपेक्षा इस प्राणायाम में फुप्फुसों को अधिक कार्य करना पड़ता है । उज्जायी की अपेक्षा सूर्यभेदन में वे अधिक मन्द, स्थिर एवं पूर्ण भरे जाते हैं । सूर्यभेदन पाचनशक्ति बढ़ाता है, नाड़ियों को शांत करता है और शक्ति देता है तथा नासूर को दूर करता है ।

टिप्पणी : प्रायः ऐसा होता है कि दोनों नासिकारन्ध्रों के मार्ग समान रूप से चौड़े नहीं होते, एक दूसरे से बड़ा होता है । ऐसी स्थिति में अंगुलियों के दबाव से उन्हें व्यवस्थित किया जाना चाहिए । किन्हीं अवस्थाओं में दाहिनी नाक पूरी तरह बंद होती है जब कि बायीं नाक खुली रहती है । उस अवस्था में केवल बायीं नाक से श्वास लेना चाहिए जब कि उच्छ्वसन केवल दायीं नाक से किया जाना चाहिए । अंगुलियों के व्यापार से कुछ समय में दाहिनी नाक खुल जाती है और उससे श्वसन संभव हो जाता है ।

सावधानी : मन्द रक्तचाप से पीडित व्यक्ति इससे लाभान्वित होंगे परन्तु उच्च रक्तचाप या हृदयरोग से पीडित व्यक्तियों को इस प्राणायाम के अभ्यास के समय में पूरक के बाद श्वास रोकना नहीं चाहिए (अंतर्कुम्भक) ।

२०५. नाडी शोधन प्राणायाम

नाड़ी–प्राण या ऊर्जा के मार्ग के लिए , नस या धमनी के समान शरीर का नलिका रूप अवयव है । 'इंसुलेटेड इलेक्ट्रिक वायर' की तरह नाडी की तीन तहें होती हैं । सबसे अन्दर की तह को शिरा कहते हैं, बीच की तह को धमनी और संपूर्ण अवयव और साथ ही साथ बाहरी तह को नाड़ी कहते हैं ।

शोधन का अर्थ पवित्र करना या स्वच्छ करना–इस प्रकार नाड़ी शोधन प्राणायाम का उद्देश्य नाड़ी का शुद्धीकरण है । पानी के नल में थोड़ा सा व्यवधान जलपूर्ति को पूरी तरह बंद कर देता है । नाड़ियों में थोडा व्यवधान अत्यंत असुविधा के लिए कारणीभूत हो सकता है और अंग या अवयव को निष्क्रिय बना सकता है ।

विधि

१. सूर्य भेदन प्राणायाम (चित्र ५९९) के अनुच्छेद १ से ८ में बतलायी गयी विधि का अनुसरण करें ।

२. दाहिनी नाक से फुप्फुस को पूरी तरह रिक्त करें । दाहिनी नाक के छिद्र को , नख से दूर दाहिने अंगूठे के अंदसूनी भाग से नियंत्रित करें ।

३. बाद में, नख के समीप दाहिने अंगूठे के अग्रभाग से, छिद्र को नियंत्रित करते हुए दाहिनी नाक से मंद, स्थिर तथा गहरी साँस लें । फुप्फुस को ऊपर तक भरें (पूरक) । इस श्वसन के समय बायीं नाक अनामिका और कनिष्ठिका से पूरी तरह बंद होती है ।

४. पूर्ण श्वसन के बाद अंगूठे के दवाव से दाहिनी नाक को पूरी तरह बन्द करें और बायीं नाक पर की तर्जनी तथा कनिष्ठिका का दवाव हटा लें । बायीं नाक के बाहरी किनारे पर उन्हें फिर से रखें और उसे नासिका पटल के समानान्तर रखें । बायीं नाक से मंद, स्थिर तथा गहरी साँस छोड़ें । फुप्फुसों को पूरी तरह रिक्त करें । तर्जनी और कनिष्ठिका के अग्रभाग के अन्तर्भाग (नखों से दूर) से दबाव का प्रयत्न करना चाहिए (रेचक) ।

५. बायीं नाक से पूर्ण उच्छ्वसन के बाद, अंगुलियों को ठीक कर उस पर के दबाव को बदलें । बदली हुई स्थिति में, तर्जनी और कनिष्ठिका के नखों के समीप के अग्रभाग दबाव का काम कर सकते हैं ।

६. बाद में, फुप्फुसों को ऊपरी छोर तक भरते हुए बायीं नाक से मंद, स्थिर तथा गहरी साँस लें (पूरक) ।

७. बायीं नाक से पूर्ण श्वसन के बाद उसे बंद करें और जैसा कि ऊपर अनुच्छेद २ में बतलाया गया है, दाहिनी नाक पर दाहिने अंगूठे का दबाव डालते हुए दाहिनी नाक से साँस छोड़ें (रेचक) ।

८. यह क्रिया नाड़ी शोधन प्राणायाम की एक माला पूर्ण करती है । यहाँ श्वासोच्छ्वास की लयबद्धता नीचे के अनुसार है :

(१) दाहिनी नाक से श्वास छोड़ें ।
(२) दाहिनी नाक से श्वास लें ।
(३) बायीं नाक से श्वास छोड़ें ।
(४) बायीं नाक से श्वास लें ।
(५) दाहिनी नाक से श्वास छोड़ें ।
(६) दाहिनी नाक से श्वास लें ।
(७) बायीं नाक से श्वास छोड़ें ।
(८) बायीं नाक से श्वास लें ।
(९) दाहिनी नाक से श्वास छोड़ें ।
(१०) दाहिनी नाक से श्वास लें । और इसी प्रकार आगे करें ।

ऊपर (१) की अवस्था प्राथमिक स्वरूप की है । नाड़ीशोधन प्राणायाम की पहली माला वस्तुतः (२) की अवस्था में प्रारंभ होती है और अवस्था (५) पर समाप्त होती है । दूसरी माला अवस्था (६) में प्रारंभ होती है और अवस्था (९) पर समाप्त होती है । अवस्था (१०) एक सुरक्षात्मक कदम है, जिसे हाँपने, श्वासहीनता तथा हृदय पर दबाव रोकने के लिए माला के पूर्ण होने के बाद किया जाता है ।

९. ऊपर बतलायी गयी विधि से ८ से १० मालाएँ एक दम में करें । इसमें ६ या ८ मिनिट लगेंगे ।

१०. प्रत्येक ओर से श्वसन और उच्छ्वसन दोनों समान अवधि में होना चाहिए । प्रारंभ में अवधि विषम होगी । उसे सम होने तक खूब लगकर अभ्यास करें ।

११. सम अवधि पर अधिकार और दोनों ओर श्वसन एवं उच्छ्वसन में पूरी तरह पटुता प्राप्त करने के बाद, श्वसन के उपरान्त श्वास रोकने (अन्तर्कुम्भक) का प्रयास किया जाना चाहिए ।

१२. दीर्घ अभ्यास के बाद ही यह कुशलता प्राप्त होती है ।

१३. श्वास के अवरोध को श्वसन और उच्छ्वसन की लयबद्धता व समानता में खलल पैदा नहीं करना चाहिए । यदि दोनों में से किसी एक में भी गड़बड़ी होती है तो कुंभक की अवधि कम करें अथवा एक चक्र छोड़कर दूसरे चक्र में श्वास रोकें ।

१४. श्वसन के बाद कुम्भक के समय मूलबन्ध का अभ्यास करें ।

१५. जबतक आपने श्वसन के बाद श्वास रोकने (अंतर्कुम्भक) पर अधिकार

प्राप्त नहीं किया है, तबतक उच्छ्वसन के बाद श्वास रोकने (बाह्य कुम्भक, चित्र ६००) की कोशिश न करें। बाद में बाह्य कुम्भक के समय मूलबन्ध के साथ उड्डीयान (चित्र ५९३, ५९४) का अभ्यास करें।

१६. अनुभवी गुरु के मार्गदर्शन तथा मदद से ही कुम्भक तथा श्वसन एवं उच्छ्वसन की अवधि बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

१७. हमेशा शवासन (चित्र ५९२) में लेटकर समाप्त करें।

परिणाम

स्वाभाविक श्वासक्रिया की अपेक्षा नाड़ी शोधन में रक्त को प्राणवायु की पूर्ति अधिक होती है, जिससे व्यक्ति प्रफुल्लता का अनुभव करता है और नाड़ियाँ शान्त एवं शुद्ध होती हैं। मन स्थिर तथा निर्मल हो जाता है।

टिप्पणी : प्रारंभ में शरीर से पसीना छूटता है और शरीर काँपता है जबकि जांघ और बाहों की माँसपेशियों पर तनाव मालम होता है। इस प्रकार के तनाव से बचना चाहिए।

सावधानी :

१. जो व्यक्ति उच्च रक्तचाप या हृदयरोग से पीड़ित हैं उन्हें श्वास रोकने (कुंभक) की कोशिश कभी नहीं करनी चाहिए। वे कुंभक के बिना लाभकारी परिणामयुक्त नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं।

२. जो व्यक्ति मंद रक्तचाप से पीड़ित हैं वे श्वसन के बाद अवरोध (अंतर्कुंभक) के साथ ही, लाभकारी परिणामयुक्त इस प्राणायाम को कर सकते हैं।

प्राणायाम

२०६. भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का अर्थ भट्टी के लिए उपयोग में लायी जाने वाली धौंकनी है । लुहार की धौंकनी की तरह यहाँ जबरदस्ती हवा अन्दर और बाहर की जाती है । इसलिए यह नाम है । यहाँ विधि दो अवस्थाओं में दी गयी है ।

विधि—अवस्था १

१. उज्जायी के अनुच्छेद १ और २ विधि का अनुसरण करें ।

२. तेज और प्रबल श्वास लें और तेज और जोर से श्वास छोड़ें । एक श्वसन और एक उच्छ्वसन से भस्त्रिका का एक चक्र पूरा होता है । जो ध्वनि होती है वह धौंकनी से वेग से गुजरती हुई हवा की आवाज के समान होती है ।

३. एक दम में १० से १२ चक्र पूरा करें । बाद में उज्जायी की तरह मंद गहरी साँस लें । २ से ३ सेकंड के लिए मूलबन्ध के साथ श्वास रोकें । बाद में उज्जायी की तरह धीरे से गहरी साँस छोड़ें ।

४. श्वासक्रिया का यह उज्जायी -भेद फुप्फुसों और उर:प्राचीर को विश्रान्ति देता है और उन्हें भस्त्रिका के नये चक्रों के लिए तैयार करता है ।

५. बीच-बीच में उज्जायी श्वासक्रिया के साथ तीन से चार बार तक भस्त्रिका की माला दुहराएँ ।

६. यदि वायु की ध्वनि न्यून होती है और प्रबलता समाप्त होती है तो उनकी संख्या घटा दें ।

७. अन्त में शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ ।

अवस्था २

(२०७ –कपालभाति)

१. उज्जायी की अनुच्छेद १ और २ विधि का अनुसरण करें ।

२. सूर्यभेदन की विधि में बतलाये गये अनुसार नाकों पर अँगूठा और अँगुली का दबाव रखें ।

३. बायीं नाक पूरी तरह बन्द करें परंतु दाहिनी नाक थोड़ी खुली रखें ।

४. ऊपर की अवस्था १ की तरह भस्रिका की १० से १२ मालाओं के लिए दाहिनी नाक से जोर से श्वास लें और श्वास छोड़ें ।

५. दाहिनी नाक बंद करें । बायीं नाक थोड़ी खोलें और भस्रिका के उतने ही चक्र दुहरायें !

६. नाकों पर से अंगुलियाँ हटा लें ।

७. उज्जायी की तरह कुछ गहरी साँस लें ।

८. बीच-बीच में उज्जायी करते हुए तीन से चार बार दोनों ओर मालाओ को दुहराएँ ।

९. पूरा करने के बाद शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ ।

टिप्पणी : भस्त्रिका प्राणायाम का सहज रूप–२०७–कपालभाति (कपाल= खोपड़ी; भाति–प्रकाश, चमक) की प्रक्रिया है । कपालभाति में श्वसन मंद होता है परंतु उच्छ्वसन प्रबल होता है । प्रत्येक उच्छ्वसन के बाद अवरोध (कुंभक) के सूक्ष्म कण होते हैं । यदि बाद की श्वासक्रिया अधिक श्रमसाध्य प्रतीत होती है तो भस्त्रिका के बदले कपालभाति का कुछ चक्र करें । कपालभाति पूरा करने के बाद शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ ।

परिणाम

भस्त्रिका और कपालभाति दोनों यकृत, प्लीहा, पाचनग्रन्थि तथा उदर की माँस-पेशियों को क्रियाशील और शक्तिशाली बनाती हैं । इस प्रकार पाचनशक्ति की वृद्धि होती है, नासूर सूख जाता है, आँखें ठंडी मालूम पडती हैं और व्यक्ति प्रफुल्लता का अनुभव करता है ।

सावधानी

१. जिस प्रकार ट्रेन को खींचने के हेतु भाप पैदा करने के लिए लोकोमोटिव्ह इंजिन में कोयला झोंकते हैं उसी प्रकार सारे शरीर को सक्रिय बनाने के लिए भस्त्रिया प्राण को उत्पन्न करता है । बहुत अधिक कोयले के झोंकने से इंजिन का बॉयलर जल जाता है । इस प्रकार भस्त्रिका का दीर्घ अभ्यास शरीर -- यंत्र को जर्जर कर देता है; कारण श्वासक्रिया जोर से होती है ।

२. दुर्बल शारीरिक प्रकृति एवं क्षीण फुप्फुस के सामर्थ्यवाले व्यक्तियों को भस्त्रिका या कपालभाति की कोशिश नहीं करनी चाहिए ।

३. जो व्यक्ति कान या आँख की शिकायत (कान में मवाद, आँख के पिछले

पटल से अलगाव या आँख के रोगविशेष 'ग्लूकोमा') के शिकार हैं, उन्हें इन दोनों में से किसी एक के लिए भी प्रयास नहीं करना चाहिए ।

४. और न उच्च रक्तचाप या मन्द रक्तचापवाले व्यक्ति को ही करना चाहिए ।

५. यदि नाक से रक्त बहने लगता है अथवा कान फड़कने या दर्द करने लगते हैं, तो तत्काल भस्त्रिका या कपालभाति रोक दें ।

६. दोनों में से किसी एक को भी कुछ समय के लिए न करें ।

२०८. भ्रमरी प्राणायाम

भ्रमरी का अर्थ बड़ी काली मधुमक्खी है ।

विधि

१. भ्रमरी प्राणायाम की विधि वही है जो उज्जायी की है । अन्तर यह है कि भ्रमरी में उच्छ्वसन के समय, मधुमक्खियों की भनभनाहट की तरह, मंद भनभन की ध्वनि की जाती है । पूर्ण करने के बाद शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ ।

भ्रमरी प्राणायाम में भनभन ध्वनि निद्रानाश की स्थिति में सहाय्यक है ।

२०९. शीतली प्राणायाम (चित्र ६०१)

शीतल का अर्थ है ठंढा । यह प्राणायाम शरीर यंत्र को शीतल करता है, इसलिए यह नाम है ।

विधि

१. पद्मासन (चित्र १०४), सिद्धासन (चित्र ८४), अथवा वीरासन (चित्र ८९) में बैठें ।

२. सिर के समतल में पीठ को सीधा और कड़ा रखें । हाथों से ज्ञानमुद्रा करें । यहाँ जालन्धर बन्ध श्वसन के समय नहीं किया जाता है, अपितु बाद में करते हैं ।

३. मुँह खोलें और ओठों को 'O' – सा गोल करें ।

४. जीभ के किनारे और अग्रभाग दाढ़ों तथा आगे के दांतों को छूते हुए जीभ ऊपर उठानी और घुमानी चाहिए । जीभ की आकृति अभी–अभी खुलनेवाले ताजे मुड़े हुए पत्ते के समान होगी (चित्र ६०१) ।

५. मुड़ी हुई जीभ को ओठों के बाहर निकालें । फुप्फुसों को पूरी तरह भरने के लिए सिसकार की ध्वनि (इ श् श् श् श् श् श्) के साथ मुड़ी हुई जीभ से हवा को अन्दर खींचें । मानो हवा पतली नलिका या पीने की नली से अन्दर खींची जाती हो । पूर्ण श्वसन के बाद जीभ अन्दर कर लें और मुँह बन्द कर लें ।

६. पूर्ण श्वसन के बाद, सिर को गर्दन के पिछले भाग से धड़ की ओर झुकाएँ ।

चिबुक को हँसुली और सीने की हड्डी के जरा ऊपर बीच में कटाव पर स्थिर होना चाहिए अब सिर जालन्धर बन्ध की स्थिति में है।

७. फिर मूलबन्ध (देखें पृष्ठ. . . .) का अभ्यास करते हुए ५ सेकंड के लिए श्वास रोकें (अन्तर्कुम्भक करें)।

८. उज्जायी की तरह नाक से हवा छोड़ने की ध्वनि (हू ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ म) के साथ धीरे से श्वास छोड़ें।

९. इस प्रकार शीतली प्राणायाम का एक चक्र पूरा होता है।

१०. सिर उठाएँ और ५ से १० मिनट के लिए माला दुहराएँ।

११. पूरा करने के बाद शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ।

परिणाम

यह शरीरयंत्र को ठंढा रखता है और आँखों और कानों को शक्ति देता है। यह मंदज्वर और पित्त की अवस्था में लाभदायक है। यह यकृत और प्लीहा को क्रियाशील बनाता है, पाचनशक्ति बढ़ाता है और प्यास बुझाता है।

सावधानी

१. उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को अन्तर्कुंभक नहीं करना चाहिए।

२. जो व्यक्ति हृदय रोग से पीडित हैं उन्हें प्रारंभ में शीतली प्राणायाम के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए।

२१०. शीतकारी प्राणायाम

शीतकारी का अर्थ है ' ठंढा करनेवाला '। यह शीतली प्राणायाम का एक प्रकार है।

विधि

यहाँ जीभ घुमी हुई नहीं होती है। ओंठ किंचित् खुले हुए रखे जाते हैं और दाँतों के बीच जीभ का केवल अगला भाग निकला होता है। जीभ को उसकी स्वाभाविक स्थिति में समतल रखा जाता है। शीतली प्राणायाम की विधि का ही अनुसरण करें।

परिणाम

परिणाम वैसे ही हैं जैसे कि शीतली प्राणायाम के लिए बतलाए गये हैं।

सावधानी

उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति शीतली प्राणायाम की अपेक्षा शीतकारी में अत्यधिक तनाव पा सकते हैं।

२११. समवृत्ति प्राणायाम

१. सम का अर्थ है वही, अभिन्न, सीधा, सारा, सम्पूर्ण, सर्व; अनुरूप, उसी ढंग में।

२. वृत्ति का अर्थ क्रिया, हलचल, व्यापार या प्रवृत्ति, आचरण या व्यवहारपद्धति है।

३. इसलिए समवृत्ति प्राणायाम में, प्राणायाम के किसी प्रकार में श्वास की तीनों प्रक्रियाओं, जैसे पूरक (श्वास लेना) कुंभक (श्वास रोकना) और रेचक (श्वास छोड़ना) की कालावधि में अनुरूपता प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। यदि एक ५ सेकंड रहता है तो दूसरों को भी वैसा ही करें।

४. ५ सेकंड की यह अनुरूपता, प्राणायाम के किसी प्रकार में, जैसे उज्जायी, सूर्यभेदन, नाड़ीशोधन, शीतली या अन्य के श्वासक्रिया की मालाओं में बनाये रखना चाहिए।

सावधानी

५. प्रारंभ में समवृत्ति प्राणायाम केवल पूरक (श्वास लेने) और रेचक (श्वास छोड़ने) तक सीमित होना चाहिए।

६. प्रथम पूरक तथा रेचक में समय की अवधि की समानता प्राप्त करें, उसके बाद ही अंतर्कुंभक (पूर्ण श्वसन के बाद श्वास रोकने) का प्रयास करें।

७. अंतर्कुंभक शनैःशनैः प्रारंभ करें। प्रारंभ में पूरक, अन्तर्कुंभक और रेचक के लिए समय का अनुपात १ : $\frac{१}{४}$: १ रखना चाहिए। इसके बाद अनुपात १ : $\frac{१}{२}$: १ में बहुत धीरे से बढ़ाना चाहिए। इसके बाद अनुपात १ : $\frac{३}{४}$: १ का प्रयास दृढ़तापूर्वक स्थिर करें। इस पर अधिकार प्राप्त करने के बाद ही अन्तर्कुंभक का अनुपात १ : १ : १ तक बढ़ायें।

८. जबतक आप पूरक, अंतर्कुंभक और रेचक में १ : १ : १ के इच्छित अनुपात को प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक आप बाह्य कुंभक (पूर्ण उच्छ्वसन के बाद श्वास रोकने) के लिए प्रयत्न न करें।

९. यदि फुफ्फुसों से वायु पूरी तरह निकाल दी गयी है तो अन्दर का आकाश और बाहर के वायुमंडल का दबाव फुफ्फुसों पर भयंकर तनाव पैदा करेगा। इसलिए प्रारंभ में अंतर्कुंभक और बाह्य कुंभक दोनों एक साथ न करें।

१०. अंतर्कुंभक या बाह्य कुंभक का अभ्यास अलग-अलग करें या एक के बाद दूसरा–इस क्रमसे करें। शुरू शुरू में गहरी श्वास क्रिया के साथ पूरक और रेचक की दो या तीन मालाओं के बीच छितराकर कुंभक करें, उदाहरणार्थ-दो या तीन श्वासक्रिया की मालाएँ और अंतर्कुंभक की एक माला करें। बाद में दो या तीन श्वासक्रिया की मालाएँ करें और उसके बाद बाह्य कुंभक की एक माला करें। ३ अंतर्कुंभक और

३ बाह्य कुंभक से प्रारंभ करें और कुंभकों की संख्या बहुत धीरे-धीरे बढ़ाएँ।

२१२. विषमवृत्ति प्राणायाम

१. विषम का अर्थ है " कई वस्तुओं में जो अनियमित तथा कठिन ।"

२. विषमवृत्ति प्राणायाम इसलिए कहते हैं कि पूरक,कुंभक और रेचक के लिए समय की समान अवधि रखी नहीं जाती है। यह लयबद्धता में बाधा उत्पन्न करता है और अनुपात की भिन्नता साधक के लिए कठिनाई और धोखा पैदा करती है।

३. इस प्रकार के प्राणायाम में, अनुपात १ : ४ : २ होने से पूर्ण श्वसन ५ सेकंड होता है, २० सेकंड के लिए श्वास रुकता है (अंतर्कुंभक) और उच्छ्वसन १० सेकंड होता है। प्रथम प्रथम साधक उच्छ्वसन के समय लयबद्धता बनाने में कठिनाई का अनुभव करेंगे, परन्तु यह अभ्यास से सहज हो जाता है।

४. इसके विपरीत, यदि श्वसन १० सेकंड के लिए है; श्वास २० सेकंड के लिए रोका जाता है, और उच्छ्वसन ५ सेकंड होता है तो यहाँ अनुपात २ : ४ : १ है।

५. पुनः यदि समय का विस्तार इस प्रकार बदला जा सकता है कि यदि श्वसन २० सेकंड के लिए है, अवरोध १० सेकंड के लिए और उच्छ्वसन ५ सेकंड के लिए; तो अनुपात ४ : २ : १ होगा।

६. प्राणायाम की एक माला में अनुपात १ : २ : ४, २ : ४ : १ और ४ : १ : २ अपनाया जा सकता है। तब ये तीनों अनुपात मिलकर प्राणायाम की एक माला गिनी जाती है।

७. यदि बाह्य कुंभक (पूर्ण उच्छ्वसन के बाद और नये श्वसन के पूर्व का अवरोध) का भी विचार किया जाता है तो अनुपात का योग और भी बड़ा होगा।

८. यदि उज्जायी, सूर्यभेदन, नाड़ीशोधन, भ्रमरी, शीतली और शीतकारी जैसे प्राणायाम के मूल प्रकारों में (नीचे वर्णित) प्राणायाम की विलोम, अनुलोम और प्रतिलोम पद्धतियों के विभिन्न अनुपातों को देखा जाय तो गणकों की संख्या नक्षत्रों जैसी होगी, अनगिनत होगी।

९. मनुष्य अपने जीवन काल में इन विभिन्न गणकों को कभी सम्पादित नहीं कर सकता है।

१०. विषमवृत्ति प्राणायाम का मार्ग भयपूर्ण है। इसलिए अनुभवी गुरु या शिक्षक के व्यक्तिगत निरीक्षण के बिना अपने आप अभ्यास करने के प्रयास का स्वप्न न देखें।

११. पूरक, कुंभक और रेचक के लिए समय के पृथक् पृथक् अनुपातों के कारण उत्पन्न लयहीनता से शरीर की सारी व्यवस्था, विशेषतः श्वास एवं स्नायुसंबंधी व्यवस्था पर अत्यधिक जोर पड़ता है और उनपर अनुचित रीति से तनाव दिया जाता है।

१२. कुंभक के अभ्यास के संबंध में अनुच्छेद ५ से १० में समवृत्ति प्राणायाम

में बतलायी गयी सावधानियों का विषमवृत्ति प्राणायाम में अत्यधिक महत्त्व है ।

१३. " हठयोग प्रदीपिका " के दूसरे अध्याय में स्वात्माराम के कथन की सत्यता का अनुभव व्यक्ति अब करने लगता है :" सिंह, हाथी और बाघ से भी अधिक धीरे धीरे क्रमशः प्राणों को व्यक्ति के सामर्थ्य और शारीरिक मर्यादा के अनुसार बस में लाना चाहिए ; अन्यथा यह साधक का प्राण ले लेगा । "

विलोम, अनुलोम एवं प्रतिलोम प्राणायाम

समवृत्ती और विषमवृत्ति प्राणायाम का संबंध पूरक, कुंभक और रेचक में लिये गये समय के विशिष्ट अनुपात को बनाये रखने से है ।

प्राणायाम के विलोम, अनुलोम तथा प्रतिलोम भेद पूरक एवं रेचक की प्रणालियों तथा विधियों से सम्बन्धित हैं । विलोम में पूरक (श्वसन) या रेचक (उच्छ्वसन) निरन्तर एक प्रक्रिया नही है, परन्तु धीरे धीरे अनेक विरामों के साथ किया जाता है । अनुलोम में उज्जायी की भाँति दोनों नासिकारंध्रों से श्वसन और नाड़ीशोधन की तरह प्रत्येक नाक से पारी-पारी से उच्छ्वसन किया जाता है । प्रतिलोम में संपूर्ण श्वसन प्रत्येक नाक द्वारा पारी-पारी से किया जाता है जबकि संपूर्ण उच्छ्वसन उज्जायी की भाँति दोनों नाकों से किया जाता है ।

२१३. विलोम प्राणायाम

लोम का अर्थ रोम अथवा केश है । वि उपसर्ग निषेध अथवा अभाव के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार विलोम का अर्थ केशरहित, इच्छा-अभिलाषा के विपरीत, वस्तुओं के स्वाभाविक स्थिति-क्रम के विपरीत है ।

विलोम प्राणायाम में श्वसन अथवा उच्छ्वसन एक कोई अव्यवहित निरंतर प्रक्रिया नहीं है, बल्कि अनेक विरामों से बाधित है । उदाहरणार्थ यदि फुप्फुसों को वायुपूरित करने के लिए निरन्तर श्वसन या वायु रिक्त करने के लिए निरंतर उच्छ्वसन की प्रत्येक अवस्था में १५ सेकंड लगते हैं, तो विलोम में श्वसन या उच्छ्वसन के प्रत्येक दूसरे-तीसरे के बाद २ सेकंड का विराम होगा । इस प्रकार श्वसन अथवा उच्छ्वसन की प्रक्रिया २५ सेकंड लंबी है । नीच दो अवस्थाओं में स्पष्ट रूप से विधि दी गयी है ।

विधि : अवस्था १

१. विलोम प्राणायाम बैठे हुए आसन में अथवा लेटे हुए किया जा सकता है ।

२. यदि बैठे हुए किया जाय तो पीठ सीधी रखें, सिर को धड़ की ओर झुकाएँ जिससे चिबुक सीने की हड्डी के ऊपर हँसुलियों के बीच के गढ्ढे में स्थिर रहे । यह जालन्धर बन्ध है । हाथों को ज्ञानमुद्रा में रखें ।

३. दो सेकंड तक श्वास लें, श्वास रोकें, दो सेकंड तक रुकें, फिर दो सेकंड तक श्वास लें, पुनः श्वास रोककर दो सेकंड रुकें और इसी प्रकार फुप्फुसों के पूर्ण भरने तक इसी प्रकार चालू रखें।

४. अब मूलबन्ध का अभ्यास करते हुए अपने सामर्थ्य के अनुसार ५ से १० सेकंड तक श्वास रोकें (अंतर्कुंभक)।

५. श्वसन करते समय बीच में जब रुकते हैं, उस समय मूलबन्ध का अभ्यास किया जाना चाहिए।

६. श्वास निकालने की वायुध्वनि (हुऽ ऽ ऽ ऽ ऽ म) युक्त उज्जायी के समान धीरे और गहरी साँस लें। उच्छ्वसन के समय मूलबन्ध छोड़ दें।

७. इस प्रकार विलोम प्राणायाम की पहली अवस्था की एक मालिका पूर्ण होती है।

८. पहली अवस्था की १० से १५ मालिकाएँ एक साँस में दुहराएँ।

अवस्था

९. एक या दो मिनट के लिए विश्राम करें।

१०. बाद में सीने की हड्डी के ऊपर चिबुक को रखते हुए, उज्जायी की तरह श्वास खींचते हुए वायुध्वनि (इ स् स् स् स् स्) के साथ बिना किसी विराम के एक गहरी साँस लें। फुप्फुसों को पूरी तरह भरें।

११. मूलबन्ध की पकड़ बनाये ५ से १० सेकंड तक श्वास रोकें (अंतर्कुंभक)।

१२. दो सेकंड तक श्वास छोड़ें और २ सेकंड तक रुकें। पुनः दो सेकंड तक श्वास छोड़ें और २ सेकंड तक रुकें और इस प्रकार फुप्फुसों को पूर्ण रिक्त होने तक चालू रखें।

१३. रुकाव के समय मूलबन्ध की पकड़ को बनाये रखें।

१४. इस प्रकार विलोम प्राणायाम की दूसरी अवस्था की एक मालिका पूर्ण होती है।

१५. विलोम की दूसरी अवस्था १० से १५ बार एक दम में दुहराएँ।

१६. यह विलोम प्राणायाम की पूर्ति है।

१७. बाद में शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ।

परिणाम

विलोम प्राणायाम पहली अवस्था में मन्द रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को सहायता पहुँचाता है। दूसरी अवस्था में यह उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिए लाभप्रद है।

सावधानी

१. विलोम की दूसरी अवस्था का अभ्यास उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को लेटे हुए ही करना चाहिए।

२. जो हृदय-रोग से पीड़ित हैं उन्हें चाहिए कि वे जबतक नाड़ीशोधन और उज्जायी प्राणायाम पर अधिकार प्राप्त नहीं कर लेते तबतक उसके लिए प्रयास न करें।

२१४ अनुलोम प्राणायाम

अनु का अर्थ है सहित, के साथ अथवा संबंधित; साथ ही ' एक के बाद ' यह भी दूसरा अर्थ है। इसलिए अनुलोम का अर्थ क्रमशः, केशसहित, अभिलाषा के साथ अथवा स्वाभाविक क्रम में है। अनुलोम प्राणायाम में दोनों नासिकाओं से श्वसन तथा पारी-पारी से प्रत्येक नाकद्वारा उच्छ्वसन किया जाता है।

विधि

१. पद्मासन (चित्र १०४), सिद्धासन (चित्र ८४) अथवा वीरासन (चित्र ८९) जैसे किसी सुविधाजनक आसन में बैठें।

२. पीठ को सीधा और कड़ा रखें। सिर को धड़ की ओर नीचा करें और चिबुक को सीने की हड्डी के ठीक ऊपर हँसुलियों के बीच गड्ढे में स्थिर करें (यह जालन्धर बन्ध है)।

३. फुप्फुस वायुपूरित होने तक उज्जायी के समान दोनों नासिकाओं से गहरी साँस लें।

४. मूलबन्ध बनाये हुए यथाशक्ति ५ से १० सेकंड तक श्वास लेने के बाद (पूरक) श्वास रोकें (अंतर्कुंभक)।

५. सूर्यभेदन प्राणायाम में बतलाये अनुसार दायां हाथ नाक के पास लाएँ, मूलबन्ध छोड़ दें, और बायीं नासिका को पूरी तरह बन्द रखते हुए अधखुली दायीं नासिका से धीरे धीरे श्वास छोड़ें। फुप्फुस को पूरी तरह रिक्त करें और तब हाथ नीचे करें।

६. अनुच्छेद ३ के अनुसार फुप्फुस वायुपूरित होने तक दोनों नासिकाओं से श्वास लें।

७. मूलबन्ध बनाये हुए ५ से १० सेकंड तक यथाशक्ति श्वास लेने (पूरक) के बाद श्वास रोकें (अंतर्कुंभक)। अनुच्छेद ४ तथा इस अनुच्छेद में बतलायी गयी श्वास रोकने की अवधि समान होनी चाहिए।

८. पुनः दायां हाथ नाक के पास लाएँ। मूलबन्ध छोड़ दें और दायीं नासिका पूर्णतया बन्द करें। अब बायीं नासिका अधखुली रखें और फुप्फुस को पूरी तरह रिक्त करने के लिए धीरे–धीरे गहरी साँस छोड़ें।

९. यह अनुलोम प्राणायाम का एक चक्र पूरा करता है।

१०. एक ही दम में ५ से ८ चक्र करें।

११. तब शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ।

परिणाम

उज्जायी, नाड़ीशोधन और सूर्यभदन के परिणामों के समान ही इसके परिणाम हैं ।

सावधानी

१. अनुलोम प्राणायाम में पूरक की अपेक्षा रेचक अधिक काल तक रहता है । श्वासोच्छ्वास की लय इसमें एक नहीं रह पाती , उसमें विविधता आ जाती है । यह कठिन है और इसलिए केवल प्रगत साधकों के द्वारा ही किया जाना चाहिए ।

२. रक्तचाप अथवा हृदय रोगों और नाड़ियों की अव्यवस्था से पीड़ित व्यक्तियों को इसका प्रयास करना नहीं चाहिए, कारण परिणाम हानिकारक होने की संभावना है ।

२१५ प्रतिलोम प्राणायाम

प्रति का अर्थ विपरीत है । प्राणायाम का यह प्रकार अनुलोम के विपरीत है । इसमें प्रत्येक नासिका से पारी-पारी से श्वास लिया (पूरक किया) जाता है और वाद में उज्जायी के समान दोनों नासिकाओं से श्वास छोड़ा (रेचक) जाता है ।

विधि

१. पद्मासन (चित्र १०४), सिद्धासन (चित्र ८४), अथवा वीरासन (चित्र ८९) जसे किसी सुविधाजनक आसन में बैठें ।

२. पीठ सीधी तथा कड़ी रखें । सिर धड़ की ओर झुकाएँ । सीने की हड्डी के ऊपर हँसुलियों के बीच गड्ढे में चिवुक स्थिर करें । यह जालन्धर वन्ध है ।

३. बायीं भुजा फैलाएँ । बायीं कलाई का पिछला भाग बायें घुटने पर टिकाएँ । बायें हाथ से ज्ञानमुद्रा करें । (देखें २०३, ३) ।

४. दायीं भुजा कुहनी पर मोड़ें, तथा तर्जनी व मध्यमा को निष्क्रिय रखते हुए, उन्हें हथेली की ओर मोड़ें। अनामिका व कनिष्ठिका अंगूठे की ओर ले जाएँ (चित्र५९८) ।

५. नासिका के मांसल वक्रभाग के ठीक ऊपर तथा नासिकास्थि के ठीक नीचे दायीं नाक पर दायां अंगूठा और बायीं नाक पर अनामिका और कनिष्ठिका रखें ।

६. बायीं नाक को पूर्ण रूप से बन्द करने के लिए अनामिका और कनिष्ठिका को दबाएँ ।

७. नासिका के वाहरी किनारे को नासिकापटल के नीचे के वक्र किनारे के समानान्तर करने के लिए दायें अंगठे से मांसल भाग के दायीं ओर दबाएँ ।

८. दायां अंगूठा ऊपरी जोड़ पर मुड़ेगा और अंगूठे का अग्रभाग नासिकापटल के समकोण पर रहेगा (चित्र ५९९) ।

९. अब दायें अंगूठे के नख के पास के अग्रभाग से दायीं नासिका को नियंत्रित करते हुए धीरे-धीरे गहरी साँस लें । फुप्फुस को पूरी तरह लबालब भरें (पूरक) ।

१०. अब बायीं नासिका बन्द करें जिससे दोनों नासिकाएँ बंद हो जाती हैं ।

११. ५ से १० सेकंड तक श्वास रोकें (अंतर्कुंभक) और मूलबन्ध में रहें।

१२. दायां हाथ नीचे करें । मूलबन्ध की पकड़ छोड़ दें । फुप्फुसों के पूरी तरह रिक्त होने तक उज्जायी (२०३) की तरह धीरे-धीरे गहरी साँस छोड़ें ।

१३. पुनः दायां हाथ नाक की ओर उठाएँ । दायीं नासिका को पूरी तरह बन्द किये अधखुली बायीं नासिका से धीरे-धीरे गहरी साँस लें ।

१४. फुप्फुस को पूरी तरह लबालब भरें ।

१५. मूलबन्ध की पकड़ के साथ ५ से १० तक श्वास रोकें । प्रत्येक नासिका से श्वास लेने (पूरक) के बाद का श्वास का रोकना (अंतर्कुंभक) समान अवधि तक होना चाहिए ।

१६. दायां हाथ नीचे करें, मूलबन्ध छोड़ दें । उज्जायी के समान फुप्फुसों में से सारी वायु पूरी तरह बाहर निकालते हुए, धीरे-धीरे गहरी साँस छोड़ें ।

१७. यह प्रतिलोम प्राणायाम का एक चक्र पूरा करता है ।

१८. एक ही दम में ५ से ८ चक्र करें ।

१९. तब शवासन (चित्र ५९२) में लेट जाएँ ।

परिणाम

उज्जायी, नाड़ीशोधन तथा सूर्यभेदन प्राणायाम के समान ही इसके परिणाम हैं ।

सावधानी

१. अनुलोम के अनुसार यहाँ रेचक (उच्छ्वसन) की अपेक्षा पूरक (श्वसन) अधिक समय तक होने से श्वास की लय में विविधता है । इसलिए प्राणायाम का यह कठिन प्रकार केवल प्रगत साधकों द्वारा ही किया जाना चाहिए ।

२. रक्तचाप, हृदयरोगों तथा नाडियों की अव्यवस्था से पीड़ित व्यक्तियों को इसके लिए प्रयास नहीं करना चाहिए । कारण, परिणाम हानिकारक होने की संभावना है ।

२१६. सहित तथा केवल कुंभक प्राणायाम

सहित का अर्थ से युक्त, के साथ, से संबद्ध है ।

जब बाह्य और अंतर्कुंभक की सहेतुक मदद तथा विचारपूर्वक सहायता से प्राणायाम

का अभ्यास किया जाता है तब वे सहित कुंभक प्राणायाम के नाम से जाने जाते हैं ।

केवल का अर्थ पृथक्, शुद्ध, केवल तथा पूर्ण है । जब कुंभक का अभ्यास स्वाभाविक होता है तब वे केवल कुंभक कहलाते हैं ।

जब साधक केवल कुंभक पर अधिकार प्राप्त कर लेता है तब वह अपने को संसार से पृथक् कर लेता है और अनन्त में विलीन हो जाता है । उसने परमाणुओं में से एक सूक्ष्मतम एवं प्रबलतम परमाणु पर नियंत्रण की लयबद्धता प्राप्त कर ली है, जो लघु-तम छिद्र से लेकर विशाल आकाश को व्याप्त कर सकता है । उसका मन पूर्णतया प्राणमय हो जाता है और प्राण के सदृश मुक्त एवं स्वच्छंद हो जाता है ।

जिस प्रकार वायु आकाश से धुआँ और अशुद्धि को उड़ा देता है उसी प्रकार प्राणा-याम शरीर तथा मन की मलिनता दूर करता है । पतंजलि का कथन है कि इस स्थिति में उसके अन्दर दिव्यज्योति अपनी पूर्ण प्रभाव में भासमान होती है तथा वह धारणा और ध्यान के अनुकूल होता है (योगसूत्र – अध्याय २ – सूत्र ५२ और ५३) । इसके लिए बहुत समय लगता है । उषा के आगमन पर ही शनैः शनैः अन्धकार नष्ट हो जाता है ।

परिशिष्ट १

आसनों का अभ्यासक्रम

मैं आसनों को तीन वर्गों में विभाजित कर रहा हूँ; प्रायमिक, माध्यमिक तथा उच्च अभ्यासक्रम। अभ्यास के लिए क्रमानुसार आसनों की मालाएँ तथा इन तीन अभ्यासक्रमों पर प्रभुत्व पाने के लिए आवश्यक अवधि का उल्लेख मैं यहाँ कर रहा हूँ। (आसनों के बाद कोष्टक में दिये हुए अंक चित्रों के अनुक्रमांक बतलाते हैं।)

अभ्यासक्रम एक

पहला और दूसरा सप्ताह

ताड़ासन (१); वृक्षासन (२); उत्थित त्रिकोणासन (४ तथा ५); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); वीरभद्रासन १ तथा २ (१४ और १५); पार्श्वोत्तानासन (२६); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन (२४४); शवासन (५९२)।

तीसरा और चौथा सप्ताह

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); वीर भद्रासन १ तथा २ (१४ और १५); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ (३३ और ३४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन (२४४); शवासन (५९२) ।

पाँचवाँ और छठा सप्ताह

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); वीरभद्रासन १ तथा २ (१४ और १५); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ (३३ और ३४); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन

(७९); सालम्ब सर्वांगासन (२२३); हलासन (२४४); उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) शवासन (५९२) में पाँच मिनट।

सातवाँ सप्ताह

आसनों में अभ्यस्त हो जाने पर अभ्यास का समय बढाएँ।

आठवाँ सप्ताह

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); वीरभद्रासन १,२ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्ध चन्द्रासन (१९); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ तथा २ (३३ और ३४, ३५ और ३६); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); सालम्ब सर्वांगासन (२२३); हलासन (२४४); उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) शवासन (५९२) में पाँच मिनट।

नौवाँ और दसवाँ सप्ताह

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४,१५ और १७); अर्ध चंद्रासन (१९); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); परिवृत्त पार्श्वकोणासन (१० और ११); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ तथा २ (३३ और ३४, ३५ और ३६); परिघासन (३९); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन (२४४); कर्णपीडासन (२४६); एकपाद सर्वांगासन (२५०); जठर परिवर्तनासन (२७४ और २७५); उज्जायी प्राणायाम – पूरक कुम्भक के साथ (विभाग २०३); शवासन (५९२) में पाँच मिनट।

ग्यारहवाँ और बारहवाँ सप्ताह

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); परिवृत्त पार्श्वकोणासन (१० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्ध चन्द्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ तथा २ (३३ और ३४, ३५ और ३६); पादांगुष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); परिघासन (३९); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन (२४४); कर्ण पीडासन (२४६); एकपाद सर्वांगासन (२५०); जठर

परिवर्तनासन (२७४ और २७५); उज्जायी प्राणायाम – पूरक कुंभक के साथ (विभाग २०३) शवासन (५९२) में ।

तेरहवाँ सप्ताह

पूर्व-अभ्यास दुहराते जायें और नियमित रूप से अभ्यास करें । जो इस अवधि में इन सभी आसनों पर प्रभुत्व पाने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, वे कुछ और सप्ताह इनका अभ्यास जारी रख सकते हैं ।

चौदहवाँ और पन्द्रहवाँ सप्ताह

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४ और ५, ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्वकोणासन (८ और ९, १० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्ध चंद्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ तथा २ (३३, ३४ ३५ और ३६); पादांगुष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६) ; उत्तानासन (४८); परिघासन (३९); शलभासन अथवा मकरासन (६० या ६२); धनुरासन (६३); भुजंगासन १ (७३); उर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९) सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन (२४४); कर्णपीडासन (२४६); सुप्त कोणासन (२४७); पार्श्व हलासन (२४९); एकपाद सर्वांगासन (२५०); जठरपरिवर्तनासन (२७४ और २७५); महामुद्रा (१२५); जानुशीर्षासन (१२७); दण्डासन (७७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उज्जायी प्राणायाम पूरक कुम्भक के साथ (विभाग २०३); शवासन (५९२) में ।

सोलहवाँ और सतरहवाँ सप्ताह

(यहाँ आसन के क्रमपरिवर्तन का ध्यान रखें ।) सालम्ब शीर्षासन १(१८४); उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४, ५, ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्वकोणासन (८, ९, १० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्ध चन्द्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ तथा २ (३३, ३४, ३५ और ३६); पादांगुष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); ऊर्ध्व प्रसारित एकपादासन (४९); उत्कटासन (४२); परिघासन (३९); उष्ट्रासन (४१); शलभासन अथवा मकरासन (६० या ६२); धनुरासन (६३); चतुरंग दण्डासन (६७); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); वीरासन (८९); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन

(२४४); कर्णपीडासन (२४६); सुप्तकोणासन (२४७); पार्श्वहलासन (२४९); एकपाद सर्वांगासन (२५०); पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); जठर परिवर्तनासन (२७४ और २७५); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); महामुद्रा (१२५); जानु शीर्षासन (१२७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); पूर्वोत्तानासन (१७१); शवासन (५९२); सिद्धासन (८४); सिद्धासन में उज्जायी प्राणायाम बिना पूरक कुम्भक के करें (विभाग २०३)।

अठारहवाँ सप्ताह

दुहराएँ ।

यदि अब आप खड़े होकर किये जाने वाले आसनों को काफी आसान पाते हैं तो इन्हें आप एक दिन के अंतर से या सप्ताह में दो बार कर सकते हैं ।

उन्नीस से इक्कीसवाँ सप्ताह

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); पार्श्व शीर्षासन (२०२ और २०३); एकपाद शीर्षासन (२०८ और २०९); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); सालम्ब सर्वांगासन २ (२३५); निरालम्ब सर्वांगासन १ (२३६); निरालम्ब सर्वांगासन २(२३७); हलासन (२४४); कर्णपीडासन (२४६); सुप्तकोणासन (२४७); पार्श्व हलासन (२४९); एकपाद सर्वांगासन (२५०); पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); जठर परिवर्तनासन (२७५); चक्रासन (२८० से २८३); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); उत्कटासन (४२); उष्ट्रासन (४१); वीरासन (८९); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); चतुरंग दण्डासन (६७); भुंजगासन १ (७३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); महामुद्रा (१२५); जानु शीर्षासन (१२७); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); मरीच्यासन १ तथा २ (१४४, १४६, और १४७); उभय पादांगुष्ठासन (१६७); ऊर्ध्व मुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); पूर्वोत्तानासन (१७१); भारद्वाजासन १ तथा २ (२९७, २९८, २९९ और ३००); मालासन २ (३२२); बद्ध कोणासन (१०२); शवासन (५९२); सिद्धासन (८४) में उज्जायी प्राणायाम बिना कुम्भक के (विभाग २०३) ।

बाईस से पचीसवाँ सप्ताह

उन्नीसवें सप्ताह के अनुक्रमानुसार चक्रासन (२८० से २८३) तक आसनों का

अनुसरण करें। बाद में : शलभासन (६०); धनुरासन (६३); चतुरंग दण्डासन (६७); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्व मुखश्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); जानु शीर्षासन (१२७); अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); मरीच्यासन १ तथा २ (१४४, १४६ और १४७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उभय पादांगुष्ठासन (१६७); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); लोलासन (८३); गोमुखासन (८०); सिंहासन १ (१०९); पद्मासन (१०४); पर्वतासन (१०७); तुलासन (१०८); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); उष्ट्रासन (४१); उत्कटासन (४२); उत्तानासन (४८); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७, २९८, २९९ और ३००); मरीच्यासन ३ (१०३ और १०४); अर्ध मत्स्येंद्रासन १ (३११ और ३१२); मालासन २ (३२२); बद्धकोणासन (१०२); शवासन (५९२); सिद्धासन (८४) में कुम्भक के बिना उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३)।

छब्बीस से तीसवाँ सप्ताह

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); पार्श्व शीर्षासन (२०२ और २०३); एकपाद शीर्षासन (२०८ और २०९); ऊर्ध्व पद्मासन (२११); शीर्षासन में पिण्डासन (२१८); सालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२३३ और २३५); निरालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२३६ और २३७); हलासन (४४); कर्णपीडासन (२४६); सुप्त कोणासन (२४७); पार्श्व हलासन (२४९); एकपाद सर्वांगासन (२५०); पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); ऊर्ध्व पद्मासन (२६१); सर्वांगासन में पिण्डासन (२६९); जठर परिवर्तनासन (२७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); जानु शीर्षासन (१२७); अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); मरीच्यासन १ (१४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्व मुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); गोमुखासन (८०); लोलासन (८३); सिंहासन १ (१०९); पद्मासन (१०४); पर्वतासन (१०७); तुलासन (१०८); मत्स्यासन (११३); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); बद्ध कोणासन (१०२); अधोमुख श्वानासन (७५); ऊर्ध्व मुख श्वानासन (७४); चतुरंग दण्डासन (६७); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); उष्ट्रासन (४१); उत्कटासन (४२); उत्तानासन (४८); गरुडासन (५६); शवासन (५९२); सिद्धासन (८४) अथवा वीरासन (८९) अथवा पद्मासन (१०४) में अंतर-कुम्भक के साथ उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३)।

जब आप खड़े होने के आसन करते हैं तब शीर्षासन और सर्वांगासन की मालाओं के विविध प्रकारों को छोड़कर शेष आसन करें। यदि आपने पद्मासन पर प्रभुत्व नहीं प्राप्त किया है तो कई सप्ताह तक इन आसनों को जारी रखते हुए पद्मासन पर प्रभुत्व पाने की कोशिश करें। यदि आप बिना थकान के अधिक आसन करने में समर्थ हैं तो अपने कार्यक्रम में और अधिक आसन समाविष्ट कर सकते हैं।

जो पहले अभ्यासक्रम के आसन सफलतापूर्वक करते हैं उनके लिए मैं तीन दिनों का एक छोटा अभ्यासक्रम दे रहा हूँ, यह जब किया जाएगा तब शरीर के लिए लाभदायी होगा और मन को शांति देगा।

सप्ताह का पहला दिन

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४) १० मिनट के लिए; सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३) १० मिनट के लिए; ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); आधे मिनट के लिए दोनों ओर जठर परिवर्तनासन (२७५); एक मिनट के लिए परिपूर्ण नावासन (७८); २० से ३० सेकंड के लिए अर्ध नावासन (७९); ३ से ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); दोनों ओर ३० सेकंड के लिए मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); दोनों ओर ३०-३० सेकंड के लिए अर्ध मत्स्येंद्रासन १ (३११ और ३१२); यदि मरीच्यासन ३ अथवा अर्ध मत्स्येंद्रासन १ करने में कठिनाई होती है तो भरद्वाजासन १ तथा २ करें (२९७, २९८, २९९ और ३००); एक मिनट के लिए पर्वतासन (१०७); २० से ३० सेकंड के लिए मत्स्यासन (११३); २० से ३० सेकंड के लिए शलभासन (६०); ३० सेकंड के लिए धनुरासन (६३); २० से ३० सेकंड के लिए ऊर्ध्व मुख श्वानासन (७४); एक मिनट के लिए अधोमुख श्वानासन (७५); १ से २ मिनट के लिए उत्तानासन (४८); ५ मिनट के लिए शवासन (५९२); तथा १० मिनट के लिए अंतरकुंभक के साथ नाड़ी शोधन प्राणायाम पद्मासन (१०४) अथवा वीरासन (८९) अथवा सिद्धासन (८४) में तथा ६ उड्डीयान (विभाग २०१) और फिर शवासन (५९२) करें।

सप्ताह का दूसरा दिन

१० मिनट के लिए सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); दोनों ओर २०–२० सेकंड के लिए पार्श्व शीर्षासन (२०२ और २०३); प्रत्येक ओर १० से १५ सेकंड के लिए एकपाद शीर्षासन (२०८ और २०९); २० सेकंड के लिए ऊर्ध्व पद्मासन (२११); ३० सेकंड के लिए शीर्षासन में पिण्डासन (२१८); (इन सबको एक दम में करें।) ८ से १० मिनट के लिए सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); ३० सेकंड के लिए सालम्ब सर्वांगासन २ (२३५); प्रत्येक ३० सेकंड के लिए निरालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२३६ और २३७); ५ मिनट के लिए हलासन

(२४४); ३० सेकंड के लिए कर्णपीडासन (२४६); २० सेकंड के लिए सुप्त कोणासन (२४७); प्रत्येक ओर २० सेकंड के लिए पार्श्व हलासन (२४९); प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए एकपाद सर्वांगासन (२५०); प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); २० सेकंड के लिए ऊर्ध्व पद्मासन (२६१); २० सेकंड के लिए सर्वांगासन में पिण्डासन (२६९); (इन सब को एक दम में करें।) प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए जठर परिवर्तनासन (२७५); प्रत्येक स्थिति में १५ सेकंड के लिए ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); प्रत्येक ओर २० से ३० सेकंड के लिए महामुद्रा (१२५); जानु-शीर्षासन (१२७), अर्ध बद्ध पद्मपश्चिमोत्तानासन (१३५), त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९), मरीच्यासन १ तथा २ (१४२, १४६ और १४७)– ये सभी आसन प्रत्येक ओर २० सेकंड के लिए; ३ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); १ मिनट के लिए ऊर्ध्व मुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); प्रत्येक ओर आधे मिनट के लिए मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); प्रत्येक ओर आधे मिनट के लिए अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); १ मिनट के लिए बद्ध कोणासन (१०२); २ मिनट के लिए उत्तानासन (४८); ५ मिनट के लिए शवासन (५९२)। किसी सुविधाजनक आसन में ८ मिनट के लिए उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) अथवा नाड़ी शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) कर शवासन में पुनः आ जाएँ (५९२)।

सप्ताह का तीसरा दिन

१० मिनट के लिए सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); प्रत्येक ओर आधे मिनट के लिए उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); प्रत्येक ओर आधे मिनट के लिए परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); प्रत्येक ओर २० सेकंड के लिए उत्थित पार्श्व-कोणासन तथा परिवृत्त पार्श्व कोणासन (८, ९, १० और ११); प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए वीर भद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); प्रत्येक ओर २० सेकंड के लिए अर्धचन्द्रासन (१९); प्रत्येक ओर ३० सेकंड के लिए पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ (३३ और ३४), पादांगुष्ठासन (४४)– दोनों ३० सेकंड के लिए; ३० सेकंड के लिए पादहस्तासन (४६); १ मिनट के लिए उत्तानासन (४८); प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए ऊर्ध्व प्रसा-रित एकपादासन (४९); प्रत्येक ओर १० सेकंड के लिए गरुडासन (५६); १५ सेकंड के लिए उत्कटासन (४२); प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए परिघासन (३९); २० सेकंड के लिए उष्ट्रासन (४१); २० से ३० सेकंड के लिए भुजंगासन १ (७३); वीरासन (८९), सुप्त वीरासन (९६) तथा पर्यंकासन (९७)– प्रत्येक आसन ३० से ४० सेकंड के लिए; पद्मासन (१०४), पर्वतासन

(१०७), तुलासन (१०८) तथा मत्स्यासन (११३)– प्रत्येक आसन ३० सेकंड के लिए ; प्रत्येक ओर १५ सेकंड के लिए गोमुखासन (८०); १५ सेकंड के लिए लोलासन (८३); २० सेकंड के लिए सिंहासन १ (१०९); ३ से ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); १० मिनट के लिए बिना कुम्भक के उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) अथवा नाड़ीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); ५ मिनट के लिए शवासन (५९२) ।

इसी क्रम से अगले दिनों में भी इसे दुहराया जा सकता है । रविवार को विश्राम करें या केवल १० मिनट के लिए शीर्षासन १ (१८४); १० मिनट के लिए सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०) तथा १५ मिनट के लिए अंतर कुम्भक के साथ नाड़ी शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा ५ मिनट के लिए शवासन (५९२) कर सकते हैं ।

यदि आपकी समझ में आसनों की संख्या और समय की अवधि अधिक है तो आप अपने सामर्थ्य और उपलब्ध समय के अनुसार उसकी व्यवस्था कर सकते हैं। प्राणायाम के बाद शवासन (५९२) अवश्य करें ।

बिना किसी झटके के गहरे पूरक और गहरे रेचक करने की कला पर प्रभुत्व प्राप्त करने पर ही आप अंतर-कुंभक करें ।

आसन और प्राणायाम एक साथ न करें । आप तनाव और थकान का अनुभव करेंगे ।

यदि आप प्रातःकाल प्राणायाम करते हैं तो सायंकाल आसन किये जा सकते हैं अथवा आसन करने के आधे घंटे के उपरान्त प्राणायाम किये जा सकते हैं ।

प्राणायाम के उपरान्त तुरन्त आसन कदापि न करें, परंतु आसन करने के बाद भी यदि आपमें स्फूर्ति है तो आप प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं ।

यदि आप सूर्यनमस्कार कर अपने बाहुओं और सीने को विकसित करना चाहते हैं तो आप निम्नलिखित आसनों के क्रम से प्रारंभ में छह बार तथा बाद में अपनी शक्ति के अनुकूल संख्या बढ़ाते हुए कर सकते हैं :

आसन	श्वास की पद्धति
१. ताड़ासन (१)	पूरक
२. उत्तानासन (४७ और ४८) तथा कूदकर	रेचक, पूरक (चित्र ४७)
३. चतुरंग दण्डासन (६६ और ६७)	रेचक
४. ऊर्ध्व मुख श्वानासन (७४) तथा पुनः लौट जाएँ	पूरक

५.	चतुरंग दण्डासन (६७) में	श्वास छोड़ें, श्वास लें
६.	अधोमुख श्वानासन (७५) और यहाँ से कूदकर,	श्वास छोड़ें
७.	उत्तानासन (४७ और ४८) और तब लौट जाएँ	पूरक
८.	ताड़ासन (१) में	रेचक

अभ्यासक्रम एक के महत्त्वपूर्ण आसन

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); परिवृत्त पार्श्वकोणासन (१० और ११); वीरभद्रासन १ तथा ३ (१४ और १७); अर्ध चन्द्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ (३३ और ३४); उष्ट्रासन (४१); उत्तानासन (४८); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); अधोमुख श्वानासन (७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); सिद्धासन (८४); वीरासन (८९); बद्ध कोणासन (१०२); पद्मासन (१०४); मत्स्यासन (११३); जानु शीर्षासन (१२७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२२३); हलासन (२४४); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२) तथा शवासन (५९२) ।

यदि इन आसनों पर प्रभुत्व प्राप्त किया गया है तो इस अभ्यासक्रम के अन्य आसन नियमित अभ्यास के बिना भी आएँगे ।

अभ्यासक्रम दो

इकतीस से पैंतीसवाँ सप्ताह

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); ऊर्ध्व दण्डासन (१८८); पार्श्व शीर्षासन (२०२ और २०३), परिवृत्त पाद शीर्षासन (२०६ और २०७); एकपाद शीर्षासन (२०८ और २०९); पार्श्वैकपाद शीर्षासन (२१०); शीर्षासन में पिण्डासन (२१८); सालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२२३ और २३५), निरालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२३६ और २३७); हलासन (२४४); कर्णपीडासन (२४६); सुप्त कोणासन (२४७); पार्श्व हलासन (२४९); एकपाद सर्वांगासन (२५०); पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); ऊर्ध्व पद्मासन (२६१); सर्वांगासन में पिण्डासन (२६९); पार्श्व पिण्डासन (२७० और २७१); सेतुबन्ध सर्वांगासन (२५९); एकपाद सेतुबन्ध सर्वांगासन (२६०);

जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); चक्रासन (२८० से २८३); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); उष्ट्रासन (४१); वीरासन (८१); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); जानु शीर्षासन (१२७); अर्धबद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैक-पाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१ और १४२); मरीच्यासन १ (१४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); बद्ध पद्मासन (११८); योग-मुद्रासन (१२०); पर्वतासन (१०७); कुक्कुटासन (११५); गर्भ पिण्डा-सन (११६); (पद्मासन की सम्पूर्ण माला (प्रकारान्तर) एक दम में की जा सकती है ।) उपविष्ट कोणासन (१०२); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); पार्श्व धनुरासन (६४ और ६५); उत्तानासन (४८); १० मिनट के लिए बिना अंतर कुम्भक के नाडी शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा शवासन (५९२) में उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) ।

छत्तीस से चालीसवाँ सप्ताह

सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७) तक उपर्युक्त क्रमानुसार सालम्ब शीर्षासन और उसकी माला तथा सालम्ब सर्वांगासन और उसकी माला का अनु-सरण करें । उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४ और ५, ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्वकोणासन (८ और ९, १० और ११); वीरभद्रासन १ तथा ३ (१४ और १७); अर्धचन्द्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); पादां-गष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); उत्थित हस्तपादांगुष्ठासन (२३); अर्धबद्ध पद्मोत्तानासन (५२); वातायनासन (५८); जानुशीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानुशीर्षासन (१३२); अर्धबद्ध पद्मपश्चिमोत्तानासन (१३५); क्रौंचासन (१४१ और १४२); मरीच्यासन १ (१४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन २ (१७०); बद्धपद्मासन (११८); योगमुद्रासन (१२०); कुक्कुटासन (११५); गर्भपिण्डासन (११६); सिंहासन २ (११०); मत्स्यासन (११३); बद्ध कोणासन (१०२); उपविष्ट कोणासन (१५१); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्धमत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); उत्तानपादासन (२९२); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); पार्श्वधनुरासन (६४ और ६५); ऊर्ध्वधनुरासन १ (४८२); शवासन (५९२); ५ मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); ५ मिनट के लिए अंतर कुम्भक के साथ सूर्यभेदन प्राणायाम (विभाग २०४); ८ बार उड्डीयान ।

इकतालीस से चव्वालीसवाँ सप्ताह

अभ्यासक्रम एक में जो आसन नहीं लिये गये हैं, उन पर ध्यान केन्द्रित करते हुए सभी स्थितियों को दृढ़ करें।

पैंतालीस से पचासवाँ सप्ताह

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब शीर्षासन २ (१९२); सालम्ब शीर्षासन ३ (१९४ और १९५); बद्धहस्तशीर्षासन (१९८); मुक्त हस्त शीर्षासन (२०० और २०१); पार्श्व शीर्षासन (२०२ और २०३); परिवृत्तैकपाद शीर्षासन (२०६ और २०७); एकपाद शीर्षासन (२०८ और २०९); पार्श्वैकपादशीर्षासन (२१०); ऊर्ध्वपद्मासन (२११); पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन (२१५ और २१६); शीर्षासन में पिण्डासन (२१८); सालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२२३ और २३५); निरालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२३६ और २३७); हलासन (२४४); कर्णपीडासन (२४६); सुप्त कोणासन (२४७); पार्श्व हलासन (२४९); एकपाद सर्वांगासन (२५०); पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); पार्श्व सर्वांगासन (२५४); सेतुबन्ध सर्वांगासन (२५९); एकपाद सेतुबन्ध सर्वांगासन (२६०); ऊर्ध्वपद्मासन (२६१); पार्श्व ऊर्ध्वपद्मासन (२६४ और २६५); सर्वांगासन में पिण्डासन (२६९); पार्श्व पिण्डासन (२७० और २७१); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); जानुशीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानुशीर्षासन (१३२); क्रौंचासन (१४१ और १४२); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); बद्धपद्मासन (११८); योगमुद्रासन (१२०); कुक्कुटासन (११५); गर्भपिण्डासन (११६); गोरक्षासन (११७); सिंहासन २ (११०); मत्स्यासन (११३); सुप्त वीरासन (९६); भेकासन (१००); बद्ध कोणासन (१०२); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); मरीच्यासन ४ (३०५); मालासन १ (३२१); उत्तानपादासन (२९२); ऊर्ध्व धनुरासन १ (४८२) छह बार तथा शवासन (५९२)।

(शीर्षासन १ (१८४), जहाँ आपको ५ मिनट ठहरना आवश्यक है, के अलावा शीर्षासन की सम्पूर्ण माला दोनों ओर १० से १५ सेकण्ड के लिए की जा सकती है। सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४) तथा हलासन (२४४) ये दोनों भी ५ मिनट के लिए और शेष आसन दोनों ओर १५ सेकंड के लिए किये जा सकते हैं। ३ से ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०) तथा शेष आसन १५ से २० सेकंड करें।)

१० मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५), ३ मिनट के

लिए भस्त्रिका (विभाग २०६) तथा ८ बार उड्डीयान (चित्र ५९३, ५९४) करें ।

इक्यावन से चौवनवाँ सप्ताह

अभ्यासक्रम १ के महत्त्वपूर्ण आसन करें तथा अभ्यासक्रम २ की स्थितियों पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करें । कुछ व्यक्ति शीघ्र ही प्रभुत्व पाएँगे परंतु किन्हीं-किन्हीं को अधिक समय लग सकता है । इसलिए अपनी सुविधा के अनुसार व्यवस्था करें ।

पचपन से साठवाँ सप्ताह

शीर्षासन और उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन और उसकी माला (२६७ को छोड़कर २३४ से २७१); जठरपरिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७४); भुजपीडासन (३४८); कूर्मासन (३६३ और ३६४); सुप्त कूर्मासन (३६८); एकपाद शीर्षासन (३७१); पद्मासन माला (१०४ से १२०); सुप्त वज्रासन (१२४); भेकासन (१००); बद्ध कोणासन (१०२); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); मालासन १ (३२१), पाशासन (३२८ और ३२९); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); ऊर्ध्व धनुरासन २ (४८६) आसन विभाग म बतलायी गयी विधि २ का १२ बार अनुसरण करते हुए; उत्तानासन (४०८); शवासन (५९२); उपर्युक्त विधि से प्राणायाम कर सिद्धासन (८४), वीरासन (८९), बद्ध कोणासन (१०२) अथवा पद्मासन (१०४) में ध्यान लगाना प्रारंभ करें ।

इकसठ से पैंसठवाँ सप्ताह

शीर्षासन और उसकी माला (१८४ से २१८) । यदि सालम्ब शीर्षासन २ तथा ३ (१९२, १९४ और १९५), बद्ध हस्त शीर्षासन (१९८) तथा मुक्त हस्त शीर्षासन (२०० और २०१) साध लिया है तो उन्हें दैनिक अभ्यासक्रम के रूप में छोड़ा जा सकता है परंतु कभी कभी करना चाहिए जिससे संतुलन बना रहे । सर्वांगासन और उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ को छोडकर); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); कूर्मासन (३६३ और ३६४); सुप्त कूर्मासन (३६८); एकपाद शीर्षासन (३७१); स्कंदासन (३७२);

भुजपीडासन (३४८); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); एकपाद भुजासन (३४४); द्विहस्त भुजासन (३४५); अधोमुख वृक्षासन (३५९ –दीवार से सटकर); पद्मासन माला (१०४ से १२४); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); पाशासन (३२८ और ३२९); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); ऊर्ध्व धनुरासन १२ से १५ बार जैसा कि ५५ वें सप्ताह में वतलाया गया है; उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । पूर्वोक्त विधि से प्राणायाम करें तथा पूरक, अन्तर कुम्भक, रेचक और इनकी मालाओं के समय की अवधि बढ़ायें तथा उपर्युक्त विधि से ही आसनों में ध्यानस्थ हों ।

छाँसठ से सत्तरवाँ सप्ताह

शीर्षासन १ और उसकी माला (१८४ से २१८, १९२, १९४, १९५, १९८ और २००–२०१ छोडकर); अधोमुख वृक्षासन (३५९); मयूरासन (३५४); पद्ममयूरासन (३५५); नक्रासन (६८ से ७१); सालम्ब सर्वांगासन और उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ छोडकर); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); १२ बार वृक्षासन (३५९) कर वृत्तखण्ड (मेहराब) बनाते हुए ताड़ासन (१); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); पाशासन (३२८ और ३२९); भुजपीडासन (३४८); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); बकासन (४०६); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); उपविष्ट कोणासन (१५१); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); पद्मासन माला (१०४ से १२४); कूर्मासन (३६३ और ३६४); सुप्त कूर्मासन (३६८); एकपाद शीर्षासन (३७१); स्कन्दासन (३७२); बद्ध कोणासन (१०२); भेकासन (१००); सुप्तवीरासन (९६); शवासन (५९२) ।

इकहत्तर से तिहत्तरवाँ सप्ताह

छाँसठवें सप्ताह में वर्णित आसन करें, परंतु ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) करते समय एकपाद ऊर्ध्व धनुरासन भी करें और मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४) से आगे (बढ़कर) शेष आसन करें । उपर्युक्त प्राणायाम करें और उड्डीयान के बाद नौली (विभाग २०२) ६ से ८ बार कर अन्त में ध्यानस्थ हों ।

चौहत्तर से अठहत्तरवाँ सप्ताह

अभ्यासक्रम १ तथा अभ्यासक्रम २ के सभी आसन दुहराए ।

अभ्यासक्रम दो के महत्त्वपूर्ण आसन

उत्थित हस्तपादांगुष्ठासन (२३); वातायनासन (५८); नक्रासन (६८ से ७१); भेकासन (१००); सिंहासन २ (११०); गर्भपिण्डासन (११६); योगमुद्रासन (१२०); सुप्त वज्रासन (१२४); परिवृत्त जानुशीर्षासन (१३२); क्रौंचासन (१४१ और १४२); उपविष्ट कोणासन (१५१); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); ऊर्ध्व दण्डासन (१८८); शीर्षासन और सर्वांगासन की मालाएँ; सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); सेतुबन्धासन (२९६); पाशासन (३२८ और ३२९); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); भुजपीडासन (३४८); मयूरासन (३५४); अधोमुख वृक्षासन (३५९); कूर्मासन (३६३ और ३६४); सुप्त कूर्मासन (३६८); एकपाद शीर्षासन (३७१); स्कन्दासन (३७२); बकासन (४०६) तथा ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) ।

जो व्यक्ति अभ्यासक्रम एक तथा दो के आसन करना चाहते हैं, उनके लिए मैं साप्ताहिक अभ्यासक्रम पद्धति दे रहा हूँ ।

सप्ताह का पहला दिन

शीर्षासन और उसकी माला (१८४ से २१८, १९२, १९४, १९५, १९८, २००, २०१ को छोडकर); सर्वांगासन और उसकी माला (२३४ से २७१ २६७ छोडकर); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४ और ५ ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्व कोणासन (८ और ९, १० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्धचन्द्रासन (१९); उत्थित हस्तपादांगुष्ठासन (२३); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन १ तथा २ (३३ और ३४, ३५ और ३६); अर्धबद्धपद्मोत्तानासन (५२); पादांगुष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६); उत्तानासन (४८), मरीच्यासन २, ३ तथा ४ (१४४–६, ३०३–४ ३०५); अर्धमत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८ और ३२९); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) १२ बार; शवासन (५९२)। १५ मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम तथा ५ मिनट के लिए ध्यान ।

सप्ताह का दूसरा दिन

शीर्षासन और उसकी माला (१८४ से २१८); अधोमुख वृक्षासन (३५९); मयूरासन (३५४); पद्ममयूरासन (३५५); नक्रासन (६८ से ७१);

शलभासन या मकरासन (६१ या ६२); धनुरासन (६३); पार्श्व धनुरासन (६४ और ६५); चतुरंग दंडासन (६७); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्व-मुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); सालम्ब सर्वांगासन माला (२३४ से २७१, २६७ को छोडकर); जठरपरिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); ऊर्ध्व प्रसारित पादोत्तानासन (२७६ से २७९); चक्रासन (२८२ से २८३); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); उत्कटासन (४२); उष्ट्रासन (४१); परिघासन (३९); गरुडासन (५६); वातायनासन (५८); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); पाशासन (३२८ और ३२९); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३-४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा स्कन्दासन (३७१ और ३७२); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) १५ वार; तथा शवासन (५९२); उड्डीयान (विभाग २०१)तथा नौली (विभाग २०२)–प्रत्येक ८ बार। १० मिनट के लिए उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३)अन्तर कुम्भक के साथ तथा ५ मिनट के लिए ध्यान।

सप्ताह का तीसरा दिन

सालम्ब शीर्षासन (१८४) १० मिनिट के लिए ; १० मिनट के लिए सर्वांगासन १ (२३४); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); सुप्तपादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); जानु शीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानु शीर्षासन (१३२); अर्धबद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१ और १४२); मरीच्यासन १ (१४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा स्कन्दासन (३७१ और ३७२); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) १५ बार, तथा एकपाद ऊर्ध्व धनुरासन (५०१ और ५०२); उत्तानासन (४८) तथा शवासन (५९२)। १० मिनट के लिए सूर्यभेदन प्राणायाम (विभाग २०४); ५ मिनट के लिए उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३); ३ मिनट के लिए भस्त्रिका (विभाग २०६) तथा ५ मिनिट के लिए ध्यान।

सप्ताह का चौथा दिन

सालम्ब शीर्षासन और उसकी माला (१८४ से २१८–१९२, १९४, १९५; १९८, २०० तथा २०१ को छोडकर), सालम्ब सर्वांगासन और उसकी माला

(२३४ से २७१, २६७ छोड़कर); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); पश्चिमोत्तानासन (१६०) ५ मिनट के लिए; पद्मासन और उसकी माला (१०४ से १२४); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); उपविष्ट कोणासन (१५१); बद्ध कोणासन (१०१); कूर्मासन (३६३ और ३६४) प्रत्येक १ मिनट के लिए; ३ मिनट के लिए सुप्त कूर्मासन (३६८); प्रत्येक ओर एक मिनट के लिए एकपाद शीर्षासन (३७१); प्रत्येक ओर ३० सेकंड के लिए स्कन्दासन (३७२); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); पाशासन (३२८ और ३२९); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); २०–२० सेकंड के लिए १२ बार ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); शवासन (५९२) । १५ मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम अन्तर कुम्भक के साथ (विभाग २०५) तथा पूर्व लिखित किसी आसन में क्षमतानुसार ध्यान ।

सप्ताह का पाँचवा दिन

सालम्ब शीर्षासन और उसकी माला (१८४ से २१८); सालम्ब सर्वांगासन और उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ को छोडकर); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); कूर्मासन (३६३ और ३६४); सुप्त कूर्मासन (३६८); भुज-पीडासन (३४८); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); मयूरासन तथा पद्म मयूरासन(३५४ और ३५५); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); बकासन (४०६); लोलासन (८३); अधोमुख वृक्षासन (३५९); अधोमुख श्वानासन (७५); चतुरंग दण्डासन(६७); नक्रासन (६८ से ७१); १५ से २० बार ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); शवासन (५९२) । तीसरे दिन के अनुसार प्राणायाम और ध्यान ।

सप्ताह का छठा दिन

१५ मिनट के लिए सालम्ब शीर्षासन (१८४); १ मिनट के लिए ऊर्ध्व दण्डासन (१८८); १० मिनट के लिए सर्वांगासन १ (२३४); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); १ मिनट के लिए ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); १ मिनट के लिए परिपूर्ण नावासन (७८); ३० सेकंड के लिए अर्ध नावासन (७९); ३ से ५ मिनट के लिए सुप्त वीरासन (९६); प्रत्येक ओर २० सेकंड के लिए क्रौंचासन (१४१ और १४२); प्रत्येक ओर १ मिनट के लिए कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); प्रत्येक ओर ३० सेकंड़ के लिए अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); प्रत्येक ओर १ मिनट के लिए पाशासन (३२८ और

३२९); १ मिनट के लिए अधोमुख वृक्षासन (३५९); १ मिनट के लिए मयूरासन (३५४); ६ बार, प्रत्येक समय २० से ३० सेकंड के लिए; ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); १० से १५ मिनट शवासन (५९२) ।

(जहाँ कहीं समय का उल्लेख नहीं है, वहाँ व्यक्ति की शक्ति और उसे उपलब्ध समय के अनुसार आसन किए जाने चाहिए ।)

सप्ताह का सातवाँ दिन

आप विश्राम ले सकते हैं अथवा केवल सभी प्रकार के प्राणायाम कर सकते हैं। उड्डीयान (विभाग २०१) तथा नौली (विभाग २०२)–प्रत्येक ८ बार ।

अभ्यासक्रम तीन

यह अभ्यासक्रम केवल उन्हीं के लिए है जो आगे बढ़ने में प्रयत्नशील हैं तथा इस शास्त्र में पूरी श्रद्धा रखते हैं ।

उन्नासी से चौरासीवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८ तक, १९२, १९४–५, १९८ २००–१ को छोड़कर); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ को छोड़कर); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासिन तथा सुप्त कूर्मासिन (३६३–४ और ३६८); एकपाद शीर्षासिन (३७१); स्कन्दासन (३७२); भैरवासन (३७५); योगनिद्रासन (३९१); भुजपीडासन (३४८); बकासन (४०६); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); मयूरासन (३५४); मरीच्यासन ३ (३०३ और ३०४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११ और ३१२); पाशासन (३२८ और ३२९); अर्ध मत्स्येन्द्रासन २ (३३० और ३३१); सेतुबन्धासन (२९६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) ८ बार; द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); एकपाद ऊर्ध्व धनुरासन (५०१ और ५०२); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२)। १० मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा ५ मिनट के लिए सिद्धासन (८४) अथवा वीरासन (८९) अथवा पद्मासन (१०४) अथवा बद्धकोणासन (१०२) में ध्यान ।

पचासी से नब्बेवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ छोड़कर); जठर परिवर्तनासन (२७५); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); अनन्तासन (२९०); जानुशीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानुशीर्षासन (१३२);

अर्धबद्ध पद्मपश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३६); क्रौंचासन (१४१ और १४२); मरीच्यासन १ (१४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); उपविष्ट कोणासन (१५१); बद्ध कोणासन (१०२); बद्ध पद्मासन (११८); योग-मुद्रासन (१२०); कुक्कुटासन (११५); गर्भ पिण्डासन (११६); सिंहासन २ (११०); गोरक्षासन (११७); मत्स्यासन अथवा सुप्त वज्रासन (११३ या १२४); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); भेकासन (१००); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३-४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); एकपाद शीर्षासन (३७१); भैरवासन (३७५); स्कन्दासन (३७२); चकोरासन (३७९ और ३८०); भुजपीडासन (३४८); बकासन (४०६); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); मयूरासन (३५४); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११-१२ और ३३०-१); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८ और ३२९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) ८ बार तथा शवासन (५९२)। उन्नासीवे सप्ताह में बतलायी गयी विधि से प्राणायाम करें।

इक्यानबे से चौरानबेवाँ सप्ताह

अभ्यासक्रम एक तथा दो के महत्त्वपूर्ण आसन, साथ ही साथ शीर्षासन एवं सर्वांगासन की मालाओं सहित अभ्यासक्रम तीन में बतलाये गये आसन करें।

पंचानबे से सौवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ छोड़कर); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३-४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); एकपाद शीर्षासन (३७१); भैरवासन (२७५); स्कन्दासन (३७२); चकोरासन (३७९ और ३८०); पिच्छ मयूरासन (३५७); शयनासन (३५८); मयूरासन (३५४); हंसासन (३५६); भुज पीडासन (३४८); बकासन (४०६); अधोमुख वृक्षासन (३५९); वशिष्ठासन (३९८); विश्वामित्रासन (४०३); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) ८ बार; आसन के बाद पीठ की अकड़ दूर करने के लिए प्रत्येक बार टाँग और भुजाओं को सीधे फैलाएँ, (४८७); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६) १ मिनट के लिए; कपोतासन (५०७); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११-१२ और ३३०-१);

पाशासन (३२८ और ३२६); उत्तानासन (४८); शवासन (५६२)। पूर्वोक्त रीति से प्राणायाम ।

एक सौ एक से एक सौ आठवाँ सप्ताह

पंचानवे सप्ताह के अनुसार परंतु सालम्ब शीर्षासन १ (१८४) से विपरीत दण्डासन (५१६) तक कर, पुनः शीर्षासन १ में आ जाएँ । बहुतों के लिए यह कालावधि विपरीत दण्डासन पर प्रभुत्व पाने के लिए बहुत कम है । इसलिए इस आसन पर ज्यादा लक्ष्य केन्द्रित करें और दूसरे आसनों का समय कम करें।

एक सौ नौ से एक सौ पचीसवाँ सप्ताह

पंचानबेवें सप्ताह का अभ्यासक्रम दुहराएँ और उपर्युक्त विधि से विपरीत दंडासन (५१६) का समावेश करें तथा प्रतिदिन एक साथ १५ बार विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) करें। यह आसन कठिन है और इसके अभ्यस्त होने के लिए दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। यदि इस प्रकार इस निर्धारित समय में आप अभ्यस्त नहीं हो सकते हैं तो निरुत्साह होने की आवश्यकता नहीं है, परंतु कुछ और सप्ताह तक इसे चालू रखें।

एक सौ छब्बीस से एक सौ तीसवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); शीर्षासन २ (१९२) से वकासन (४१०); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिञ्छ मयूरासन (३५७); इन चार आसनों के साथ ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) तथा विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९); भुज पीडासन (३४८); अष्टावक्रासन (३४२–३); मयूरासन (३५४); हंसासन (३५६); वशिष्ठासन (३९८); कश्यपासन (३९९ से ४००); विश्वामित्रासन (४०३); सालम्ब सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ छोड़कर); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन (३६३–४); सुप्त कूर्मासन (३६८); योगनिद्रासन (३९१); एकपाद शीर्षासन (३७१); स्कन्दासन (३७२); भैरवासन (३७५); कालभैरवासन (३७८); चकोरासन (३७९–८०); शीर्षासन (१८४) में द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); कपोतासन (५०७); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) ६ बार; अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११–१२, ३३०–१); पाशासन (३२८–९); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२)। पूर्वोक्त रीति से ध्यान सहित प्राणायाम ।

एक सौ इकतीस से एक सौ छत्तीसवाँ सप्ताह

अभ्यासक्रम १ तथा २ की ओर लौटें और ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९) करें;

योगनिद्रासन (३९१); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) १५ बार; द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६) तथा कपोतासन (५०७) ।

टिप्पणी– विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) परिश्रमसाध्य आसन होने के कारण एकाध व्यक्ति प्रतिदिन प्राणायाम करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं । इस स्थिति में प्राणायाम एक दिन के अंतर पर करें और शीर्षासन तथा सर्वांगासन की मालाएँ एक दिन के अंतर पर करें । और यदि शरीर सख्त है और उपर्युक्त तालिका के अनुसार करने में असमर्थ है तो अपनी सुविधा के अनुसार आसन और सप्ताहों का विभाजन करें । जबतक पीठ के झुकाव की इन शारीरिक स्थितियों को नहीं साधते हैं तबतक आप अन्य कठिन आसनों की ओर नहीं बढ सकते हैं। यह भी संभव है कि जिनकी अवस्था पैंतीस वर्ष से अधिक है वे इतने थोड़े समय में विपरीत चक्रासन पर प्रभुत्व पाने में कठिनाई का अनुभव करेंगे । मैंने अलग-अलग अवस्था के बहुतेरे लोगों को सिखाया है और उनमें से कई दूसरों की अपेक्षा अधिक जल्द सीखे । परंतु इन आसनों के लिए अवस्था की मर्यादा नहीं है।

एक सौ सैंतीस से एक सौ बयालीसवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); शीर्षासन २ (१९२) से बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); गालवासन (४२७ और ४२८); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); मयूरासन (३५४); वशिष्ठासन (३९८); कश्यपासन (३९९ और ४००); विश्वामित्रासन (४०३); सालम्ब सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ छोड़कर); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३ – ४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); एकपाद शीर्षासन (३७१); स्कन्दासन (३७२); भैरवासन (३७५); कालभैरवासन (३७८); दुर्वासासन (३८३); रुचिकासन (३८४); शीर्षासन १ (१८४) से द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६) और वापस तीन बार; मंडलासन (५२५ से ५३५); कपोतासन (५०७); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) १२ बार; अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११–१२ और ३३०–१); पाशासन (३२८ और ३२९); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । पूर्वोक्त रीति से ध्यान सहित प्राणायाम ।

एक सौ तैंतालीस से एक सौ पैंतालीसवाँ सप्ताह

एक सौ सैंतीसवे सप्ताह के अभ्यासक्रम के रुचिरासन (३८४) तक के आसन दुहराएँ और विरंच्यासन १ तथा २ (३८६–७ और ३८८) का समावेश करें

तथा द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६) से प्रारंभ करें । उसी अभ्यासक्रम के शेष आसन भी करें ।

यदि आप विभाग तीन में वर्णित प्राणायाम की अन्य विधि का समावेश कर सकते हैं तो वैसा करें। तब ब्राह्ममुहूर्त में प्राणायाम और प्रातःकाल में कठिन आसन करें और सायंकाल में केवल शीर्षासन और सर्वांगासन की मालाएँ करें ।

एक सौ छियालिस से एक सौ पचपनवाँसप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); गालवासन (४२७ और ४२८); एकपाद गालवासन (४३२ और ४३३); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित इन आसनों को कर; वशिष्ठासन (३९८); कश्यपासन (३९९ तथा ४००); विश्वामित्रासन (४०३); सालम्ब सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१ सहित) अथवा उत्तान पद्म मयूरासन (२६७); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन (३७१); स्कन्दासन (३७२); बुद्धासन (३७३); कपिलासन (३७४); भैरवासन (३७५); कालभैरवासन (३७८); चकोरासन (३७९ और ३८०); दुर्वासासन (३८३); रुचिकासन (३८४); विरंच्यासन १ तथा २ (३८६ और ३८८); द्विपाद शीर्षासन (३९३); टिट्टिभासन (३९५); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११–१२ और ३३०–१); पाशासन (३२८); अर्ध मत्स्येन्द्रासन ३ (३३२ और ३३३); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मंडलासन; ५२५ से ५३५); कपोतासन (५१२); एकपाद विपरीत दण्डासन (५२१); चक्रबन्धासन (५२४); शवासन (५९२) । अंतर कुंभक के साथ उज्जायी (विभाग २०३) अथवा सूर्यभेदन (विभाग २०४) अथवा नाड़ीशोधन (विभाग २०५) प्राणायाम; ८ बार उड्डीयान (विभाग २०१); ८ बार नौली (विभाग २०२) और ५ से १० मिनट के लिए ध्यान ।

एक सौ छप्पन से एक सौ साठवाँसप्ताह

अभ्यासक्रम एक तथा दो के महत्त्वपूर्ण आसन दुहराएँ और तब अभ्यासक्रम तीन के अबतक सीखे हुए आसन करें।

एक सौ इकसठ से एक सौ पैंसठवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९);

वकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); गालवासन (४२७ और ४२८); एकपाद गालवासन (४३२ और ४३३); द्विपाद कौण्डिन्यासन (४३८); एकपाद कौण्डिन्यासन १ (४४१); अधोमुख वृक्षासन (३ ५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित प्रत्येक आसन कर अष्टा-वक्रासन (३४२ और ३४३); भुज पीडासन (३४८); वशिष्ठासन (३९८); विश्वामित्रासन (४०३); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); द्विपाद शीर्षासन तथा टिट्टिभासन (३९३ और ३९५); योगनिद्रासन (३९१); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २ तथा ३ (३११–१२, ३३०–१, ३३२–३); पाशासन (३२८); योगदण्डासन (४५६); सुप्त भेकासन (४५८)।

एक सौ छियासठ से एक सौ पचहत्तरवाँ सप्ताह

१० मिनट के लिए सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); १० मिनट के लिए सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); जठरपरिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); वकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); गालवासन (४२७); एकपाद गालवासन (४३२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ और ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित प्रत्येक आसन कर; पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); द्विपाद शीर्षासन (३९३); योगनिद्रासन (३९१); योगदण्डासन (४५६); सुप्त भेकासन (४५८); मूलबन्धासन (४६२ और ४६३); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२२); चक्रबन्धासन (५२४); कपोतासन (५१२); लघुवज्रासन (५१३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २ तथा ३ (३११, ३३० और ३३२); पाशासन (३२८); शवासन (५९२)। पूर्वोक्त विधि से प्राणायाम ।

एक सौ छिहत्तर से एक सौ अस्सीवाँ सप्ताह

एक सौ छियासठवे सप्ताह का अभ्यासक्रम दुहराएँ और ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९) के बाद पार्श्व कुक्कुटासन (४२४ और ४२५) तथा पाशासन (३२८) के बाद परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६ और ३३९) का समावेश करें ।

परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६ और ३३९) पर प्रभुत्व पाने के लिए मेरी आशा से अधिक समय लगने की संभावना है । असफलता के बावजूद व्यक्ति इस आसन का अभ्यास प्रतिदिन करें । यदि कोई अभ्यासक्रम तीन के आसनों पर निर्धारित समय में प्रभुत्व नहीं पा सकता है तो उन्हें कई सप्ताह तक बढ़ा दें ।

चूंकि दूसरे आसनों पर प्रभुत्व पाने के लिए बरसों लगते हैं, इसलिए मैं इन आसनों के प्रतिदिन के अभ्यास की तालिका देने की कोशिश करूँगा ।

सप्ताह का पहला दिन

८ से १० मिनट के लिए सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); १० मिनट के लिए सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); जठर परिवर्तनासन (२७४); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); भुज पीडासन (३४८); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); मयूरासन (३५४); हंसासन (३५६); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४ और ४२५); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ और ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); गालवासन (४२७); एकपाद गालवासन (४३२) तथा विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित प्रत्येक आसन कर; उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । १० मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); ८ बार उड्डीयान (विभाग २०१) तथा ८ बार नौली (विभाग २०२) ।

सप्ताह का दूसरा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७४); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); जानुशीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानुशीर्षासन (१३२); अर्धबद्ध पद्म-पश्चिमोत्तानासन (१३५)); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१); मरीच्यासन १ तथा २ (१४४ और १४६); उपविष्ट कोणासन (१५१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); बद्ध कोणासन (१०२); वीरासन (८९) वातायनासन (५८); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्धनावासन (७९); गोमुखासन (८०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ (१६८); योगनिद्रासन (३९१); शवासन (५९२)। भस्त्रिका (विभाग २०६) सहित पूर्वोक्त विधि के अनुसार प्राणायाम तथा शीतली (विभाग २०९) ।

सप्ताह का तीसरा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला

(२३४ से २७१); खड़े होने की स्थिति के सभी आसन (४ से ३६); धनुरासन (६३); शलभासन (६०); चतुरंग दंडासन (६७)); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन(७५); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); आकर्ण धनुरासन (१६३ और १७५); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); मरीच्यासन ३ तथा ४ (३०३ और ३०५); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); मयूरासन (३५४); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद शीर्षासन (३९३); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); कपोतासन (५१२); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) एक दम में ८ बार; उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । विना तनाव के क्षमता के अनुसार प्राणायाम ।

सप्ताह का चौथा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); शयनासन (३५८); मयूरासन (३५४); हंसासन (३५६); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४, ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); विरंच्यासन १ तथा २ (३८६ और ३८८); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२३); चक्रबन्धासन (५२४); लघुवज्रासन (५१३); कपोतासन (५१२); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । १५ मिनट के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा सिद्धासन (८४) अथवा पद्मासन (१०४) में ध्यान ।

सप्ताह का पाँचवाँ दिन

१० मिनट के लिए सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); १० मिनट के लिए सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); वशिष्ठासन (३९८); कश्यपासन (३९९); विश्वामित्रासन (४०३); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४२९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४ और ४२५); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ और ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); [इन सभी संतुलित करनेवाले आसनों को एक दम में करें ।]; योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन(४६२); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); द्विपाद विपरीत दण्डासन

(५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); कपोतासन (५१२); ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); ३ मिनट के लिए उत्तानासन (४८); ५ मिनट के लिए शवासन (५९२); १० मिनट के लिए उज्जायी प्राणायाम।

सप्ताह का छठा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७९); ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); योगनिद्रासन (३९१) एक एक मिनट प्रत्येक तरफ टाँग बदलते हुए; द्विपाद शीर्षासन (३९३) हर तरफ आधा मिनट; मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २ तथा ३ (३११, ३३० और ३३२); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६ और ३३९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५) एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२३); कपोतासन (५१२) तथा विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) ६ बार; शवासन (५९२) ।

सप्ताह का सातवाँ दिन

पूर्ण विश्राम लें अथवा केवल प्राणायाम करें ।

एक सौ इक्क्यासी से एक सौ नब्बेवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ से ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); वशिष्ठासन (३९८); विश्वामित्रासन (४०३); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद शीर्षासन तथा टिट्टिभासन (३९३ और ३९५); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३२६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२३); कपोतासन (५१२); लघुवज्रासन (५१३); एकपाद राजकपोतासन १ (५४२); हनुमानासन (४७५ और ४७६); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । २० मिनट के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

एक सौ इक्यानवे से दो सौवाँ सप्ताह

शीर्षासन (१८४); सर्वांगासन (२३४); हलासन (२४४); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ और ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित प्रत्येक आसन कर; द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ से ५२३); चक्रबन्धासन (५२४); कपोतासन (४१२); एकपाद राजकपोतासन १ (५४२); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७६); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६२); वशिष्ठासन (३९८); विश्वामित्रासन (४०३); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३–४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); एकपाद शीर्षासिन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); द्विपाद शीर्षासन (३९३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); स्कन्दासन (४७०); शवासन (५९२)। पूर्वोक्त विधि से प्राणायाम।

दो सौ एक से दो सौ पच्चीसवाँ सप्ताह

एक सौ इक्यानवेवे सप्ताह के अभ्यासक्रम के एकपाद राजकपोतासन १ (५४२) तक के आसन कर फिर इन आसनों को करें; एकपाद राजकपोतासन २ (५४५); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५); भुजंगासन २ (५५०); राजकपोतासन (५५१); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७); सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६२); कन्दासन (४७०); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद शीर्षासिन (३९३); पश्चिमोत्तानासन (१६०); शवासन (५९२)। पूर्वोक्त विधि के अनुसार प्राणायाम।

दो सौ छब्बीस से दो सौ पचासवाँ सप्ताह

दो सौ एक सप्ताह के अभ्यासक्रम के राजकपोतासन (५५१) तक के आसन कर, आगे के आसनों का समावेश करें; वृश्चिकासन १ तथा २ (५३७ और ५३८); घेरुण्डासन १ तथा २ (५६१ और ५६४); कपिंजलासन (५६७); तथा पुनः दो सौ एक सप्ताह के हनुमानासन (४७५) से शेष अभ्यासक्रम करें।

दो सौ इक्यावनवें से दो सौ पचहत्तरवाँ सप्ताह

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला

(२३४ से २७१); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (२२४); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ (४४१); एकपाद कौंडिन्यासन २ सहित एकपाद बकासन १ तथा एकपाद बकासन २ (४४६, ४५१ और ४४२); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित प्रत्येक आसन कर; द्विपाद विपरीत दण्डासन, मण्डलासन, एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ एक दम में (५१६, ५२५ से ५३५, ५२१ और ५२३); कपोतासन (५१२); वृश्चिकासन १ (५३७); भुजंगासन २ (५५०); राजकपोतासन (५५१); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५); घेरुण्डासन १ तथा २ (५६१ और ५६४); एकपाद राजकपोतासन १, २, ३ तथा ४ (५४२, ५४५, ५४६ और ५४७); गण्डभेरुण्डासन (५८०); नटराजासन (५९० और ५९१); तदनन्तर दो सौ एक वाले सप्ताह के अभ्यासक्रम के हनुमानासन (४७५) से आगे का अभ्यास करें।

दो सौ छिहत्तर से तीन सौवाँ सप्ताह

दो सौ इक्यावनवें सप्ताह के अभ्यासक्रम के एकपाद राजकपोतासन १ (५४२) तक के आसन करें; तदनन्तर वालखिल्यासन (५४४); एकपाद राजकपोतासन २, ३ तथा ४ (५४५, ५४६ और ५४७); शीर्षपादासन (५७०); गण्डभेरुण्डासन तथा विपरीत शलभासन (५८०, ५८१ और ५८४) दोनों एक दम में कर; ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); त्र्यंगमुखोत्तानासन (५८६); नटराजासन (५९० और ५९१))। बाद में दो सौवें सप्ताह के अभ्यासक्रम के हनुमानासन (४७५) से आगे के आसन करें और प्राणायाम पूर्वोक्त विधि के अनुसार करें।

बहुतेरे लोग शुरू-शुरू में एक सौ छियासठवें सप्ताह में दिये हुए अभ्यासक्रम में प्रगति नहीं कर पाते। परंतु व्यक्ति दृढ़ता एवं निरन्तर अभ्यास से इस पुस्तक में बतलाये हुए सभी आसन तथा प्राणायाम पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकता है। मेरे प्रारंभ के वर्षों में इसके लिए चार वर्ष कठिन श्रम करने पड़े, जिसमें आशा और निराशा बराबर बनी रही। जब आपने एक सौ छियासठवें सप्ताह के अभ्यासक्रम पर प्रभुत्व पाया है, तो मेरा आपसे हार्दिक कथन है कि जिस काम को आपने प्रसन्नता से हाथ में लिया है और अबतक जिसका प्रयत्न किया है, उसे करने में छोटी-मोटी सामयिक असफलताओं से निराश न होकर, निरन्तर प्रयत्नशील रहें। बहुत से लोग इन सभी आसनों पर आसानी से एवं सुविधापूर्वक प्रभुत्व पाने के लिए मेरे निर्देशित समय से अधिक समय लेते हैं। जब आपने इस अभ्यासक्रम तीन में विस्तार से बतलायी गयी सभी बातों को पूर्ण किया है तो आप उन्हें आगे बतलायी गयी विधि से साप्ताहिक अभ्यासक्रम में विभाजित कर सकते हैं। फिर आप दैनिक अभ्यास से इन सभी पर प्रभुत्व बनाये रखना सीखें।

सप्ताह का पहला दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); भुजपीडासन (३४८); अष्टावक्रासन (३४२ और ३४३); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१६); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ (४५१); एकपाद बकासन १ (४४६); एकपाद कौंडिन्यासन २ सहित एकपाद बकासन २ (४४२ सहित ४५१); गालवासन (४२७); एकपाद गालवासन (४३२); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९) सहित प्रत्येक आसन कर; अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); मयूरासन (३५४); ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); शवासन (५९२) । १५ मिनट के लिए नाडीशोधन प्राणायाम; ८ मिनट के लिए अंतर कुम्भक सहित उज्जायी प्राणायाम; ५ मिनट के लिए पद्मासन (१०४) अथवा सिद्धासन (८४) में ध्यान ।

सप्ताह का दूसरा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); जठरपरिवर्तनासन (२७४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); विरंच्यासन १ तथा २ (३८६ और ३८८); द्विपाद शीर्षासन (३९३); योगनिद्रासन (३९१); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६२); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); कंदासन (४७०); हनुमानासन (४७५); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२)। उड्डीयान तथा नौली प्रत्येक बार कर आठ पूर्वोक्त विधि के अनुसार प्राणायाम।

सप्ताह का तीसरा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२३); चक्रबन्धासन (५२४); कपोतासन (५१२); लघुवज्रासन (५१५); वृश्चिकासन १ (५३७); भुजंगासन २ (५५०); राजकपोतासन (५५१); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५); घेरुण्डासन १ तथा २ (५६१ और ५६२); एकपाद राजकपोतासन १ तथा २ (५४२ और ५४५); बालखिल्यासन (५४४);

शीर्षपादासन (५७०) तथा गण्डभेरुण्डासन, विपरीत शलभासन और त्र्यंगमुखोत्तानासन (५८०, ५८१, ५८४ और ५८६) सब एक साथ; पश्चिमोत्तानासन (१६०); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); शवासन (५९२)। १० से १५ मिनट के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम।

सप्ताह का चौथा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); योगनिद्रासन (३९१); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६२); कन्दासन (४७०); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७), सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८); ऊर्ध्व मुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); शवासन (५९२)। सप्ताह के पहले दिन के अनुसार प्राणायाम।

सप्ताह का पाँचवाँ दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ (४४१); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); एकपाद कौंडिन्यासन २ (४४२); गालवासन (४२७); एकपाद गालवासन (४३२); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) के पहले के ये सभी आसन एक ही दम में करें; वशिष्ठासन (३९८); कश्यपासन (३९९); विश्वामित्रासन (४०३); मंडलासन (५२५ से ५३५); कपोतासन (५१२); वृश्चिकासन १ (५३७); राजकपोतासन (५५१); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५); शीर्षपादासन (५७०); गण्डभेरुण्डासन (५८० और ५८१); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२)। १५ मिनट के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम।

सप्ताह का छठा दिन

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); योगनिद्रासन (३९१); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८) परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७);

सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८); मूलबन्धासन (४६२); कन्दासन (४७०); मण्डलासन (५२५ से ५३५); कपोतासन(५१२); वृश्चिकासन १(५३७); राजकपोतासन (५५१); एकपाद राजकपोतासन १ (५४२); बालखिल्यासन (५४४); शीर्षपादासन (५७०); गण्डभेरुण्डासन (५८० और ५८१); उत्तानासन (४८); शवासन (५९२) । बिना अंतर कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम तथा उज्जायी प्राणायाम और ८ बार उड्डीयान ।

सप्ताह का सातवाँ दिन

पूर्ण विश्राम अथवा केवल शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०)तथा ३० मिनट के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम ।

परिशिष्ट २

विविध रोगों के नाशक आसन

शिक्षक के नाते २५ वर्ष कार्य करने के बाद, अपने शिष्यों के साथ जो अनुभव प्राप्त किया है उसके आधार पर भिन्न भिन्न क्रियात्मक तथा शारीरिक रोगों के लिए आसनों के समूह दे रहा हूँ।

मैंने प्रत्येक रोग के लिए कुछ आसनों की सूची दी है। अनुभवी शिक्षक के मार्गदर्शन में अपनी क्षमता, शरीर के लचीलेपन एवं रोग के अनुसार इनका अभ्यास करना होगा।

आसनों का अभ्यास करते समय अपनी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। शरीर की प्रतिक्रिया की ओर भी आपका ध्यान होना बहुत जरूरी है। और उससे आसनों की अवधि का भी निर्णय ठीक-ठीक करना चाहिए।

अम्लता (Acidity)

उत्थित त्रिकोणासन (४ और ५); परिवृत्त त्रिकोणासन (६ और ७); उत्थित पार्श्वकोणासन (८ और ९); परिवृत्त पार्श्वकोणासन (१० और ११); वीरभद्रासन १, २ और ३ (१४, १५ और १७); अर्ध चन्द्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); पादांगुष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); सालम्ब शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सालम्ब सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); जानु शीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानु शीर्षासन (१३२); पश्चिमोत्तानासन (१६०); मरीच्यासन १, २ और ३ (१४४, १४६ और ३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २ तथा ३ (३११, ३३० और ३३२); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); योगनिद्रासन (३९१); सालम्बासन (६०); धनुरासन (६३); भुजंगासन १ (७३); मयूरासन (३५४); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६) तथा उड्डीयान (विभाग २०१)।

रक्तक्षय (Anaemia)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी मला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); उज्जायी प्राणायाम; २ से ३ मास के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम; ३ महीनों के बाद अंतर कुम्भक करें। जब संभव हो तब एक दम में १० से १५ मिनट के लिए शवासन (५९२) ।

गुल्फ (Ankles)

उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४, ५, ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्वकोणासन (८, ९, १० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); पार्श्वोत्तानासन (२६); प्रसारित पादोत्तानासन (३३); अधोमुख श्वानासन (७५); गोमुखासन (८०); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); भेकासन (१००); बद्ध पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); बद्ध कोणासन (१०२); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); आकर्ण धनुरासन (१७३ ओर १७५); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); उष्ट्रासन (४१); वातायनासन (५८); गरुडासन (५६); सुप्त भेकासन (४५८); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२)।

आंत्रपुच्छशोथ (Appendicitis)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); पूर्वोत्तानासन (१७१); महामुद्रा (१२५); जानुशीर्षासन (१२७); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); ऊर्ध्व धनुरासन (४६८); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); उत्तानासन (४८); २ मास के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५), बाद में अंतर कुम्भक के साथ ।

पीठ के निचले भाग का संधिवात (Arthritis of the lower back)

उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४, ५, ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्वकोणासन (८, ९, १० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्धचन्द्रासन (१९); पादांगुष्ठासन (४४); पादहस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८);

सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); मरीच्यासन १, २, ३ और ४ (१४३, १४५, ३०३ और ३०५); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिघासन (३९); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); पार्श्व धनुरासन (६४ और ६५); उत्तानपादासन (२९२); उष्ट्रासन (४१); सेतुबन्धासन (२९६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७) ।

पृष्ठीय संधिवात (Arthritis of the dorsal region)

पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); वीरासन (९१); पर्यंकासन (९७); गोमुखासन (८०); खड़े रहने की स्थिति के सब आसन (४ से ३६); परिघासन (३९); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); मरीच्यासन १ तथा ३ (१४३ और ३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११ और ३३०); पाशासन (३२८); उष्ट्रासन (४१); धनुरासन (६३) ; ऊर्ध्व धनुरासन (४८६ और ४८७); एकपाद ऊर्ध्व धनुरासन (५०१); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); एकपाद विपरीत दण्डासन (५२१); कपोतासन (५१२); लघुवज्रासन (५१३) ।

स्कंधास्थि का संधिवात (Arthritis of the shoulder joint)

उत्थित तथा परिवृत्त त्रिकोणासन (४, ५, ६ और ७); उत्थित तथा परिवृत्त पार्श्वकोणासन (८, ९, १० और ११); वीरभद्रासन १, २ तथा ३ (१४, १५ और १७); अर्धचन्द्रासन (१९); पार्श्वोत्तानासन (२६); सालम्ब शीर्षासन (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ तथा २ (२३४ और २३५); हलासन (२४४); धनुरासन (६३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); वीरासन (९१); पर्वतासन (१०७); अर्ध बद्ध पद्मोत्तानासन (५२); अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); पश्चिमोत्तानासन (१६०); गोमुखासन (८०); बद्ध पद्मासन (११८); योगमुद्रासन (१२०); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमख वृक्षासन (३५९); वशिष्ठासन (३९८); कश्यपासन (३९९); विश्वामित्रासन (४०३); भुजपीडासन (३४८); बकासन (४१०); मरीच्यासन १, २ तथा ३ (१४४,

१४६ और ३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११ और ३३०); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); उष्ट्रासन (४१); योगदण्डासन (४५६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); कपोतासन (५१२); मण्डलासन (५२५ से ५३५); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५)।

बाहु एवं जठर के अवयव (Arms and abdominal organs)

चतुरंग दण्डासन (६७); नक्रासन (६८ से ७१); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); लोलासन (८३); तुलासन (१०८); सिंहासन २ (११०); मयूरासन (३५४); पद्ममयूरासन (३५५); हंसासन (३५६); अष्टावक्रासन (३४२); भुज पीडासन (३४८); पिञ्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); एकहस्त भुजासन (३४४); द्विहस्त भुजासन (३४५); चकोरासन (३७९); वशिष्ठासन (३९८); विश्वामित्रासन (४०३); टिट्टिभासन (३९५); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४); द्विपाद कौंडिन्यासन (४३८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ और ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); गालवासन (४२७); एकपाद गालवासन (४३२); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९)।

दमा (Asthma)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); महामुद्रा (१२५); जानु शीर्षासन (१२७); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); भुजंगासन १ तथा २ (७३ और ५५०); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); पूर्वोत्तानासन (१७१); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११ और ३३०); पाशासन (३२८); उष्ट्रासन (४१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); जब दौरा (रोग का) हो तब बिना कुम्भक के उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५), अन्यथा अंतर कुम्भक के साथ करें तथा उड्डीयान (विभाग २०१) ।

पृष्ठशूल (Back ache)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी

माला (२३४ से २७१); खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ३६); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); महामुद्रा (१२५); जानु शीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानु शीर्षासन (१३२); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); मरीच्यासन १ तथा ३ (१४४ और ३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११ और ३३०); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); अधोमुख श्वानासन (७५); उष्ट्रासन (४१); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); पार्श्व धनुरासन (६४ और ६५); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मंडलासन (५२५ से ५३५) ।

उच्चरक्तचाप (High blood perssure)

हलासन (२४४); जानु शीर्षासन (१२७); अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); पश्चिमोत्तानासन (१६०); वीरासन (८९); सिद्धासन (८४); पद्मासन (१०४); शवासन (५९२) । बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५), आँखें बंद कर ध्यान । (यदि रक्तचाप अधिक है, तो पहले ५ मिनट के लिए बिना तकिये के लेटे हुए ही उज्जायी प्राणाथाम (विभाग २०३) और तब नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) करना उचित है, बाद में तुरन्त ही १५ मिनट के लिए शवासन (५९२) करें ।

निम्नरक्तचाप (Low b'ood pressure)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); कर्णपीडासन (२४६); पश्चिमोत्तानासन (१६०); वीरासन (८९); सिद्धासन (८४); पद्मासन (१०४); बद्धकोणासन (१०२); प्रारंभ में बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा शवासन (५९२) ।

मस्तिष्क (Brain)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); अधोमुख श्वानासन (७५); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); विपरीत चक्रासन (४८८

से ४९९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२३); वृश्चिकासन १ तथा २ (५३७ और ५३८); शीर्षपादासन (५७०); गण्डभेरुण्डासन (५८० और ५८१); विपरीत शलभासन (५८४); नाडीशोधन (विभाग २०५); सूर्यभेदन (विभाग २०४); भस्त्रिका (विभाग २०६) तथा शीतली प्राणायाम (६०१); शवासन (५९२)।

स्मृतिनाश (Loss of memory)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्व-मुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); त्राटक अथवा दोनों भौंहों के मध्य अथवा नासिका के अग्रभाग पर टकटकी लगाना। अंतर कुम्भक के साथ नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा भस्त्रिका प्राणायाम (विभाग २०६)।

श्वासहीनता (Breathlessness)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); अधोमुख श्वानासन (७५); पर्वतासन (१०७); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); उज्जायी प्राणायाम, नाडीशोधन प्राणायाम, उड्डीयान; शवासन (५९२)।

श्वासनलिका रोग (Bronchitis)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ३९); शीर्षासन तथा यदि संभव हो तो उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१, २६७ छोडकर); पश्चिमोत्तानासन (१६०); जठर परिवर्तनासन (२७५); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); जानु शीर्षासन (१२७); महामुद्रा (१२५); भुजंगासन १ (७३); अधोमुख श्वानासन (७५); गोमुखासन (८०); मरीच्यासन १ तथा ३ (१४४ और ३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); पद्मासन तथा उसकी माला में से जो संभव हो वे आसन (१०४ से १२४); बद्धकोणासन (१०२); उपविष्ट कोणासन (१५१); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद शीर्षासन (३९३); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); उष्ट्रासन (४१); ऊर्ध्व

धनुरासन (४८६); कपोतासन (५१२); द्विपाद विपरीत दण्डासन(५१६); उज्जायी (विभाग २०३); नाडीशोधन (विभाग २०५) तथा सूर्यभेदन प्राणायाम (विभाग २०४) अंतर कुम्भक के साथ ।

फुप्फुसनलिका दाह (Broncho Pneumonia)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); महामुद्रा (१२५); अधोमुख श्वानासन (७५); वीरासन (८९); सिद्धासन (८४); पद्मासन (१०४); बद्ध पद्मासन (११८); बद्धकोणासन (१०२); उज्जायी (विभाग २०३); नाडीशोधन (विभाग २०५) तथा सूर्यभेदन प्राणायाम (विभाग २०४); शवासन (५९२) ।

उरोरोग (Chest)

खड़े रहने की स्थिति के सब आसन (१ से ४८); शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); धनुरासन (६३); चतुरंग दण्डासन (६७); भुजंगासन १ तथा २ (७३ और ५५०); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); उभय पादांगुष्ठासन (१६७); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); बद्धकोणासन (१०१); भुजपीडासन (३४८); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २ तथा ३ (३११, ३३० और ३३२); पाशासन (३२८); पिञ्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); बकासन (४१०); पार्श्व बकासन (४१२); द्विपाद कौंडिन्यासन (३४८); एकपाद कौंडिन्यासन १ तथा २ (४४१ और ४४२); एकपाद बकासन १ तथा २ (४४६ और ४५१); ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१९); पार्श्व कुक्कुटासन (४२४); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९); कपोतासन (५१२); लघुवज्रासन (५१३); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); एकपाद विपरीत दण्डासन १ तथा २ (५२१ और ५२३); चक्रबन्धासन (५२४); मण्डलासन (५२५ से ५३५); वृश्चिकासन १ (५३७); राजकपोतासन (५५१); एकपाद राजकपोतासन १, २, ३ तथा ४ (५४२, ५४५, ५४६ और ५४७); वालखिल्यासन (५४४); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५); गण्ड-भेरुण्डासन (५८० और ५८१); विपरीत शलभासन (५८४); त्र्यंगमुखोत्तानासन (५८६); नटराजासन (५९०); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) अंतर कुम्भक के साथ ।

शैत्य (Chill)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); उज्जायी (विभाग २०३); भस्त्रिका (विभाग २०६); नाडीशोधन (विभाग २०५) तथा सूर्यभेदन (विभाग २०४) प्राणायाम ।

गुदास्थि (वेदना तथा स्थलांतर) Coccyx (pain and disp'acement)

वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); शीर्षासन १ (१८४); सर्वांगासन १ (२३४); सेतुबन्ध सर्वांगासन तथा एकपाद सेतुबंध सर्वांगासन (२५९ और २६०); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); पार्श्व धनुरासन (६४ और ६५); भुजंगासन १ तथा २ (७३ और ५५०); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); वातायनासन (५८) ;उष्ट्रासन (४१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६ और ४८७); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); कपोतासन (५१२); लघुवज्रासन (५१३); वृश्चिकासन १ (५३७); राजकपोतासन (५५१); एकपाद राजकपोतासन १, २, ३ तथा ४ (५४२, ५४५, ५४६ और ५४७); वालखिल्यासन (५४४); गण्डभेरुण्डासन (५८० और ५८१); विपरीत शलभासन (५८४); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५०); त्र्यंगमुखोत्तानासन (५८६); हनुमानासन (४७५); मूलबन्धासन (४६२) ।

शीत (सर्दी) (Cold)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४, और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); अंतर कुम्भक के साथ उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) ।

कास (खाँसी) (Cough)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); अंतर कुम्भक के साथ उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) ।

उदरशूल (Colic)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला

(२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); जठर परिवर्तनासन (२७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); महामुद्रा (१२५); ६ से ८ बार उड्डीयान (विभाग २०१)।

बृहदंगदाह (Colitis)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); जठर परिवर्तनासन (२७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); महामुद्रा (१२५); अधोमुख श्वानासन (७५); जानु शीर्षासन (१२७); योगनिद्रासन (३९१); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५)।

कोष्ठबद्धता (Constipation)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); खडे रहने की स्थिति के सब आसन (४ से ३६); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); जठर परिवर्तनासन (२७५) । नाडी-शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

मस्तिष्क की रक्तवाहिका का रक्तस्तंभन (Coronary Thrombosis)

कुम्भक के बिना लेटे हुए (स्थिति में) उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३)। (उज्जायी प्राणायाम में गहरा श्वासोच्छ्वास भी बिना तनाव के किया जाय । यह अनुभवी गुरु के मार्गदर्शन में किया जाना अधिक उत्तम होगा ।) दिन में दो बार १५ मिनिट के लिए शवासन (५९२) ।

पाद–विरूपता (Deformity in legs)

खडे रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ४८); जानु शीर्षासन (१२७); अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१); उपविष्ट कोणासन (१५१); उभय पादांगुष्ठासन (१६७); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); हलासन (२४४); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४ से २८७); अनंतासन (२९०); अधोमुख श्वानासन (७५); शलभासन (६०); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७); सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८) ।

बाहु–विरूपता (Deformity in arms)

खडे रहने की स्थिति के सब आसन (१ से ४८); पर्वतासन (१०७); हलासन (२४४); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); अधोमुख वृक्षासन (३५९); गोमुखासन (८०); मरीच्यासन १ तथा ३ (१४४ और ३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); बद्ध पद्मासन (११८); मालासन १ (३२१); पाशासन (३२८) ।

मधुमेह (Diabetes)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); महामुद्रा (१२५); जानु शीर्षासन (१२७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); जठर परिवर्तनासन (२७५); उत्तानासन (४८); मरीच्यासन १, २, ३ तथा ४ (१४६, ३०३ और ३०५); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २, तथा ३ (३११, ३३० और ३३२); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); उर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मयूरासन (३५४); हंसासन (३५६); भुजंगासन १ तथा २ (७३ और ५५०); उड्डीयान (विभाग २०१); नौली (विभाग २०२); नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) विना अंतर कुंभक के ; शवासन (५९२) ।

अतिसार (Diarrhoea)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); विना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

हृदयवितति (Dilation of heart)

विना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

गर्भाशय का स्थानान्तर (Displacement of uterus)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पादांगुष्ठासन (४४); पाद-हस्तासन (४६); अधोमुख श्वानासन (७५); दण्डासन (७७); पर्वतासन (१०७); मत्स्यासन (११४); बद्धकोणासन (१०१); उपविष्ट कोणासन (१५१); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); उड्डीयान (विभाग २०१)

पृष्ठवंशीय (मेरुदण्डीय) चक्र का स्थानान्तर (Displacement of spinal discs)

खडे रहने की स्थिति के सब आसन (४ से १९); पादांगुष्ठासन (४३); पादहस्तासन (४५); उत्तानासन (४७); पश्मोित्तानासन (१६०); शलभासन (६० और ६१); मकरासन (६२); धनुरासन (६३); उष्ट्रासन (४१); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); सर्वांगासन १ (२३४); सेतुबन्ध सर्वांगासन (२५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पर्वतासन (१०७); मत्स्यासन (११३); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); परिघासन (३९); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६ और ४८७); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५)।

आमांश (Dysentry)

शीर्षासन तथा उसकी माला के आसन जो संभव हो (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला के आसन जो संभव हो (२३४ से २७१); महामुद्रा (१२५); जानुशीर्षासन (१२७); बिना कुम्भक के नाडी शोधन प्राणायाम (विभाग २०५)।

अजीर्णता (अग्निमांद्य) (Dyspepsia)

अम्लता के उपचारात्मक आसनों का अनुसरण करें।

अपस्मार (मृगी) (Epilepsy)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४) महामुद्रा (१२५); पश्चिमोत्तानासन (१६०); अंतर कुम्भक के साथ उज्जायी प्राणायाम तथा बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम ५ मिनट के लिए; षण्मुखी मुद्रा (१०६); उपलब्ध समय के अनुसार अधिक काल तक शवासन (५९२)। शीतली प्राणायाम (६०१); ध्यान।

नेत्र (Eyes)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); त्राटक अथवा नासिका के अग्रभाग पर तथा दोनों भौओं के मध्य अर्धोन्मीलित नयनों से (आँखें बंद करके) कुछ क्षणों के लिए निर्निमेष देखें। षण्मुखी मुद्रा (१०६) शीतली (६०१) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); शवासन (५९२)।

मंदता (आलस्य) (Fatigue)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन २ (१७०); अधोमुख श्वानासन (७५); उत्तानासन (४८); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); मालासन २ (३२२); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); शवासन (५९२)।

सपाटपाद (Flat foot)

खडे रहने के स्थिति के सब आसन (१ से ४८); शीर्षासन (१८४); सर्वांगासन १ (२३४); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); भेकासन (१००); सुप्त भेकासन (४५८); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१); बद्ध पद्मासन (११८); बद्ध कोणासन (१०२); मूलबन्धासन (४६२); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४ से २८७); गोमुखासन (८०); योगदण्डासन (४५६); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); घेरण्डासन १ (५६१)।

वातरोग (Flatulence)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); खडे रहने की स्थिति के सब आसन (१ से ३६); पादांगुष्ठासन (४४); पाद-हस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); महामुद्रा (१२५); जानुशीर्षासन (१२७); अर्ध बद्ध पद्मपश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४२); मरीच्यासन १ (१४४); परिपूर्ण नावासन (७८); अध नावासन (७९); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा ३ (३११ और ३३२); मालासन २ (३२२); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); जठर परिवर्तनासन (२७५); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); चक्रासन (२८० से २८३); सुप्त वीरासन (९६); योगमुद्रासन (१२०); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद शीर्षासन (३९३); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); मयूरासन (३५४); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); उड्डीयान (विभाग २०१) तथा नौली (विभाग २०२)।

पित्ताशय एवं यकृतसंबंधी व्यायाम (Gall bladder and liver exercises)

अम्लता, अजीर्णता तथा वातरोग शीर्षक में बतलाये गये आसनों का अनुसरण करें।

जठरशूल (Gastritis)

वातरोग के आसनों का अनुसरण करें।

घूर्णन (Giddiness)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); षण्मुखी मुद्रा (१०६); बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); शवासन (५९२)।

संधिवात (Gout)

शीर्षासन तथा उसकी माला के आसन, जितने संभव हों (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला के आसन जितने संभव हों (२३४ से २७१); खडे रहने की स्थिति के आसन (४ से ३६); यदि संभव हो तो पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); परिघासन (३९); गरुडासन (५६); गोमुखासन (८०); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उभय पादांगुष्ठासन (१६७); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); क्रौंचासन (१४२); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८); योगदण्डासन (४३६); भेकासन (१००); सुप्त भेकासन (४५८); मूलबन्धासन (४६२); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६) कण्डासन (४७०); हनुमानासन (४७५)।

दुर्गंधित श्वास (Halitosis (Bad breath))

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); जठर परिवर्तनासन (२७५); पश्चिमोत्तानासन (१६०); सिंहासन १ तथा २ (१०९ और ११०); उज्जायी (विभाग २०३); नाडीशोधन (विभाग २०५); तथा शीतली प्राणायाम (६०१); उड्डीयान (विभाग २०१)।

(आसन तथा प्राणायाम का अभ्यास करते समय सर्वदा मुँह खोलकर जीभ को तानें और ऊपर की ओर घुमायें जिससे उसका अग्रभाग ऊपर की ओर खींचा जाए और उपजिव्हा के समीप लाया जाए। यह क्रिया केवल दुर्गंध ही दूर नहीं करती अपितु प्यास भी बुझाती है। योग में यह काकमुद्रा कहलाती है। काक का अर्थ है कौआ और मुद्रा का अर्थ प्रतीक)।

मंदिरशिरा के स्नायु (Hamstring muscles)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ३६); सालम्ब शीर्षासन तथा उसकी माला के जितने आसन संभव हों उतने आसन (१८४ से २१८); सालम्ब सर्वांगासन तथा जितने संभव हों उतने उसकी माला के आसन(२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४ से २८७); अनन्तासन (२९०); पश्चिमोत्तानासन (१६०); पूर्वोत्तानासन (१७१); बद्ध कोणासन (१०१); उपविष्ट कोणासन (१५१); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); कूर्मासन (३६३ और ३६४); उष्ट्रासन (४१); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६ और ४८७); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); मालासन २ (३२२); पाशासन (३२८); हनुमानासन (४७५); सम कोणासन (४७७); सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८) ।

शिरोवेदना (Headache)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४) १० मिनट के लिए; १० मिनट के लिए सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); ५ मिनट के लिए हलासन (२४४); तथा सर्वांगासन माला के संभवनीय आसन; ५ मिनट के लिए पश्चिमोत्तानासन (१६०); ३ मिनट के लिए उत्तानासन (४८); १० से १५ मिनट के लिए बिना कुम्भक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); १० मिनट के लिए शवासन (५९२) ।

हृदयविकार (Heart trouble)

बिना कुम्भक के तथा बिना तनाव के उज्जायी (विभाग २०३) अथवा नाडी-शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) । ध्यान। शवासन (५९२) ।

अम्लपित्त (Heartburn)

अम्लता शीर्षक में बतलाये गये आसनों का अनुसरण करें।

एड़ियाँ (वेदना अथवा सूजन)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); अधोमुख श्वानासन (७५); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); भेकासन (१००); सुप्त भेकासन (४५८); बद्धकोणासन (१०१); मूलबन्धासन (४६२); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २

(१६८ और १७०); गोमुखासन (८०); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); योगदण्डासन (४५६); कंडासन (४७०) ।

अंत्रवृद्धि (नाभिगत) (Hernia— umbilical)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); बद्धकोणासन (१०३); उपविष्ट कोणासन (१५१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४ से २८७); महामुद्रा (१२५); अधोमुख श्वानासन (७५); पादांगुष्ठासन (४३); पाद हस्तासन (४५); उत्तानासन (४७); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); एकपाद शीर्षासिन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); योगनिद्रासन (३९१); द्विपाद शीर्षासन (३९३); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); उड्डीयान ।

अंत्रवृद्धि (ऊरुसंधिसंनिध) (Hernia — Inguinal)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उभय पादांगुष्ठासन (१६७); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); क्रौंचासन (१४१); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४ से २८७); उपविष्ट कोणासन (१५१); बद्ध कोणासन (१०२); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७); सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६२); योगनिद्रासन (३९१); उड्डीयान (विभाग २०१) ।

(आराम करते समय लेट कर बद्धकोणासन (१०१) करना उचित है। आसन करने के उपरान्त शीघ्र ही खड़े न हों या किसी प्रकार की हलचल न करें। उपर्युक्त आसन के बाद शवासन करें। (५९२) ।

कूबड़ (Hunch-back)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (१ से ३६); चतुरंग दण्डासन (६७); शलभासन (६०); मकरासन (६२); धनुरासन (६३); उष्ट्रासन (४१); पादांगुष्ठासन (४३); पाद हस्तासन (४५); उत्तानासन (४७); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); महामुद्रा (१२५); जानुशीर्षासन (१२७); उपविष्ट कोणासन (१५१); गोमुखासन

(८०); पर्वतासन (१०७); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); मरीच्यासन १, २, ३ तथा ४ (१४४, १४६, ३०३ और ३०५); बद्ध पद्मासन (११८); पर्यंकासन (९७); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११ और ३३०); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६)।

अंडवृद्धि (Hydrocele)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); अधोमुख वृक्षासन (३५९); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख श्वानासन (७५); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); बद्ध कोणासन (१०१); उपविष्ट कोणासन (१५१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); योगनिद्रासन (३९१); योगदण्डासन (४५६); मूलबन्धासन (४६२); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); कण्डासन (४७०); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७); उड्डीयान (विभाग २०१) तथा नौली (विभाग २०२) ।

नपुंसकता (Impotency)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); महामुद्रा (१२५); बद्धकोणासन (१०१); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); मूलबन्धासन (४६२); कण्डासन (४७०); हनुमानासन (४७५); योगनिद्रासन (३९१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); उड्डीयान; नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) अंतर कुंभक के साथ ।

अजीर्ण (Indigestion)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ४८); शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७५); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); महामुद्रा (१२५); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); पश्चिमोत्तानासन (१६०); योगनिद्रासन (३९१); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८);

परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); सुप्त वीरासन (९६); उड्डीयान (विभाग २०१) तथा नौली (विभाग २०२) भस्त्रिका प्राणायाम (विभाग २०६); नाडी-शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) अंतर कुंभक के साथ।

निद्रानाश (Insomnia)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); बिना कुंभक के भस्त्रिका, नाडीशोधन तथा सूर्यभेदन प्राणायाम, षण्मुखी मुद्रा (१०६) तथा शवासन (५९२)।

मूत्रपिंड (Kidneys)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ४८); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); जानु शीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानु-शीर्षासन (१३२); पश्चिमोत्तानासन (१६०); परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६५); बद्धकोणासन (१०३); उपविष्ट कोणासन (१५१); जठर परिवर्तनासन (२७५); अर्ध नावासन (७९); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १, २ तथा ३ (३११, ३३० और ३३२); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); भुजंगासन १ तथा २ (७३ और ५५०); मूलबन्धासन (४६२); कण्डासन (४७०); हनुमानासन (४७५); योगनिद्रासन (३९१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६ और ४८७); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); कपोतासन (५१२); राजकपोतासन (५५१); वृश्चिकासन १ अथवा २ (५३७ अथवा ५३८); पादांगुष्ठ धनुरासन (५५५); शीर्षपादासन (५७०); गण्डभेरुण्डासन (५८० और ५८१); विपरीत शलभासन (५८४); त्र्यंगमुखोत्तानासन (५८६); नटराजासन (५९०); उड्डीयान (विभाग २०१) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

जानु (Knees)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (१ से ४८); जानु शीर्षासन (१२७); परिवृत्त जानु-शीर्षासन (१३२); अर्धबद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३५); त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन (१३९); क्रौंचासन (१४१); मरीच्यासन १, २, ३ था ४ (१४४, १४६, ३०३ और ३०५); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); वीरासन (८९);

सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); गोमुखासन (८०); सिद्धासन (८४); बद्धकोणासन (१०१); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८); कूर्मासन तथा सुप्त कर्मासन (३६३, ३६४, और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); योगदण्डासन (४५६); भेकासन (१००); सुप्त भेकासन (४५८); मूलबन्धासन (४६२); वामदेवासन १ तथा २ (४६५ और ४६६); कण्डासन (४७०); हनुमानासन (४७५); घेरण्डासन १ तथा २ (५६१ और ५६४) ।

प्रसववेदना (Labour pain)

वीरासन (८९); बद्धकोणासन (१०१ और १०३); पैर के अँगूठे को पकड़कर या बिना पकड़े उपविष्ट कोणासन (१४८); अंतर कुंभक के साथ उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०१) तथा बिना कुंभक के नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०३); शवासन (५९२) ।

टाँगें (Legs)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (१ से ५८); शलभासन (६०) धनुरासन (६३); भुजंगासन १ तथा २ (७३ और ५५०); चतुरंग दण्डासन (६७); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); पश्चिमोत्तानासन (१६०); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); आकर्ण धनुरासन (१७३ और १७५); उपविष्ट कोणासन (१५१); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); क्रौंचासन (१४१); सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन (२३४); हलासन (२४४); पिच्छ मयूरासन (३५७); अधोमुख वृक्षासन (३५९); अनन्तासन (२९०); एकपाद शीर्षासन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); वशिष्ठासन (३९८); विश्वामित्रासन (४०३); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७); सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८) ।

यकृत, प्लीहा, स्वादुपिंड तथा पक्वाशय (Liver, Spleen, Pancreas and Intestines) **बाहु तथा मूत्रपिंड** शीर्षक के अन्तर्गत आसनों का अनुसरण करें ।

कटिशूल (Lumbago)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ४८); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); भुजंगासन १ (७३); पूर्वोत्तानासन (१७१); मालासन १ तथा २

(३२१ और ३२२); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन २ (१७०); जठर परिवर्तनासन (२७५); पर्वतासन (१०७); शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६ और ४८७); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५)।

फुफ्फुस (Lungs)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (४ से ३६); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); अंतर कुंभक के साथ प्राणायाम के सभी प्रकार।

ऋतुस्रावव्याधि (अनियमित ऋतुस्राव) (Menstrual disorders)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); अधोमुख श्वानासन (७५); बद्ध पद्मासन (११८); योगमुद्रासन (१२०); पर्वतासन (१०७); मत्स्यासन (११३); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); बद्धकोणासन (१०२); उपविष्ट कोणासन (१५१); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); योगनिद्रासन (३९१); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); शवासन (५९२); अंतर कुंभक के साथ नाडीशोधन प्राणायाम तथा उड्डीयान (विभाग २०१)।

अर्धशिरोवेदना (Migraine)

सालम्ब शीर्षासन (१८४); यदि संभव हो तो शीर्षासन की माला; सर्वांगासन (और उसकी माला के संभवनीय आसन) (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); बिना कुंभक के नाडीशोधन प्राणायाम; शीतली प्राणायाम; षण्मुखी मुद्रा (१०६); वीरासन (८९) अथवा सिद्धासन (८४) अथवा बद्ध कोणासन (१०३) अथवा पद्मासन (१०४) में ध्यान; शवासन (५९२)।

नासिका-शैत्य (Nasal Catarrh)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); अधोमुख श्वानासन (७५); उज्जायी (विभाग २०३), भस्त्रिका (विभाग २०६), सूर्यभेदन (विभाग २०४), तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

मज्जातंतु दौर्बल्य (Nervous debility)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); उत्तानासन (४८); पश्चिमोत्तानासन (१६०); बिना कुंभक के नाडीशोधन प्राणायाम; षण्मुखी मुद्रा (१०६); ध्यान तथा शवासन (५९२) ।

मेदवृद्धि (मोटापा) (Obesity)

अम्लता, अजीर्णता तथा जठरशूल शीर्षक के अन्तर्गत बतलाये गये आसनों का अनुसरण करें ।

अंडाशय (Ovaries)

ऋतुस्रावव्याधि शीर्षक के अन्तर्गत के आसनों का अनुसरण करें ।

हृदयस्पंदन (Palpitation)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); अधोमुख श्वानासन (७५); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); प्रारंभ में बिना कुंभक के उज्जायी (विभाग २०३)तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५)। २-३ मास के उपरान्त ५ सेकण्ड के लिए अंतरकुंभक के साथ (उपर्युक्त प्राणायाम) प्रारंभ करें तथा शनैः शनैः समय को बढायें । शवासन (५९२) ।

पोलियो (Polio)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (१ से ३६); शलभासन (६०); धनुरासन (६३) और इसी प्रकार आगे । परंतु मेरे अनुभव के अनुसार पोलियो के लिए पुस्तक का अनुसरण न कर अनुभवी शिक्षक का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त करना आवश्यक है । प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा सहनशक्ति की स्थिति के अनुसार आसनों का अभ्यासक्रम निश्चित किया जाना चाहिए ।

पक्षाघात (लकवा) (Paralysis)

यहाँ भी अनुभवी शिक्षक का मार्गदर्शन आवश्यक है। खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (१ से ३६); पादांगुष्ठासन (४४); पाद हस्तासन (४६); उत्तानासन (४८); शलभासन (६० और ६१); मकरासन (६२); धनुरासन (६३); भुजंगासन १ (७३); सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); एकपाद सर्वांगासन (२५०); पार्श्वैकपाद सर्वांगासन (२५१); पार्श्व हलासन (२४९); सुप्त कोणासन (२४७); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४, २८५ और २८७); ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६ से २७९); शवासन (५९२); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५)।

अर्श (Piles)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८५ से २८७); मत्स्यासन (११४); सिंहासन २ (११०); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); कुंभक के साथ उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा शवासन (५९२)।

उरस्तोय तथा फुप्फुसावरणदाह (Pleurisy and pneumonia)

(थोड़े समय में शक्ति की पुनर्प्राप्ति तथा दैनिक जीवनचर्या प्राप्त करने के लिए औषधोपचार तथा विश्रांति के उपरान्त रोगी सुविधानुसार योगाभ्यास कर सकता है।)

सालम्ब शीर्षासन १ (१८४); सालम्ब सर्वांगासन १ (२३४); हलासन (२४४); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उत्तानासन (४८); वीरासन (८९); पर्वतासन (१०७); मत्स्यासन (११४); बिना कुंभक के उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५), ध्यान तथा शवासन (५९२)।

पौरुषग्रंथि (Prostates)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७५); उत्तानासन (४८); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); अधोमुख श्वानासन (७५); परिपूर्ण नावासन (७८); अर्ध नावासन (७९); जानु शीर्षासन (१२७); वीरासन (८९);

सुप्त वीरासन (९६); बद्ध कोणासन (१०२); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); कूर्मासिन तथा सुप्त कूर्मासिन (३६३, ३६४ और ३६८); एकपाद शीर्षासिन तथा उसकी माला (३७१ से ३८४); योगनिद्रासन (३९१); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ तथा २ (३११ और ३२०); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); मूलबन्धासन (४६२); कण्डासन (४७०); हनुमानासन (४७५); समकोणासन (४७७); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); विपरीत चक्रासन (४८८ से ४९९); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); मण्डलासन (५२५ से ५३५); उड्डीयान (विभाग २०१), नाडीशोधन (विभाग २०५) तथा उज्जायी प्राणायाम (विभाग २०३) कुंभक के साथ।

संधिवात पीडा (गठिया) (Rheumatic pains)

संधिवात (Arthritis) तथा कटिशूल शीर्षक के अन्तर्गत के आसनों का अनुसरण करें।

जांघिक स्नायुशूल (Sciatica)

खड़े रहने की स्थिति के सभी आसन (१ से ३६); शीर्षासिन तथा उसकी माला के जितने संभव हों उतने आसन करें (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला के संभवनीय आसन (२३४ से २७१); जठर परिवर्तनासन (२७५); सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४ से २८७); अनन्तासन (२९०); उत्तानपादासन (२९२); सेतुबन्धासन (२९६); पश्चिमोत्तानासन (१६०); शलभासन (६०); धनुरासन (६३); भुजंगासन १ (७३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); अधोमुख श्वानासन (७५); ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १ तथा २ (१६८ और १७०); पूर्वोत्तानासन (१७१); कूर्मासिन (३६३ और ३६४); मूलबन्धासन (४६२); भरद्वाजासन १ तथा २ (२९७ और २९९); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); मालासन १ तथा २ (३२१ और ३२२); पाशासन (३२८); हनुमानासन (४७५); सुप्त त्रिविक्रमासन (४७८); उष्ट्रासन (४१); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); यदि संभव हो तो, परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६)।

अनैच्छिक शुक्रस्राव (Spermatorrhoea)

शीर्षासिन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); पश्चिमोत्तानासन (१६०); बद्धकोणासन (१०३); मूलबन्धासन (४६२); कण्डासन (४७०); २ से ३ महीनों तक बिना कुंभक के उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५), बाद में अंतर कुंभक के साथ करें।

वन्ध्यत्व (Sterility)

अनैच्छिक शुक्रस्राव शीर्षकान्तर्गत आसनों का अनुसरण करें।

पाद रक्तवाहिका का रक्त स्तंभन (Thrombosis of the legs)

सालम्ब सर्वांगासन १, यदि संभव हो (२३४); हलासन (२४४); वीरासन (८९); सिद्धासन (८४); बद्धकोणासन (१०२); तथा बिना तनाव के कोई भी बैठे आसन करें। उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) तथा शवासन (५९२)।

गलशुंडी शोथ (Tonsillitis)

शीर्षासन तथा उसकी माला के जो भी आसन संभव हो (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला के संभवनीय आसन (२३४ से २७१); वीरासन (८९); पर्यंकासन (९७); पद्मासन तथा उसकी माला (१०४ से १२४); खड़े रहने की स्थितियाँ (१ से ३६); उष्ट्रासन (४१); धनुरासन (६३); ऊर्ध्वमुख श्वानासन (७४); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन (३३६); पश्चिमोत्तानासन (१६०); योगनिद्रासन (३९१); ऊर्ध्व धनुरासन (४८६); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५); भस्त्रिका (विभाग २०६) तथा उड्डीयान (विभाग २०१)।

क्षयरोग (Tuberculosis)

औषधोपचार के उपरान्त योग्य गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त करना उचित है।

उदरग्रंथि (Tumour of the stomach)

(यदि रोग प्रारंभिक अवस्था में हो तभी।)

सालम्ब शीर्षासन १ तथा उसकी माला के संभवनीय आसन (१८४ से २१८); सालम्ब सर्वांगासन १ तथा उसकी माला के संभवनीय आसन (२३४ से २७१); खड़े रहने की स्थितियाँ (१ से ३६); उत्तानासन (४८); महामुद्रा (१२५); जानुशीर्षासन (१२७); सुप्त वीरासन (९६); मत्स्यासन (११४); पर्वतासन (१०७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); उड्डीयान (विभाग २०१) तथा उज्जायी (विभाग २०३) अथवा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५)।

व्रण (उदरस्थ) (Ulcer — Gastric)

अम्लता, अजीर्णता तथा वातरोग शीर्षकों के अन्तर्गत बताये गये आसनों का अनुसरण करें।

व्रण (आँत का) (Ulcer—Duodena)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); महामुद्रा (१२५); जानु-शीर्षासन (१२७); पश्चिमोत्तानासन (१६०); कूर्मासन तथा सुप्त कूर्मासन (३६३, ३६४ और ३६८); योगनिद्रासन (३९१); मरीच्यासन ३ (३०३); अर्ध मत्स्येन्द्रासन १ (३११); पाशासन (३२८); द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१६); उड्डीयान (विभाग २०१); उज्जायी (विभाग २०३) तथा नाडीशोधन प्राणायाम (विभाग २०५) अन्तर कुंभक के साथ ।

मूत्र (मूत्रकृच्छ्र अथवा मूत्रदोष) (Urine Dribbling or excessive) --

शीर्षासन तथा उसकी माला के आसन जितने आप कर सकें (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला के आसन जितने आप कर सकें (२३४ से २७१); सुप्त वीरासन (९६); मत्स्यासन (११४); सिंहासन २ (११०); महामुद्रा (१२५); बद्ध कोणासन (१०१); उड्डीयान (५९४); अंतर कुंभक तथा बाह्य कुंभक के साथ नाड़ी शोधन प्राणायाम (विभाग २०५) ।

शोथयुक्तशिरा (Varicose Veins)

शीर्षासन तथा उसकी माला (१८४ से २१८); सर्वांगासन तथा उसकी माला (२३४ से २७१); वीरासन (८९); सुप्त वीरासन (९६); पर्यंकासन (९७); भेकासन (१००) ।

चित्रों के साथ वर्णित आसनों का संबंध प्रदर्शित करनेवाली तालिका

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
१ ताडासन	—	१
२ वृक्षासन	—	२
३ उत्थित त्रिकोणासन	३	४ और ५
४ परिवृत्त त्रिकोणासन	—	६ और ७
५ उत्थित पार्श्वकोणासन	—	८ और ९
६ परिवृत्त पार्श्वकोणासन	—	१० और ११
७ वीरभद्रासन १	१२ और १३	१४
८ वीरभद्रासन २	—	१५
९ वीरभद्रासन ३	१६	१७
१० अर्ध चन्द्रासन	१८	१९
११ उत्थित हस्तपादांगुष्ठासन	२० और २२	२३
१२ पार्श्वोत्तानासन	२४ और २५	२६, २७ और २८
१३ प्रसारित पादोत्तानासन १	२९ से ३२	३३ से ३४
१४ प्रसारित पादोत्तानासन २	—	३५ और ३६
१५ परिघासन	३७ और ३८	३९
१६ उष्ट्रासन	४०	४१
१७ उत्कटासन	—	४२
१८ पादांगुष्ठासन	४३	४४
१९ पादहस्तासन	४५	४६
२० उत्तानासन	४७	४८
२१ ऊर्ध्व प्रसारित एकपादासन	—	४९
२२ अर्धबद्ध पादोत्तानासन	५० और ५१	५२,५३,५४ और५५
२३ गरुडासन	—	५६
२४ वातायनासन	५७	५८ और ५९
२५ शलभासन	६१	६०
२६ मकरासन	—	६२
२७ धनुरासन	—	६३
२८ पार्श्व धनुरासन —	—	६४ और ६५
२९ चतुरंग दण्डासन	६६	६७

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
३० नक्रासन	—	६८ से ७१
३१ भुजंगासन १	७२	७३
३२ ऊर्ध्वमुख श्वानासन	—	७४
३३ अधोमुख श्वानासन	—	७५ और ७६
३४ दण्डासन	—	७७
३५ परिपूर्ण नावासन	—	७८
३६ अर्ध नावासन	—	७९
३७ गोमुखासन	—	८० और ८१
३८ लोलासन	८२	८३
३९ सिद्धासन	—	८४
४० वीरासन	८५ से ८८ ९० से ९२	८९
४१ सुप्त वीरासन	९३ से ९५	९६
४२ पर्यंकासन	—	९७
४३ भेकासन	९८ और ९९	१००
४४ बद्ध कोणासन	१०१	१०२ और १०३
४५ पद्मासन	—	१०४ और १०५
४६ षण्मुखी मुद्रा	—	१०६
४७ पर्वतासन	—	१०७
४८ तुलासन	—	१०८
४९ सिंहासन १	—	१०९
५० सिंहासन २	—	११० और १११
५१ मत्स्यासन	११२ और ११४	११३
५२ कुक्कुटासन	—	११५
५३ गर्भपिण्डासन	—	११६
५४ गोरक्षासन	—	११७
५५ बद्ध पद्मासन	—	११८ और ११९
५६ योग मुद्रासन	—	१२०,१२१ और १२२
५७ सुप्त वज्रासन	१२३	१२४
५८ महामुद्रा	—	१२५

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
५९ जानु शीर्षासन	१२६	१२७,१२८ और १२९
६० परिवृत्त जानु शीर्षासन	१३० और १३१	१३२
६१ अर्ध वद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन	१३३,१३४ और १३६	१३५ और १३७
६२ त्र्यंगमुखैकपाद पश्चिमोत्तानासन	१३८	१३९
६३ क्रौंचासन	१४०	१४१ और १४२
६४ मरीच्यासन १	१४३	१४४
६५ मरीच्यासन २	१४५	१४६ और १४७
६६ उपविष्ट कोणासन	१४८ से १५०	१५१ और १५२
६७ पश्चिमोत्तानासन (अथवा उग्रासन अथवा ब्रह्मचर्यासन)	१५३ से १६०	१६१ और १६२
६८ परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन	१६३ और १६४	१६५ और १६६
६९ उभय पादांगुष्ठासन	—	१६७
७० ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन १	—	१६८
७१ ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन २	१६९	१७०
७२ पूर्वोत्तानासन	—	१७१
७३ आकर्ण धनुरासन	१७२ और १७४	१७३ और १७५
७४ सालम्ब शीर्षासन १	१७६ से १८३ और १८६ से १८९, १९१	१८४, १८५ और १९०
७५ ऊर्ध्व दण्डासन	—	१८८
७६ सालम्ब शीर्षासन २	—	१९२
७७ सालम्ब शीर्षासन ३	१९३, १९६ और १९७	१९४ और १९५
७८ बद्ध हस्त शीर्षासन	—	१९८
७९ मुक्त हस्त शीर्षासन	१९९	२०० और २०१
८० पार्श्व शीर्षासन	—	२०२ और २०३
८१ परिवृत्तैकपाद शीर्षासन	२०४	२०५ और २०६ २०७
८२ एकपाद शीर्षासन	—	२०८ और २०९
८३ पार्श्वैकपाद शीर्षासन	—	२१०
८४ शीर्षासन में ऊर्ध्व पद्मासन	—	२११ और २१२

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
८५ शीर्षासन में पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन	—	२१३ से २१६
८६ शीर्षासन में पिण्डासन	२१७	२१८
८७ सालम्ब सर्वांगासन १	२१९ से २२२ और २२६ से २३५	२२३ और २२४ २२५ और २३४
८८ सालम्ब सर्वांगासन २	—	२३५
८९ निरालम्ब सर्वांगासन १	—	२३६
९० निरालम्ब सर्वांगासन २	—	२३७
९१ हलासन	२३८ से २४३	२४४
९२ कर्ण पीडासन	२४५	२४६
९३ सुप्त कोणासन	—	२४७ और २४८
९४ पार्श्व हलासन	—	२४९
९५ एकपाद सर्वांगासन	—	२५०
९६ पार्श्वैकपाद सर्वांगासन	—	२५१
९७ पार्श्व सर्वांगासन	२५२ और २५३	२५४ और २५५
९८ सेतुबन्ध सर्वांगासन (अथवा उत्तान मयूरासन)	२५६ से २५८	२५९
९९ एकपाद सेतुबन्ध सर्वांगासन (अथवा एकपाद उत्तान मयूरासन)	—	२६०
१०० सर्वांगासन में ऊर्ध्व पद्मासन	—	२६१
१०१ सर्वांगासन में पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन	—	२६२ से २६५
१०२ उत्तान पद्म मयूरासन	२६६	२६७
१०३ सर्वांगासन में पिण्डासन	२६८	२६९
१०४ सर्वांगासन में पार्श्व पिण्डासन	—	२७० और २७१
१०५ जठर परिवर्तनासन	२७२ और २७३	२७४ और २७५
१०६ ऊर्ध्व प्रसारित पादासन	—	२७६ से २७९
१०७ चक्रासन	—	२८० से २८३
१०८ सुप्त पादांगुष्ठासन	२८४	२८५ से २८७
१०९ अनन्तासन	२८८ और २८९	२९०

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
११० उत्तानपादासन	२९१	२९२
१११ सेतुबन्धासन	२९३ से २९५	२९६
११२ भरद्वाजासन १	—	२९७ और २९८
११३ भरद्वाजासन २	—	२९९ और ३००
११४ मरीच्यासन ३	३०१ और ३०२	३०३ और ३०४
११५ मरीच्यासन ४	—	३०५ और ३०६
११६ अर्ध मत्स्येन्द्रासन १	३०७ से ३१० और ३१३ से ३१६	३११ और ३१२
११७ मालासन १	३१७ से ३२०	३२१
११८ मालासन २	—	३२२
११९ पाशासन	३२३ से ३२७	३२८ और ३२९
१२० अर्ध मत्स्येन्द्रासन २	—	३३० और ३३१
१२१ अर्ध मत्स्येन्द्रासन ३	—	३३२ और ३३३
१२२ परिपूर्ण मत्स्येन्द्रासन	३३४ और ३३५ ३३७ और ३३८	३३६ और ३३९
१२३ अष्टावक्रासन	३४० और ३४१	३४२ और ३४३
१२४ एक हस्त भुजासन	—	३४४
१२५ द्वि हस्त भुजासन	—	३४५
१२६ भुजपीडासन	३४६ और ३४७ ३४९ और ३५०	३४८
१२७ मयूरासन	३५१ से ३५३	३५४
१२८ पद्म मयूरासन	—	३५५
१२९ हंसासन	—	३५६
१३० पिच्छ मयूरासन	—	३५७
१३१ शयनासन	—	३५८
१३२ अधोमुख वृक्षासन	—	३५९
१३३ कूर्मासन	३६० से ३६२	३६३ और ३६४
१३४ सुप्त कूर्मासन	३६५ से ३६७	३६८
१३५ एकपाद शीर्षासन	३६९ और ३७०	३७१
१३६ स्कंदासन	—	३७२

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
१३७ बुद्धासन	—	३७३
१३८ कपिलासन	—	३७४
१३९ भैरवासन	—	३७५
१४० कालभैरवासन	३७६ और ३७७	३७८
१४१ चकोरासन	—	३७९ और ३८०
१४२ दुर्वासासन	३८१ और ३८२	३८३
१४३ रुचिकासन	—	३८४ और ३८५
१४४ विरंच्यासन १	—	३८६ और ३८७
१४५ विरंच्यासन २	—	३८८
१४६ योगनिद्रासन	३८९ और ३९०	३९१
१४७ द्विपाद शीर्षासन	३९२	३९३ और ३९४
१४८ टिट्टिभासन	—	३९५
१४९ वशिष्ठासन	३९६ और ३९७	३९८
१५० कश्यपासन	—	३९९ और ४००
१५१ विश्वामित्रासन	४०१ और ४०२	४०३
१५२ बकासन	४०४ और ४०५ ४०७ से ४०९	४०६ और ४१०
१५३ पार्श्व बकासन	४११	४१२
१५४ ऊर्ध्व कुक्कुटासन	४१३ से ४१६	४१७ से ४१९
१५५ पार्श्व कुक्कुटासन	४२० से ४२३	४२४ और ४२४अ ४२५ और ४२५अ
१५६ गालवासन	४२६	४२७ और ४२८
१५७ एकपाद गालवासन	४२९,४३० और ४३२	४३१ और ४३३
१५८ द्विपाद कौंडिन्यासन	४३४ से ४३७	४३८
१५९ एकपाद कौंडिन्यासन १	४३९ और ४४०	४४१
१६० एकपाद कौंडिन्यासन २	४४४	४४२ और ४४३
१६१ एकपाद बकासन १	४४५	४४६ और ४४७
१६२ एकपाद बकासन २	४४८ से ४५०	४५१ और ४५२
१६३ योगदण्डासन	४५३ से ४५५	४५६
१६४ सुप्त भेकासन	४५७	४५८

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
१६५ मूलबन्धासन	४५९ से ४६१	४६२ और ४६३
१६६ वामदेवासन १	४६४	४६५
१६७ वामदेवासन २	—	४६६
१६८ कण्डासन	४६७ से ४६९	४७० से ४७१ ब
१६९ हनुमानासन	४७२ से ४७४	४७५ से ४७६ अ
१७० समकोणासन	—	४७७
१७१ सुप्त त्रिविक्रमासन	—	४७८
१७२ ऊर्ध्व धनुरासन १	४७९ से ४८१	४८२
१७२अ ऊर्ध्व धनुरासन २	४८३ से ४८५	४८६ और ४८७
१७३ विपरीत चक्रासन ऊ. ध. में	—	४८८ से ४९९
१७४ एकपाद ऊर्ध्व धनुरासन	५००	५०१ और ५०२
१७५ कपोतासन	५०३ से ५०६ और ५०८ से ५११	५०७ और ५१२
१७६ लघुवज्रासन	—	५१३
१७७ द्विपाद विपरीत दण्डासन	५१४ और ५१५ ५१७ से ५२०	५१६
१७८ एकपाद विपरीत दण्डासन १	—	५२१
१७९ एकपाद विपरीत दण्डासन २	५२२	५२३
१८० चक्र बन्धासन	—	५२४
१८१ मण्डलासन	—	५२५ से ५३५
१८२ वृश्चिकासन १	—	५३६ और ५३७
१८३ वृश्चिकासन २	—	५३८
१८४ एकपाद राजकपोतासन १	५३९ से ५४१	५४२
१८५ वालखिल्यासन	५४३	५४४
१८६ एकपाद राजकपोतासन २	—	५४५
१८७ एकपाद राजकपोतासन ३	—	५४६
१८८ एकपाद राजकपोतासन ४	—	५४७
१८९ भुजंगासन २	५४८ और ५४९	५५०
१९० राजकपोतासन	५५२	५५१

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
१९१ पादांगुष्ठ धनुरासन	५५३ और ५५४ ५५६ और ५५७	५५५
१९२ घेरण्डासन १	५५८ से ५६०	५६१ से ५६३
१९३ घेरण्डासन २	—	५६४ से ५६६
१९४ कपिंजलासन	—	५६७
१९५ शीर्षपादासन	५६८ और ५६९	५७०
१९६ गण्ड भेरुण्डासन	५७१ से ५७९ ५८२ और ५८३	५८० और ५८१
१९७ विपरीत शलभासन	—	५८४
१९८ त्र्यंगमुखोत्तानासन	५८५	५८६
१९९ नटराजासन	५८७ से ५८९	५९०, ५९१ और ५९१ अ
२०० शवासन (अथवा मृतासन)	—	५९२
२०१ उड्डीयान बन्ध	—	५९३ और ५९४
२०२ नौली	—	५९५ और ५९६
प्राणायाम—		
२०३ उज्जायी	—	५९७
२०४ सूर्यभेदन	५९८	५९९
बाह्य कुम्भक	—	६००
२०५ नाडीशोधन	—	—
२०६ भस्त्रिका	—	—
२०७ कपालभाति	—	—
२०८ भ्रमरी	—	—
२०९ शीतली	—	६०१
२१० शीतकारी	—	—
२११ सम वृत्ति	—	—
२१२ विषम वृत्ति	—	—

आसनादि के नाम	मध्य स्थिति के आसन चित्रक्रमांक	पूर्ण स्थिति के आसन चित्रक्रमांक
२१३ विलोम	–	–
२१४ अनुलोम	–	–
२१५ प्रतिलोम	–	–
२१६. सहित और केवल	–	–
ध्यान	–	६०२

सूची

१. ताड़ासन

२. वृक्षासन

परिवृत्त त्रिकोणासन (६, ७)

उत्थित त्रिकोणासन (३–५)

उत्थित पार्श्वकोणासन (८, ९)
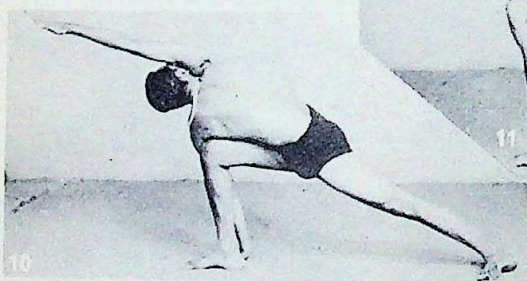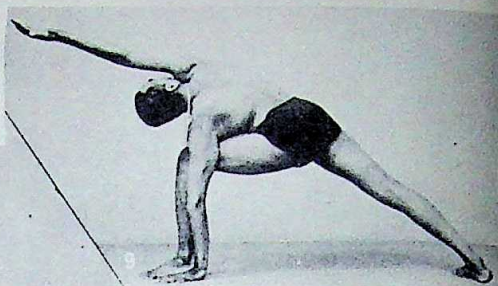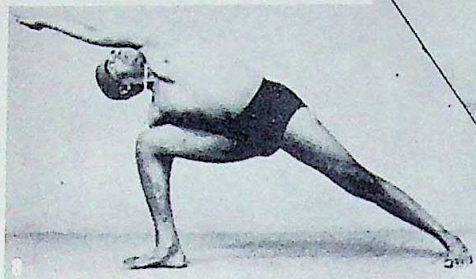
परिवृत्त पार्श्वकोणासन (१०, ११)

वीरभद्रासन-एक (१२–१४)
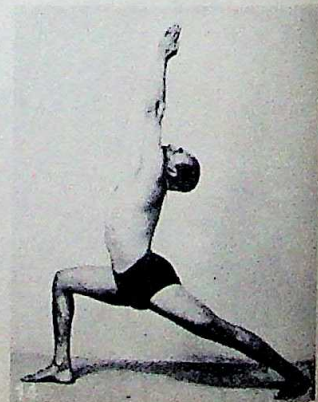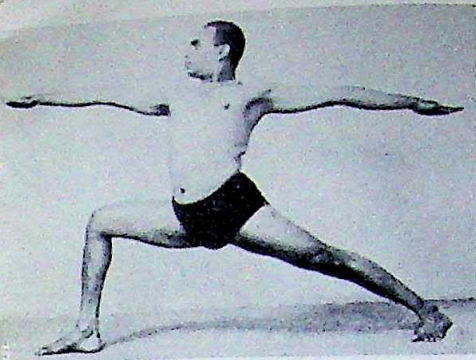
१५. वीरभद्रासन-दो.
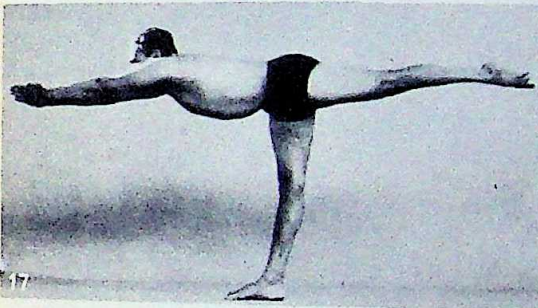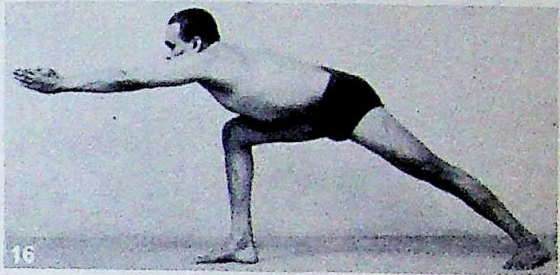
वीरभद्रासन-तीन (१६, १७)
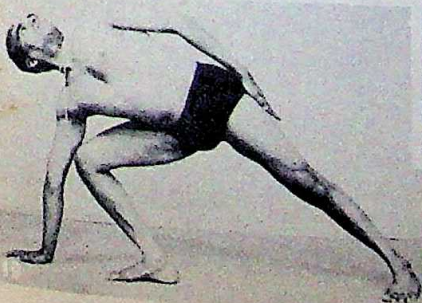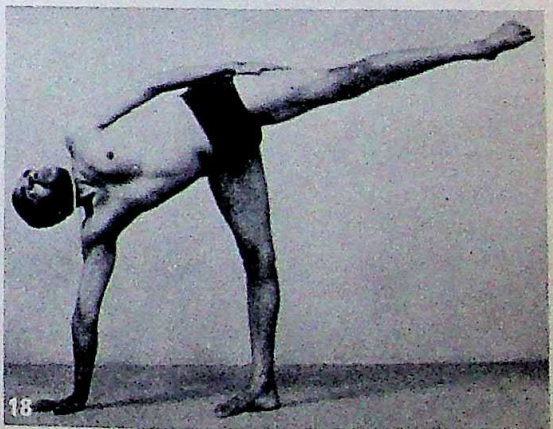
अर्धचंद्रासन (१८, १९)

उत्थितहस्तपादांगुष्ठासन (२०–२३)

पार्श्वोत्तानासन (२४–२८)
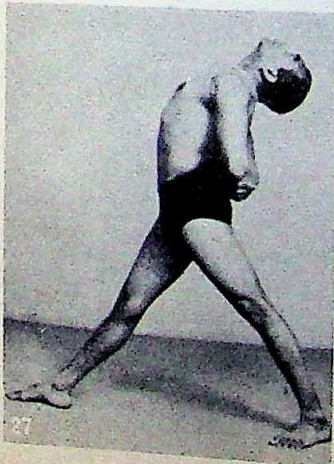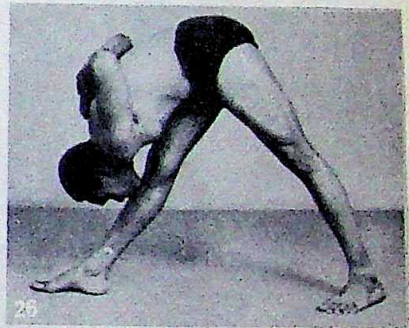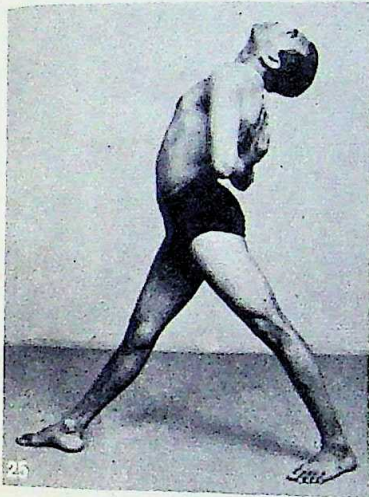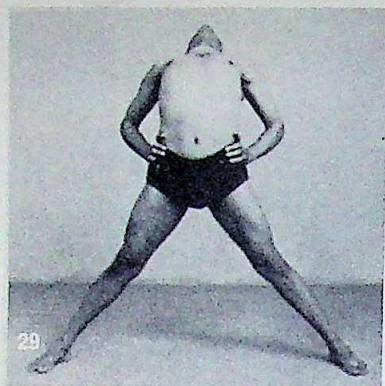
प्रसारित पादोत्तानासन-एक (२९–३४)

प्रसारित पादोत्तानासन-दो (३५, ३६)
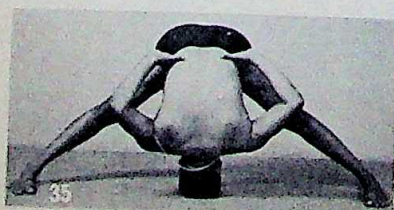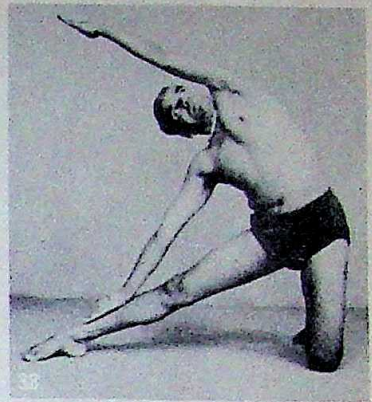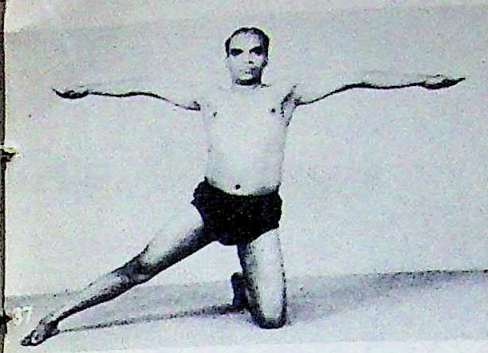
परिघासन (३७–३९)
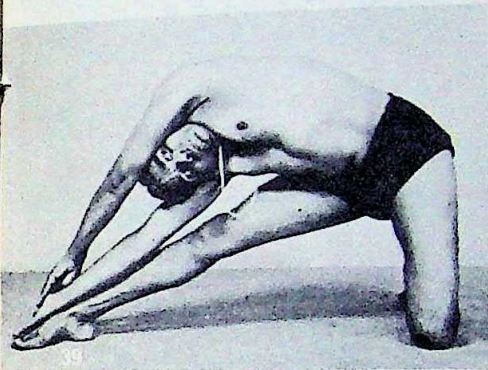
उष्ट्रासन (४०, ४१)
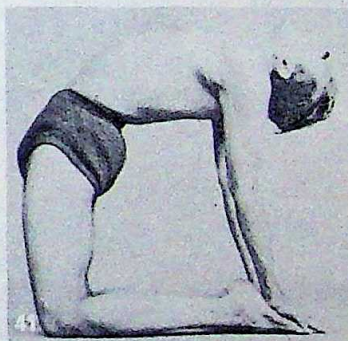
४२. उत्कटासन

पादांगुष्ठासन (४३,४४)
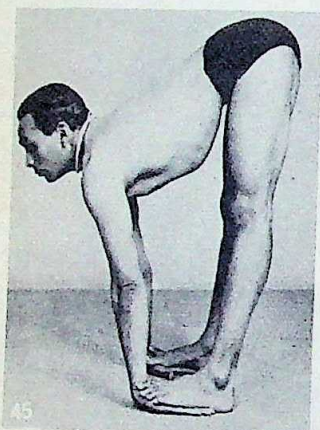
पादहस्तासन (४५, ४६)

उत्तानासन (४७, ४८)

४९. ऊर्ध्वप्रसारित एकपादासन

अर्धबद्ध पद्मोत्तानासन (५०–५५)
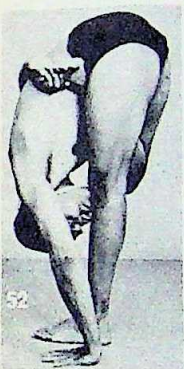
५६. गरुड़ासन

वातायनासन (५७–५९)

शलभासन (६०, ६१)
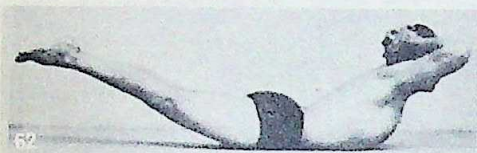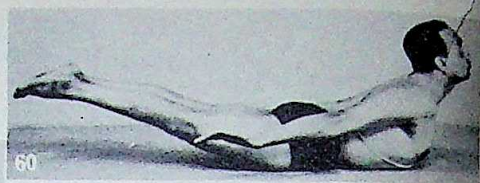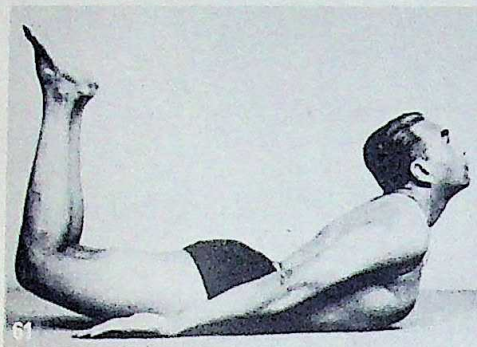
६२. मकरासन

६३. धनुरासन

पार्श्व धनुरासन (६४, ६५)
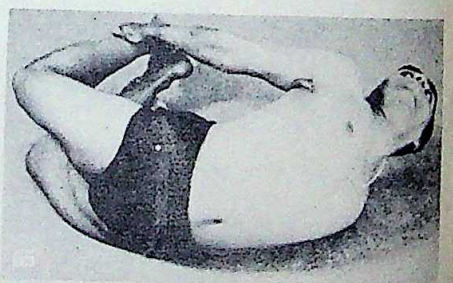
चतुरंग दण्डासन (६६,६७)
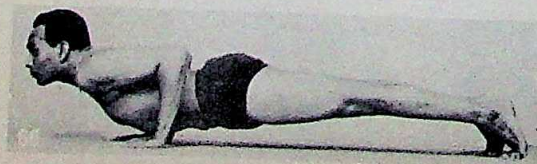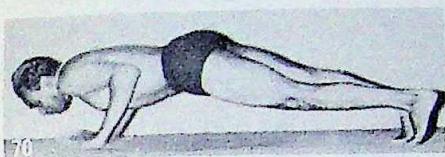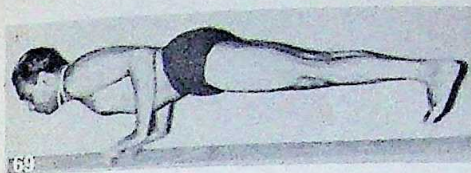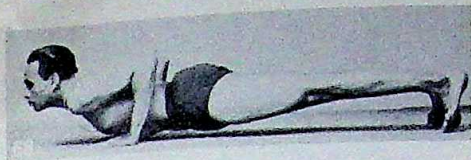
नक्रासन (६८-७१)

भुजंगासन (७२, ७३)
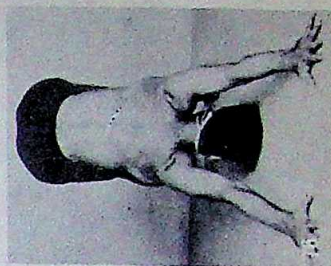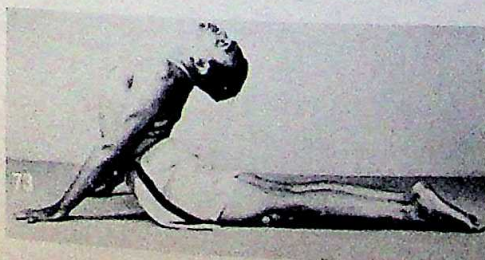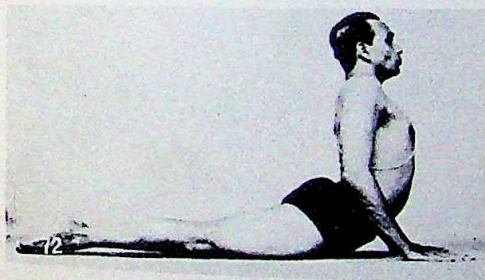
अधोमुख श्वानासन (७५, ७६)
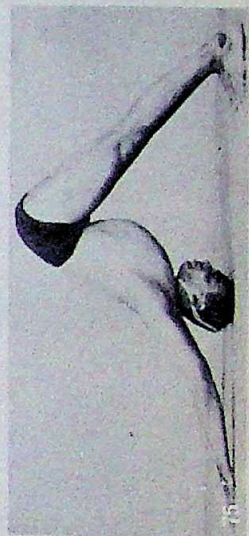
७४. ऊर्ध्वमुख श्वानासन

७७. दण्डासन

७८. परिपूर्ण नावासन
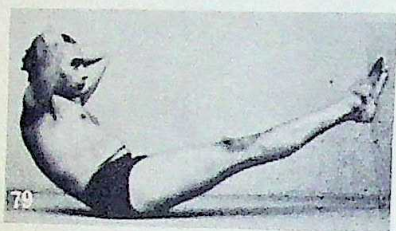
७९. अर्ध नावासन

गोमुखासन (८०, ८१)
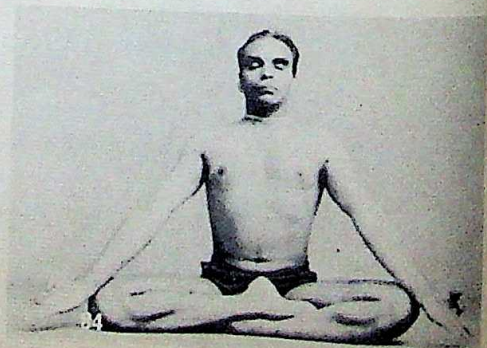
लोलासन (८२, ८३)

८४. सिद्धासन
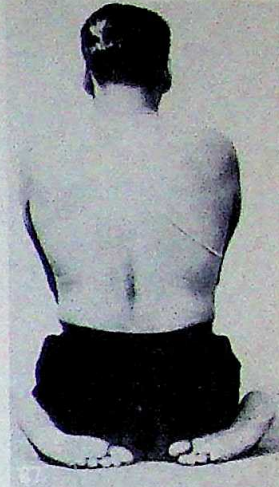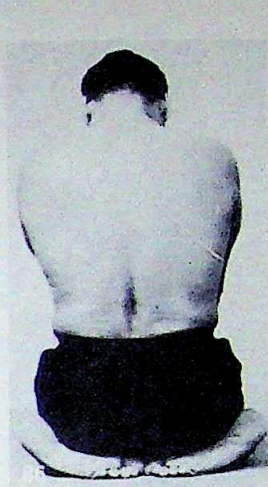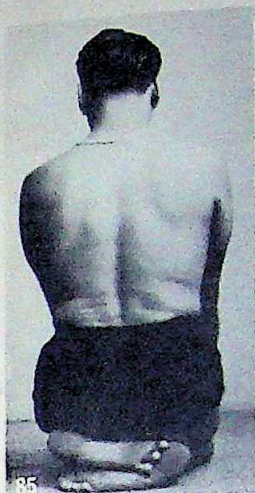
वीरासन (८५–९२)
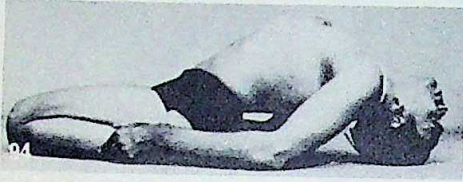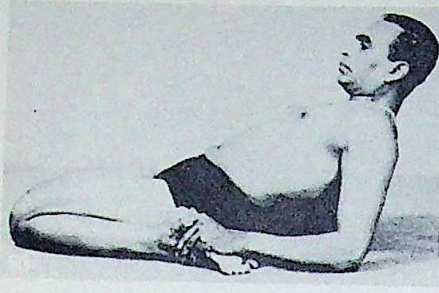
सुप्त वीरासन (९३–९६)

९७. पर्यंकासन

भेकासन मंडूकासन (९८–१००)
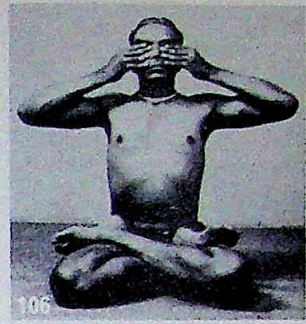
बद्ध कोणासन (१०१–१०३)

१०६. षण्मुखी मुद्रा

१०७. पर्वतासन

पद्मासन (१०४, १०५)

१०८. तुलासन

१०९. सिंहासन-एक

सिंहासन-दो (११०, १११)
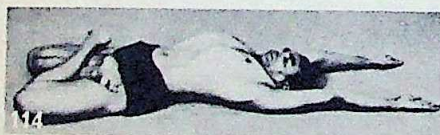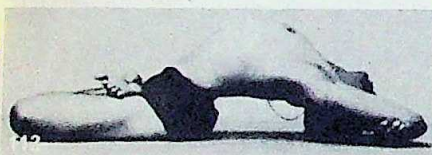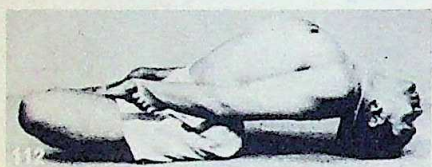
११६. गर्भपिंडासन

मत्स्यासन (११२–११४)

११५. कुक्कुटासन

११७. गोरक्षासन
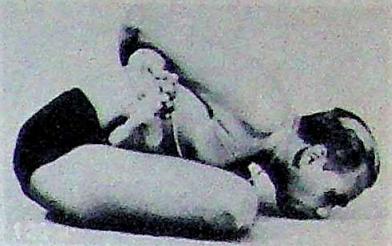
वद्धपद्मासन (११८,११९)

योगमुद्रासन (१२०–१२२)
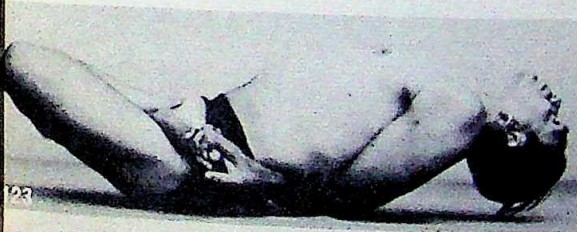
सुप्त वज्रासन (१२३, १२४)
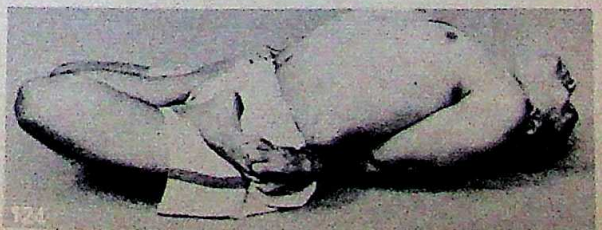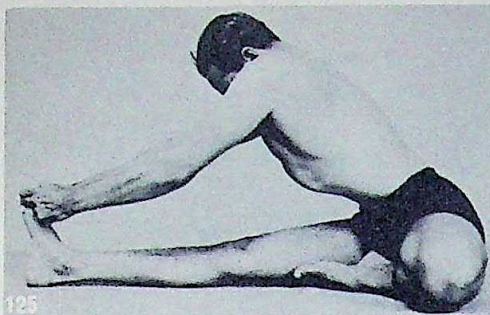
१२५. महामुद्रासन

जानु शीर्षासन. (१२६-१२९)
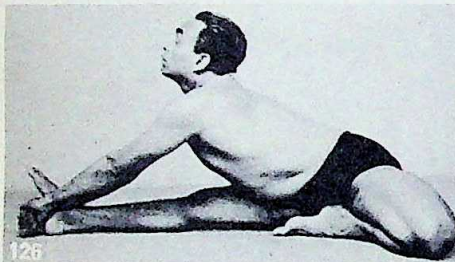
परिवृत्त जानु शीर्षासन (१३०-१३२)

अर्ध
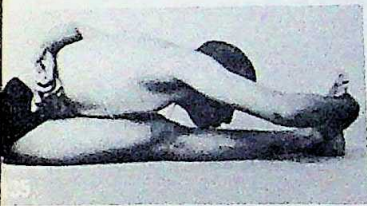
अर्ध बद्ध पद्म पश्चिमोत्तानासन (१३३–१३७)
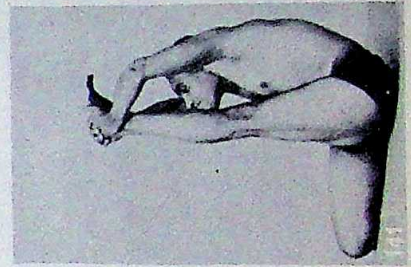
क्रौंचासन (१४०-१४२)

त्र्यंग मुखैकपाद-पश्चिमोत्तानासन (१३८, १३९)
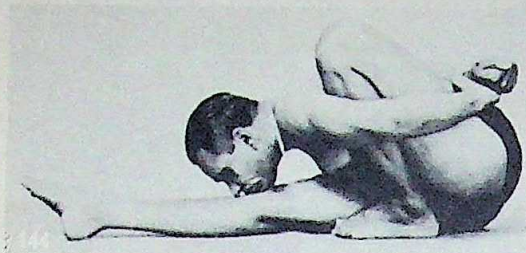
मरीच्यासन-एक (१४३-१४४)
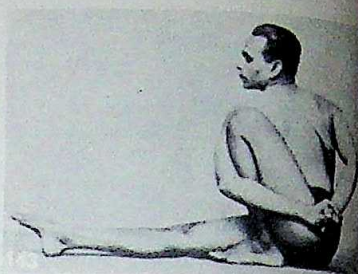
मरीच्यासन-दो (१४५–१४७)
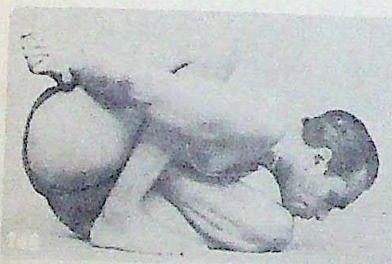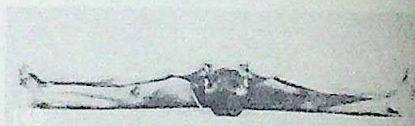
उपविष्ट कोणासन (१४८-१५२)
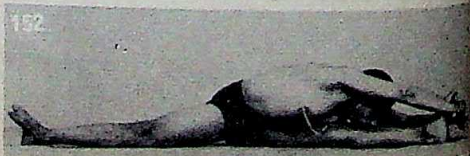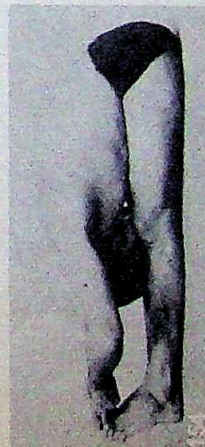
पश्चिमोत्तानासन (१५३–१६२)

परिवृत्त पश्चिमोत्तानासन (१६३–१६६)

१६७. उभय पादांगुष्ठासन

ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन-दो (१६६, १७

१६८. ऊर्ध्वमुख पश्चिमोत्तानासन–एक
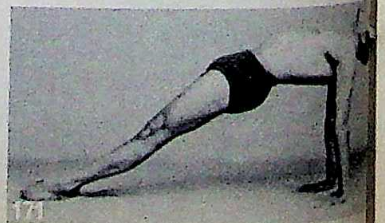
१७१. पूर्वोत्तानासन

आकर्ण धनुरासन (१७२–१७५)

177

178

179
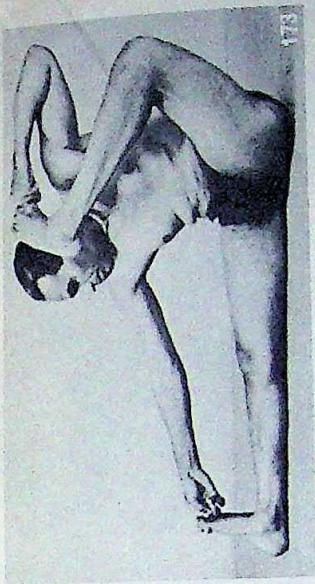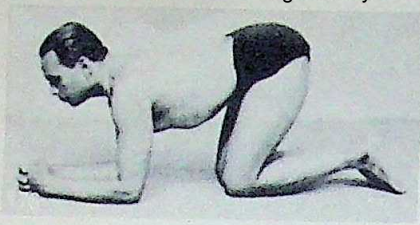
सालम्ब शीर्षासन- एक (१७६–१८७)

180

181

182

183
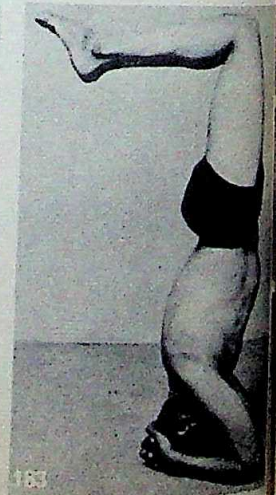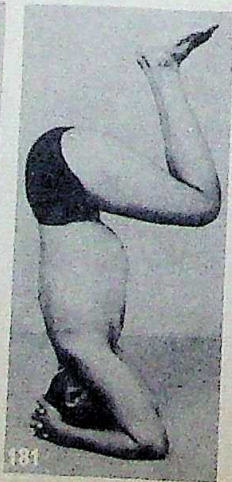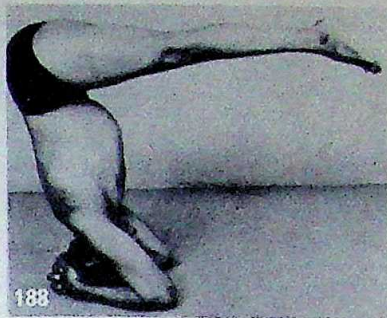
१८८. ऊर्ध्व दण्डासन
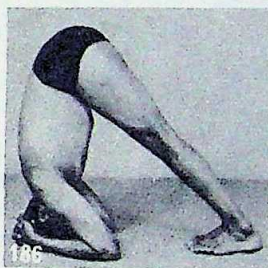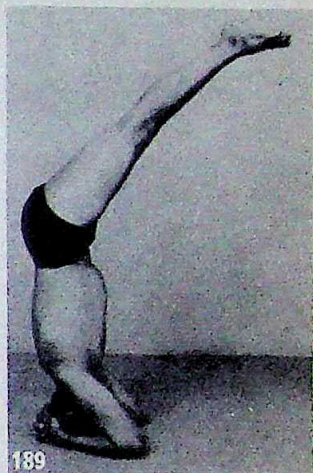
सालम्ब शीर्षासन-एक (१८९–१९१)
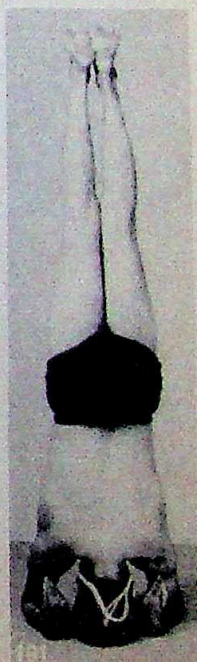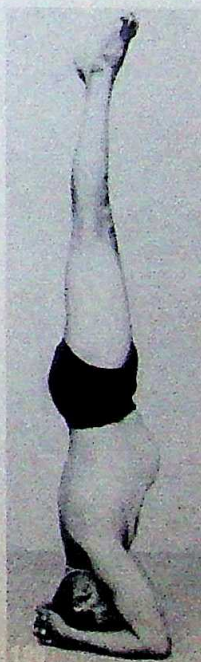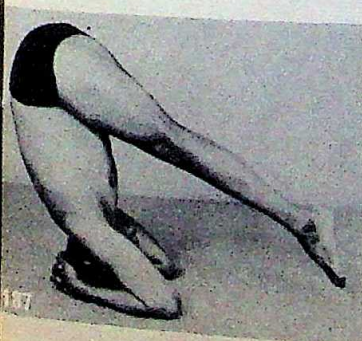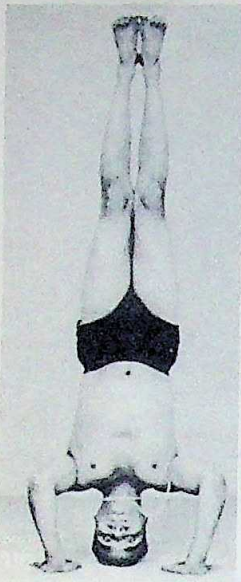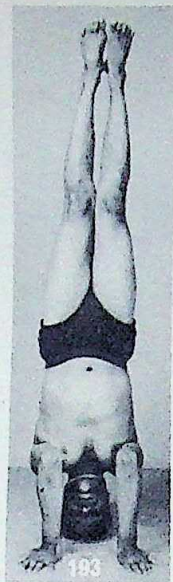
१९२. सालम्ब शीर्षासन–दो

सालम्ब शीर्षासन–तीन (१९३–१९७)
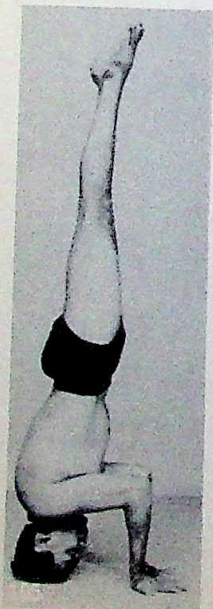
१९८. बद्धहस्त शीर्षासन

मुक्तहस्त शीर्षासन (१९९–२०१)
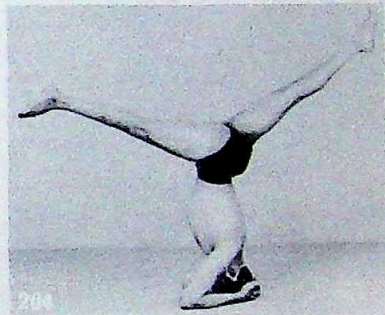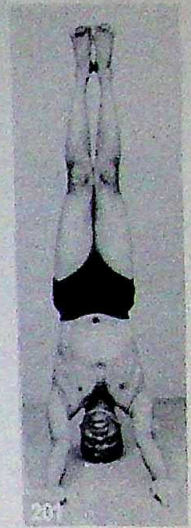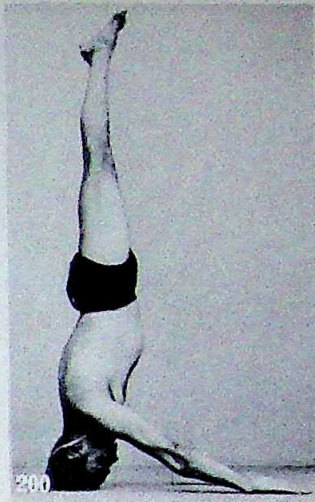
पार्श्व शीर्षासन (२०२, २०३)

परिवृत्तैकपाद शीर्षासन (२०४- २०७)
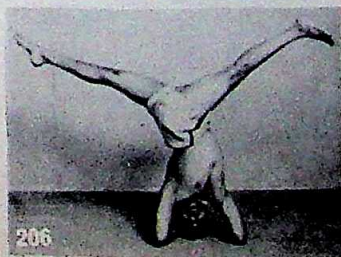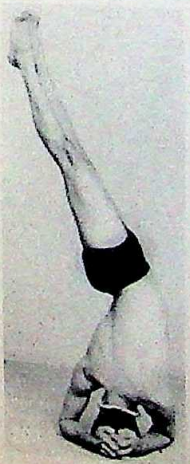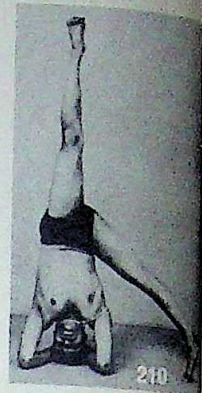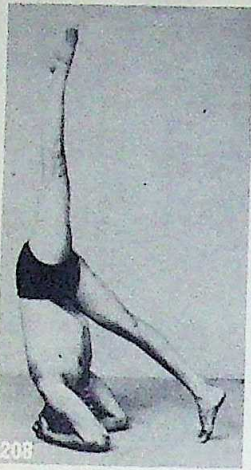
२१०. पार्श्वैकपाद शीर्षास

एकपाद शीर्षासन (२०८–२०९)

शीर्षासन में ऊर्ध्व पद्मासन (२११, २१२)
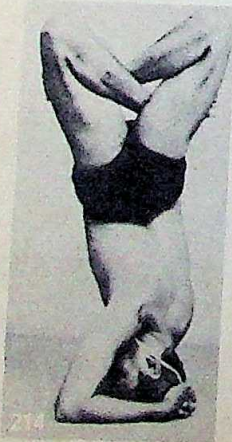
शीर्षासन में पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन (२१३–२१६)

शीर्षासन में पिंडासन (२१७, २१८)
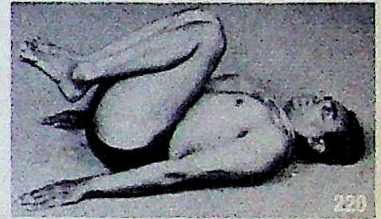
सालम्ब सर्वांगासन–एक (२१९–२२५)
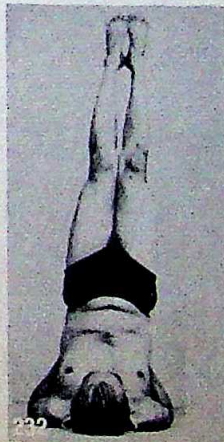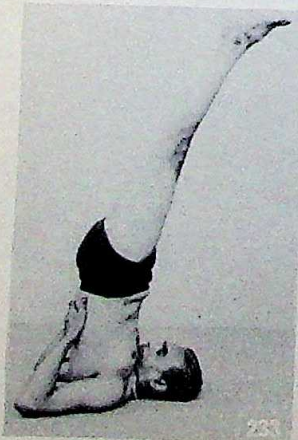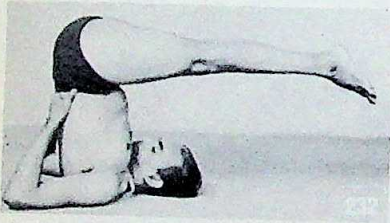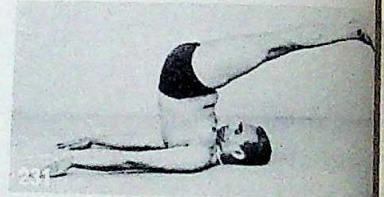
सालम्ब सर्वांगासन–एक (२२६–२३४)
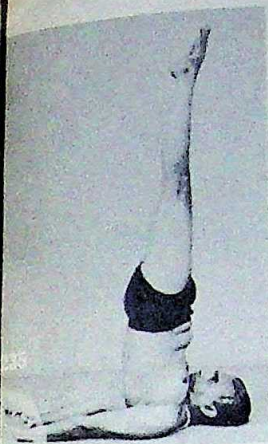
२३५. सालम्ब सर्वांगासन—दो
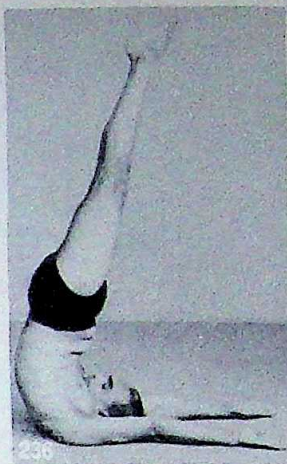
२३६. निरालम्ब सर्वांगासन—एक

२३७. निरालम्ब सर्वांगासन—दो

हलासन (२३८–२४४)
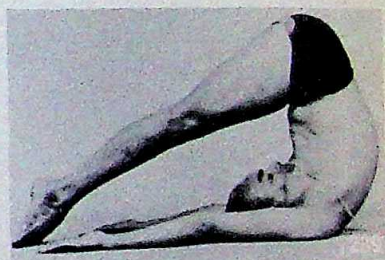
कर्णपीडासन (२४५, २४६)
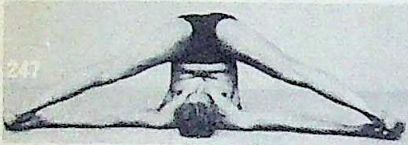
सुप्त कोणासन (२४७, २४८)

२४९. पार्श्व हलासन

२५०. एकपाद सर्वांगासन

२५१. पार्श्वैकपाद सर्वांगास

पार्श्व सर्वांगासन

(२५२–२५५)
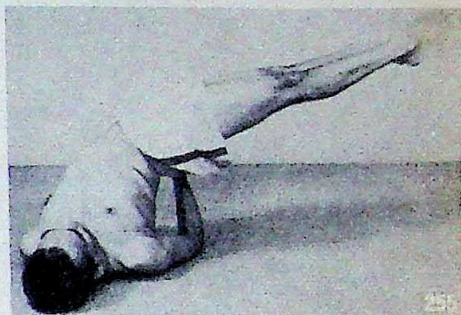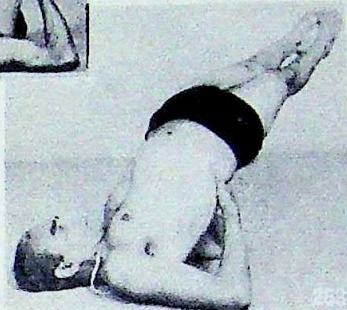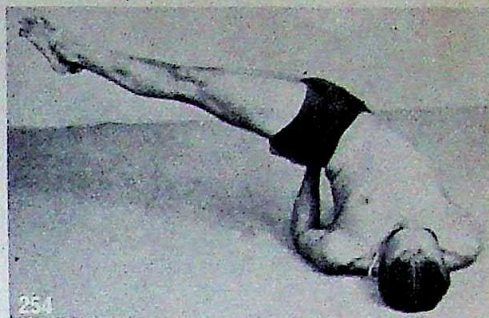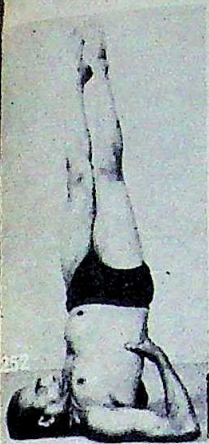
सेतुबन्ध सर्वांगासन–उत्तान मयूरासन (२५६–२५९)
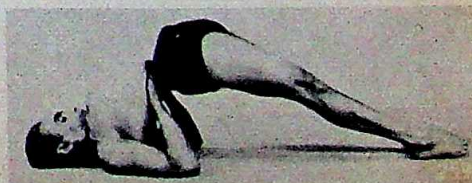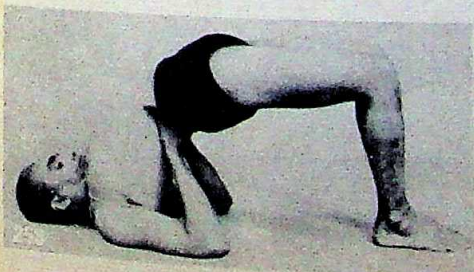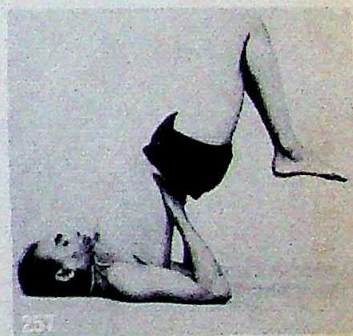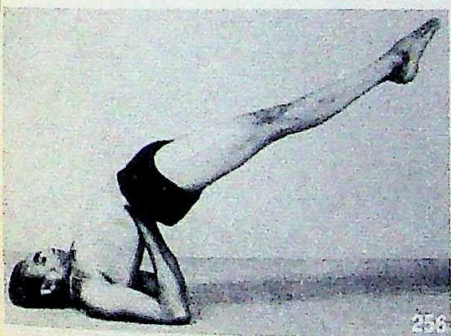
२६०. एकपाद सेतुबन्ध सर्वांगासन—एकपाद

२६१. सर्वांगासन में ऊर्ध्वपद्मासन
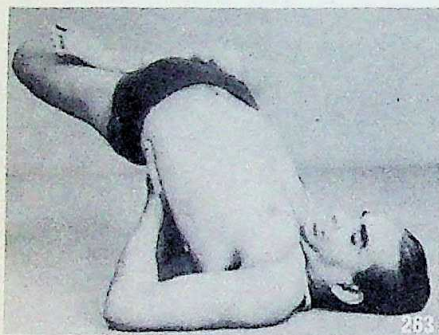
सर्वांगासन में पार्श्व ऊर्ध्व पद्मासन (२६२–२६५)

उत्तान पद्म मयूरासन (२६६, २६७)
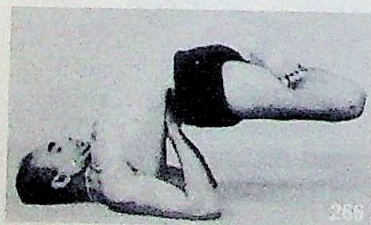
सर्वांगासन में पिंडासन (२६८, २६९)

सर्वांगासन में पार्श्व पिंडासन (२७०, २७१)

२७९. ऊर्ध्व प्रसारित पादासन (२७६–२७९)

जठर परिवर्तनासन (२७२–२७५)

२७६.
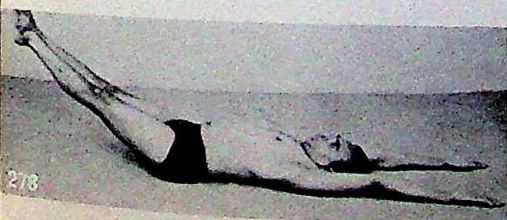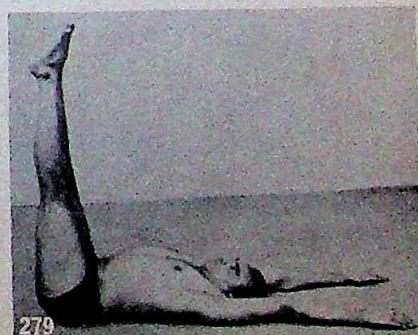
चक्रासन (२८०–२८३)
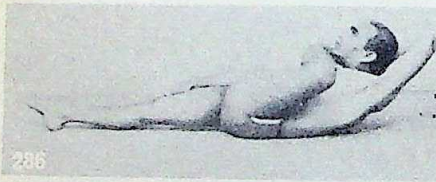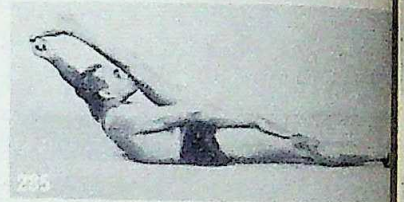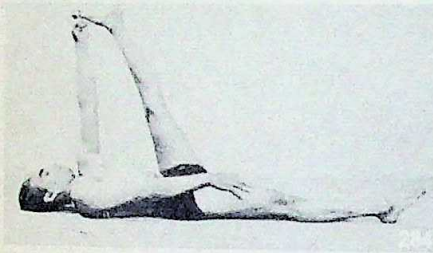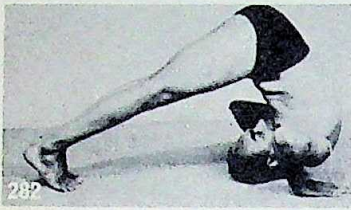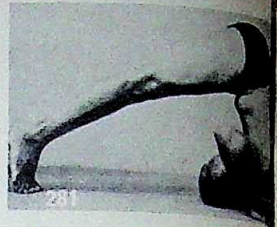
सुप्त पादांगुष्ठासन (२८४–२८७)

अनन्तासन (२८८–२९०)

उत्तानपादासन (२९१, २९२)

सेतुबंधासन (२९३–२९६)

भारद्वाजासन–एक (२९७, २९८
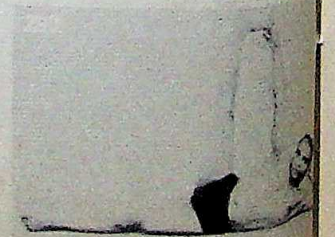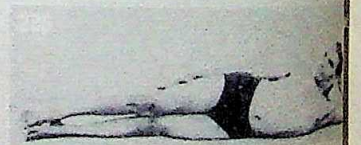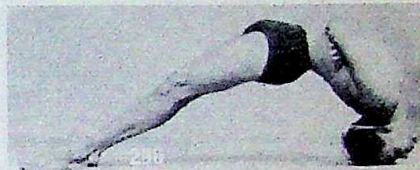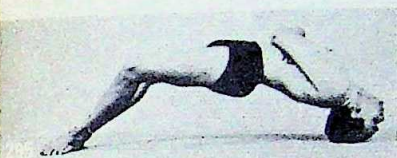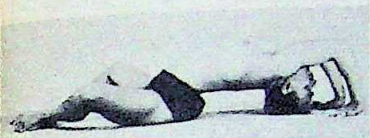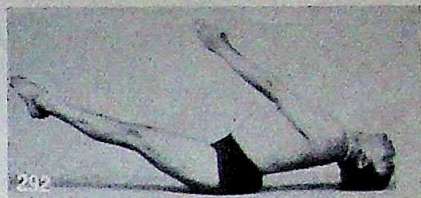
भारद्वाजासन–दो (२९९, ३००)
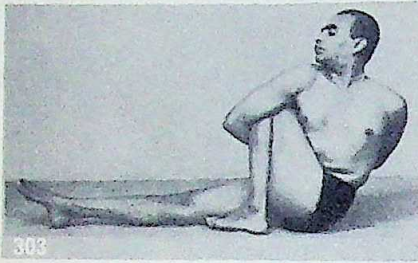
मरीच्यासन–तीन (३०१–३०४)

मरीच्यासन–चार (३०५, ३०६)

अर्ध मत्स्येंद्रासन–एक (३०७–३१६)

मालासन–एक (३१७–३२१)
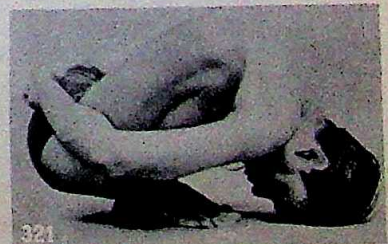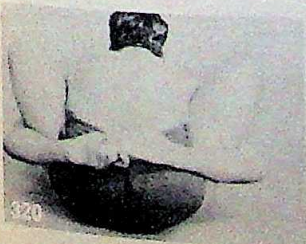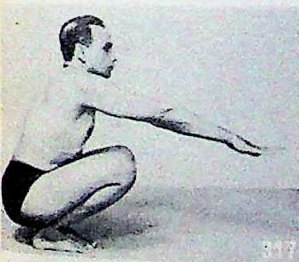
३२२. मालासन–दो

पाशासन (३२३–३२९)

अर्ध मत्स्येंद्रासन—दो

(३३०, ३३१)
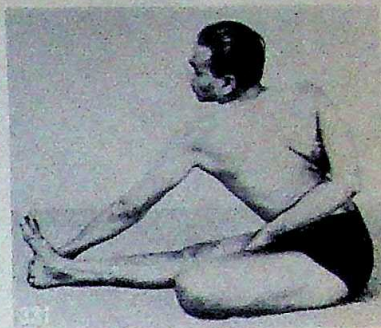
अर्ध मत्स्येंद्रासन—तीन

(३३२, ३३३)

परिपूर्ण मत्स्येंद्रासन

(३३४–३३९)
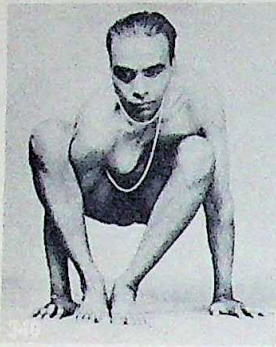
अष्टावक्रासन (३४०–३४३)

३४४. एकहस्त भुजासन
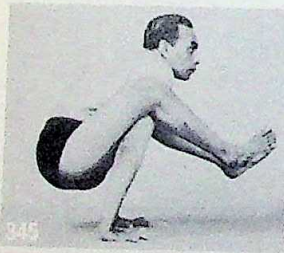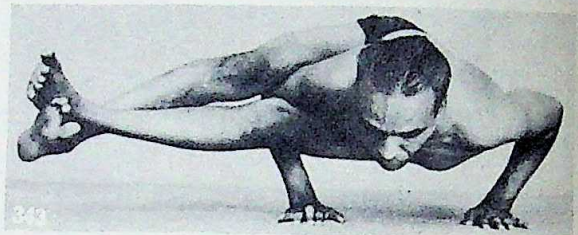
३४५. द्विहस्त भुजासन
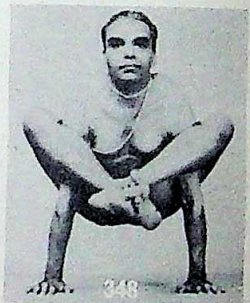
भुजपीड़ासन (३४६–३५०)
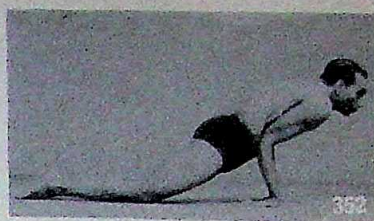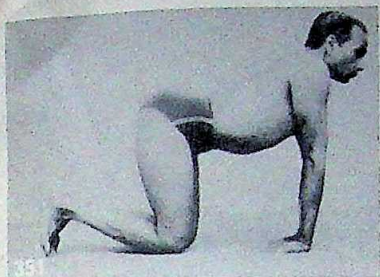
मयूरासन (३५१–३५४)
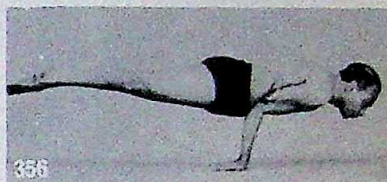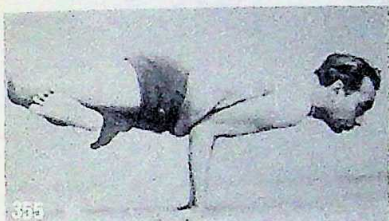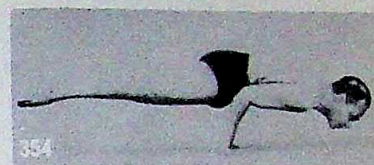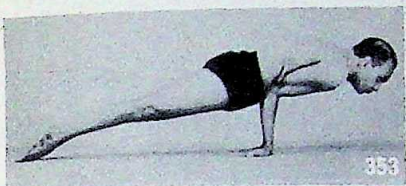
३५५. पद्म मयूरासन

३५६. हंसासन
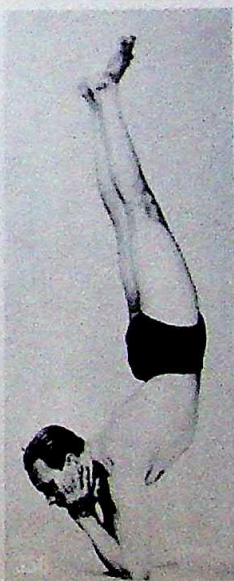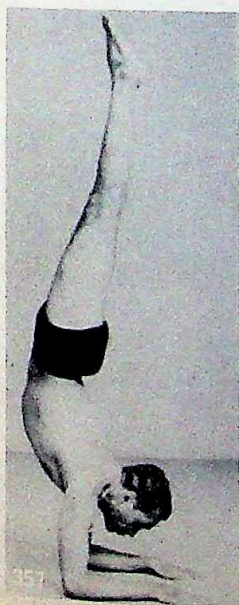
३५७. पिच्छ मयूरासन

३५८. शयनासन

३५९. अधोमुख वृक्षासन
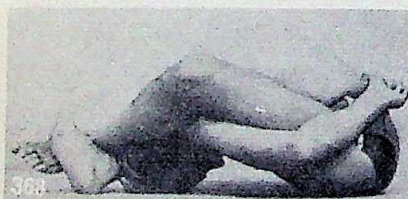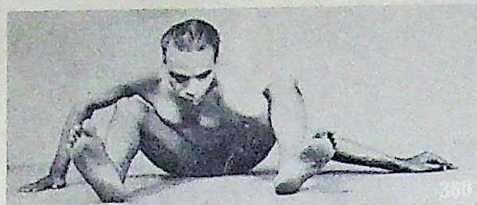
कूर्मासन (३६०–३६५)

सुप्त कूर्मासन (३६६–३६८)

एकपाद शीर्षासन (३६९–३७१)

३७२. स्कन्दासन

३७३. बुद्धासन

३७४. कपिलासन
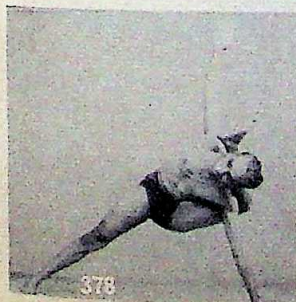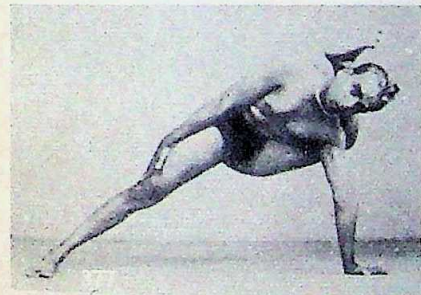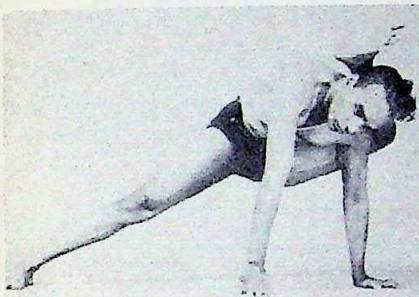
३७५. भैरवासन

कालभैरवासन (३७६–३७८)

चकोरासन (३७९, ३८०)
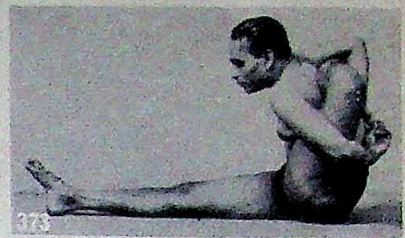
दुर्वासासन (३८१–३८३)

रुचिकासन (३८४, ३८५)

विरंच्यासन–एक (३८६, ३८७)

३८८. विरंच्यासन–दो

योगनिद्रासन (३८९–३९१)
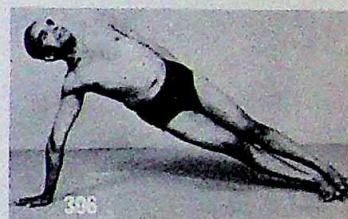
द्विपाद शीर्षासन (३९२–३९४)

३९५. टिट्टिभासन

वशिष्ठासन (३९६–३९८)
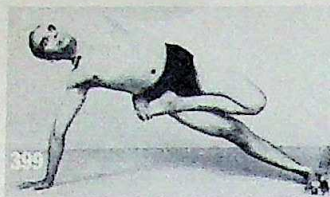
कश्यपासन
(३९९, ४००)
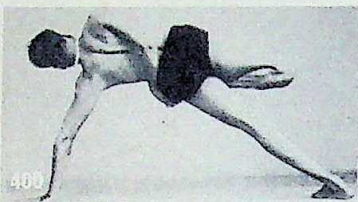
विश्वामित्रासन
(४०१–४०३)

बकासन (४०४–४१०)

पार्श्व बकासन (४११, ४१२)

ऊर्ध्व कुक्कुटासन (४१३–४१९)
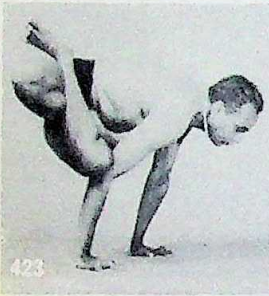
पार्श्व कुक्कुटासन (४२०–४२५ अ)

गालवासन (४२६–४२८)

एकपाद गालवासन (४२९–४३३)
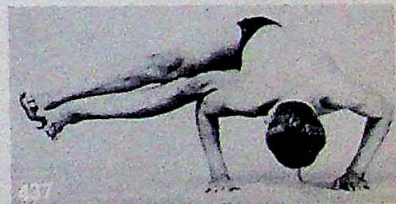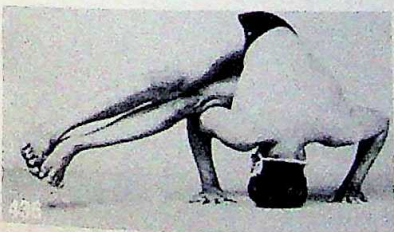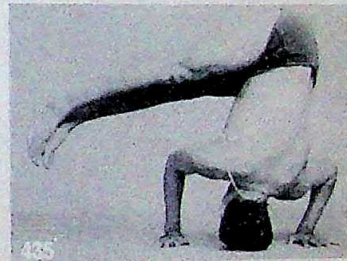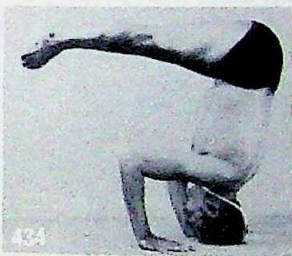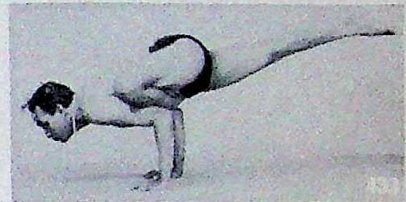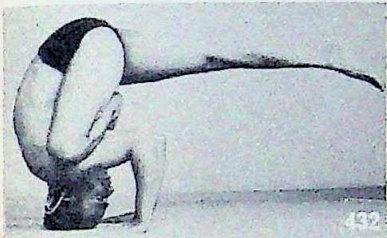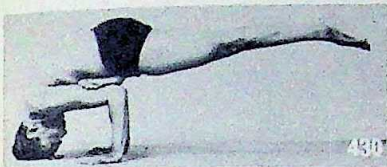
द्विपाद कौण्डिन्यासन (४३४–४३८)
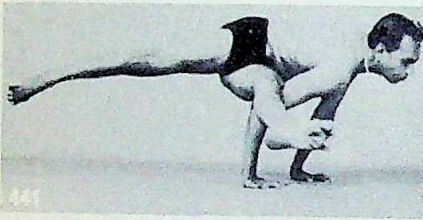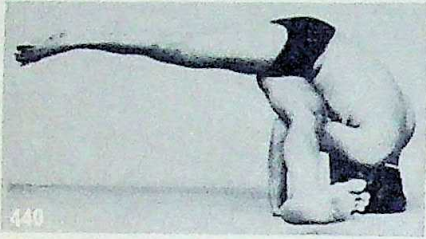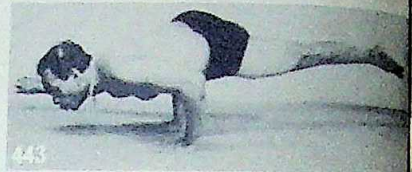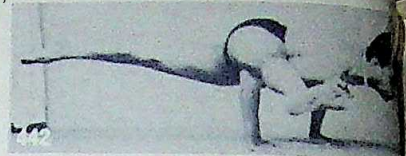
एकपाद कौण्डिन्यासन–एक (४३९–४४१)

एकपाद कौण्डिन्यासन–दो (४४२–४४४)

४४७. एकपाद बकासन–एक (४४५–४४७)
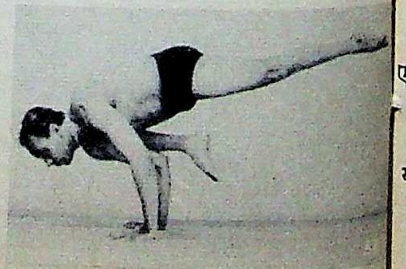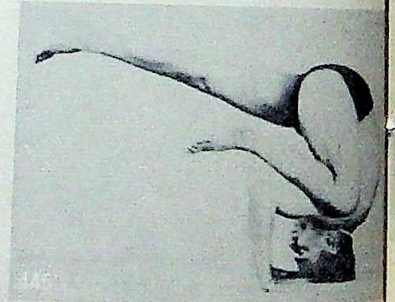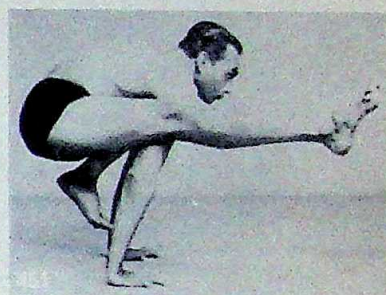
एकपाद बकासन–दो (४४८–४५२)

योगदण्डासन (४५३–४५६)
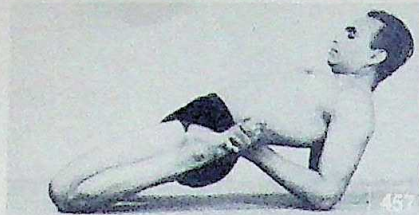
सुप्त भेकासन (४५७–४५८)
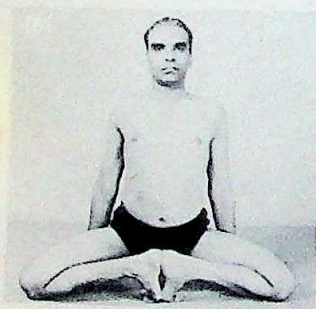
मूलबंधासन (४५९–४६३)
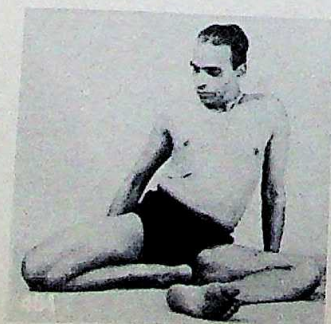
वामदेवासन–एक (४६४, ४६५)

४६६. वामदेवासन–दो
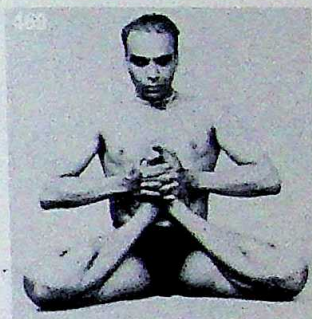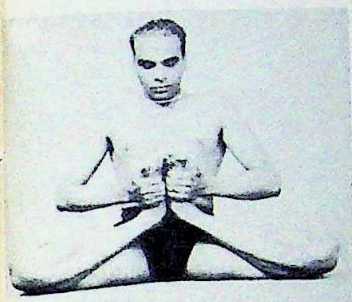
कंदासन (४६७–४७१–ब)
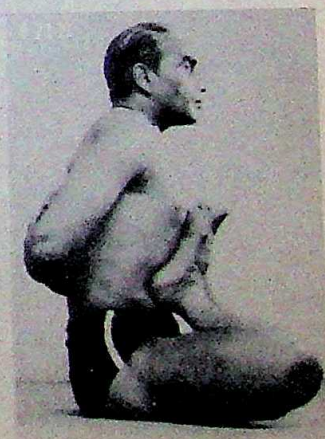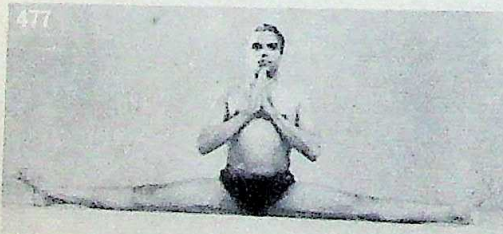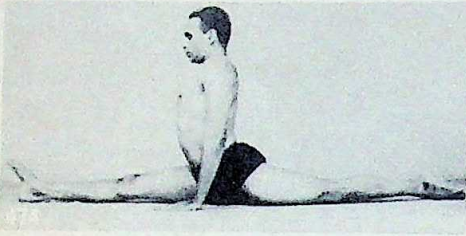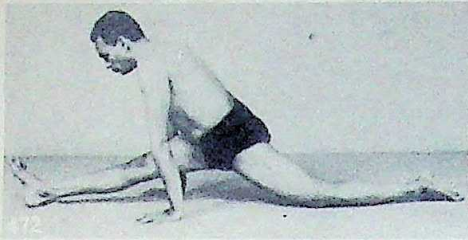
अ हनुमानासन (४७२–४७६–अ)

४७७. समकोणासन
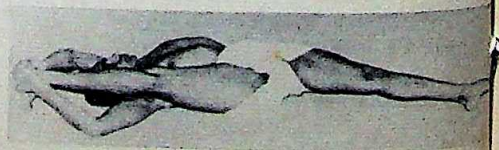
४७८. सुप्त त्रिविक्रमासन
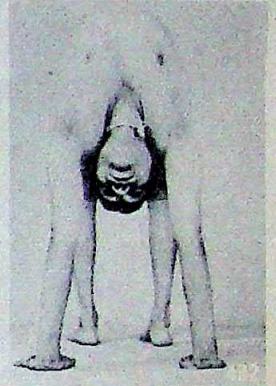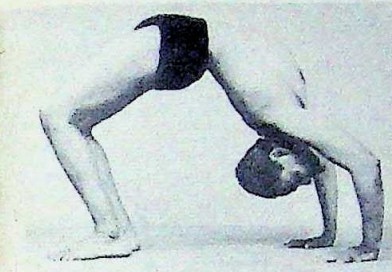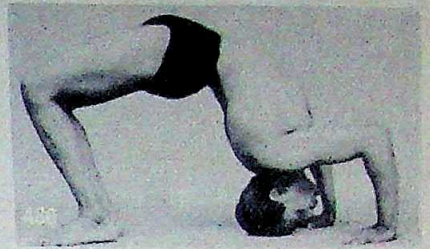
ऊर्ध्व धनुरासन–एक (४७९–४८२)

ऊर्ध्व धनुरासन–दो (४८३–४८७)
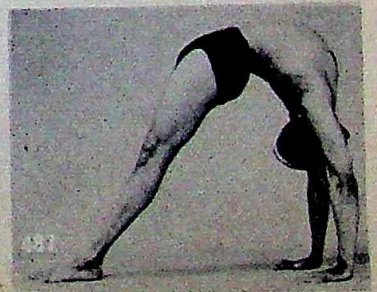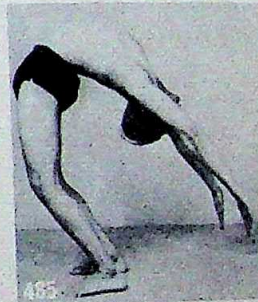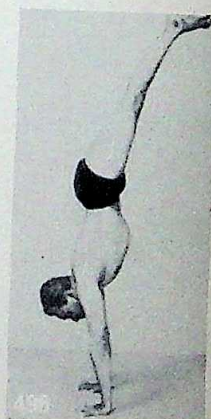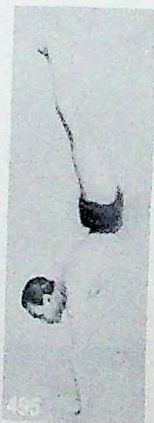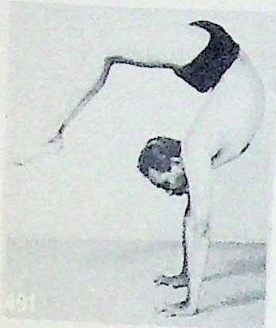
ऊर्ध्व धनुरासन में विपरीत चक्रासन (४८८–४९९)

एकपाद ऊर्ध्व धनुरासन (५००–५०२)

कपोतासन (५०३–५१२)
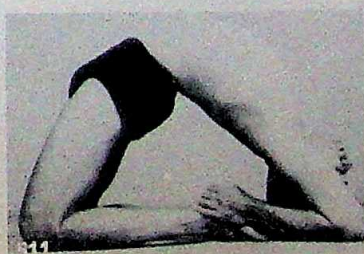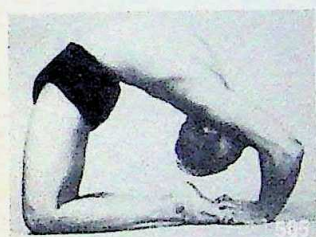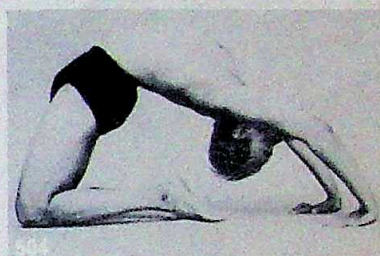
५१३. लघु वज्रासन

द्विपाद विपरीत दण्डासन (५१४–५२०)
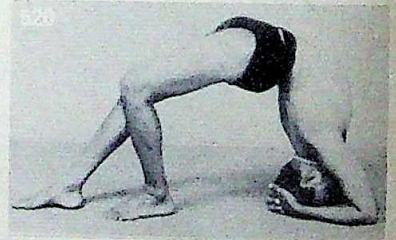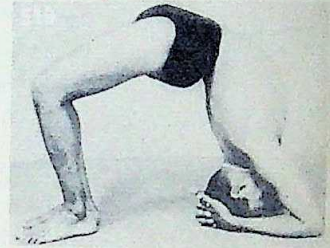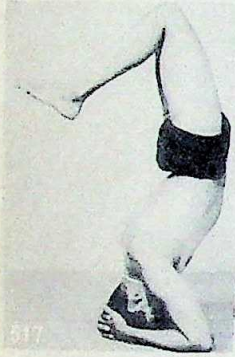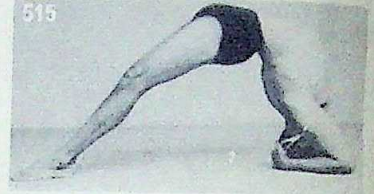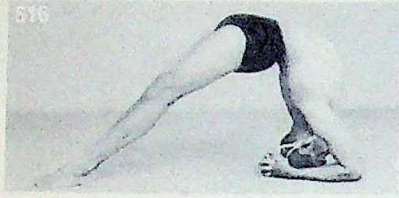
५२१. एकपाद विपरीत दण्डासन–एक

एकपाद विपरीत दण्डासन–दो (५२२, ५२३)

526

527

528

529

530

531

532

533

534

535
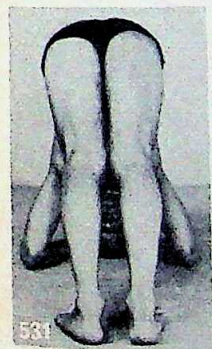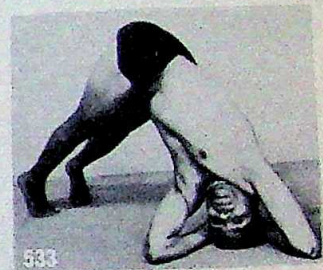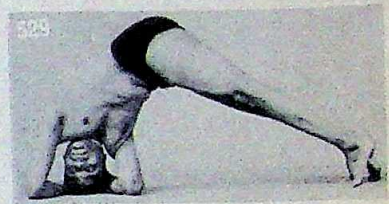
मण्डलासन (५२५–५३५)

वृश्चिकासन–एक (५३६, ५३७)

५३८. वृश्चिकासन दो
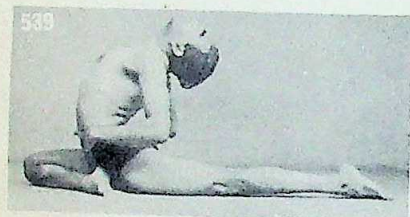
एकपाद राजकपोतासन–एक
(५३९–५४२)
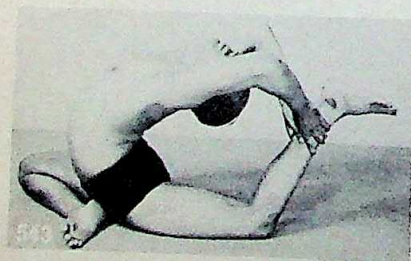
५४५. एकपाद राजकपोतासन–दो
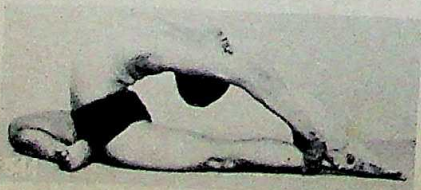
बालखिल्यासन (५४३, ५४४)

५४६. एकपाद राजकपोतासन–तीन
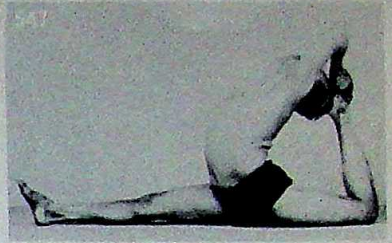
५४७. एकपाद राजकपोतासन–चार
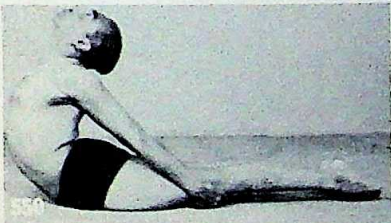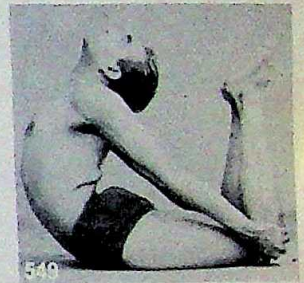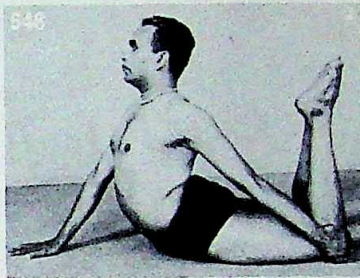
भुजङ्गासन–दो (५४८–५५०)

राजकपोतासन (५५१, ५५२)
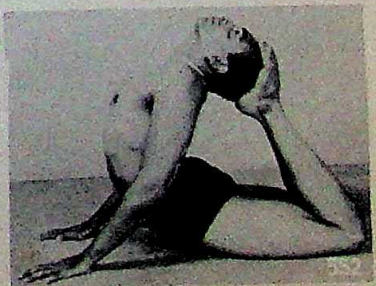
पादांगुष्ठ धनुरासन
(५५३–५५७)

घेरण्डासन–एक (५५८–५६३)

घेरण्डासन -दो (५६४–५६६)
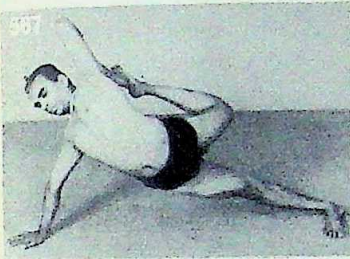
५६७, कपिंजलासन
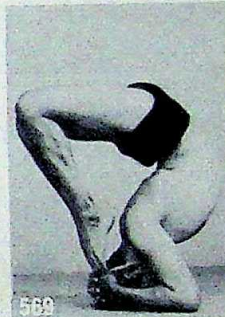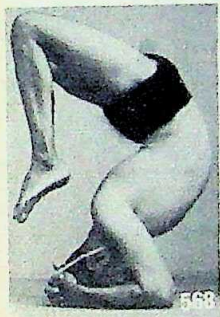
शीर्ष पादासन (५६८–५७०)

गण्डभेरुण्डासन (५७१–५७३)
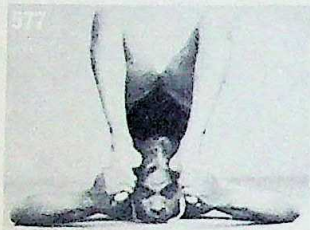
गण्डभेरुण्डासन (५७४-५८३)
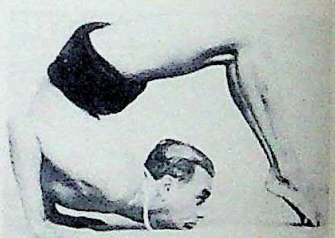
५८४. विपरीत शलभासन

त्र्यंग मुखोत्तानासन (५८५, ५८६)

नटराजासन (५८७–५९१–अ)

५९२. शवासन

उड्डीयान बन्ध (५९३, ५९४)

नौलि (५९५, ५९६)

प्राणायाम (५९७–६०१)

५९७. उज्जायि

सूर्यभेदन (५९८, ५९९)

६००. बाह्य कुम्भक

६०१. शीतली

६०२. ध्यान
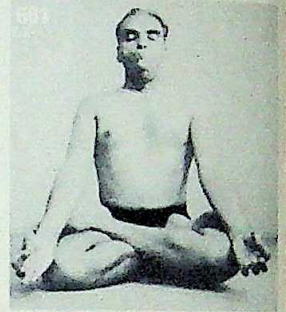
योगदीपिका में २०० से भी अधिक आसनों और १४ प्राणायाम-प्रकारों का विस्तृत विवेचन है। लगभग ६०० चित्र हैं, जिनके आधार पर बिना प्रत्यक्ष गुरु के निर्देश के, आसनों और प्राणायामों का अभ्यास किया जा सकता है। इनमें से अधिकतर आसनों के चित्र इससे पहले कहीं किसी पुस्तक में उपलब्ध नहीं हैं।

नाड़ी, चक्र, कुंडलिनी के विवेचन के साथ साथ जहां तहां विभिन्न आसनों, प्राणायामों आदि की व्याख्याएं पतंजली के आधार पर की गयी हैं। परिशिष्ट में उन-उन रोगों के निवारक व्यायाम-प्रकारों का निर्देश तो किया ही गया है; साथ ही साथ उत्साही अभ्यासकों के लिए ३०० सप्ताहों का एक उत्कृष्ट और परिपूर्ण अभ्यासक्रम निर्धारित किया गया है।

श्री. बी. के. एस. आयंगार १९३६ से योग के एक प्रखर और प्रभावशाली गुरु रहे हैं। १९५२ में यहुदी मेन्युहिन जैसे मनीषी उनके शिष्य बने और तबसे श्री. आयंगार पाश्चात्य जगत् में कीर्ति के शिखर पर पहुंच गये। इंगलैंड, जर्मनी, केनिया तथा अन्य देशों में श्री. आयंगार नियमित रूप से जाते रहे हैं। उनके प्रमुख शिष्यों में स्व. महारानी एलिझाबेथ (बेल्जियम), क्लिफर्ड कर्झन, कृष्णमूर्ति तथा डॉ. जी. एस. पाठक जैसे महामना हैं।